रणीय मुनिराज पं० श्री रोशनलाल जी महाराज, व सुश्रावक श्री विमलकुमार जी रांका, निमाज वाले ने पूर्ण प्रयत्न के साथ सब जीवन सामग्री एकत्रित की। इन्हीं के सत्पुरुषार्थ से पूज्य गुरुमहाराज श्री स्वामी छगनलाल जी महाराज के जीवन-वृत्त पाठकों तक पहुँचाने में हम सफल हो सके हैं। अतः हम इन सभी सहायक गुरुभक्तों के हृदय से आभारी हैं।

"साधना के अमर प्रतीक" को प्रकाशित कराने वाले दानी सज्जनों की स्नेहशीलता तथा उदारता की हम क्या प्रशंसा करें? इन्हीं की कृपा से "साधना के अमर प्रतीक" को प्रकाशित किया जा रहा है।

पुस्तक को सुन्दर और शुद्ध रूप में स्वल्प समय में छपवाकर तैयार कराने में प्रसिद्ध साहित्यकार श्री श्रीचन्द जी सुराना 'सरस' का सहयोग भी सदा स्मरणीय रहेगा।

सभी दानी एवं सहयोगी सज्जनों का हम अपनी ओर से तथा पाठकों की ओर से हार्दिक धन्यवाद करते हैं और आशा करते हैं कि ये सज्जन भविष्य में भी इसी तरह संस्था को सहयोग देने की कृपा करते रहेंगे।

कार्तिकशुक्ला षष्ठी
वि० सं० २०३०
वी० सं० २४९९

प्रार्थी
स्वामी श्री छगनलाल जैन धर्म प्रचार समिति
रोड़ी (हिसार)

ग्रन्थ-निर्माण का पावन प्रसंग

समय चक्र अनादि काल से चला आ रहा है, और अनन्त काल तक चलता रहेगा। इस काल चक्र में प्रत्येक प्राणी जन्म लेता है और मर जाता है। प्रकृति का नियम ही है कि जो जन्म लेता है, उसका मरण अवश्यम्भावी है।

इस संसार में अनन्त प्राणी ऐसे भी हैं, जो जन्म लेकर कीड़े मकोड़े की तरह जीवन बिताकर मर जाते हैं। उनके विषय में किसी को भी जानने की, सोचने-समझने एवं लिखने की अभिरुचि भी नहीं होती, परन्तु कतिपय ऐसे विशिष्ट व्यक्ति भी होते हैं जो संसार के लिए पथ-प्रदर्शक एवं आदर्शरूप बन जाते हैं और अपना भी कल्याण कर जाते हैं। उनमें भी वे अधिक विशिष्ट व्यक्ति माने जाते हैं कि जिन्होंने प्राणी मात्र के हित के लिए अपना सारा जीवन अर्पण कर दिया हो, उन्हीं महापुरुषों के विषय में जनता के मन में कुछ जानने की अभिरुचि रहती है, कि वे कब जन्मे, कहाँ जन्मे और उन्होंने अपने जीवन काल में क्या क्या कार्य किये? वैसे तो किसी भी लेखक की लेखनी में ऐसी शक्ति नहीं, कि ऐसे महापुरुषों के गुणों को लिपिबद्ध कर सके। परन्तु अपनी शक्ति के अनुसार कुछ न कुछ गुणों को लिपिबद्ध करके जनता के लिए पथप्रदर्शन करने का प्रयत्न करते रहे हैं।

ऐसे ही महान् आत्माओं में से "चरित्रनायक" गुरुदेव प्रातःस्मरणीय पूज्यनीय क्षमाशील, निष्कपट हृदय, शान्त मूर्ति, रत्नत्रय धारक स्वर्गीय श्री श्री १००८ श्री छगनलाल जी मा० सा० हुए हैं। गुरुदेव महान् ओजस्वी। तेजस्वी, उदार हृदय एवं लोकप्रिय सन्त हुए हैं।

पूज्य गुरुदेव के जीवन-विषय में भी लोगों को जानने की अत्यन्त अभिरुचि रहती थी और श्रद्धालु भक्तगण मुझ से कहा करते थे कि गुरुदेव की जीवनी प्रकाशित होनी चाहिये। मेरी भी इस विषय में अभिरुचि थी। मैं सोचता रहा कि यह कार्य किसके सुपुर्द किया जाय, ताकि अच्छे सुन्दर ढंग से सम्पन्न हो सके।

गुरुदेव के प्रताप से संयोग ऐसा मिला कि हम पूज्य प्रातःस्मरणीय जैन दिवाकर आचार्य सम्राट् स्वर्गीय श्री श्री १००८ श्री आत्माराम जी मा० सा० के सुशिष्य महान् विद्वान् पंडित रत्न श्री रतन मुनि जी मा० सा० व व्याख्यान वाचस्पति श्री कान्तिमुनि जी मा० सा० के साथ चातुर्मास के लिए लुधियाना से मानसा आ रहे थे। मार्ग में बरनाला पहुँचे, वहाँ पर शान्तमूर्ति तपोधनी सरलात्मा श्री श्री १००८ श्री पन्नालाल जी मा० सा०, कविरत्न श्री चन्दन मुनि जी मा० सा० स्थिरवास हैं। वहीं पर पूज्य श्री आत्माराम जी मा० सा० के परम सुशिष्य जैन भूषण पंजाब केसरी, सुप्रसिद्ध वक्ता श्री ज्ञानमुनि जी मा० सा० मिले। उन्होंने कई बड़े-बड़े ग्रन्थ बहुत सुन्दर ढंग से लिखे हैं। कई शास्त्रों की सुन्दर व्याख्याएँ भी की हैं, कई लोकप्रिय कविताओं की पुस्तकें भी लिखी हैं, और हिन्दी-संस्कृत प्राकृत एवं पंजाबी आदि भाषाओं पर पूर्ण रूप से अधिकार है। पं० श्री ज्ञानमुनि जी चातुर्मासार्थ मालेरकोटला पधार रहे थे, तो बीच में वे भी बरनाला पधारे हुए थे। उनके साथ में वार्तालाप चल रहा था। उसी प्रसंग में गुरुदेव के जीवन चरित्र के विषय में बात चल पड़ी, तब आप श्री ने बड़ी श्रद्धा एवं रुचि के साथ इस महान् कार्य को अपने हाथ में लेना सहर्ष स्वीकार किया।

तत्पश्चात् गुरुदेव के जीवन विषयक सामग्री एकत्रित की गई। जिसमें श्रावक दीवानचन्द जी रोड़ी वालों ने तन-मन-धन एवं समय से इस कार्य में पूर्ण सहयोग दिया। अतः वे भी प्रशंसा के पात्र हैं। वे गुरुदेव के अनन्य भक्त एवं पूर्ण श्रद्धालु हैं। जीवन चरित्र सम्बन्धी जो सामग्री उपलब्ध हो सकी, एकत्र करके श्री ज्ञान मुनि जी मा० सा० की सेवा में समर्पित कर दी गई। आप श्री ने बड़ी श्रद्धा, लगन एवं परिश्रम के साथ गुरुदेव की जीवनी को रुचिकर एवं आकर्षक बनाने के लिए प्रसंगानुसार शास्त्रों के उद्धरण, रूपक, ब्रह्मचर्य तथा कर्मवाद आदि विषयों का भी खूब अच्छी तरह विवेचन किया। पं० रत्न श्री ज्ञान मुनि जी के इस साहित्यिक सत्प्रयत्न का न केवल पूज्य गुरुदेव के भक्तजन ही, किन्तु सामान्य धर्मरुचि वाला पाठक भी आभार मानेगा और इस दिव्य जीवनी के प्रति श्रद्धा से सिर झुकायेगा।

इस जीवन चरित को प्रकाश में लाने का श्रेय गुरुदेव के अनन्य भक्त सेठ दीवानचन्द जी जैन को है, मुझे खुशी है कि श्रद्धालुओं ने अपनी श्रद्धा को अच्छे ढंग से प्रस्तुत कर एक श्रद्धापूर्ण उदाहरण प्रस्तुत किया है।

—मुनि रोशनलाल

भूमिका

मेरे आराध्य गुरुदेव !

जैनाचार्य पूज्य स्वामीदास जी म० के पाटानुपाट युगप्रवर्तक आचार्य श्री [illegible] जी म० के शिष्यानुशिष्य श्री छगनलाल जी महाराज मरुधर के एक महान् सन्त थे, आपका जन्म और दीक्षा मरुधरा में हुई, स्वर्गारोहण खन्ना (पंजाब) में हुआ, आप स्वस्थ शरीर, गौर वर्ण, विशाल भाल, गहन ज्ञान चिन्तन मनन एवं विशिष्ट व्यक्तित्व तथा प्रतिभा सम्पन्न पावन पुरुष थे। आपका लोकोत्तर जीवन रत्न त्रय की आराधना में संलग्न रहा। आपका आदर्श श्रामण्य साधकों के साधना पथ को चिरकाल तक आलोकित करता रहेगा।

दीक्षा-मंत्र प्रदाता—

ऐतिहासिक नगर सांडेराव मेरे श्रमण जीवन की जन्म भूमि है। दीक्षा समारोह के पावन प्रसङ्ग पर स्व० पूज्य गुरुदेव श्री फतेचन्द जी मा० सा० तथा श्री प्रतापचन्द्र जी मा० सा० की निश्रा में दीक्षित करने वाले एवं भागवती दीक्षा का मंत्र सुनाने वाले आप स्वयं थे।

निस्पृह जीवन—

स्वजन-परिजन का परित्याग तथा उग्र तप की आराधना इतनी कठिन नहीं है, जितना निस्पृह जीवन जीना। श्रमण जीवन का यह वैशिष्ट्य ही आत्मा को अनन्त आलोक प्रदान करता है। आपको न क्षेत्र मोह था, न स्थान मोह था और न सामाजिक मोह था। "न लिप्पए भव मज्झे वि सन्तो, जलेण वा पोक्खरिणी पलासं"—इस आगम सूक्ति के अनुसार आपका अलिप्त जीवन था। बाल्यकाल राजस्थान में, युवावस्था ग्रामानुग्राम विहार करने में और प्रौढ़ होने पर पंजाब में विचरे, पंजाब में ही परम पथ के पथिक बने।

वृहत्साधु सम्मेलन अजमेर के एक अग्रणी श्रमण—

मरुधर मुनि सम्मेलन पाली के तथा वृहत्साधु सम्मेलन अजमेर के संगठन के लिए आपने अथक प्रयत्न किये।

स्व० स्वामी जी श्री चाँदमल जी महाराज तथा (वर्तमान में मरुधरा के) पूज्य प्रवर्तक मरुधर केसरी श्री मिश्रीलाल जी म० वृहत्साधु सम्मेलन अजमेर के संयोजन में आपके सहृदय सहयोगी रहे। गौरवशाली गुजरात के मूर्धन्य मनीषी स्व० शतावधानी जी महाराज आदि प्रमुख पूज्य मुनिराजों के स्वागत समारोह संयोजकों में भी आप एक अग्रणी श्रमण थे।

स्पष्टवक्ता—

सम्मेलन (अजमेर) में चर्चित एवं विवादास्पद सभी विषयों पर आप अपना अभिमत स्पष्ट शब्दों में व्यक्त करते थे। प्रिय अप्रिय लगने की अपेक्षा वे आगम सम्मत मत को अधिक महत्व देते थे।

ऐसे आगमवेत्ता स्पष्टवक्ता श्रमण श्रेष्ठ साधना निष्ठ संत के सात्विक जीवन का सतत स्मरण श्रद्धालु जनों के जीवन को सर्वदा आलोकित करता रहेगा।

आराधक अन्तेवासी—

स्व० स्वामी जी म० के प्रिय अन्तेवासी श्री रोशन मुनि जी व्युत्पन्नमति हैं, आपने प्राकृत-संस्कृत-हिन्दी आदि का अच्छा अभ्यास किया है। आजकल आप मेरे सान्निध्य में रत्नत्रय की साधना श्रद्धापूर्वक कर रहे हैं। आशा ही नहीं, अपितु दृढ़ विश्वास है कि निकट भविष्य में ही आप गुरुदेव श्री का और अपना नाम अवश्य रोशन करेंगे।

अनन्य उपासक—

अपनी बात

मौलिक दृष्टि से मानव का इतिहास अहिंसा पर ही आधारित रहा है, क्योंकि ज्यों-ज्यों अहिंसा का विकास होता है त्यों-त्यों मानव भी विकास की पगडण्डियां पार करता चला जाता है। अहिंसा का विकास यदि निस्तेज पड़ जाए तो मानव-विकास भी उन्नति एवं प्रगति नहीं कर पाता। अतः मानव विकास के दिव्य प्रकाश से अपने को जितना-जितना अधिक प्रकाशमान बनाने की स्थिति में होगा, अहिंसा का पावन-प्रकाश भी उतना-उतना अधिक व्यापक एवं विस्तृत होता चला जाएगा। इसके विपरीत, यदि मानव अपने को अविकसित रखता है, हिंसा की आततायी वृत्तियों में उलझ जाता है, निकृष्ट, नीच, निन्दित एवं धर्म-घातक भावनाओं से भावित होने लगता है तो इसके साथ ही अहिंसा-भगवती भी मुरझा जाती है। निस्तेज, उदासीन और हतप्रभ होती हुई दिखाई देती है। न्याय-दर्शन की यत्र-यत्र धूमः, तत्र-तत्र वन्हिः"[1] इस व्याप्ति के अनुसार यदि संक्षेप में अपनी बात कहें तो कहा जा सकता है—जहाँ-जहाँ अहिंसा का विकास है वहाँ-वहाँ मानव का विकास है, जहाँ पर अहिंसा होगी वहाँ पर निश्चित रूप से मानव का विकास होगा। अहिंसा एक ऐसा परम सत्य है जिसको कभी भी झुठलाया नहीं जा सकता। अहिंसा की इस परम सत्यता को विश्व के सभी दार्शनिकों, वैज्ञानिकों, और विचारकों ने विना किसी संकोच के स्वीकार करके अहिंसा की सार्वभौमिक उपयोगिता और महत्ता को भली भाँति प्रमाणित कर दिया है। वरट्रैण्डरसेल, आइन्स्टीन आदि वैज्ञानिकों ने १९५५ के अपने वक्तव्य में कहा था कि "इस वैज्ञानिक युग में हमारे सामने सबसे बड़ी समस्या यह है कि क्या हम विज्ञान के दुरुपयोग से मानवता का सर्वनाश कर देगें ? किन्तु यदि मनुष्य ने बुद्धिमत्ता और अहिंसा के मार्ग का अनुसरण किया और हिंसा का त्याग कर दिया तो इसमें सन्देह नहीं कि हमारा भविष्य बहुत उज्ज्वल, सफल एवं शान्तिमय होगा।"

---

1 जहाँ-जहाँ धूम होता है, वहाँ-वहाँ अग्नि होती है।

जैन-दार्शनिकों ने अहिंसा को भगवती—भगवतस्वरूपा माना है और अहिंसा की महत्ता को व्यक्त करते हुए उसने अनेकों उदाहरण प्रस्तुत किए।[1] जैसे भय भ्रान्तों को शरणदाता, पक्षियों को आकाश, प्यासों को पानी, भूखों को भोजन, समुद्र में डूबते व्यक्तियों को जहाज, चतुष्पाद—पशुओं को आश्रय-स्थान, रोगियों को औषधि का बल, एवं अटवी में भटकते व्यक्तियों को साथी का सहारा होता है, वैसे अहिंसा भगवती त्रस, स्थावर सभी प्राणियों के लिए इनसे भी अधिक क्षेम—कल्याण करने वाली होती है।

भक्त-परिज्ञा-प्रकीर्णक गाथा ९२ में अहिंसा का महिमा-गान गाते हुए विद्वान आचार्य लिखते हैं—

तुंगं न मंदराओ, आगासाओ, विसालयं नत्थि।
जह-तह जयम्मि जाणसु, धम्ममहिंसा समं नत्थि।

—जैसे सुमेरु पर्वत से ऊँचा और आकाश से विशाल विश्व में दूसरा कोई नहीं है, निश्चित रूप से समझो कि इसी प्रकार अहिंसा के समान दूसरा कोई धर्म नहीं है।

महाभारत के अनुशासन पर्व में महर्षि वेद व्यास लिखते हैं—

अहिंसा परमो धर्मस्तथाऽहिंसा परो दमः।
अहिंसा परमं दान-महिंसा परमं तपः॥
अहिंसा परमो यज्ञस्तथाऽहिंसा परं फलम्।
अहिंसा परमं मित्रमहिंसा परमं सुखम्॥

—महाभारत अनु० ११६-३८/३९

—अहिंसा परम—उत्कृष्ट धर्म है, अहिंसा परम संयम है, अहिंसा परम दान है, अहिंसा परम तप है, अहिंसा परम यज्ञ है, अहिंसा परम फल है, अहिंसा परम मित्र है और अहिंसा परम सुख है।

---

[1] एसा सा भगवती अहिंसा ! जा सा भीयाणं विव सरणं, पक्खीणं पिव गमणं, तिसियाणं पिव सलिलं, खुहियाणं पिव असणं, समुद्दमज्झे व पोतवहणं, चउप्पयाणं व आसमपयं, दुहट्टियाणं व ओसहिबलं, अडवीमज्झे व सत्थगमणं एत्तो विसिट्ठतरिया अहिंसा······तसथावरसव्व—भूयखेमंकरी।

—प्रश्नव्याकरण, संवरद्वार १

अहिंसा भगवती के चरणों में सभी दार्शनिकों ने अपने-अपने श्रद्धा सुमन समर्पित किए हैं। कौन ऐसा साधक है जो भगवान के चरणों में उपस्थित हो और अहिंसा को अपने साथ न रखे ? प्रत्येक मनीषी प्रभुभक्त आचार्य ने अहिंसा भगवती के पावन चरणों में अपने को नतमस्तक किया है। जानकारी के लिए कुछ उद्धरण प्रस्तुत करता हूँ---

"अहिंसैव हि संसार—मरावमृतसारणि: !"

—योगशास्त्र २/५०

संसार-रूप मरुस्थल में अहिंसा ही एक अमृत का झरना है।

परम धर्म श्रुतिविदित अहिंसा,
पर-निन्दा सम अघ न गिरीसा।
परहित सरिस धर्म नहि भाई,
परपीड़ा सम नहि अधमाई।

—रामचरित मानस

—सब श्रुतियों— शास्त्रों ने कहा है कि अहिंसा परम धर्म है, पर-निन्दा के समान बड़ा कोई पाप नहीं है, परहित के समान कोई धर्म और पर-पीड़ा के तुल्य कोई अधर्म—पाप नहीं है।

"अहिंसा-प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैर परित्याग:"

—पातंजल-योग-दर्शन २/३५

अहिंसा की पूर्ण साधना होने पर साधक के निकटस्थ प्राणीयों में परस्पर वैर भाव नहीं रहता।

Thou shell not kill

—वाईविल

ईसाई धर्म के प्रवर्तक ईसामसीह की दस आज्ञाओं में से एक आज्ञा है—किसी को मत मारो।

भारत की दिव्य विभूति श्रमण-भगवान महावीर, महात्मा बुद्ध और राष्ट्र-पिता गान्धी आदि भारतीय महापुरुष तो अहिंसा के पावन प्रतीक थे ही, किन्तु भारत से वाहर भी ऐसे-ऐसे मनीपी विचारक उत्पन्न होते रहे हैं जिन्होंने अहिंसा की महत्ता और उपयोगिता को सहर्ष स्वीकार किया है। वाशिंगटन

डर्विन लिखते हैं कि "दयालु हृदय खुशी का फव्वारा है। जो अपने पास की हर वस्तु को मुस्कानों से भरकर ताजा बना देता है।" हजरत मुहम्मद का फरमान है कि "जहाँ पशु मरते हों, वहाँ नमाज मत पढ़ो"। शेखसादी कहते हैं—"भारी तलवार कोमल रेशम को नहीं काट सकती, दयालुता और मीठे शब्दों से हाथी को जहाँ चाहो ले जाओ।"

श्रमण-संघ के महान गौरव, मंगलमूर्ति श्रद्धेय श्री छगनलाल जी महाराज अहिंसा भगवती के महान आराधक महासन्त थे। १४ वर्षों की अल्पायु में पूज्य श्री रंगलाल जी महाराज के चरणों में दीक्षित हो कर एक मास कम ६८ वर्षों तक अहिंसा की आराधना करते रहे उसे जीवन में उतारते रहे। आपने अहिंसा की पावन ज्योति से अपने अन्तजर्गत को ज्योतिर्मान बनाया, हजारों मील की पद-यात्रा करके अहिंसा का सुखद अमृत घर-घर में बाँटने का प्रयास किया। अज्ञान के अन्धकार में पड़े मानवी जगत को अहिंसा का दिव्य आलोक दिखाकर उसका पूर्ण सफलता के साथ मार्ग-दर्शन किया, जीवन गगन पर प्रतिकूल परिस्थितियों के कृष्णतम मेघ आच्छादित हो जाने पर भी आप अहिंसा के महापथ पर बढ़ते ही चले गए, रुकने या पीछे हटने का आपने कभी विचार तलक भी नहीं किया। आपको सब सुख सुविधाएँ सम्प्राप्त थीं, तथापि आपका अहिंसा की कठोर साधना को जीवनाङ्गी बनाना, प्यास के कारण कण्ठ सूख जाने पर भी जीवन भर कच्चा पानी न पीना, भूख की भयंकर घड़ियों में भी हरी वनस्पति न खाना, पोष-माघ की वर्फानी हवाओं की छाया तले भी आग न सेकना, इस तरह अहिंसा की कलमषहारिणी गंगा में निरन्तर गोते लगाते रहना कोई बच्चों का खेल नहीं है। अहिंसा भगवती के महान आराधक पूज्य श्री छगनलाल जी महाराज सचमुच एक उच्चकोटि के तपस्वी, तेजस्वी, वर्चस्वी और अहिंसा-महारथी महापुरुष थे। प्रस्तुत "साधना के अमर प्रतीक" नामक पुस्तक में आप श्री के ही जीवन वृत्तों को संकलित किया गया है। साहित्य-जगत में जीवन-चरित का भी अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है। इसके माध्यम से चरितनायक के व्यक्तित्व का, विचारों का, रहन-सहन का, उसके जीवन में संघटित घटना-चक्र का तथा तात्कालिक वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, प्रान्तीय तथा राष्ट्रीय परिस्थितियों का पर्याप्त परिचय प्राप्त हो जाता है। अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि लांग फैलो (Long Fellow) अपनी प्रसिद्ध लोकप्रिय रचना "साम आफ लाइफ" (Psalm of Life) में जीवन-चरित्र की उपयोगिता कितने सुन्दर शब्दों में अभिव्यक्त कर हैं:

"Lives of great men all remind us,
We can make our lives sublime,
And diparting leave behind us,
Fool printes on the sands of fime"

भाव यह है कि महापुरुषों की जीवनियाँ हमें इस सत्य की ओर प्रेरित करती रहती है कि हमें भी अपने जीवन को उन जैसा पावन बनाना चाहिए, और जब हम इस संसार से प्रस्थान करें तब हम समय-रूपी समुद्र के रेतीले तट पर अपने ऐसे चरण-चिन्ह छोड़ जाएँ कि जिससे भावी सन्तानों को मार्ग-दर्शन की सुविधाएँ प्राप्त हो सकें।

मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ और समझाता हूँ कि मैं कोई लेखक नहीं हूँ, लेखक होना कोई साधारण सी बात भी नहीं है। भाव, भाषा और शैली की दृष्टि से लेखक का अपना एक आदरणीय स्थान होता है। तथापि "साधना के अमर प्रतीक" के माध्यम से महामान्य, वन्दनीय पूज्य पाद श्री छगनलाल जी महाराज के चरण-सरोजों में श्रद्धासुमन समर्पित करने का जो साहस कर सका हूँ, इसके पीछे मेरे हृदय-सम्राट जैन-धर्म-दिवाकर, साहित्य रत्न, जैनागमरत्नाकर प्रातःस्मरणीय गुरुदेव पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज की कृपा का वरदहस्त ही काम कर रहा है। अनुभव की आँखों से मैंने अनेक वार देखा है कि आचार्य सम्राट पूज्य गुरुदेव के जगतारक पावन चरण-कमलों की शरण लेकर जिस किसी भी कार्य को हाथ में लिया गया है उसमें सदा सफलता ही अधिगत हुई है। "साधना के अमर प्रतीक" को जब लिखना आरम्भ किया था तब कोई आशा नहीं थी कि इसकी रचना इतनी जल्दी सम्पन्न हो जायेगी, परन्तु पूज्य गुरु चरणों का ऐसा कुछ विलक्षण प्रभाव और प्रताप हुआ कि सम्भावित समय से पूर्व ही हृदय का मनोरथ पूर्ण हो गया। सचमुच पूज्य गुरु महाराज का आशीर्वाद मेरी जीवन-नौका का एक पतवार है, सबल है, सहारा है।

"साधना के अमर प्रतीक" के लिखने का मूल कारण मुख्य रूप से मेरे परम स्नेही साथी मुनि श्री रोशनलाल जी "विशारद" तथा रोड़ी निवासी गुरुभक्त मान्य सेठ दीवानचन्द जी जैन की प्यार भरी प्रेरणा ही समझता हूँ। इन दोनों की प्रेरणा तथा पूज्य चरितनायक श्री के चरणों के प्रति मेरा अपना श्रद्धाभाव इन दोनों ने मिलकर एक पुस्तक का रूप धारण कर लिया है। पुस्तक-निर्माण में यदा-तदा इन दोनों ने जो सहयोग दिया है वह कभी भी भुलाया

The Great Spiritual Leader—Venerable Sh. Chhagan Lal Ji Maharaj

By—Muni Shivkumar, M. A.

India is proud of producing an illustracious Jaina Saint, seer and blessed one like his holiness Sh. Chhagan Lal Ji Maharaj. Though he was a Jaina monk yet he possessed the universal truth in his spiritual guidance. Due to this spiritual fervour and religious tone, he achieved a universal recognisation as a spiritual guide. The light of his life has illuminated the pathway of many suffering and disgusted people among various communities By his side every one feels something divine blessed. He was a symbol of lofty ideals which would act as a beacon light towards suffering humanity. His sweetness of temper and charm of manners were irresistable. He was generous by nature and delicate by heart towards all. His name will occupy a permanent place in Jaina community.

Venerable Sh.Chhagan Lal Ji Maharaj was born in the town of Piplada, a suburb of Mewar and an important seat of Ksatriyas. His father Sh.Teja Ram Choudhary and mother Yamuna Bai were very gentle, pious, virtuous and reputed persons in that very town. During his childhood at the age of thirteen he renounced all sorts of worldly attachments and became a Jaina monk. He was extremely happy when he took Bhagwati Diksha at the sacred feet of highly respected Sh. Rang Lal Ji Maharaj.

Under the scholary and deep enlightened guidance of Pujya Sh Ranga Lai Ji Maharaj, our worthy Sh. Chhagan Lal Ji Maharaj attained deep insight into all the Jaina Cononical scriptures. He had a vast knowledge of India religions but with special interest to Jainism He remembered so many sacred scriptures of Jainism by heart. He used to solve every doubt with his great intelect but with the support of shastras. Every body feels satisfaction by his forceful arguments. He was gifted with great intellect, unusual imagination and spiritual insight. When-ever I had the chance to go to his sacred feet, I personally felt great inspiration and religious experience in his spiritual elognence and guidance.

The Great Spiritual Leader—Venerable Sh. Chhagan Lal Ji Maharaj

By—Muni Shivkumar, M. A.

India is proud of producing an illustracious Jaina Saint, seer and blessed one like his holiness Sh. Chhagan Lal Ji Maharaj. Though he was a Jaina monk yet he possessed the universal truth in his spiritual guidance. Due to this spiritual fervour and religious tone, he achieved a universal recognisation as a spiritual guide. The light of his life has illuminated the pathway of many suffering and disgusted people among various communities By his side every one feels something divine blessed. He was a symbol of lofty ideals which would act as a beacon light towards suffering humanity. His sweetness of temper and charm of manners were irresistable. He was generous by nature and delicate by heart towards all. His name will occupy a permanent place in Jaina community.

Venerable Sh.Chhagan Lal Ji Maharaj was born in the town of Piplada, a suburb of Mewar and an important seat of Ksatriyas. His father Sh.Teja Ram Choudhary and mother Yamuna Bai were very gentle, pious, virtuous and reputed persons in that very town. During his childhood at the age of thirteen he renounced all sorts of worldly attachments and became a Jaina monk. He was extremely happy when he took Bhagwati Diksha at the sacred feet of highly respected Sh. Rang Lal Ji Maharaj.

Under the scholary and deep enlightened guidance of Pujya Sh Ranga Lai Ji Maharaj, our worthy Sh. Chhagan Lal Ji Maharaj attained deep insight into all the Jaina Cononical scriptures. He had a vast knowledge of India religions but with special interest to Jainism He remembered so many sacred scriptures of Jainism by heart. He used to solve every doubt with his great intelect but with the support of shastras. Every body feels satisfaction by his forceful arguments. He was gifted with great intellect, unusual imagination and spiritual insight. When-ever I had the chance to go to his sacred feet, I personally felt great inspiration and religious experience in his spiritual elognence and guidance.

He had a good command over different oriental and regional languages of India like Prakrit, Sanskrit, Hindi, Gujrati, Marathi, Rajasthani and Punjab etc. Apart from this, he had a good command over astrology, astronomy and breath-science etc. The sublimity of his knowledge, the strength of his character and purity of his thought had produced in him wonderful spritual powers There is a great force in his words whatever he used to say for the reformation of Jaina Society. He had been a great reformer and speaker of his time He used to speak with courage and holdness but within the frame work of Jaina as well as non-Jaina Cannons Everyone felt inspiration and courage by his sweet lectures.

Our respected Sh. Chhagan Lal Ji Maharaj had a wonderful personality—a beautiful body, white colour, bright fore head, Charming eyes, parrot like nose, smiling face, and long arms. Really he was an embodiment of love. tolerance and peace. Nothing could upset the equaminity of his strong mind. Every body was attracted towards his physical beauty and high personality. Through out his life from Childhood to the age of eighty two years he remained a Bal-Brahmachari He had been a complete votary to this vow of Chastity in thought. word and deed. It is all due to this vow of chastity that his body was blooming like a red rose.

He was a real Jaina monk to the core of his heart. He believed that man must practise true religion in his life. His own life was blended with humanism and asceticism. He had a full faith in Jainism. He always possessed deep feelings for the uplift of evils in the society and religion. Whatever he spoke to the people that was not from the theoretical maxims. But from his core of heart and mind. He full believed and practised the maxims of Jaina religion like non-violence, truth, self-control and asceticism. He did not core for any worldly pleasures but always enjoyed with the realm of spritual kingdom. That is why he observed moderation in thinking, speaking, eating and drinking.

He attached great importance to good intentions, purity of thought and inwardness of man. He always preached whatever he observed and felt from his heart, mind and sould. Thanks to his patient and colourful explanations. His good spirit used to say the essence of any problem in a few words at it is the mark of great minds to be able to say much in a few words. I could grasp the lofty beauty of Jaina religion from his

short speeches and Fine remarks on certain problems. I always received inspiration from his spiritual guidance. I myself unable to say the delicacy and simple heartedness of his life.

It is with the deepest sorrow that I have to write that he is no more in this suffering world but sacred smell of his spiritual life still ringing in the ears of all Jaina people. The way his good spirit had gone to heavenly abode, one feels encouragement even from death.

Why fear death ? It is the most beautiful adventure in life.

Though nearly five years have passed when I had the chance to touch his sacred feet at Khanna, the sweetness of his approach, the wisdom of his words, the sacred Flame which shone in his eyes are always alive in my memory.

Today the condition of man is very critical. Seeing the wonders of science he has forgotten the noble ideals propounded by the great philosophers, reverred seers and spiritual leaders of the world He even wanted to testify religion with his own thinking and measurement.

Can he get peace of mind in this way ? Surely not. If one wants to attain happiness, contentment and peace of mind one should follow the paths shown by our great spiritual leaders like Sh. Chhagan Lal Ji Maharaj. I am fully confident if we act upon the advice of his good spirit, surely it would lead to peace of mind and contentment to all of us. It is truly remarked by long fellow, the great European poet of his time :

Lives of great men all remind us,
We can make our lives sublime ;
And departing, leave behind us,
Foot prints on the sands of time.

Moreover it is our sacred duty to pay heartfelt tributes to his good spirit by taking pledge to work with unity and purity as so nobly illustrated by his holiness. In the end I add my affectionate and respectful homage to the great spiritual leader of his time.

प्रस्तुत पुस्तक के रचयिता

जैनभूषण श्रद्धेय श्री ज्ञानमुनि जी महाराज

[जीवन और साधना की संक्षिप्त झांकी]

साधुरत्न श्री शिवमुनि जी महाराज, डबल M. A. 'प्रभाकर'।

परमश्रद्धेय, जैन-भूषण, पंजाब-केसरी, पूज्यगुरुदेव श्री ज्ञानमुनि जी महाराज विक्रम सम्वत् १९७९ वैशाख शुक्ला तृतीया के शुभ दिन साहोकी (जिला बरनाला, पंजाब नामक ग्राम में बंसल गोत्रीय ला० गोखाराम जी अग्रवाल जैन की धर्मपत्नी माता मन्सादेवी जी की पवित्र कुक्षि से पैदा हुए, उस समय आपका नाम आत्माराम था, महाराज श्री जी आठ वर्ष के थे, ला० गोखारामजी ने साहोकी गाँव छोड़कर लुधियाना में रहना आरम्भ कर दिया। लुधियाना में महामुनि स्थविर पद विभूषित त्याग वैराग्य के समुज्ज्वल प्रतीक परम श्रद्धेय श्री स्वामी शालिग्राम जी महाराज विराजमान थे। ये लालाजी के खानदान में से ताया लगते थे। अतः लालाजी परिवार-सहित पूज्य महाराज श्री के चरणों में प्रतिदिन जाया करते थे। परिणामस्वरूप सर्वप्रथम श्रद्धास्पद श्री ज्ञानमुनि जी महाराज को इन्हीं वन्दनीय पूज्यपाद श्री स्वामी शालिग्राम जी महाराज के सम्पर्क तथा मङ्गलमय मार्गदर्शन का ही सौभाग्य सम्प्राप्त हुआ था, इन्हीं के चरणों में बैठकर इन्होंने जैनधर्म के विधि-विधान को समझा और सम्यक्त्व को ग्रहण किया।

साधना के महापथ पर

वि० स० १९९३ के वैशाख शुक्ला त्रयोदशी के पावन दिवस अर्थात् चौदह वर्ष दस दिनों की आयु में आप रावलपिण्डी (पाकिस्तान) में प्रातः स्मरणीय जैन-धर्म दिवाकर, मङ्गल-मूर्ति आचार्य-सम्राट् परम श्रद्धेय पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज के परिपूत चरणों में दीक्षित होकर जैन-साधु बने। साधु बन जाने के अनन्तर संस्कृत और प्राकृत आदि भाषाओं का अध्ययन किया। अनेकों पुस्तकें लिखीं, श्री विपाक सूत्र आदि अनेक जैनागमों का हिन्दी में सरस और सुन्दर अनुवाद तथा सम्पादन किया। आचार्य हेमचन्द्र के लिखे

आनन्द' आदि २० के लगभग स्वतन्त्र पुस्तकों का निर्माण किया। जहाँ आप साहित्यिक क्षेत्र में प्रगतिशील रहे हैं वहाँ आप सामाजिक क्षेत्र में भी बड़े प्रयत्नशील रहे हैं। फिल्लौर और बहराम आदि अनेकों नये क्षेत्र खोले और वहाँ पर जैनधर्म का ध्वज लहराया, वहाँ पर बने विशाल जैन स्थानक वहाँ की जन-जागृति के समुज्ज्वल प्रतीक हैं।

राहों के श्रद्धा केन्द्र

श्रद्धा के केन्द्र परिपूत-चरण आचार्य सम्राट पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज की जन्म-भूमि राहों जैसे पिछड़े नगर में पूज्य श्री की पुण्यस्मृति में "**आचार्य श्री आत्माराम जैन फ्री डिस्पैंसरी**" को चालू कराना और इसके लिए स्थायी सम्पत्ति को एकत्रित करने के लिए समाज को आदर्श प्रेरणा प्रदान करके उसको अपने पाँव पर खड़ा कर देना, वहीं पर "**आचार्य श्री आत्माराम जैन सिलाई स्कूल**" जैसी शिक्षण संस्था की स्थापना करना तथा "**आचार्य श्री आत्माराम जैन सेवा सदन**" का निर्माण करके समाज के असहाय छात्रों, विधवाओं तथा अभावग्रस्त लोगों को सहायता देने की योजना बनाना श्रद्धेय श्री ज्ञानमुनि जी महाराज की ही अपनी विशेषता है, जिसके लिए समाज इनका सदा कृतज्ञ रहेगा। राहों निवासियों के हृदय में तो महाराज श्री जी के लिए ऐसी आस्था, तड़प और प्रेम है जिसे लेखनी अक्षरों की सीमित रेखाओं से अभिव्यक्त नहीं कर सकती। अभी-अभी ४ फरवरी १९७३ को आचार्य सम्राट् पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज की पुण्यतिथि महोत्सव पर राहों की जैनेतर जनता ने **एस० एस० जैन सभाराहों तथा आचार्य श्री आत्माराम जैन फ्री डिस्पैंसरी कमेटी** ने महाराज श्री की अविस्मरणीय सेवाओं और उपकारों पर अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए अत्यन्त श्रद्धा भक्ति के साथ एक प्रस्ताव पारित करके श्रद्धेय गुरुदेव श्री ज्ञानमुनि जी महाराज को—

'पंजाबकेसरी' **'जैनभूषण'** और **'व्याख्यानदिवाकर'** की महान उपाधियों से अलंकृत करके इनकी समाज सेवाओं को सम्मानित करने का बुद्धिशुद्ध प्रयास किया है।

पंजाब-केसरी

केसरीसिंह का नाम है। सिंह सदा निर्भीक और निर्भय रहता है। डर, खौफ, भय, भीति को कभी निकट नहीं आने देता। सिंहत्व और भीति कभी एक आसन पर नहीं बैठ सकते। दिन और रात का जैसे मेल नहीं, वैसे सिंहत्व और डर में कभी भी मेल नहीं हो सकता। हमारे श्रद्धेय गुरुदेव श्री ज्ञानमुनि जी महाराज सचमुच पंजाबकेसरी हैं। केसरी की भाँति सदा निर्भीक रहते

हैं। साहस, दृढ़ता, स्थिरता और धीरता को कभी हाथ से जाने नहीं देते, जिस किसी धर्म कार्य को अपने हाथ में लेते हैं उसे पूर्णता के वस्त्र पहना कर ही छोड़ते हैं। कार्य को अधूरा छोड़ना इनका स्वभाव ही नहीं है। मनचले और द्वेषी लोगों की छींटाकशी या विरोधपूर्ण कहानियों से ये कभी डाँवा-डोल नहीं होते। जिस रास्ते पर चलते हैं, शेर की तरह दृढ़ता से चलते हैं। मुसीबतों की आँधियों से परेशान होना इन्होंने कभी सीखा ही नहीं है। शेर के समान निर्भीक होकर आप जिधर भी जाते हैं, शेर बनकर ही सफलता प्राप्त करते हैं।

जैन-भूषण

जैन 'जिन' शब्द से बना है जिसका अर्थ है—रागद्वेष का विजेता महापुरुष। जो व्यक्ति जिनको अपना भगवान या अपना इष्ट मानता है या जिन भगवान का कहा हुआ जो धर्म है उसे जैन कहते हैं। भूषण वैसे जेवर का नाम है, परन्तु प्रस्तुत में यह शोभावर्धक समझना चाहिए। जैन धर्म की शोभा को बढ़ाने वाला जैन-भूषण होता है। हमारे श्रद्धेय श्री ज्ञान मुनि जी सचमुच जैन-भूषण हैं। स्थान-स्थान पर इन्होंने जैन धर्म की प्रभावना की, जैन धर्म के विद्वेषी लोगों के हृदयों में जैन धर्म के प्रति निष्ठा, आस्था और श्रद्धा पैदा की, जो लोग जैन-साधु की आकृति देखना भी पाप समझते थे, जैनधर्म को नास्तिक कहते थे, इन्हें जैनधर्म में दीक्षित किया। जैनधर्म के पवित्र नियमों का प्रसार करने के लिए बीसों पुस्तकें लिखीं। इसीलिए मैं कहता हूँ कि हमारे महाराज श्री जैनधर्म के श्रेष्ठ भूषण हैं। राहों निवासियों ने महाराज श्री को यह पद प्रदान करके सचमुच अपनी दूरदर्शिता और वस्तुस्थिति को जनता-जनार्दन तक लाने का प्रशंसनीय प्रयास किया है।

व्याख्यान-दिवाकर

व्याख्यान प्रवचन को कहते है और दिवाकर सूर्य का नाम है। व्याख्यान क्षेत्र में जो व्यक्ति सूर्य की तरह चमकता है, व्याख्यान की दृष्टि से सर्वत्र प्रसिद्धि पाता है, व्याख्यान के माध्यम से जन-गण-मन के अन्तर्जगत के अज्ञानान्धकार को दूर करके उसे अहिंसा, सत्य के महाप्रकाश से प्रकाशवान बना डालता है उसे **व्याख्यान-दिवाकर** कहते हैं। हमारे श्रद्धेय श्री ज्ञानमुनि जी म० इस कला में पूर्ण रूप से दिवाकर की भाँति निखरे हैं। आपकी वक्तृत्वकला अपने ही ढंग की है, वह जादू है जो प्रत्येक व्यक्ति पर छा जाता है। व्याख्यान में कर्मवाद जैसे गहन विषयों को बड़े मार्मिक ढंग से जनता के सामने इस प्रकार रखते हैं कि जनता मन्त्रमुग्ध हो जाती है। आप श्री जी की वाणी में ओज, सत्यता, ऋजुता के साक्षात दर्शन होते हैं। महाराज श्री

का व्याख्यान एक गुलदस्ते के समान होता है। गुलदस्ते को जिधर से सूंघो उधर से ही सुगन्ध की अनुभूति होती है वैसे ही आपके प्रवचनों में भी गम्भीरता, उदारता, विराटता, कोमलता, मधुरता एवं रोचकता की सुगन्धि साकार रूप धारण करती हुई दृष्टिगोचर होती है।

हे ज्ञान-वारिधे ! आप श्री जी यथा नाम तथा गुण-सम्पन्न हैं। आपकी ज्ञान-रश्मियां सूर्य के समान प्रकाशमान, चन्द्रमा के समान शीतल एवं फूलों के समान सुगन्धित हैं। आप श्री जी की ज्ञान-साधना की किरणें जिस किसी के बुझे जीवन को स्पर्श कर जाती हैं, उसे प्रज्वलित कर डालती हैं, ज्ञान-आलोक से भर देती हैं। आप श्री जी की विद्वत्ता, दूरदर्शिता, ज्ञान सम्पदा तथा हाजिर-जवाबी कुछ विलक्षण ही है।

प्रस्तुत पुस्तक के रचयिता

'साधना के अमर प्रतीक' के लेखक भी मेरे गुरुदेव श्रद्धेय श्री ज्ञानमुनि जी महाराज ही हैं। इसमें महानता श्री स्वामी छगनलाल जी महाराज के जीवन-वृत्तों को संकलित किया गया है। यह पुस्तक भले ही प्रत्यक्ष रूप से एक जीवन-चरित्र है परन्तु यदि गम्भीर और सूक्ष्म दृष्टि से इसका परिशीलन करें तो गुणाग्रही और सहृदय पाठकों को यह एक धर्म-शास्त्र के रूप में दिखाई देगा। प्रत्येक अध्याय के आरम्भ में शास्त्रीय तथ्यों और आवश्यक ज्ञातव्य तत्वों की इतनी अधिक सामग्री प्रस्तुत की गई है कि पढ़ने वाले को प्रत्येक दृष्टि से पूर्ण सन्तोष होता है। मुझे तो महाराज श्री जी की यह रचना बहुत सुन्दर, रुचिकर, शिक्षाप्रद और सर्व-जनहित-कारक अनुभव हो रही है, आशा है पाठक जब इसका सहृदयता के साथ अध्ययन करेंगे तो उनका स्वर भी मेरे स्वर में ही सम्मिलित होगा।

श्रद्धा के केन्द्र, जैन जगत की दिव्य विभूति के विराट् व्यक्तित्व के सम्बन्ध में मैंने जो कुछ निवेदन किया है वह सब सूर्य के सामने दीपक रखने के समान है। श्रद्धेय महाराज श्री जी जैनजगत एवं श्रमण-संस्कृति के उज्ज्वल सितारे हैं, आप श्री जी ने ज्ञान, दर्शन और चारित्र की त्रिवेणी गंगा में स्नान करके अपनी आत्मा को पावन बनाया है। आपका व्यक्तित्व सागर की भाँति विराट् है, उसे अक्षरों की सीमित रेखाओं से बाँधा नहीं जा सकता, वह विराट् है, विराट् ही रहेगा। सचमुच आप जैन-धर्म-दिवाकर, साहित्यरत्न, जैनागम-रत्नाकर, विश्व-विभूति, चारित्र-चूड़ामणि महामहिम स्वर्गीय आचार्य-सम्राट् परम श्रद्धेय पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज की आत्मा की अमूल्य निधि हैं, आचार्य प्रवर श्री स्वयं प्रकाश-पुञ्ज थे वे आपको भी अपने पावन प्रकाश से प्रकाशवान बना गये। श्रद्धेय गुरुमहाराज श्री जी की समाज सेवा, ज्ञान-

साधना और साहित्य रचना से जैनजगत का कौन-सा ऐसा व्यक्ति है जो परिचित न हो। साधु समाज में आप श्री जी का एक महत्वपूर्ण एवं आदरास्पद स्थान माना जाता है।

मेरे जीवन-निर्माता

आप श्री जी का साक्षात्कार करने का सौभाग्य मुझे सर्वप्रथम मालेर-कोटला में हुआ। जहाँ से मेरे जीवन में एक नवीन चेतना का संचार हुआ। प्रथम दर्शन ने ही मेरे जीवन की दशा बदल दी। आशा-निराशा सुख-दुःख, हर्ष-विषाद के मध्य में रहते हुए मेरे मानस को सर्वथा नीरसता अनुभव हो रही थी। उच्च शिक्षा और आर्थिक स्थिति की सम्पन्नता, पारिवारिक सुख-सुविधाओं की परिपूर्णता पाकर भी मेरा मन अशान्त सा रहता था। संसार के झंझटों, लोगों के आपसी वैर विरोधों, मृगतृष्णाओं, युवक हृदयों की वासनाजन्य उद्दण्ड प्रवृत्तियों को देखकर मेरा मन उपराम हो उठता था। आसपास के दूषित वातावरण तथा कर्मप्रताड़ित जन-गण-मन के करुणा क्रन्दन कभी-कभी मेरे मन को सर्वथा उदासीन और बेचैन कर डालते थे। कभी-कभी उदासीनता अपना विराट रूप लेकर इस प्रकार सामने आती कि आँखों में अश्रुधारा स्वयं ही निकल पड़ती। विकलता एवं बेचैनी के इन्हीं क्षणों में जब आप श्री जी के विराट् व्यक्तित्व के दर्शन हुए तो पावन स्नेह की सरिता के स्नेहिल स्पर्श के द्वारा मेरे मानस को असीम आनन्दानुभूति हुई। आपकी असीम कृपा से ही १२ वर्ष से चल रहा जैनसाधु बनने का मेरा संकल्प मूर्त-रूप ले सका है। सौभाग्यशाली मानता हूँ अपने को, जो आप श्री जी ने मुझ जैसे अबोध बालक को अपने पावन चरणों में स्थान दिया। आप श्री जी के हृदय की उदारता, स्नेह-पूर्ण व्यवहार, विलक्षण प्रतिभा, वाणीगत ओज, जन-जन के कल्याण के लिए प्रयत्नशीलता और विचार स्पष्टता ने मेरे जीवन को अत्यधिक प्रभावित किया।

आप श्री जी की ज्ञान-सम्पदा, उच्च आचार तथा महान व्यक्तित्व प्रेरणा-स्तम्भ के रूप में सदा के लिए मेरे हृदय के कण-कण को शान्ति प्रदान करता रहे, यही शासनेश भगवान् महावीर से प्रार्थना है। सचमुच आपको शान्ति, ज्ञान और क्षमा के सागर कहूँ तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं। इसके अतिरिक्त, मैं बिना किसी संकोच के कह सकता हूँ कि इतनी असीम कृपा और नैसर्गिक स्नेह जीवन में मुझे पहली बार मिला है। अधिक क्या, आप श्री जी तो मेरे लिए कल्पवृक्ष हैं।

वन्दन ! शत-शत अभिनन्दन !!

प्रवचनभूषण जैनदिवाकर

श्री ज्ञान मुनि जी द्वारा लिखित-संपादित

महत्वपूर्ण पुस्तकें

१. श्री विपाक सूत्र, हिन्दी-भाषा-टीका सहित।

२. श्री अन्तगड़ सूत्र,
(जैन-धर्म-दिवाकर, आचार्य-सम्राट् पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज द्वारा कृत अनुवाद का सम्पादन।)

३. श्री अनुयोगद्वार सूत्र, हिन्दी भाषा टीका-सहित (प्रथम भाग)

४. प्रश्नों के उत्तर, (दो खण्ड)

५. भगवान महावीर के पांच सिद्धान्त।

६. सामायिक सूत्र, हिन्दी-भाषाटीका-सहित।

७. स्थानकवासी और तेरहपन्थ।

८. दीपक के अमर सन्देश।

९. सम्वत्सरी पर्व क्यों और कैसे ?

१०. जीवन-झांकी [—गणी श्री उदयचन्द्र जी महाराज]

११. आचार्य-सम्राट्,—जीवनी (आचार्य-सम्राट् पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज)

१२. श्रमण संस्कृति के प्रतीक, ऋषिवर आनन्द (जीवनी, आचार्य-सम्राट् पूज्यश्री आनन्द ऋषि जी महाराज)

१३. सरलता के महास्रोत, (जीवनी—तपस्वी श्री फकीरचन्द जी महाराज।)

१४. भगवान महावीर और विश्व-शांति।
(हिन्दी, उर्दू, पंजाबी, अँग्रेजी)

१५. ज्ञान-सरोवर, भजन-संग्रह।

१६. सामायिक सूत्र, उर्दू-भावार्थ सहित।

१७. प्राकृत-व्याकरण, संस्कृत-हिन्दी-टीका-द्वयोपेत (प्रेस में)

१८. ज्ञान का अमृत (आठ कर्मों का विवेचन, उर्दू)

१९. सच्चा साधुत्व, (साधु-धर्म का परिचय)

२०. ज्ञान का अमृत, हिन्दी।

२१. परमश्रद्धेय श्री अमरमुनि जी (पंजाबी) जीवनी।

२२. ज्ञान-भरे दोहे, (दोहा-संग्रह)

२३. ज्ञान-संगीत, (भजनसंग्रह)

२४. महासती श्री चन्दनबाला (पद्य)

२५. साधना के अमर प्रतीक, (जीवनी—महामुनि श्री छगनलाल जी महाराज)

प्राप्तिस्थान

आचार्य आत्माराम जैन माडलस्कूल, २६-डी, कमलानगर

देहली-७

अनुक्रमणिका

विनयशील धर्मात्मा

महामना गुणग्रामः, टीकमचन्द्र पुत्रकः ।
गणेशीलाल दिव्यात्मा, राणो देवी प्रवत्सलः ।। १ ।।

सिरसापुर सम्भूतः, हिसार-मण्डल संस्थितः ।
छगनलाल आचार्यो, देवतुल्यो दिवंगतः ।। २ ।।

दिक्षयाः दीक्षितः साधु, अक्षयायां स अक्षयः ।
विनयशील धर्मात्मा शान्तो दान्तस्तथैव च ।। ३ ।।

निर्मोही मधुरोवक्ता, अनन्त श्री विभूषितः ।
सरलात्मा महाज्ञानी, तपसा शरीर शोषक ।। ४ ।।

भारत ख्यात-भाषाणां, विद्वान् प्रकाण्ड पण्डितः ।
संयमी जैनधर्मज्ञः, गुरु-पाद-प्रपूजकः ।। ५ ।।

उक्तान्येतानि नामानि, प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।
निष्फलं हि दिनं तस्य, न कदाचिद् भविष्यति ।। ६ ।।

आभार ! धन्यवाद !!

[प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन में उदार अर्थसहयोग देने वाले उदार सज्जनों की शुभ नामावली]

१.	श्रीमान	दौलामल कुन्दनलाल चौधरी, रोड़ी (हरियाणा)	११०१)
२.	,,	रौनकराम पारसलाल कांक, रामां मण्डी (पंजाब)	११००)
३.		बहन ब्रह्मवति, पटियाला (पंजाब)	१००)
४.	,,	दिवानचन्द जैन, रोड़ी (हरियाणा)	१०१)
५.	,,	मदनलाल छाजेड़, रोड़ी (हरियाणा)	१०१)
६.	,,	पुरुषोत्तमदास जींदल, रोड़ी (हरियाणा)	१०१)
७.	,,	सागरमल जैन, गोविन्दगढ़, (पंजाब)	५०१)
८.	,,	जगदीश राय जैन, लुधियाना (पंजाब)	२५१)
९.	,,	लखीराम जींदल, रोड़ी (हरियाणा)	३१)
१०.	,,	चन्दुलाल रामदयाल, कालांवाली (हरियाणा)	३१)
११.		धर्मदेवी रिटायर हैड मिसट्रेस, जमनानगर (हरियाणा)	५००)
१२.		भागवति धर्मपत्नी चौधरी किशोरीलाल जैन, रोड़ी (हरियाणा)	५१)
१३.		गुप्तदान	१०१)
१४.	,,	रामलाल खुशीराम कुहाड़, श्री करणपुर (राजस्थान)	१०१)
१५.	,,	हाकमल स्वरूपचन्द लिंगा, रानिया (हरियाणा)	१०१)
१६.	,,	ज्ञानचन्द जी सुनाम वाले, सिरसा (हरियाणा)	२०१)
१७.	,,	सूरजभान सोमप्रकाश साह, कालांवाली (हरियाणा)	१०१)
१८.	,,	रामलाल निहालचन्द कुहाड़, श्री करणपुर (राजस्थान)	१०१)
१९.	,,	मोतीराम घीसाराम मुनहानी, सिरसा (हरियाणा)	१०१)
२०.	,,	प्रेमसुखदास भूरामल गोठी, खैरा बड़ा (पंजाब)	५०१)

२१.	,,	वैनिप्रसाद हेमराज छाजेड़, रोड़ी (हरियाणा)	१२१)
२२.	,,	रूपामल देसराज रांका, रोड़ी (हरियाणा)	११)
२३.	,,	प्रभुदयाल वलायतिराम नाहटा, रोड़ी (हरियाणा)	११)
२४.	,,	संतराम गोठी, रोड़ी (हरियाणा)	११)
२५.	,,	मुन्शीमल ज्ञानचन्द चौधरी, रोड़ी (हरियाणा)	१०१)
२६.	,,	मुन्शीमल पारसचन्द चौधरी, रोड़ी (हरियाणा)	११)
२७.	,,	ताराचन्द चानणराम दुगड़, रोड़ी (हरियाणा)	५१)
२८.	,,	कर्मचन्द गढ्ढिया, कालांवाली (हरियाणा)	२०१)
२९.	,,	लूनकरनदास ओमप्रकाश तातेड़, कालांवाली (हरियाणा)	२०१)
३०.	,,	नानकचन्द तातेड़, कालांवाली (हरियाणा)	१०१)
३१.	,,	वालमुकन्द प्रभुदयाल नाहटा, कालांवाली (हरियाणा)	२१)
३२.	,,	विरजलाल महेन्द्रकुमार तातेड़, डबवाली (हरियाणा)	१०१)
३३.	,,	आत्माराम चौधरी एडवोकेट, हनुमानगढ़ टाउन (राजस्थान)	५०१)
३४.	,,	डालचन्द तातेड़, द्वारा—	
	,,	श्री वहादुरचन्द विद्यारत्न जैन, हनुमानगढ़ टाउन (राजस्थान)	११०१)
३५.		कोशल्या देवी, धर्मपत्नी मदनलाल कुहाड़, हनुमानगढ़ टाउन (राजस्थान)	१०१)
३६.	,,	हीरालाल जी गोठी, खैरा वड़ा (पंजाब)	५१)
३७.	,,	कूमांमल राधाराम चौधरी, रोड़ी (हरियाणा)	५१)
३८.		गुप्तदान	५१)
३९.	,,	दल्लूमल दयाराम गोठी, खैरा वड़ा	२१)
४०.	,,	श्रीचन्द सुराना 'सरस' आगरा	११)
			८१०७)

ब्रह्मचर्य और साधना

ब्रह्मचर्य—

ब्रह्म और चर्य इन दो शब्दों से ब्रह्मचर्य शब्द की रचना की जाती है। ब्रह्म शब्द के तीन अर्थ होते हैं—(१) वीर्य, (२) आत्मा और (३) विद्या। ब्रह्म की भांति चर्य शब्द भी तीन अर्थों का बोध कराता है—(१) रक्षण, (२) चिन्तन और (३) अध्ययन। इन अर्थों को आधार बना लेने पर ब्रह्मचर्य शब्द का अभिप्राय होता है—वीर्यरक्षण, आत्मचिन्तन और विद्याध्ययन। साहित्य जगत में ब्रह्मचर्य शब्द के ये तीनों अर्थ मान्य हैं, आदरणीय हैं, तथापि उक्त तीनों अर्थों में से पहला अर्थ अधिक प्रसिद्ध, चालू और मान्य है। इसीलिए याज्ञवल्क्य-स्मृतिकार लिखते हैं—

कायेन मनसा वाचा, सर्वावस्थासु सर्वदा।
सर्वत्र मैथुनत्यागो, ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते॥

—शरीर, मन और वचन इन तीनों से सब अवस्थाओं में सर्वथा और सर्वत्र मैथुन का त्याग करना, रतिक्रिया को छोड़ना, स्त्री-पुरुष का समागम न करना ब्रह्मचर्य कहलाता है।

शारीरिक तत्त्वों में वीर्य का अपना एक महत्वपूर्ण स्थान माना गया है। वीर्य को शरीर का राजा भी कहते हैं। शरीर-शास्त्र के मर्मज्ञ लोगों ने—"मरणं[1] बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्" यह कह कर वीर्य को जीवन के रूप में ही स्वीकार किया है। वीर्य की उत्पत्ति का क्रम बतलाते हुए एक आचार्य लिखते हैं कि रस से रक्त, रक्त से माँस, माँस से चर्बी, चर्बी से हड्डी, हड्डी से मज्जा (हड्डी का सार) और मज्जा से वीर्य की उत्पत्ति होती है। इसीलिए शरीर-विज्ञान के वेत्ताओं का कहना है कि एक औंस (दो तोले)

---

१ वीर्य का नाश करना जीवन का नाश करना है, मृत्यु को आमंत्रण देना है और वीर्य की रक्षा करना जीवन की रक्षा करना है।

इत्र तैयार करने के लिए जैसे ८७५२ रत्तल गुलाव के फूलों को नष्ट करना होता है। वैसे वीर्य की एक विन्दु तैयार होने में अनेकों पदार्थों का विलय हो जाता है।[1] कहने का भाव यह है कि वीर्य जीवन का एक सारभूत पदार्थ है, उसकी चेतना है, उसका सर्वस्व है। इस सर्वस्व का संरक्षण करना, इसे नष्ट न होने देना, प्रत्येक दृष्टि से इसकी सार-संभाल रखना ही ब्रह्मचर्य माना जाता है।

वीर्य अत्यन्त महत्वपूर्ण वस्तु है, वह जीवन का जीवन है और प्राणों का प्राण। वीर्य की शक्ति से ही शरीर, मन और आत्मा शक्तिशाली वनता है। वीर्य की शक्ति से ही समस्त इन्द्रियाँ अपना-अपना कार्य करने में समर्थ होती हैं। वीर्य मनुष्य को उच्च भूमिका पर प्रतिष्ठित करता है, और परमात्मदशा की ओर ले जाता है। वीर्य के अभाव में जीवन निस्सार और विडम्वना मात्र रह जाता है। इसीलिए वीर्य की रक्षा करना अत्यन्त उपयोगी वतलाया गया है। कोई साधु हो या गृहस्थ, वीर्य रक्षा के विना उसका जीवन सुखमय नहीं वन सकता। वीर्य रक्षा कैसे होती है ? यह जान लेना भी आवश्यक है। वीर्य रक्षा के लिए मानसिक पवित्रता एवं निर्विकारता की अत्यधिक अपेक्षा रहती है। विकारों का या वासना का मानसिक पवित्रता के साथ कोई मेल नहीं है। वैपयिक भावनाओं या कामनाओं का जिस हृदय में वास नहीं होता, वही मानस वीर्यरक्षा की ज्योति से ज्योतित हो सकते हैं। कामदेव के अनेकों नाम हैं, इसको मनसिज भी कहते हैं। इसका अभिप्राय है कि कामवासना का उद्‌गम स्थान मानस है, हृदय है, अन्तःकरण है। अतः कामवासनाओं से मन को सर्वथा उन्मुक्त रखना ही ब्रह्मचर्य का वास्तविक स्वरूप होता है। जिस मानस में विकार है, नारीसंगम की कामना है, विपयोपभोग की भावना है, वहाँ पर ब्रह्मचर्य का महादेव विराजमान नहीं हो सकता। मैथुनेच्छा और ब्रह्मचर्य का दिनरात का-सा विरोध रहता है। सारांश यह है कि ब्रह्मचर्य की भावना, साधना और आराधना को ही वीर्यरक्षा का सर्वोत्तम साधन समझना चाहिये।

ब्रह्मचर्य और उसकी सुरक्षा—

श्री उत्तराध्ययन सूत्र के सोलहवें अध्ययन में ब्रह्मचर्य के संरक्षण के ९ साधन वताए हैं। जो ब्रह्मचर्य की नव वाड़ों के नाम से प्रतिपादित किए जाते हैं। जैसे (१) ब्रह्मचारी पुरुप, स्त्री, पशु और नपुंसक से युक्त शयनासन का सेवन न करे, (२) कामराग वढ़ाने वाली स्त्रियों की कथा न करे, (३)

---

१ देखो—जीवनलक्ष्य, पृष्ठ १५०

स्त्रियों के स्थान का सेवन न करे, जहाँ स्त्री बैठी हो वहाँ दो घड़ी तक न बैठे, (४) स्त्रियों की मनोहर एवं मनोरम इन्द्रियों का अवलोकन व ध्यान न करे, (५) अति स्निग्ध आहार न करे, (६) आवश्यकता से अधिक आहार-पानी ग्रहण न करे, (७) स्त्रियों के साथ पूर्व उपभुक्त भोगों का स्मरण न करे, (८) विकार उत्पन्न करने वाले शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श में तथा अपनी प्रशंसा में आसक्त न हो, और (९) भौतिक सुखसुविधा में आसक्त न बने।

ब्रह्मचर्य-व्रत की सुरक्षा के लिए साधक को कितना और किस तरह सावधान और सतर्क रहना चाहिए ? इस सम्बन्ध में जैन तथा जैनेतर अध्यात्म महापुरुषों ने जो अपने अनुभव अध्यात्म जगत के सम्मुख प्रस्तुत किए हैं, उन्हें सदा स्मरण रखना चाहिए। उदाहरणार्थ कुछ एक अनुभव निवेदन करता हूँ—

अवि धूयर्एहिं, सुसर्हाहिं धाईहिं अदुव दासीहिं।
महईहिं कुमारीहिं, संथवं से न कुज्जा अणगारे ॥

—सूत्रकृतांग अ० ४/१/१३

—चाहे पुत्री हो, पुत्रवधू हो, धाय हो या दासी हो, विवाहित हो या कुमारी हो साधु को इन सब में से किसी भी स्त्री का सहवास नहीं करना चाहिए।

अदंसणं चेव अपत्थणं च अचिंतणं चेव अकित्तणं च।
इत्थीजणस्सारियझाणजुग्गं, हियं सया बंभवए रयाणं ॥

—उत्तरा० अ० ३२/१२

—स्त्रियों को रागपूर्वक न देखना, उनकी अभिलाषा न करना, तथा उनका चिन्तन, एवं कीर्तन न करना, ये सब बातें उत्तम ध्यान में सहायक बनती हैं और ब्रह्मचारियों के लिए सदा हितकारी हैं।

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा, न विविक्तासनो भवेत्।
बलवानिन्द्रियग्रामो, विद्वांसमपि कर्षति ॥

—मनुस्मृति २/२१५

—ब्रह्मचारी को माँ, बहिन और पुत्री के साथ भी एकान्त स्थान में नहीं बैठना चाहिए, क्योंकि इन्द्रियों का समूह बलवान है, वह विद्वानों को भी खींच लेता है।

जहा कुक्कुडपोयस्स निच्चं कुललओ भयं।
एवं बंभयारिस्स, इत्थीविग्गहओ भयं ॥

—दशवैकालिक ८/५४

—जैसे मुर्गी के बच्चे को बिलाव का सदा भय रहता है, वैसे ही ब्रह्मचारी को नारी के शरीर से सदा भय रहना चाहिए।

जहा विरालावसहस्स मूले,
न मूसगाणं वसही पसत्था।
एमेव इत्थीनिलयस्स मज्झे,
न बंभयारिस्स खमो निवासो ॥

—उत्तरा० अ० ३२/१३

—जैसे बिल्लियों के निवासस्थान के पास रहना चूहों के लिए योग्य नहीं है, वैसे ही स्त्रियों के निवास-स्थान के बीच रहना ब्रह्मचारी के लिए योग्य नहीं है।

विद्या बुद्धि विवेक बल, यद्यपि होत अपार।
मन्मथ रहे न जगे बिन, जहाँ एक नर नार ॥

—मनुष्य कितना भी विद्वान, बुद्धिमान, विवेकवान और बलवान हो परन्तु अकेली नारी के साथ यदि अकेला बैठने लग जाएगा तो उसका मन्मथ-कामदेव जागे बिन नहीं रहेगा।

ऊपर की पंक्तियों में जितने ब्रह्मचर्य की रक्षा साधन प्रस्तुत किये गये हैं इनको यदि जीवनाङ्गी बना लिया जाय तो साधक की ब्रह्मचर्य-साधना कभी खण्डित, निस्तेज और असफल नहीं हो सकती। ब्रह्मचर्य के महापथ पर चलने वाले अतीतकालीन जितने भी साधक हुए हैं, उन्होंने इन्हीं साधनों को अपनाकर अपना भविष्य समुज्ज्वल बनाया था।

ब्रह्मचर्य की लोकप्रियता—

अहिंसा, सत्य और अस्तेय आदि व्रतों के अध्यात्म शास्त्रों में जो विधान उपलब्ध होते हैं, इनका भी अपना स्थान है, महत्व है। परन्तु अध्यात्म साधना-जगत में ब्रह्मचर्य को जो स्थान प्राप्त है वह किसी अन्य व्रत को नहीं। व्रत तो सभी हैं तथापि असिधारा-व्रत कहलाने का श्रेय यदि किसी व्रत को प्राप्त है तो वह केवल ब्रह्मचर्य व्रत ही है। इसीलिए ब्रह्मचर्य व्रत अन्य सब व्रतों में शिरोमणि माना जाता है।

ब्रह्मचर्य महान है इसकी महिमा एवं महत्ता सार्वभौमिक है। जैन और जैनेतर सभी साहित्य ब्रह्मचर्य के प्रसादान्त वर्णन से भरे पड़े हैं। अध्यात्म साहित्य तो विशेष रूप से ब्रह्मचर्य की महिमा के गीत गाता दिखाई देता है। वैदिक परम्परा के सर्वमान्य ग्रन्थरत्न अथर्ववेद (१५-५-१६) ब्रह्मचर्य की गरिमा का कितनी सुन्दरता से वर्णन कर रहा है—

ब्रह्मचर्येण तपसा, देवा मृत्युमपाघ्नत ।
इन्द्रोहि ब्रह्मचर्येण, देवेभ्यः स्वराभरत् ॥

—देवगण ब्रह्मचर्य और तप से मृत्यु को जीत लेते हैं। ब्रह्मचर्य से ही इन्द्र अन्य देवताओं की अपेक्षा अधिक तेजस्वी बनता है।

श्रीमद् भगवद्गीता में त्रिखण्डाधिपति वासुदेव श्रीकृष्ण ब्रह्मचर्य को या काम-निग्रह को मुक्ति और सुख का मूलस्रोत स्वीकार कर रहे हैं। वे कहते हैं—

शक्नोतीहैव यः सोढुं, प्राक् शरीर विमोक्षणात् ।
काम-क्रोधोद्भवं वेगं स मुक्तः स सुखी नरः ॥

—गीता—अ० ५/२३

—जो पुरुष अपने शरीर-त्याग से पूर्व ही काम और क्रोध के वेग, (आवेश) को रोक लेता है, वही मुक्त है, वही सुखी है।

श्री प्रश्नव्याकरण सूत्र के संवर द्वार में महामहिम भगवान महावीर ब्रह्मचर्य की महिमा का कितनी विलक्षणता से गुण-गान कर रहे हैं—

तं बंभं भगवंतं गह-गण-नक्खत्त-तारगाणं जहा उडुवइ, मणि-मुत्त-सिल-प्पवाल-रत्त-रयणागराणं य जहा समुद्दो, वेरुलिओ चेव जहा मणिणं जहा मउडो चेव भूसणाणं वत्थाणं चेव खोमजुयलं, अरविंदं चेव पुप्फजेट्ठं, गोसीसं चेव चंदणाणं हिमवं चेव ओसहीणं, सीतोदा चेव निन्नगाणं, उदहीसु जहा सयंभूरमणे········ एरावण एव कुंजराणं, कप्पाणं चेव बंभलोए······दाणाणं चेव अभयदाणं····· तित्थयरे चेव जहा मुणीणं ········ वणेसु जहा नन्दणवणं पवरं ·········।

—संवरद्वार ४

—ब्रह्मचर्य भगवान है, यह ग्रह-गण, नक्षत्र और ताराओं में चन्द्रमा के तुल्य है। चन्द्रकान्त मणि, मोती, प्रवाल व पद्मराग आदि रत्नों के उत्पत्ति स्थानों में समुद्र-तुल्य है। भाव यह है कि जैसे समुद्र में अनेकानेक रत्न उत्पन्न होते हैं, ठीक वैसे ही ब्रह्मचर्य भी अन्यान्य व्रतों का समुत्पादक है, उत्पत्ति स्थान है। जैसे मणियों में वैडूर्यमणि श्रेष्ठ है, भूषणों में मुकुट प्रवर है, वस्त्रों में क्षौमयुगल (बहुमूल्य रेशमी वस्त्र) मुख्य हैं, पुष्पों में अरविन्द पुष्प उत्कृष्ट हैं, चन्दनों में गौशीर्ष चन्दन प्रकृष्ट है, औषधि-युक्त पर्वतों में हिमवान श्रेष्ठ है, नदियों में शीतोदा बड़ी है, समुद्रों में स्वयंभूरमण समुद्र बृहत्तम है हाथियों में ऐरावत, स्वर्गों में ब्रह्मस्वर्ग, (पाँचवाँ स्वर्ग), दानों में अभयदान, मुनियों में तीर्थंकर भगवान, और वनों में नन्दनवन उत्कृष्ट है वैसे व्रतों में ब्रह्मचर्य व्रत सर्वश्रेष्ठ है।

श्री उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन १६/१६ में भगवान महावीर ने ब्रह्मचर्य के परिपालक व्यक्ति को देव-वन्दनीय उद्घोषित किया है :

देवदाणव गंधव्वा, जक्ख रक्खस-किन्नरा ।
बंभयारिं नमंसंति, दुक्करं जे करंति तं ।।

—ब्रह्मचारी के चरणों में देव, दानव, गंधर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नर ये सभी देवता नमस्कार करते हैं, क्योंकि ये दुष्कर ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं ।

ब्रह्मचर्य की लोकप्रियता सर्वविदित है । भारतीय साहित्य ने ब्रह्मचर्य के अनेकों रूप प्रदर्शित किए हैं, किसी ने इसे तीर्थ कहा है, कोई उसे बल, और कोई इसे सर्वश्रेष्ठ भूषण के रूप में देखता है । जानकारी के लिए कुछ एक उद्धरण निवेदन करता हूँ—

१—**ब्रह्मचर्य परं तीर्थम् ।** —दानचन्द्रिका ।
ब्रह्मचर्य सर्वोत्कृष्ट तीर्थ है ।

२—**ब्रह्मचर्य परं बलम् ।** —वैद्यशास्त्र
ब्रह्मचर्य उत्कृष्ट बल है, शक्ति है ।

३—**शीलं परं भूषणम् ।** —भर्तृहरि
ब्रह्मचर्य सर्व श्रेष्ठ भूषण है अलंकार है विभूषा है ।

४—**शीलं दुर्गतिनाशनम् ।** —चाणक्यनीति
ब्रह्मचर्य दुर्गति का नाश करने वाला है ।

५—**शीलं भूषयते कुलम् ।** —चाणक्यनीति
ब्रह्मचर्य कुल की शोभा बढ़ाता है ।

६—**तोयत्यग्निरपि स्रजत्यहिरपि व्याघ्रोऽपि सारङ्गति,**
व्यालोऽप्यश्वति पर्वतोऽप्युपलति श्वेडोऽपि पीयूषति ।
विघ्नोऽप्युत्सवत्ति प्रियत्यरिरपि क्रीड़ा तडागत्यापां-,
नाथोऽपि स्वगृहत्यटव्यपि नृणां शीलप्रभावाद् ध्रुवम् ।।

—ब्रह्मचर्य के प्रभाव से अग्नि जल-तुल्य, सर्प पुष्पमाला तुल्य, बाघ हिरण-तुल्य, दुष्ट हाथी साधारण घोड़े के तुल्य, पर्वत पत्थर के खण्ड-तुल्य, विष अमृत-तुल्य, विघ्न महोत्सव-तुल्य, शत्रु मित्र-तुल्य, समुद्र क्रीड़ा-सरोवर-तुल्य और अटवी स्वगृह-तुल्य बन जाती है । भाव यह है कि ब्रह्मचर्य के प्रभाव से अग्नि आदि घातक पदार्थ अपने स्वभाव को छोड़कर आनन्द-दायक हो जाते हैं ।

७—**शीलरतन मोटा रतन, सब रतनों की खान ।**
तीन लोक की सम्पदा, रही शील में आन ।।

—शीलरत्न एक पावन रत्न है, यह अन्य सब रत्नों का उद्गम-स्थान है। अधः, मध्य और ऊर्ध्व इन तीन लोकों की सम्पत्ति इसमें निवास करती है।

समुद्रतरणे यद्वदुपायो नौः प्रकीर्तिता।
संसार-तरणे तद्वत्, ब्रह्मचर्य प्रकीर्तितम्॥

—जैसे समुद्र को पार करने का उपाय जहाज है उसी प्रकार संसार-सागर को पार करने का उपाय ब्रह्मचर्य है।

शास्त्रों, ग्रन्थों और पुराणों में ब्रह्मचर्य की जो महिमा गाई है, उसका पार नहीं पाया जा सकता। ऐसा लगता है कि ब्रह्मचर्य का यशोगान करते हुए गायक का मन नहीं भरने पाता। अन्त में उसे वह अपरम्पार महिमा वाला ही दिखाई देता है। अतः अधिक न कहकर एक मनीषी आचार्य की उक्ति अंकित करके इस विवेचन से विराम लेते हैं—

शीलं प्राणभृतां कुलोदय-करं शीलं वपुर्भूषणम्।
शीलं शौचकरं विपद्भयहरं दौर्गत्यदुःखापहम्॥
शीलं दुर्भगतादिकन्ददहनं, चिन्तामणिः प्रार्थिते।
व्याघ्र-व्याल-जलानलादिशमनं, स्वर्गापवर्गप्रदम्॥

—शील—ब्रह्मचर्य मनुष्यों की कुल की उन्नति करने वाला है, ब्रह्मचारी के कुल की कीर्ति बढ़ती है, प्रतिष्ठा बढ़ती है और श्री-लक्ष्मी की वृद्धि होती है। ब्रह्मचर्य मनुष्य के शरीर का शृंगार है। ब्रह्मचर्य का पालन करने से शरीर तेजस्वी, ओजस्वी, प्रभापूर्ण और सुन्दर बनता है। ब्रह्मचर्य से अन्तः-करण पवित्र होता है। ब्रह्मचर्य के प्रभाव से विपत्ति और भय का अभाव हो जाता है। ब्रह्मचर्य दुर्गति के दुःखों का नाश करने वाला है। ब्रह्मचर्य दुर्भाग्य का समूल नाश कर देता है। ब्रह्मचर्य इष्ट की प्राप्ति के लिए चिन्तामणि रत्न के समान है। अर्थात् ब्रह्मचारी के समस्त मनोरथ सिद्ध होते हैं, उसे कहीं कभी असफलता का सामना नहीं करना पड़ता। ब्रह्मचर्य के प्रखर प्रताप से व्याघ्र, सर्प, जल और अग्नि आदि की समस्त बाधाएँ दूर होती हैं। इन सब लौकिक लाभों के अतिरिक्त, ब्रह्मचर्य के प्रभाव से स्वर्ग और अपवर्ग-मोक्ष की भी प्राप्ति होती है।

अब्रह्मचर्य के दुष्परिणाम—ब्रह्मचर्य का अभाव अब्रह्मचर्य, मैथुनोपभोग, विषय सेवन आदि नामों से पुकारा जाता है। स्त्री-पुरुष के जोड़े की काम-राग से परिपूर्ण जितनी भी चेष्टाएँ हैं, वैषयिक व्यापार हैं, कामुकतापूर्ण हावभाव हैं, वे सब अब्रह्मचर्य है, मैथुन है। अब्रह्मचर्य से, अर्थात् ब्रह्मचर्य व्रत

का पालन न करने से जो-जो हानियाँ होती हैं उन्हें भी समझ लेना आवश्यक है। श्री भगवती सूत्र में भगवान महावीर फरमाते हैं—

से जहाणामए केई पुरिसे रूयनालियं वा बूरनालियं वा तत्तेणं कणएणं समभिधंसेज्जा। एरिसएणं गोयमा ! मेहुणं सेवमाणस्स असंजमं कज्जइ।

—भगवती सू० २/७६

—जिस प्रकार कोई पुरुष रूई से या बूर से भरी हुई नली में तप्त सोने की शलाका डालकर रूई को जला देता है। हे गौतम ! उसी प्रकार मैथुन-सेवन करता हुआ पुरुष स्त्री-योनि-गत जीवों का नाश करता है। श्री भगवती सूत्र के इस निर्देश से यह स्पष्ट हो जाता है कि अब्रह्मचर्य का सेवन करना, मैथुन की भावनाओं को साकार बनाना, जीवों का संहार करना है, उनके जीवन का विनाश कर देने के कारण महान पाप एकत्रित करना है।

अब्रह्मचर्य की भावनाओं का कितना दु:खान्त परिणाम निकलता है ? इस सम्बन्ध में भारत के अध्यात्म महापुरुषों ने बहुत कुछ कहा है। सभी उक्तियों का उल्लेख करने लगें तो एक स्वतंत्र ग्रन्थ तैयार हो सकता है, प्रस्तुत में तो हम केवल अब्रह्मचर्य के दुष्परिणाम की झाँकी ही दिखलाना चाहते हैं। अत: अधिक न लिखकर कुछ एक उक्तियों का ही उल्लेख कर रहे हैं—

णो रक्खसीसु गिज्झेज्जा, गंडवच्छासु णेगचित्तासु।
जाओ पुरिसं पलोभित्ता, खेल्लंति जहा व दासेहिं॥

—उत्तराध्ययन अ० ८/१८

—जिस तरह कोई राक्षसी किसी का सारा रक्त चूस कर उसके प्राण हर लेती है ठीक उसी तरह पुष्ट स्तनों वाली तथा अनेक व्यक्तियों का ध्यान चित्त में धारण करने वाली स्त्रियाँ साधक के ज्ञान, दर्शन आदि सब गुणों का अपहरण करके उसकी साधना का नाश कर देती हैं। ऐसी स्त्री सर्वप्रथम पुरुषों को अपनी ओर आकृष्ट करती हैं और बाद में उनसे आज्ञाकारी दास की भाँति कार्य करवाती हैं।

जे गुणे से आवट्टे, जे आवट्टे से गुणे।

—आचारांग १/५

—जो गुण-विषयवासना हैं, वही आवर्त-संसार है और जो आवर्त है वही गुण-विषयवासना है।

जहा किंपागफलाणं, परिणामो न सुन्दरो।
एवं भुत्ताण भोगाणं, परिणामो न सुन्दरो॥

—उत्तराध्ययन अ० १९/१७

—जैसे किंपाक फल खाने का फल अच्छा नहीं होता वैसे ही परिभुक्त भोगों का परिणाम भी अच्छा नहीं होता। किम्पाक फल देखने में सुन्दर और खाने में स्वादिष्ट होते हैं, किन्तु विषमय होने से भक्षण कर लेने के अनन्तर प्राणघातक हो जाते हैं।

अचरित्वा ब्रह्मचर्यं, अलद्दा योब्बने धनम्।
सेन्ति चापा तिखीणा व, पुराणानि अनुत्थुनम्॥

—धम्मपद ११/११

—जिन्होंने ब्रह्मचर्य का पालन नहीं किया, और जिन्होंने जवानी में धन का उपार्जन नहीं किया वे टूटे हुए धनुषों के समान पड़े रहते हैं और अपने पहले के समय को याद किया करते हैं।

आयुस्तेजो बलं वीर्यं, प्रजा श्रीश्च महायशाः।
पुण्यञ्च प्रीतिमत्वञ्च, हन्यतेऽब्रह्मचर्यया॥

—जो विवेक शून्य पुरुष ब्रह्मचर्य का पालन न करके विषयोपभोग में अपना जीवन व्यतीत करते हैं, वे अपनी आयु को नष्ट कर डालते हैं, दीर्घजीवी न होकर अल्पायुष्क होते हैं, उनका तेज नष्ट हो जाता है, बल और वीर्य समाप्त होता है, उनकी बुद्धि, श्री, लक्ष्मी, पुण्य और प्रसन्नता भी नहीं रहने पाती।

योनियन्त्र-समुत्पन्नाः, सुसूक्ष्मा जन्तुराशयः।
पीड्यमाना विपद्यंते, यतस्तन्मैथुनं त्यजेत्॥

—योगशास्त्र २/७९

—मैथुन का सेवन करने से योनि यन्त्र में उत्पन्न होने वाले अत्यन्त सूक्ष्म जीवों के समूह पीड़ित होकर विनाश को प्राप्त हो जाते हैं, इसलिए मैथुन का त्याग करना ही उचित है।

बद्धोहि को ? यो विषयानुरागी। —शंकरप्रश्नोत्तरी

—बँधा हुआ, परतन्त्र कौन है ? विषयवासनाओं का अनुरागी व्यक्ति। वासना का पुजारी व्यक्ति गुलामों का गुलाम माना जाता है।

ब्रह्मचर्यं सदा रक्षेदष्टधा रक्षणं पृथक्।
स्मरणं कीर्त्तनं केलिः, प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्॥
संकल्पोऽध्यवसायश्च, क्रियानिर्वृत्तिरेव च।
एतन्मैथुनमष्टांगं प्रवदन्ति मनीषिणः॥ —दक्षस्मृति

—मैथुन के आठ अङ्ग—प्रकार हैं। जैसे—स्त्री का स्मरण करना, (२) उनके रूपादि का वर्णन करना, शृंगार के ग्रन्थ पढ़ना, अश्लील गीत गाना

(३) उनके साथ चौपड़ आदि खेलना (४) उन्हें रागदृष्टि से देखना (५) उनके साथ एकान्त में वार्तालाप करना (६) उन्हें प्राप्त करने के लिए संकल्प-निश्चय करना (७) उन्हें प्राप्त करने का प्रयत्न करना और (८) उनके साथ प्रत्यक्ष सहवास करना। ब्रह्मचारिणी नारियों के लिए पुरुष का स्मरण करना आदि मैथुन के आठ अङ्ग समझने चाहिए।

विषस्य विषयाणां च, दूरमत्यन्तमन्तरम्।
उपभुक्तं विषं हन्ति, विषयास्तु स्मरणादपि॥

—विष और विषयों में बहुत बड़ा अन्तर है, विष तो खाने से मारता है, किन्तु विषय तो स्मरण-मात्र से ही मार देता है।

ध्यायतो विषयान्पुंसः, संगस्तेषूपजायते।
संगात्संजायते कामः, कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद् भवति संमोहः, संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥

—गीता २/६२-६३

—विषयों का चिन्तन करने से उनमें पुरुष को आसक्ति होती है आसक्ति होने से उनमें कामवासना जागृत होती है। कामवासना में विघ्न होने से क्रोध उत्पन्न होता है, क्रोध से संमोह—अविवेक उत्पन्न होता है, अविवेक से स्मरणशक्ति भ्रमित हो जाती है, स्मरणशक्ति के भ्रमित हो जाने से बुद्धि—ज्ञानशक्ति का नाश होता है और ज्ञानशक्ति के नष्ट होने से मनुष्य अपने श्रेयः साधन से गिर जाता है।

प्रजहाति यदा कामान्, सर्वान् पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः, स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥

—भगवद्गीता अ० २/५५

—हे अर्जुन! वही मनुष्य स्थिर बुद्धिवाला कहा जा सकता है जो मन में उत्पन्न होने वाली कामनाओं, वासनाओं का क्षय करके अपनी आत्मा में ही सन्तुष्ट रहता है।

भिक्षाशनं तदपि नीरसमेक वारं,
शय्या च भूः परिजनो निजदेहमात्रम्।
वस्त्रं च जीर्णशतखण्डमलीनकन्था,
हा, हा तथापि विषया न परित्यजन्ति॥

—भर्तृहरि, वैराग्यशतक १६

मुसलमानों के धर्मग्रन्थ 'कुरान' की सूरत बकर रुकु २१, आयत १ में लिखा है कि "तुम कामविकार के अधीन मत होना, क्योंकि यह तुम्हारा घोर शत्रु है।"

> विश्वामित्र-पराशर-प्रभृतयो, वाताम्बुपर्णाशना—
> स्तेऽपि स्त्रीमुखपङ्कजं सुललितं दृष्टैव मोहं गताः।
> शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं ये भुञ्जते मानवा—
> स्तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेत् विन्ध्यस्तरेत् सागरे॥

—विश्वामित्र और पराशर आदि बहुत से ऋषि हो चुके हैं, इनमें कोई वायु का भक्षण करके रहता था, कोई जल पर ही जीवन निर्वाह करता था, और कोई वृक्षों के पत्तों पर ही अपना जीवन-यापन करता था। किन्तु ऐसी तपस्या करने वाले भी स्त्री का सुन्दर मुख देखते ही विकार-ग्रस्त हो गए। ऐसी स्थिति में घी, दूध और दही से युक्त चावलों का भोजन करने वाले माल-मलीदा उड़ाने वाले लोग अगर अपनी इन्द्रियों का दमन कर लें, तब तो विन्ध्य पर्वत भी पानी में तैरने लगे। भाव यह है कि जब रूखा-सूखा और निस्सत्त्व भोजन करने वाले भी कामदेव के प्रहारों को सहन करने में असमर्थ होते हैं तब पौष्टिक और गरिष्ठ भोजन करने वाले कब समर्थ हो सकते हैं ?

आचार्य उमास्वाति ने अपने तत्त्वार्थभाष्य में ब्रह्मचर्य की स्थिरता के लिए अब्रह्मचर्य से जनित दुःखों का निर्देश करते हुए लिखा है कि "साधक को विचार करना चाहिए—मैथुनसेवन से कभी सुख प्राप्त नहीं होता, जैसे खुजली होने पर मनुष्य उसे खुजलाता है खुजलाने के समय कुछ काल के लिए उसे सुखानुभूति अवश्य होती है, परन्तु चिरकाल के लिए उसे दुःख भोगना पड़ता है। खुजलाने से रक्त बहने लगता है फिर व्रण-जन्य भयंकर पीड़ा होती है। इसी प्रकार विषय सुख के सेवन से कुछ क्षणों के लिए स्पर्शजन्य सुख भले ही प्राप्त हो जाए, परन्तु इस सुख की अपेक्षा व्यभिचार करने से व्यक्ति को दुःख अधिक उठाना पड़ता है। यदि पर-स्त्रीगमन करता हुआ व्यक्ति पकड़ा जाता है तो समाज और राज्य उसे कठोर दण्ड देता है, लोक में उसका अपवाद और अपयश फैलता है, कभी-कभी तो ऐसे अपराधी के हाथ, पैर, कान और इन्द्रिय आदि अवयवों का छेदन भी करा दिया जाता है। अब्रह्मचर्य के सेवन से प्राप्त होने वाले ये दुःख तो इसी लोक के हैं, परन्तु परलोक में तो इनसे भी कहीं अधिक भयंकर दुःखों को भोगना पड़ता है। अब्रह्मचर्य के सेवन से प्राप्त होने वाले इन दुःखों का चिन्तन करने से व्यक्ति मैथुन से विरत हो सकता है, और अब्रह्मचर्य के दुष्परिणामों का परिज्ञान सुविधापूर्वक प्राप्त कर लेता है।

ब्रह्मचर्य की साधना—

साधना का अर्थ है—मोक्षरूप साध्य तक पहुँचने के लिए की जाने वाली क्रिया विशेष। ब्रह्मचर्य रूप साधना ब्रह्मचर्य साधना होती है। ब्रह्मचर्य का शाब्दिक अर्थ बताया जा चुका है।

ब्रह्मचर्य के मर्मज्ञ विद्वानों का कहना है कि ब्रह्मचर्य जीवन है, वासना मृत्यु है, ब्रह्मचर्य अमृत है वासना विष है, ब्रह्मचर्य प्रकाश है, वासना अन्धकार है, ब्रह्मचर्य अनन्त शान्ति है, सुख है, वासना अनन्त दुःख है, क्लेश है। ब्रह्मचर्य अजेय शक्ति है, परम सात्विक बल है, वासना जीवन की बहुत बड़ी दुर्बलता है, कायरता है, नपुंसकता है। ब्रह्मचर्य जीवन की मूल शक्ति है, ओज है, तेज है और वासना जीवन की मूल कमजोरी है, तेजोहीनता है, ओजोऽभाव रूप है। इसीलिए साधना-जगत में ब्रह्मचर्य-साधना का एक महत्वपूर्ण स्थान माना जाता है।

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ब्रह्मचर्य शब्द की व्याख्या करते हुए कहते हैं—"ब्रह्मचर्य अर्थात् ब्रह्म की, सत्य की शोध में चर्य अर्थात् तत्सम्बन्धी आचार। आत्मा का शुद्ध भाव में चलना, गति करना, आचरण करना, आत्मा को विकारी भावों से हटाकर शुद्ध परिणति में केन्द्रित करना ब्रह्मचर्य कहलाता है। अतः ब्रह्मचर्य की साधना ही वास्तविक साधना है, जीवन की एक कला है, अपने आचार-विचार और व्यवहार को बदलने की एक परम पावनी आराधना है।" कला जैसे वस्तु को सुन्दर बनाती है, उसमें प्रच्छन्न सौन्दर्य को प्रकट करके उसे सर्वप्रिय बना डालती है वैसे ब्रह्मचर्य की साधना भी यही काम करती है। यह जीवन को सुन्दर, सुन्दरतर और सुन्दरतम बना देती है। जीवन में शारीरिक सौन्दर्य का भी अपना स्थान है, परन्तु ब्रह्मचर्य की साधना के आचरण के सौन्दर्य का उससे भी लाख गुना अधिक अच्छा स्थान है।

इसीलिए तो कविता की भाषा में कहा जाता है—

पतिव्रता फटी लता, नहीं गले में पोत।
भरी सभा में ऐसे शोभे, हीरा जैसी जोत॥

ब्रह्मचर्य की साधना की परम ज्योति से ज्योतित होने वाला मानव सदा सर्वत्र आदर सम्मान और प्रतिष्ठा अधिगत करता है और द्वितीया के चन्द्र भाँति उसके दर्शनों के लिए दर्शक लोग लालायित और उत्सुक रहते ब्रह्मचर्य की महिमा महान है।

भगवान महावीर[1] के शब्दों में वह पूज्यों का पूज्य होता है, सुर, असुर नर सभी के लिए वन्दनीय एवं अभिनन्दनीय बन जाता है। आत्मा को महात्मा और महात्मा को परमात्मा बनाने वाली यही साधना है। विश्व की समस्त ऋद्धिसिद्धियाँ ब्रह्मचर्य के दरबार की दासियाँ होती हैं। तेजस्विता और ओजस्विता का महामहिम भण्डार इसी साधना के प्रताप से साधक के हाथ आता है। ब्रह्मचर्य की साधना की गुणगरिमा का क्या वर्णन किया जाए? यह अवर्णनीय है।

ब्रह्मचर्य की साधना जितनी महान है उतनी कठिन भी अवश्य है। साधना तो अहिंसा, सत्य और अस्तेय आदि व्रतों की भी होती है परन्तु ब्रह्मचर्य व्रत की साधना जितनी कठिन और दुष्कर मानी गई है उतनी किसी अन्य व्रत की नहीं। इस साधना के क्षेत्र में सभी व्यक्ति नहीं चल सकते, कोई जितेन्द्रिय और विरक्त व्यक्ति ही इस क्षेत्र का पार पा सकता है। ब्रह्मचर्य की दुष्करता के वर्णन से अध्यात्म साहित्य भरा पड़ा है। उदाहरण के लिए दो तीन उक्तियाँ निवेदन करता हूँ—

'उग्गं महव्वयं बंभं, धारेयव्व सुदुक्करं'

—उत्तरा० अ० १९/२९

—जो उग्र महाव्रत है ऐसे ब्रह्मचर्य की आराधना करना अत्यन्त दुष्कर है, बहुत मुश्किल काम है।

शक्यं महाव्रतं घोरं शूरैश्च न तु कातरैः।
करिपर्याणमुद्वोढुं करिभिर्न तु रासभैः॥

—जैसे हाथी का पलान हाथी ही उठा सकते हैं, रासभ-गधे नहीं, वैसे ही ब्रह्मचर्य का पालन शूरवीर पुरुष ही कर सकते हैं, कायर व्यक्ति नहीं।

नाल्पसत्त्वैर्न निःशीलैः, न दीनैर्नाक्षनिर्जितैः।
स्वप्नेऽपि चरितुं शक्यं ब्रह्मचर्यमिदं नरैः॥

—ज्ञानार्णव

—अल्प शक्ति वाले, शीलरहित, दीन और इन्द्रियों द्वारा जीते गये लोग इस ब्रह्मचर्य व्रत की स्वप्न में भी परिपालना नहीं कर सकते।

---

१ (क) देवदाणव गंधव्वा, जक्खरक्खस किन्नरा।
बंभयारि नमंसंति [illegible] ॥ [illegible]

ब्रह्मचर्य के साधक—

विषय-वासना जीवन को पतनोन्मुख बनाती है, इससे शारीरिक शक्ति, वैचारिक सहिष्णुता और मानसिक सन्तुलन बिगड़ता है। विषय-वासना के आवरण में आत्मा का तेज भी दब जाता है, मन्द पड़ जाता है। अतः साधक को इन्द्रिय-जन्य विषय भोगों से सदा विरत रहना चाहिए। विषयवासना से सर्वथा विरक्त हो जाने का नाम ही ब्रह्मचर्य है। मन, वचन और शरीर से विषय-वासना की ओर प्रवृत्त न होना, न दूसरे को प्रेरित करना, न वैषयिक सुखों का चिन्तन करना तथा न उन्हें अच्छा समझना। इस तरह मन, वचन, शरीर से वैषयिक प्रवृत्ति, प्रेरणा और चिन्तन का परित्याग करना ब्रह्मचर्य कहलाता है। यह साधारण कार्य नहीं है। समर्थ और बलवान व्यक्ति ही इसे पूर्णतः स्वीकार कर सकता है और वही इसका ठीक तरह से परिपालन कर सकता है। प्रत्येक व्यक्ति का इस महापथ पर चलना कठिन ही नहीं, असम्भव भी है। इसीलिए जैनाचार्यों ने ब्रह्मचर्य की साधना के दो रूप बताए हैं। जैसे—१—वासनाओं का पूर्ण नियन्त्रण और २—वासनाओं का केन्द्रीकरण अथवा—१—पूर्ण ब्रह्मचर्य और २—आंशिक ब्रह्मचर्य। अथवा—१—सर्वतः ब्रह्मचर्य और २—देशतः ब्रह्मचर्य। सर्वतः ब्रह्मचर्य को महाव्रत और देशतः ब्रह्मचर्य को अणुव्रत भी कहते हैं। पूर्ण रूप से कामवासनाओं पर नियन्त्रण करना, मन वचन और शरीर से मैथुन का न स्वयं सेवन करना, न दूसरों से मैथुन का सेवन करवाना और न ही मैथुन सेवन-कर्ता का अनुमोदन या समर्थन करना सर्वतः ब्रह्मचर्य कहलाता है। विवाहित नारी या नर के अतिरिक्त अन्य किसी से मैथुन सम्बन्ध न रखना, विवाहित नारी या नर से भी मर्यादित तथा सीमित मैथुनोपभोग की मर्यादा को भंग न करना देशतः ब्रह्मचर्य माना गया है।

सर्वतः ब्रह्मचर्य के परिपालक साधक आमतौर पर साधु होते हैं और देशतः ब्रह्मचर्य के परिपालक गृहस्थ माने जाते हैं। देशतः ब्रह्मचर्य की जो व्यक्ति आराधना करते हैं वे अपनी विवाहित नारी को छोड़कर जगत की अन्य सब नारियों को, जो वयोवृद्ध हैं उसे माता, जो समान वयस्क हैं उसे बहिन और जो छोटी आयु वाली हैं उस को पुत्री के समान मानते हैं, पर-नारी को विकार-पूर्ण दृष्टि से देखना वे लोग पाप समझते हैं। और कुछ एक व्यक्ति सर्वतः ब्रह्मचर्य की आराधना करते हैं। ऐसे व्यक्ति गृहस्थ और साधु दोनों हो सकते हैं। कुछ गृहस्थ ऐसे भी होते हैं, जो इष्ट सन्तति की उपलब्धि हो जाने के अनन्तर मैथुन का परित्याग करके ब्रह्मचर्य की परिपालना करना आरम्भ कर देते हैं। ऐसे जितेन्द्रिय व्यक्ति सपत्नीक होते हुए तथा गृहस्थ का

सब धन्धा करते हुए भी सर्वतः ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। ये लोग मनसा, वाचा, कर्मणा विकारों से दूर रहते हैं। मन में वासना को जागृत नहीं होने देते। वाणी को काम भोगों के वातावरण से सर्वथा पृथक रखते हैं और शरीर से विषयों का सेवन नहीं करते। मानसिक, वाचनिक और शारीरिक दृष्टि से ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए ये स्वयं वासना का उपभोग नहीं करते, न किसी को वासना के उपभोग की प्रेरणा देते हैं, तथा जो वासना का सेवन करते हैं न ही उनके वासना सेवन का अनुमोदन करते हैं। ऐसे लोग जहाँ स्वयं ब्रह्मचर्य के सौरभ से अपने को सुरभित रखते हैं वहाँ दूसरों को भी ब्रह्मचर्य की ज्योति से ज्योतित बना डालते हैं तथा जो लोग ब्रह्मचर्य के आलोक से आलोकित हैं उनकी महिमा के भी सदा गीत गाते रहते हैं। ऐसे नर-पुङ्गव सर्वतः ब्रह्मचारी कहलाते हैं।

प्रश्न हो सकता है कि गृहस्थजीवन में रहनेवाला सपत्नीक व्यक्ति सर्वतः ब्रह्मचारी कैसे हो सकता है? उसे अपनी पुत्री, बहिन और पत्नी का भी कई बार सुखदुःख में शरीर-स्पर्श करना पड़ता है। नारी के शरीर का स्पर्श करता हुआ व्यक्ति जब ब्रह्मचारी नहीं हो सकता तो उसका सर्वतः ब्रह्मचारी होना कैसे संभव हो सकता है? उत्तर में निवेदन है कि ब्रह्मचर्य का अर्थ—नारी के स्पर्श से बचने तक ही सीमित नहीं है। आत्मा को अशुद्ध बनानेवाले विषय विकारों एवं समस्त वासनाओं से मुक्त होना ही ब्रह्मचर्य का वास्तविक अर्थ होता है। यदि एक व्यक्ति नारी का स्पर्श नहीं करता और उससे सदा दूर रहता है, परन्तु विकारों की दलदल में सदा फंसा रहता है, दिन-रात वासना के जाल बुनता रहता है तो क्या उसे ब्रह्मचारी कह सकते है? कदापि नहीं। और किसी विशेष परिस्थिति में निर्विकार भाव से नारी का स्पर्श कर लेने मात्र से ब्रह्मचर्य की साधना खण्डित हो जाती है ऐसा समझना भी ठीक नही है क्योंकि ब्रह्मचर्य का भंग तो मन में विकारों के जागने से होता है। यदि नारी-स्पर्श निर्विकार मन से होता है तो उसका ब्रह्मचर्य भंग के साथ कोई सम्बन्ध नही रहता। एक बार महात्मागाँधी ने ब्रह्मचारी का अर्थ बतलाते हुए कहा था कि ब्रह्मचारी होने का अर्थ है—स्त्री का स्पर्श करने से मन में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न न होने देना, जिस तरह कागज का स्पर्श होने पर स्पर्शकर्ता के मन में विकार उत्पन्न नहीं होता वैसे ही नारी-स्पर्श होने पर भी मन में विकार की उत्पत्ति न होने देना। वस्तुतः मानस की निर्विकार दशा ही ब्रह्मचर्य व्रत का वास्तविक स्वरूप समझना चाहिए।

जैनशास्त्रों का परिशीलन करने से पता चलता है कि वहाँ पर आपत्ति-

काल में साधु-साध्वी को भी एक दूसरे का स्पर्श करने का विधान किया गया है। उदाहरणार्थ, साधु सरिता के प्रवाह में प्रवाहित हो रही साध्वी को अपनी भुजाओं में उठाकर बाहर निकाल सकता है असाध्य बीमारी के समय यदि अन्य साधु-साध्वी सेवा करनेवाले नहीं हैं तो साधु भ्रातृभाव से साध्वी की और साध्वी भगिनीभाव से साधु की सेवा कर सकती है। आवश्यकता होने पर एक दूसरे को उठा बैठा भी सकते हैं। इस तरह प्रत्यक्षरूपेण नारी-स्पर्श होने पर साधु का और पुरुष-स्पर्श होने पर साध्वी का ब्रह्मचर्य-व्रत भंग नहीं होने पाता। ब्रह्मचर्य-व्रत-भंग तो केवल निर्विकारता का परित्याग करने पर तथा वासना-वासित होने से ही होता है, अन्यथा नहीं।

बाल-ब्रह्मचारी—सर्वतः ब्रह्मचर्य के पालनेवाले व्यक्ति दो प्रकार के होते हैं। एक जन्म से वासना का परित्याग करके ब्रह्मचर्य के महापथ पर चल पड़ते हैं और दूसरे भुक्त-भोगी होने के अनन्तर ब्रह्मचर्यव्रत की अखण्ड साधना करना आरम्भ करते हैं। जो व्यक्ति बचपन से ही सदाचार-व्रत अंगीकार कर लेते हैं, वे किसी भी प्रकार की वासना का उपभोग नहीं करते और जीवन के अन्तिम क्षण तक निर्विकार दशा में ही अपने को अवस्थित रखते हैं, उनको बाल-ब्रह्मचारी कहा जाता है। बाल-ब्रह्मचारी को आजन्म-ब्रह्मचारी भी कहा जाता है। बाल-ब्रह्मचारी व्यक्ति मन के मन्दिर को वासना के दाग से कभी दागी नहीं होने देता अपनी श्वेत चादर की श्वेतिमा सदा सुरक्षित रखता है।

सर्वतः ब्रह्मचर्य की पालना करनेवाले दूसरे प्रकार के वे लोग होते हैं जो गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते हैं, विवाहित होकर सन्तति की उत्पत्ति करते हैं। कालान्तर में किसी सन्तजन के मार्गदर्शन से या शास्त्रों के स्वाध्याय से ज्ञान का प्रकाश प्राप्त करके सर्प की केंचुलि की तरह गृहस्थाश्रम का परित्याग कर देते हैं अथवा केवल जनकल्याण की भावना लेकर मोहमाया के बन्धनों को तोड़ देते हैं, संन्यासाश्रम में प्रविष्ट हो जाते हैं। वहाँ पर ब्रह्मचर्य की अखण्ड साधना करना आरम्भ कर देते हैं। अनेक विध संकटों के झंझावात आने पर भी ब्रह्मचर्य की जगमगाती ज्योति को निस्तेज या मन्द नहीं पड़ने देते प्रत्युत उसकी सुरक्षा करते हुए उसे अधिकाधिक तेजस्वी और ओजस्वी बनाने का प्रयास करते हैं अन्त में एक दिन केवलज्ञान की दिव्य विभूति से विभूषित होकर सर्वज्ञ और सर्वदर्शी पद प्राप्त कर लेते हैं। ऐसे महापुरुष स्वयं तो ब्रह्मचर्य की पावन ज्योति से सदा ज्योतित रहते हैं, परन्तु जो उनके सम्पर्क में आता है उसे भी ज्योतिर्मान बनाने का अनुग्रह करते रहते हैं।

अतीत के इतिहास का जब हम परिशीलन करते हैं तो हमें उसमें देशतः और सर्वतः दोनों प्रकार के ब्रह्मचारियों के दर्शन होते हैं। मर्यादापुरुषोत्तम,

भगवान राम, भगवान महावीर और महात्मा बुद्ध आदि महापुरुष जब गृहस्थाश्रम में विराजमान थे, उस समय इन्होंने देशत ब्रह्मचर्य की आराधना की थी। भगवान राम, भगवान महावीर और महात्माबुद्ध आदि महामानव गृहस्थाश्रम छोड़कर जब साधुता के सिंहासन पर आसीन हो गये तो मनसा, वाचा, कर्मणा वासना का परित्याग करके इन्होंने अखण्डरूप से ब्रह्मचर्य की आराधना की थी। ये महापुरुप देशत: ब्रह्मचर्य के महापथ की पगडण्डियाँ पार करके एक दिन सर्वत: ब्रह्मचर्य के महामन्दिर में विराजमान हो गए। इस तरह देशत: ब्रह्मचर्य के परिपालक साधकों, महापुरुपों के अनेक उदाहरण उपलब्ध होते हैं। इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है।

इतिहास ने ऐसे महापुरुपों को भी जन्म दिया है, जिन्होंने बाल्यावस्था से ही ब्रह्मचारी रहकर जीवन की अन्तिम घड़ी तक ब्रह्मचर्य की दिव्य ज्योति को कभी बुझने नहीं दिया। ऐसे महापुरुप भी अनेकानेक हो चुके हैं इनमें यतिशिरोमणि श्रेष्ठिपुत्र जम्बूकुमार का पावन नाम विशेप रूप से उल्लेखनीय है। चरित्रचूड़ामणि श्री जम्बूकुमार जी महाराज का जीवन ऐसा मंगलमय जीवन रहा है कि कुछ कहते नहीं बनता। हिन्दी साहित्यकार—"यति न जम्बू सारिखा" यह कहकर उनके चरणों में अपने श्रद्धासुमन समर्पित करते हैं। सुहाग की रात में स्वर्ग की अप्सराओं जैसी आठ सुन्दरियाँ अपने आपको इन पर निछावर कर रही हों, फिर भी उठती जवानी में उनको वासना की आँख से न देखना, प्रत्युत वहिन की दृष्टि से निहारना, ब्रह्मचर्य की भावनाओं से रत्ती भर भी अपने आपको डाँवाडोल न होने देना कितना बड़ा ऐतिहासिक आश्चर्य है? विश्व की जानी मानी अग्नि के सम्मुख घृत विना पिघले नहीं रहता इस अनुभूति को झुठलाते हुए विकारों की अग्नि के सामने अपने मानस को न पिघलने देना यतिशिरोमणि जम्बूकुमार का ही काम था।

महाभारत के भीष्म पितामह को कौन नहीं जानता? अपने पूज्य पिता की कामना को पूर्ण करने के लिए उन्होंने विवाहित न होने की जो भीष्म प्रतिज्ञा की थी उसे आजीवन सुरक्षित रखकर अपने को बालब्रह्मचारी भीष्म पितामह के रूप में प्रस्तुत करने का जो आदर्श स्थापित किया था वह सर्वथा आदरास्पद रहा है और अनागतकाल में भी आनेवाली पीढ़ियाँ उसे सदा श्रद्धास्पद मानती रहेंगी। अतीत काल के इतिहास में ऐसे अनेकों बालब्रह्मचारी महापुरुप दिखाई देते हैं जो जीवनभर ब्रह्मचर्य की आराधना और परिपालना करते रहे हैं।

परमश्रद्धेय श्री छगनलालजी महाराज

पावन जीवन-चरित्र उपलब्ध होते हैं वैसे आधुनिक इतिहास में भी ऐसे बाल-ब्रह्मचारी युगपुरुषों की जीवनियाँ सम्प्राप्त हो रही हैं जिन्होंने जीवन के अन्तिम क्षण तक सर्वतः ब्रह्मचर्य के जाज्वल्यमान महादीपक को कभी बुझने नहीं दिया और उसे सदा ही ज्योतिर्मान बनाये रखा। आज मैं पाठकों के सामने उनमें से एक बालब्रह्मचारी महापुरुष के जीवन की चर्चा करना चाहता हूँ। ये बालब्रह्मचारी महापुरुष हैं—श्री परिपूतचरण पवित्रात्मा शास्त्रविशारद स्वनाम धन्य श्री श्री श्री १००८ परमश्रद्धेय श्री छगनलालजी महाराज।

श्रद्धेय महाराज श्री एक त्यागी, वैरागी, चरित्रशील, विरक्त निस्पृह, सरल, उदार सहिष्णु, गुणवान और विद्वान मुनिराज थे, इन्होंने उठती जवानी में संसार के मोहबन्धनों को तोड़कर संयम के महापथ पर चलना आरम्भ कर दिया था, संयम साधना के कण्टीले और कठोरमार्ग पर चलकर प्रतिकूल परिस्थितियों में भी कभी इन्होंने अपने आपको डाँवाडोल होने नहीं दिया, ये हँसते-हँसते सभी प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करते रहे, विकट से विकट वातावरण में भी संयमाराधना, समाजसेवा और न्यायपथ से ये कभी विचलित नहीं होने पाये। ये अपने ध्येय की ओर ही सदा आगे बढ़ते रहे। इन पंक्तियों के लेखक को अनेकों वार इनके पावन मंगलमय दर्शन करने का अवसर सम्प्राप्त होता रहा है। फलतः इनके जीवनशास्त्र को अन्दर और बाहिर से पढ़ने का सौभाग्य अधिगत रहा है। इसी कारण बिना किसी झिझक के मैं कह सकता हूँ कि इनका अन्तरंग और बहिरंग दोनों संयमभावना के रंग से रंगा हुआ था, सजावट या बनावट में इनको कोई रस नहीं था, ये आचार सम्पदा को ही अधिक महत्व दिया करते थे। संयम मर्यादा को सुदृढ़ बनाने की ओर ही इनका अधिक ध्यान था, पास में बैठने वालों को भी संयम साधना, त्याग-वैराग्य जप, तप तथा विरक्ति का मंगलमय उपदेश दिया करते थे।

सर्वप्रथम इनके दर्शन करने का अवसर मुझे लुधियाना में उपलब्ध हुआ था। लुधियाना में ये जैनधर्म दिवाकर, साहित्यरत्न, जैनागम रत्नाकर श्रीवर्धमान स्थानकवासी श्रमणसंघ के आचार्यसम्राट परमश्रद्धेय गुरुदेव पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज के दर्शनार्थ पधारे थे। उसी समय से मेरे हृदय पर इनके आध्यात्मिक जीवन की गहरी छाप चल रही है। मुझे अच्छी तरह याद है कि इनके मस्तक पर संयम-साधना का अपूर्व तेज अठखेलियाँ कर रहा था, इनकी वाणी में निराला माधुर्य था, विलक्षण सरसता थी, प्रेरणा थी, जनता जनार्दन को आकृष्ट करने की विचित्र क्षमता थी। व्याख्यान फरमाते थे तो शास्त्रीय तथ्यों को इतनी स्पष्टता और निर्भीकता के साथ जनता के

सम्मुख उपस्थित करते थे कि श्रोताजन बरबस आकृष्ट होकर नतमस्तक हो जाते थे ।

जीवन के अन्तिम दिनों में ये खन्ना (लुधियाना) विराजमान थे, उस समय दो-दो सप्ताह इन चरणों में अनेकों बार रहने का अवसर मिला था। इनकी बड़ी दयादृष्टि रही, काफी निकट आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मुझे ऐसा अनुभव होने लगा कि मैं इनके कृपा पात्रों में से एक हूँ। एक दिन इनके मुखारविन्द से निकले "ज्ञानमुनि ! तुम्हारे मन में जो भी प्रष्टव्य हो, निःसंकोच पूछो, परोक्ष में कोई बात पूछनी हो, पत्र द्वारा सूचित करने पर उसका समाधान तुम्हें प्राप्त हो ऐसा प्रयत्न किया जायेगा—महाराज श्री के ये कृपापूर्ण शब्द सुनकर मेरा हृदय आनन्द विभोर हो उठा। सचमुच मुझे उस समय अपने परमश्रद्धेय गुरुदेव जैनधर्मदिवाकर साहित्यरत्न, जैनागमरत्नाकर आचार्य सम्राट वन्दनीय पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज के कृपा क्षण स्मरण हो आये। महाराज श्री की उदारता और कृपालुता के आगे मैं तत्काल नतमस्तक हो गया। इस महापुरुष का मुझ जैसे साधारण से सन्त पर जो अनुग्रह और दयाभाव रहा, इसका मुझे आज भी गौरव है, स्वाभिमान है।

श्रद्धा के केन्द्र, शास्त्रविशारद, महामान्य श्री छगनलाल जी महाराज के जीवन-चरित्र लिखने की चर्चा भक्तजनों में हो रही थी। मेरे सामने भी यह प्रसंग आया और मुझे सहयोग देने के लिए जब कहा गया तो मैंने तत्काल अपनी भावना व्यक्त करते हुए कहा कि महाराज श्री छगनलाल जी महाराज मेरे अपने श्रद्धास्पद महापुरुष थे, इनकी मुझ पर भी विशेष कृपादृष्टि रही है, अतः सहयोग की क्या बात है ? उनका जीवन-चरित्र ही स्वयं लिख दूँगा। मैंने अपनी बात चालू रखते हुए पुनः कहा—वैसे तो मैं उनकी कोई विशेष सेवा कर नहीं सका, परन्तु जीवन-चरित्र लिखने की व्याज से यह सेवा कार्य भी कुछ न कुछ सम्पन्न हो जायेगा।

यह सत्य है कि किसी अध्यात्म महापुरुष का गुणानुवाद करना और उसके जीवनगत तथ्यों को भाषा के वस्त्र पहनाकर जनता के सम्मुख रखना मेरी क्षमता का विषय नहीं है तथापि आचार्यप्रवर मानतुंग के स्वर के साथ स्वर मिलाकर यदि अपने मन की बात कहूँ तो कह सकता हूँ—

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम,
त्वद् भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम्।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति,
तच्चाम्र चारुकलिका निकरैकहेतुः ॥

प्रभो ! मैं अल्पज्ञ हूँ, विद्वानों की हँसी का पात्र हूँ, भला मैं आपकी स्तुति करना क्या जानूँ ? परन्तु क्या करूँ आपकी भक्ति ही मुझे जबर्दस्ती स्तुति करने के लिए मुखर-वाचाल बना रही है। कोयल दूसरी ऋतुओं में इतना अच्छा नहीं बोलती, जितना बसन्त के आने पर बोलती है। कोयल बसन्त के आने पर जो इतना मधुर कूजन करती है, इसका एक मात्र कारण आम की मनोहर कलिकाओं का समूह ही होता है।

आचार्य मानतुंग के कहने का अभिप्राय यह है कि वसन्त में आम पर लगे बौर को देखकर और उसे खाकर कोयल का चिरकाल से रुंधा कंण्ठ अपने आप माधुर्य की वर्षा करने लगता है, इसी तरह हे प्रभो ! मुझे भी आपकी दिव्य भक्ति का रसास्वादन अपने आप बोलने के लिये लालायित कर रहा है, मुझे आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि आपकी भक्ति ही नीरस वाणी में सरसता का संचार कर डालेगी।

परमश्रद्धेय श्री छगनलाल जी महाराज बहुत प्राभाविक महापुरुष थे, इनका आध्यात्मिक व्यक्तित्व सर्वत्र आदरणीय एवं समादरणीय अनुभव किया जा रहा था। इनके जीवन को यदि एक प्रकाशस्तम्भ कहें तो अधिक उपयुक्त लगता है। इनके पास जन-जन के अन्तर्गत को अहिंसा, सत्य, संयम, तप, त्याग-वैराग्य और प्रभु स्मरण आदि के प्रकाश से प्रकाशमान बनाने की बड़ी विलक्षण कला अवस्थित थी। इसीकारण इनके जीवन-चरित्र की अपनी निराली उपयोगिता है। मेरा विश्वास है कि इनका जीवनशास्त्र विश्वसाहित्य की एक अनमोल सम्पत्ति प्रमाणित होगा।

महामना, स्वनामधन्य श्री छगनलाल जी महाराज कहाँ पर पैदा हुए ? इन्होंने जन्म लेकर किस भू-भाग को पावन बनाया ? माता, पिता होने का सौभाग्य किस दम्पत्ति को उपलब्ध हुआ ? शैशव की पगडण्डियों को पार करते हुए किन परिस्थितियों में ये संयमसाधना के महापथ के पथिक बने ? किस ज्ञानालोक की छाया तले बैठकर इन्हें अपने अन्तर्जगत को आलोकित करने का सुअवसर सम्प्राप्त हुआ ? धर्मदिवाकर बनकर इस महापुरुष ने कहाँ-कहाँ ज्ञान का प्रकाश फैलाया ? इस की छत्रछाया तले किस-किस ने अपने जीवन का निर्माण किया और कौन-कौन द्विपद पशु मानवता साधुता और सच्चरित्रता की अमर विभूति से मालामाल हुआ ? आदि सभी बातों का अग्रिम पृष्ठों पर चिन्तन करने का प्रयास किया जायेगा।

जन्म और बाल्यकाल

जोधपुर राज्य—इतिहास के विद्यार्थी इस सत्य को अच्छी तरह जानते हैं कि भारतवर्ष ई० सन् १९४७ में अंग्रेजों की दासता से उन्मुक्त हुआ है। अंग्रेजों के इस विदेशी साम्राज्य ने भारत देश को आर्थिक राजनैतिक और सामाजिक दृष्टि से जो-जो हानियाँ पहुँचाई हैं वे किसी से अज्ञात नहीं हैं। इसके अतिरिक्त अंग्रेजों की कूटनीति ने देश को इतने अधिक भागों में बाँट दिया था कि इसके एकीकरण का किसी को स्वप्न में भी ध्यान नहीं आ सकता था। ब्रिटिश राज्य के प्रान्तों को छोड़कर सैकड़ों देशी रियासतें थीं जो आन्तरिक शासन में स्वतन्त्र थीं। यह भारतवासियों का सौभाग्य था कि भारत के लौहपुरुष देशभक्त स्वर्गीय सरदार वल्लभ भाई पटेल ने उन रियासतों का विलीनीकरण करके भारत की सखण्डता को अखण्डता के रूप में परिवर्तित करके एक ऐतिहासिक और दुसाध्य कार्य अपने बुद्धिकौशल से सम्पन्न किया तथा भारतीय स्वतन्त्रता को यथार्थ रूप देकर उसके गौरव को सुरक्षित रखा।

उस समय की भारतीय रियासतों का जब हम अध्ययन करते हैं तो मालूम होता है कि अकेले राजस्थान या राजपूताने या भारत के मरुस्थलीय प्रान्त में छोटी-बड़ी रियासतों, राज्यों या रजवाड़ों की संख्या २२ थी, इनमें जोधपुर का राज्य बड़ी रियासतों में गिना जा सकता था। यहाँ के राजा राठौर वंशी थे। राठौर राजस्थान का एक प्रसिद्ध राज-वंश माना गया है। इसी वंश के वंशज जोधपुर-राज्य के शासक रहे हैं। यह राज्य समृद्ध भी रहा है, सुशासित भी और ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण भी समझा गया है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि यह सभी ऋतुओं में सुहावना और लुभावना प्रसिद्ध रहा है। इस सम्बन्ध में राजस्थान में एक लोकोक्ति (कहावत) यत्र तत्र सर्वत्र सुनने को मिलती है—

सियालं तो खाटू भलो, ऊनाले अजमेर।
जोधाणो नितरो भलो, सावण बीकानेर॥

सर्दी (जाड़े का मौसम) में खाटू-नागौर, गरमी (ग्रीष्म ऋतु) में अजमेर श्रावण में बीकानेर और सब ऋतुओं में जोधपुर राज्य अच्छा माना जाता है।

पावन जन्मभूमि—जोधपुर राज्य के अनेकों उपनगर हैं, इनमें से एक उपनगर का नाम पर्वतसर है। पर्वतसर नामक उपनगर के निकट पपिलाद नाम का एक छोटा सा गाँव है। इसमें अधिकतया जाट लोग रहते थे। पश्चिमी उत्तर प्रदेश, पंजाब और राजपूताना आदि में बसने वाली एक हिन्दू जाति जाट कहलाती है। इस जाति के लोग प्रायः कृषि-कर्म के द्वारा ही अपनी आजीविका चलाते हैं। पपिलाद गाँव में अधिकतया इन जाट लोगों की ही प्रभुत्व था।

पपिलाद गाँव की पुण्यभूमि जहाँ अन्य अनेकों विशेषताओं का भण्डार रही है वहाँ उसे अध्यात्म हीरों की जन्मदात्री होने का भी सौभाग्य प्राप्त रहा है। अथवा यूं कहें कि इसने संसार के प्राणियों को त्याग, वैराग्य, अहिंसा, सत्य आदि जीवन तत्वों का मंगलमय पाठ पढ़ाने वाले महापुरुषों की जननी बनने का भी श्रेय उपलब्ध किया है। इस पवित्र भूमि ने जिन-जिन अध्यात्म हीरों को जन्म देकर अपने को पुण्यशालिनी बनाया है उन सभी हीरों की बात करने लगें तो बहुत समय चाहिए, ग्रन्थगौरव का भय है और ऐसा होना कठिन भी है, अतः सभी की बात न करके केवल एक हीरे का परिचय कराने का प्रयास किया जायगा। वह है—परमश्रद्धेय, महामहिम श्री छगनलाल जी महाराज। यह वह हीरा है जो पपिलाद गाँव के एक जाट परिवार में पैदा हुआ, जिसने गाँव के एक साधारण से परिवार में जन्म लेकर अहिंसा, संयम और तप की विलक्षण, चमचमाती ज्योति से मानवी जगत को चकाचौंध कर डाला, जो जीवन की प्रत्येक दिशा में अज्ञानता, पापाचार के अन्धकार से, जीवन भर लड़ता रहा, और जिसका जीवन चलता फिरता एक अध्यात्म शास्त्र है, जिसके प्रत्येक पृष्ठ की प्रत्येक पंक्ति का प्रत्येक अक्षर प्रकाशस्तम्भ बनकर मनुष्यजगत के भविष्य को समुज्ज्वल बनाने की पूर्ण क्षमता रखता है।

यह सत्य है कि पपिलाद गाँव जनसंख्या की दृष्टि से बहुत बड़ा गाँव नहीं था, परन्तु गाँव की महत्ता का मूल कारण केवल जनसंख्या की अधिकता ही नहीं होता। यदि गाँव के लोग सदाचारी हैं प्रभुभक्त हैं एक-दूसरे से अनुराग रखने वाले हैं एक-दूसरे से लड़ते झगड़ते नहीं हैं एक-दूसरे के सुख-दुःख का पूर्णतया ध्यान रखते हैं, भ्रातृ-भाव के साथ अपना जीवन व्यतीत करते हैं। आध्यात्मिकता की छाया नीचे जीवन-यात्रा सम्पन्न करते हैं तो वह गाँव आचार-विचार की दृष्टि से बड़ा ही माना जाता है। हर्ष की बात है कि पपिलाद गाँव में उक्त सब सारी विशेषताएँ उपलब्ध होती थीं। इसीलिए पार्श्ववर्ती गाँव पपिलाद गाँव को बड़े आदर और सम्मान से देखते थे।

जन्म संवत् १६४६—आज से ८३ वर्ष से पहले विक्रम संवत् १६४६ चल रहा था। यह सम्वत् भी बड़ा सौभाग्यशाली सम्वत् रहा है। सम्वत् तो अनेकों होते हैं, किन्तु सभी सम्वत् आदरणीय, समादरणीय, श्रद्धास्पद या लोकप्रिय नहीं होते। ऐतिहासिक दृष्टि से वही सम्वत् सम्माननीय माना जाता है जो जगती के किसी आध्यात्मिक, राष्ट्रीय महापुरुष से अपना सम्बन्ध जोड़ लेता है, किसी वन्दनीय महापुरुष का जन्मदाता होने का श्रेय उपलब्ध करता है। व्यवहार इस सत्य का गवाह है, किसी भी महापुरुष के जीवन चरित्र का जब परिशीलन किया जाता है, तब सर्वप्रथम ये महापुरुष कौन-से सम्वत् में पैदा हुए थे ? इस जिज्ञासा की पूर्ति के लिये आँखें जन्म सम्वत् को ढूँढना आरम्भ कर देती हैं। जैसे भक्त राज कबीर के—

"बलिहारी गुरु आपने, जिन गोविन्द दियो बताय"[1]

इन शब्दों के अनुसार भगवान से पहले गुरु का स्थान रहता है, वैसे प्रत्येक जीवन-चरित्र में चरित्रनायक के जीवन से सम्बन्धित अन्य घटनाओं के वृत्तांत जानने से पूर्व उसका जन्म सम्वत् जानना आवश्यक होता है। मैं कह रहा था कि सम्वत १६४६ भी बड़ा आदरणीय और स्मरणीय सम्वत् माना गया है, क्योंकि हमारे परम समादरणीय सन्तहृदय महामहिम मुनिराज श्रद्धेय श्री छगनलाल जी महाराज को जन्म देने का सौभाग्य इसी सम्वत् ने श्रावण शुक्ला पंचदशी के शुभ दिन उपलब्ध किया था जब तक विश्व में सन्तों की परम्परा चलती रहेगी तब तक यह सम्वत् भी सदा आस्था और श्रद्धा से स्मरण किया जाता रहेगा।

चौधरी तेजाराम—लगभग सौ वर्ष की पुरानी बात है कि पपिलाद गाँव में एक जाट निवास करता था उसका नाम तेजाराम था। गाँव के लोग उसे चौधरी कह कर पुकारा करते थे। चौधरी तेजाराम, सत्यवादी, ईमानदार, प्रतिष्ठित, कुशल किसान थे, सन्तों के भक्त श्रद्धालु और आचरणशील व्यक्ति थे। जीवन का अधिक झुकाव साधु-सन्तों की सेवा और प्रभु भजन की ओर था। अपने कृषिकर्म से जब भी कभी निवृत्त होते तो भोजनादि आवश्यक क्रियाकलाप करते और फिर साधुओं के चरणों में उपस्थित होकर उनकी भक्तिपूर्ण धार्मिक बातों का श्रवण करते। माँसाहार, मदिरापान, परस्त्रीगमन आदि कुव्यसनों से इनको बचपन से ही घृणा थी, लड़ना तो मानो जानते ही

---

[1] सम्पूर्ण दोहा इस प्रकार है—

गुरु गोविंद दोनों खड़े, किसके लागूं पाय।
बलिहारी गुरु आपने, जिन गोविंद दियो बताय॥

नहीं थे। यदि विवादपूर्ण कोई प्रसंग उपस्थित होता तो स्वयं पीछे हटकर क्लेश को समाप्त कर देते। इनकी आर्थिक स्थिति अच्छी थी। कृषिकर्म करने के लिए पास में पर्याप्त जमीन थी। बैलों की कई जोड़ियाँ थीं। एक अच्छे सम्पन्न किसान के पास जो सामग्री होनी आवश्यक होती है उसकी इनको पूर्णतया सुविधा प्राप्त थी। रुपए पैसे की दृष्टि से भी ये ठीक-ठीक ही थे। घर में धन के अंबार (ढेर) भी नहीं थे और न ही धन की ऐसी स्वल्पना थी कि इन्हें किसी समय परेशान होना पड़े। आर्थिक दृष्टि से ये पूर्ण सन्तुष्ट थे। अपनी दस नाखूनों की कमाई में ही सदा मस्त रहा करते थे। गाँव वाले प्रत्येक दृष्टि से इनको आदरास्पद मानते थे। हमारे मान्य चरित्ननायक वन्दनीय श्री स्वामी छगनलाल जी महाराज के पूज्यपिता होने का सौभाग्य इन्हीं चौधरी तेजाराम जी को प्राप्त हुआ था। त्याग, वैराग्य, सरलता की सजीव मूर्ति महाराज श्री के पिता बनने का श्रेय जन्म-जन्मान्तर के किसी पिछले पुण्यकर्म का ही फल हो सकता है। चौधरी तेजाराम जी इस दृष्टि से बड़े भाग्यशाली व्यक्ति थे।

माता यमुना देवी—महामान्य श्री स्वामी छगनलाल जी महाराज की जननी होने का श्रेय माता यमुनादेवी को उपलब्ध हो रहा था। माता यमुना देवी आकृति और प्रकृति दोनों से भव्य थीं, सुन्दर थीं। मन में सात्विकता थी, दयाशीलता थी, वाणी में माधुर्य था, मिश्री जैसा मिठास था, चेहरा बिल्कुल हंसमुख और स्वभाव मधुर, कोमल एवं मिलनसार था। ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य, निन्दा, चुगली और गाली-गलौज से ये सदा दूर रहती थीं। किसी की निन्दा करना, चुगली खाना तो इनको बहुत बुरा लगता था। मुहल्ले की नारियों को विशेष रूप से यह कहा करती थीं कि निन्दा करना दूसरों के दोषों की गन्दगी को उठा कर अपने मस्तिष्क में इकट्ठा करना है। निन्दक और भंगी इन दोनों की यदि तुलना करने लगें तो निन्दक की अपेक्षा भंगी का स्थान ऊँचा रहता है। भंगी यदि किसी के यहाँ से गन्दगी उठाता है तो वह गन्दे स्थान को साफ-सुथरा बनाने के विचार से ऐसा करता है, परन्तु निन्दक दूसरों के दोषों की गन्दगी उठाता है तो उनको अपमानित, लज्जित और बदनाम करने की भावना से ही उठाता है। भंगी की भाँति निन्दक की विचारणा श्रेष्ठ नहीं होती। अतः निन्दक को कभी भी अच्छा नहीं समझना चाहिए, इस तरह माता यमुनादेवी को जब भी कभी अवसर मिलता तो अपनी ग्रामीण बहिनों का मार्ग दर्शन करतीं और लड़ाई-झगड़ा, निन्दा-चुगली आदि नारी-सुलभ दुर्गुणों से उन्हें निवृत्त करने का ही प्रयास करतीं।

माता यमुनादेवी पढ़ी-लिखी तो नहीं थीं, परन्तु सत्संग में जाने का,

वहाँ पर जाकर साधु-मुनिराजों के धार्मिक प्रवचन सुनने का इनको बड़ा ध्यान था। सत्संग में बैठने पर ये घर का सब वातावरण अपने मस्तिष्क से निकाल देती थीं मीरा की तरह सत्संग में झूमने लगती थीं। देखा गया है कि कुछ देवियाँ सत्संग में जाती हैं, व्याख्याता व्याख्यान दे रहा होता है, परन्तु वे आपस में घरगृहस्थी की बातें ही करती रहती हैं, न स्वयं कुछ श्रवण करती हैं और न ही किसी दूसरे को श्रवण करने देती हैं। ऐसी देवियाँ सत्संग या धर्मकथा में जाकर धर्म-लाभ के स्थान पर अधर्म-लाभ प्राप्त कर लेती हैं। व्याख्याता के लिए व्याख्यान भवन की मर्यादा को सुरक्षित रखने के जैसे कुछ विधिविधान शास्त्रकारों ने बतलाए हैं वैसे व्याख्यान श्रवण करने वाले श्रोता-जनों के लिए भी कुछ विधिविधान प्रतिपादित किए हैं। व्याख्याता जैसे अपने प्रतिपाद्य विषय का ध्यान रक्खे, हितकारिणी और कल्याणकारिणी भाषा का प्रयोग करे, किसी को अप्रिय और क्लेपोत्पादक वचन न कहे" आदि बातों का पूरा-पूरा ध्यान रखता है, वैसे श्रोता को भी चाहिए कि व्याख्यान-भवन में प्रवेश करने पर श्रद्धा और विनीतता से अपना स्थान ग्रहण करे, मौन रह कर ध्यानपूर्वक व्याख्यान का श्रवण करे, इधर-उधर दृष्टि-विक्षेप न करता हुआ वक्ता की ओर ही अपनी दृष्टि रक्खे। श्रोता के इस विधिविधान को बहुत थोड़े व्यक्ति ही जीवनाङ्गी बनाते हैं, अधिक तो प्रायः केवल समय व्यतीत करने या किसी सुन्दर आकृति को देखने के लिए ही आते दिखाई देते हैं। नारी-जगत में तो उक्त विधिविधान की विशेष रूप से उपेक्षा पाई जाती है। सत्संग में बैठकर बहिनें ऐसे बातें करती देखी जाती हैं जैसे बहुत देर से रक्खे हुए मौनव्रत का वे पारणा कर रही हैं। परन्तु माता यमुनादेवी इस दृष्टि से बहुत सुलझी हुई थीं। जब ये किसी व्याख्यान-सभा या किसी सत्संग-मंडप में जातीं तो वहाँ की मर्यादा का पूरा-पूरा ध्यान रखतीं। तल्लीनता और तन्मयता के साथ व्याख्याता के व्याख्यान का श्रवण करतीं। कभी-कभी तो ये आनन्दविभोर होकर अन्तर्लीन हो जाती थीं। व्याख्यान के समय स्वयं तो क्या बोलना था, किसी दूसरे को भी बात करने नहीं देती थीं। इसके अलावा व्याख्यान में जो शिक्षाओं का प्रकाश प्राप्त होता उससे अपने अन्तर्जगत को प्रकाशमान बनाने का पूर्णतया प्रयत्न करतीं। इस तरह माता यमुनादेवी धार्मिकता की दृष्टि से पपिलाद गाँव की नारियों में एक आदर्श नारी समझी जाती थीं।

माता यमुनादेवी धन्य हैं, जिनको राजपुताने के जाने-माने एक धर्मकेसरी पूज्यपाद श्री स्वामी छगनलाल जी महाराज जैसा तेजस्वी और वर्चस्वी पुत्र-रत्न प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। साधना स्रोत ऐसे दिव्य पुरुष की जननी बनने का सौभाग्य प्रत्येक नारी सम्प्राप्त नहीं कर सकती।

गृहस्थाश्रम और स्वर्ग—कहा जा चुका है पपिलाद गाँव में चौधरी तेजाराम जी निवास करते थे। खेती-बाड़ी करना ही इनकी अजीविका थी। इनकी धर्मपत्नी का नाम श्रीमती यमुनादेवी था। पतिपत्नी दोनों ही सदाचारी और धार्मिक विचारों के थे। सात्विकता और सुशीलता के महापथ पर दोनों ही मस्ती से जीवन-यात्रा सम्पन्न कर रहे थे। पत्नी पतिव्रता हो, सती साध्वी, सुशीला हो, पति की आज्ञाकारिणी और हितकारिणी हो, साथ में पतिदेव भी पत्नीव्रत, सुशील, लज्जाशील तथा गृहस्थ धर्म की परिपालना में पूर्णतया सतर्क हों तो गृहस्थ जीवन स्वर्ग-तुल्य बन जाता है अन्यथा जीवन में नीरसता का ही साम्राज्य होता दिखाई देता है। व्यक्ति के पास अर्थ सम्पदा चाहे कितनी भी अधिक हो, दुकान, मकान आदि अचलसम्पत्ति(जायदाद) चाहे पर्याप्त हो, समाज में मान-प्रतिष्ठा भी चाहे बढ़ी-चढ़ी हो परन्तु यदि पारिवारिक जीवन अस्वस्थ है, पतिपत्नी में क्लेश और आपसी मनोमालिन्य जोर पकड़ता जा रहा है तो सब कुछ होते हुए भी वह दरिद्र-तुल्य हो जाता है, जीवन की सब शान्ति समाप्त हो जाती है। अशान्त वातावरण से स्वर्गसमान घर भी नरक-सदृश दिखाई देता है। वस्तुतः जीवन को सुखी बनाने के लिए आपसी प्यार और आपसी मेल-जोल जैसी अन्य कोई वस्तु नहीं है। गृहस्थाश्रम को स्वर्ग बनाने वाली शक्ति यदि कोई संसार में है तो वह आपसी प्रेम ही है। प्रेम ही संजीवनी बूटी है, यही गृहस्थ जीवन की समस्याओं को समाहित कर सकती है। प्रेम के प्रकाश में ही क्लेशान्धकार समाप्त होता है। जीवनशास्त्र के इस सत्य को चौधरी तेजाराम और माता यमुनादेवी ये दोनों खूब अच्छी तरह जानते थे इसीलिए वैमनस्य या मनमुटाव को कभी निकट नहीं आने देते थे, प्रत्युत प्रेम की साकार प्रतिमा बनकर, जीवन के रथ को मस्ती से चला रहे थे।

कर्मों के खेल—कर्मशास्त्र का गम्भीरता के साथ जब हम परिशीलन करते हैं तो पता चलता है कि कर्म के शुभ और अशुभ ये दो प्रकार होते हैं। शुभ कर्म को पुण्य और अशुभ कर्म को पाप कहते हैं। पुण्य सुख का और पाप दुःख का मूल कारण माना जाता है। जगती में अच्छे या बुरे जितने भी दृश्य आँखों के सामने आते हैं, ये सब कर्मों के ही खेल होते हैं। इन खेलों का कुछ पता नहीं चलता जब जीवन में अशुभकर्मों का प्रकोप चलता है तो ऐसे-ऐसे दृश्य देखने को मिलते हैं कि जिनका कभी स्वप्न में भी विचार नहीं आ सकता। साधारण मनुष्य की तो बात क्या है, ऋषि-मुनि भी यहाँ मस्तक धुनते हुए दिखाई देते हैं। सम्भव है इसीलिए कवि की अन्तर्वीणा झंकृत हो उठती है—

करमों के खेल तो न्यारे हैं।[1]
ऋषिमुनि भी इनसे हारे हैं॥
जब पाप कर्म छा जाता है, तब सबके होश भुलाता है।
सब होते नष्ट सहारे हैं—
इक कर्म ही नाच नचाता है, दर-दर की भीख मँगाता है।
नहीं छोड़ता राजदुलारे हैं—
शूली पर यही चढ़ाता है, कोल्हू में यह पिलवाता है।
बचते न करम के मारे हैं—
जो रिश्तेदार हमारे हैं, जो जान से हमको प्यारे हैं।
वे भी बनते हत्यारे हैं—
कभी चिन्ता कभी बीमारी है, जीना भी होता भारी है।
कर्मों के ही ये नजारे हैं—
ब्रह्मा हो चाहे शंकर हो "मुनि ज्ञान" भले तीर्थंकर हो।
करमों ने घेरे सारे हैं—

जीवन-शास्त्र का अध्ययन करने पर उक्त तथ्य को जानने में जरा भी देरी नहीं लगती। वस्तु स्थिति भी यही है कि कर्मों के खेलों का पार नहीं पाया जा सकता। इसीलिए जीवन में सभी दिन समान नहीं होते। कभी अनुकूल वातावरण मिल जाता है तो कभी प्रतिकूलता भूचाल ले आती है। अथवा यूँ कहें कि कभी पुण्य का देवता सन्तुष्ट होता है तो कभी पाप का दानव रुष्ट होता हुआ दृष्टिगोचर होता है। जब पुण्य का देवता अपना वरदहस्त जीव के सिर पर रख देता है तो उस समय सुख, ऐश्वर्य, वैभव, आनन्द और प्रत्येक दृष्टि से शान्ति हो कान्ति उपलब्धि होती है, जीवन में एक नूतन स्फूर्ति, एक भव्य चेतना अङ्गड़ाई लेने लगती है सर्वत्र सम्मान संप्राप्त होता है, जिधर उनके कदम टिकते हैं लोग उनके आगे अपनी पलकें तक बिछा देते हैं, शत्रु भी मित्र बनते दिखाई देते हैं, उनको विरोधी और प्रतिद्वन्द्वी भी अभिनन्दन पत्र समर्पित करके अपने भाग्य की सराहना करते नहीं थकते, लक्ष्मी उनके आगे-पीछे फिरती है, न चाहने पर भी जनता-जनार्दन उनको इष्ट वस्तुएँ भेंट करता है। पुण्य के कारण उनके अवगुण लोगों को गुण मालूम होते हैं। बुढ़ापे में जवानी के दर्शन पुण्य की अनुकूलता का ही प्रताप होता है, इसी के प्रभाव से मिट्टी स्वर्ण का रूप धारण कर लेती है। इसके विपरीत जीवन नभ पर जब पाप कर्म के काले-काले मेघ मँडराने लगते हैं तो बना बनाया खेल बिगड़ जाता है, अमृत विष बनता है, मित्र शत्रु और अपना

---

१. ध्वनि—"जय बोलो वीर स्वामी की :"

बेगाना हो जाता है, सुख-सुविधाएँ विनष्ट होने लगती हैं, जीवन का सब मान-सम्मान, पूजा, प्रतिष्ठा, उत्साह साहस और शौर्य्य निस्तेज पड़ता दिखाई देता है, स्वर्ण भी माटी का रूप धारण कर लेता है, अधिक क्या, जीवन का उपवन पतझड़ के प्रहारों से बुरी तरह आक्रान्त हो जाता है। इस तरह जीवन-क्षेत्र में अनुकूल और प्रतिकूल जितने भी घटना-वृत्त हैं, ये सब पुण्य और पाप के ही खेल या चमत्कार ही समझे जाते हैं।

मादूसिंह—चौधरी तेजाराम जी के जीवन-क्षेत्र में पुण्य और पाप इन दोनों के खेल दृष्टिगोचर हो रहे थे। पहले बताया जा चुका है कि चौधरी तेजाराम पुण्यकर्म-देव के प्रभाव से सब तरह सम्पन्न और सानन्द थे। एक सद्‌गृहस्थ के पास जो सुख-सुविधा होनी चाहिए वह सब इन्हें सम्प्राप्त हो रही थी। खेत अनाज की वर्षा कर रहे थे, गाय भैंसें दूध के घड़े कभी खाली नहीं होने देती थीं। इस तरह पुण्य देवता के अनुग्रह से सब तरह आनन्द मंगल था, परन्तु चौधरी तेजाराम जी एक अभाव के कारण विक्षुब्ध भी रहते थे, इनके सन्तान कोई नहीं थी, इस अभाव को ये अपने पूर्वजन्म में कृत किसी पाप का परिणाम समझते थे तथापि चौधरी साहिब को सन्तति की कमी अखरती रहती थी, कभी-कभी सन्तान के अभाव से भविष्य अन्धकारपूर्ण दिखाई देने लगता और इस कारण मन अवश्य बोझिल हो जाता। तथापि धैर्य और शान्ति को कभी हाथ से जाने नहीं देते थे। अपनी अर्धाङ्गिनी यमुनादेवी को सान्त्वना प्रदान किया करते थे, यमुना देवी का मानस तो यमुना की लहरों के प्रवाह की भाँति पहले ही सदा निश्चिन्तता और निरुद्विग्नता के प्रवाह में सदा प्रवाहित रहा करता था, सन्तति के अभाव से इन्होंने अपने मन को कभी प्रभावित नहीं होने दिया। साधु मुनिराजों के अध्यात्म प्रवचनों के आलोक ने इनके अन्तर्जगत को इतना अधिक आलोकित कर रक्खा था कि ये जीवन की अच्छी-बुरी सभी स्थितियों में अपने मस्तिष्क को सदा स्वस्थ रखती थीं। ये निराशा और हताशा से बहुत ऊपर उठ चुकी थीं।

व्यवहार-जगत में देखा गया है कि जब पुण्य उदय में आता है पुण्य का देवता प्रमुदित और अनुकूल होता है तो जीवनवृक्ष पर वसन्त का प्रादुर्भाव होना आरम्भ हो जाता है, व्यक्ति की प्रत्येक चिरन्तन और अपूर्ण कामना भी मूर्तरूप धारण करती दिखाई देती है, पुण्य की कृपा से मनचाही हर वस्तु हाथ आती है। यह पुण्य का ही विलक्षण और अद्‌भुत चमत्कार होता है कि इच्छा एक वस्तु की होती है, परन्तु प्राप्त होती हैं अनेक। यह सत्य चौधरी तेजाराम के जीवन में पूर्णतया चरितार्थ हो रहा था। पीछे बताया जा चुका है कि सन्तान का सर्वथा अभाव होने के कारण चौधरी तेजाराम जी का

धन की ही अपनी विशिष्टता है। इसके अतिरिक्त जीवन में मकान, दुकान, उपवन, दास-दासी आदि जितनी भी सुख-सुविधाएँ दृष्टिगोचर होती हैं वे सब भी धन के प्रताप से ही उपलब्ध होती हैं। इसीलिए अपने पूर्वपुरुषों ने धन को निधि बतलाया है।

५—धान्यनिधि—गेहूँ आदि सभी पदार्थ धान्य कहलाते हैं। धान्य प्राण-रक्षक होते हैं। धान्य कहो या अनाज एक ही बात है। उपनिषत्कारों ने **"अन्नं वै प्राणः"**[१] यह कहकर अनाज की सर्वाधिक उपयोगिता को बिना किसी झिझक के स्वीकार किया है। पंजाबीभाषा में एक बड़ी सुन्दर लोकोक्ति सुनने में आती है—'जिदी कोठी च दाने, ओदे कमले वी स्याने।' भाव यह है कि जिस व्यक्ति के पास दाने हैं, अनाज की राशि है, वह व्यक्ति स्वयं तो विचक्षण बनता ही है, परन्तु यदि उसके बच्चे नादान हैं, साधारण हैं, मूर्ख हैं, तो वे भी स्याने-समझ वाले बनते दिखाई देते हैं। अनाज की इसी उपादेयता और उपयोगिता को ध्यान में रखकर हमारे सम्मानास्पद सूत्रकार ने धान्य को एक प्रकार की निधि कहा है।

निधि के उक्त पञ्चविध प्रकारों में पहला स्थान पुत्रनिधि का है। पुत्र भी सभी एक समान नहीं होते, कोई भाग्यशाली होता है तो कोई दुर्भाग्य की साकार प्रतिमा होता है। इतिहास इस सत्य का गवाह है। जैन-धर्म के सोलहवें तीर्थंकर भगवान शान्तिनाथ जब हस्तिनापुर के राजा विश्वसेन की रानी अचिरादेवी की पवित्र कुक्षि में अवतरित हुए थे तो देश में सर्वत्र फैले हुए भयंकर मृगी रोग की महामारी शान्त हो गई थी। चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर जब माता त्रिशलादेवी के गर्भ में पधारे थे तब भगवान के पिता महाराज सिद्धार्थ के राज्य में धन-जन की सर्वतोमुखी वृद्धि होने लगी थी, अड़ौसी-पड़ौसी राजा लोग भी नरेश सिद्धार्थ की दासता स्वीकार करने लगे थे और वे जिस काम में हाथ डालते थे, वह निर्विघ्न सम्पन्न होता था। भगवान शान्तिनाथ और भगवान महावीर ऐसे भाग्यशाली और पुण्यात्मा पुत्र थे कि जिनके शुभागमन ने अपने पुण्यरूप चमत्कार दिखाकर देश का सोया भाग्य जगा दिया था। परन्तु चम्पानगरी के अधिपति महाराजा कणिक भी एक पुत्र थे, जिन्होंने अपने पूज्य पिता की जीवन की जड़ें हिलादी थीं। जब ये माता के गर्भ में आए थे तो माता को पति के कलेजे का मांस खाने का

---

[१] अन्न ही प्राण होते हैं

में बैठने वाले वयोवृद्ध लोग बरबस कहने लग जाते—चौधरी तेजे ! तेरा यह बेटा तो कोई होनहार बालक नजर आता है, बड़ा होकर कहीं यह साधु न बन जाए ? कितना आश्चर्य है ? खाने-पीने का इसको ध्यान नहीं, पहनने की इसे सुध-बुध नहीं। जब कार्य से निवृत्त होता है, सन्तों के पास बैठा रहता है, कोई कुछ कहदे उसे जरा भी क्रोध नहीं आता। वयोवृद्ध लोगों की बात सुनकर चौधरी तेजाराम यही उत्तर देते—भाई ! कर्मों की रेखा कौन मिटा सकता है ? जो इसके भाग्य में होगा, हो जाएगा। कर्मों के आगे किसी का क्या वश चलता है ? यदि इसके भाग्य में भगवान का भजन करना ही लिखा है तो उसे रोक कौन सकता है ? चौधरी साहिब के कथन को यदि कविता की भाषा में कहें तो कह सकते हैं—

सोच-सोच से क्या बने, क्यों होवे मजबूर।
वही होत "मुनि ज्ञान" जो, कर्मों को मञ्जूर॥

नगण्य हो जाती है, सुन्दर व्यक्तियों से भी अधिक वह आदरास्पद वन जाता है। तपस्वी लोगों का रूप उनकी क्षमा-शान्ति है। मनुष्य कितना भी वड़ा तपस्वी हो, अनेकानेक उपवास, व्रत रखनेवाला हो अन्न-जल के विना जीवन का निर्वाह करता हो परन्तु यदि वह क्रोधी है, क्रोध की अग्नि में सदा जलता, सड़ता रहता है, सर्वदा अशान्ति और उद्विग्नता रखता है तो उसके तप का सब मूल्य समाप्त हो जाता है। वस्तुतः तपस्वी का ज्ञान और उसका सम्मान शान्त और सहिष्णु होने से ही होता है। इसीलिए क्षमा को तपस्वी का रूप-सौन्दर्य माना गया है। कोयल का रूप उसका मीठा स्वर है काक और कोयल दोनों पक्षी कृष्ण वर्णवाले होते हैं, वर्ण की दृष्टि से दोनों में कोई अन्तर नहीं है, परन्तु दोनों के स्वरों में महान अन्तर उपलब्ध होता है। काक का स्वर कर्कश, कठोर, कर्णकटु और अप्रिय होता है, जबकि कोयल का स्वर मृदु, मधुर, सरस, प्रिय और कर्णामृत होता है। स्वर की कठोरता के कारण ही काक सबको अप्रिय लगता है, और कोयल स्वर-गत मधुरिमा से ही सबको प्रिय प्रतीत होती है। कोयल की इस प्रियता का कारण केवल मधुर स्वर ही होता है, इसी कारण कोयल का रूप-सौन्दर्य उसका मधुर स्वर माना गया है। नारियों का रूप-सौन्दर्य उनका पातिव्रत्य धर्म है। आकार-प्रकार की अपेक्षा से नारी जीवन कितना भी आकर्षक और सुन्दर हो, परन्तु यदि उसमें सदाचार और जितेन्द्रियता का अभाव है, अपने पति के अलावा अपने से वड़े मनुष्य को पिता, वरावर की आयु वाले को भाई और अपने से स्वल्प आयु वाले व्यक्तियों को पुत्र-तुल्य समझने की उसमें भावना नहीं है तव उसके वाह्य सौन्दर्य की, या उसकी गोरी चमड़ी का कोई महत्त्व नहीं होता। वस्तुतः नारी की शोभा पातिव्रता होने में, पातिव्रत्य धर्म की परिपालना और आराधना में ही सन्निहित है। इसीलिए मनीषी विद्वानों ने नारी का सौन्दर्य उसका पातिव्रत्य धर्म स्वीकार किया है।

विद्या की आठ विशेषताएँ—

विद्या ज्ञान का प्रकाश प्रदान करती है, मनुष्य को यशस्वी वनाती है आदि। विशेषताओं का एक निराला भण्डार है। विद्या की इन विशेषताओं की परिगणना करना वड़ा कठिन कार्य है। तथापि विद्या के मर्मज्ञ विद्वानों ने विद्या की विशेषताओं का संकलन करते हुए इनको आठ विभागों में विभक्त किया है। इन्हीं आठ विशेषताओ का निर्देश करते हुए संस्कृत के एक विद्वान आचार्य लिखते हैं—

चौधरी तेजाराम जी विद्या भगवती की उक्त महत्ता को भली-भाँति जानते और पहचानते थे। इसलिए इन्होंने अपने लाड़ले माडूसिंह को विद्या के आभूपणों से आभूपित करने का संकल्प किया। पपिलाद गाँव में एक छोटी सी पाठशाला थी। चौधरी साहिब ने माडूसिंह को उसी पाठशाला में प्रविष्ट (दाखिल) करा दिया। समय की बात समझिए कि चरितनायक श्री माडूसिंह जी भले ही छोटी सी अवस्था में थे परन्तु पाठशाला में प्रवेश पाकर बड़े प्रसन्न हुए और पूर्ण तन्मयता के साथ अध्ययन करने लगे। परिवार के किसी सदस्य को यह आशा नहीं थी कि माडूसिंह पाठशाला में मन लगा लेगा। सबको यही विचार था कि यह पाठशाला में क्या पढ़ेगा। इसे तो साधु सन्त ही अच्छे लगते हैं और उन्हीं के पास यह बैठ सकता है, अन्यत्र नहीं, परन्तु चरितनायक की अध्ययन-गत तल्लीनता, तत्परता और सरसता देखकर सब आश्चर्यचकित रह गए, विद्यार्थी सुयोग्य हो, परिश्रमी हो, विनीत हो, खेलकूद से दूर रहता हो और पढ़ने-लिखने में रस लेता हो तो अध्यापक को बड़ा सन्तोप होता है। ऐसे छात्र को पाकर वह अपने परिश्रम को सफल मानता है। परिणामस्वरूप उसे वह ध्यान और प्रेम के साथ पढ़ाता-लिखाता है उसे ऊँचा उठाने का अधिकाधिक प्रयास करता है तथा अपनी ज्ञान सम्पदा से, उसे प्रत्येक दृष्टि से मालामाल बनाने का प्रयत्न करता है। हमारे चरितनायक श्रीमाडूसिंह जी पूर्णरूपेण विनयवान, परिश्रमी और सुयोग्य थे। अध्यापक के प्रत्येक कथन को प्रभु वाक्य मानकर चलते थे और उसकी प्रत्येक आज्ञा का पालन करते थे। अध्यापक जो कुछ इन्हें पढ़ाते उसे पूरे ध्यान के साथ पढ़ते। घर आकर उसे स्मरण करते। लिखने का जो काम मिलता था उसे पूरी तन्मयता और लगन के साथ करते। यही कारण था कि चरितनायक ने थोड़े दिनों में ही अध्यापक का मन जीत लिया। अध्यापक विशेप रूप से इनसे प्रसन्न थे और जहाँ-तहाँ प्रसंग आता तो इनकी प्रशंसा किए विना न रहते।

विद्यार्थी के पाँच दोष—

श्री उत्तराध्ययन सूत्र में विद्यार्थी के पाँच दोपों (अवगुणों) का उल्लेख मिलता है। वहाँ लिखा है कि (१) अभिमान, (२) क्रोध (३) प्रमाद, (४) रोग और (५) आलस्य ये पाँच विद्यार्थी के दोप होते हैं। अभिमान अहंकार का नाम है। अभिमान अपने से वड़े के वड़प्पन को मानने को तैयार नहीं होता, विनीतता, नम्रता का उसमें अभाव होता है। वह सबको तुच्छ औ मक्खी मच्छर मानता है। केवल अपने आपको ही बुद्धि-सागर और द र्पद समझता है। आज के छात्र-वर्ग में विनयभाव और श्रद्धाभाव वहुत कम है

मनुष्य आखिर मनुष्य है, कभी न कभी उससे भूल का हो जाना अस्वाभाविक नहीं है। सावधानी से चलता हुआ भी कभी न कभी वह अपने गन्तव्य मार्ग से भ्रष्ट हो जाता है। ऐसी दशा में हितकारी गुरुजन उसे समझाते हैं, सत्य मार्ग सुझाते हैं। फिर भी यदि वह न समझे तो उसे गुरुजन दूसरी वार या तीसरी वार प्रेरणा प्रदान करते हैं। इस पर भी यदि वह अवाञ्छनीय प्रवृत्तियों से निवृत्त नहीं होता तो गुरुजनों को उसे फिर आवेशपूर्ण भाषा में कहना पड़ता है, समझाना होता है। परन्तु यदि वह मनुष्य क्रोधी होगा, असहिष्णु होगा तो अपने गुरुजनों के प्रेरणापूर्ण उस कथन को सहन नहीं कर सकेगा, झुँझला उठेगा। अपने गुरुजनों के सामने वोलने या उनका किसी और पद्धति से अपमान करने में भी नहीं सकुचाएगा। ऐसा व्यक्ति विद्या का अपात्र होता है। जिसे जरा सी हितकारी और गुणकारी वात कहने पर भी क्रोध चढ़ जाए, उसको विद्या का प्राप्त होना सम्भव भी कैसे हो सकता है। ऐसे व्यक्ति का अन्तर्जगत तीन काल में भी विद्या के आलोक से आलोकित नहीं हो सकता। वस्तुतः विनय ही विद्या प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन होता है। विनयवान ही अपने गुरुजनों के हृदय में समाकर उनसे विद्या के हीरे प्राप्त करने में सदा सफल हो सकता है। जो विद्यार्थी विनयवान होता है उसे अध्यापक यदि किसी समय डाँटता है आवेशपूर्ण भाषा में कुछ कह देता है और उसकी पिटाई भी कर डालता है तो वह कभी झुँझलाता नहीं है, शान्ति के साथ उसे सहन करता है और उसकी जिस भूल के कारण अध्यापक को उसकी ताड़ना करनी पड़ी है उसे दूर करने का प्रयत्न करता है और हृदय में यही समझता है कि मेरे अध्यापक मुझे जो डाँटते हैं, इसमें मेरा ही लाभ है, फायदा है। ऐसा विद्यार्थी एक दिन वहुत ऊपर उठ जाता है। उसकी विनय, उसका भविष्य समुज्ज्वल वना डालती है। वस्तुतः विनय सोए भाग्य को जगा डालती है और अविनय जागृत भाग्य को भी सुला देती है। इस सत्य का समर्थन करता हुआ फारसी भाषा का एक कवि कहता है—

"वा अदव वानसीव
वे-अदव वेनसीव"

जो व्यक्ति दूसरों का अदव करता है, दूसरों के साथ विनीततापूर्ण मधुर और सरस व्यवहार करता है वह भाग्यशाली होता है और जो व्यक्ति किसी का अदव नहीं करता, दूसरों के साथ उद्दण्डता और उच्छृङ्खलता का व्यवहार करता है वह वदनसीव व भाग्यहीन होता है। हमारे चरितनायक श्री माडूसिंह जी वड़े सहिष्णु छात्र थे। परिश्रमी और विनीत होने के कारण पहले तो उन्हें अपने अध्यापक से सदा प्रसन्नता ही प्राप्त होती परन्तु यदि कभी उन्हें अध्या-

प्रकार का होता है। जिस मानस में क्रोध का चाण्डाल विराजमान रहता है वहाँ पर विद्या भगवती का निवास नहीं हो सकता। दिन और रात का क्या मेल, विष और अमृत तथा मधुरता और कटुता का जैसे कोई मेल नहीं ऐसे ही क्रोध और विद्या का भी कोई मेल नहीं होता। मान—"अहंकार, जाति, कुल, बल, रूप, तप, विद्या, लाभ और ऐश्वर्य" इन भेदों से आठ प्रकार का होता है। जाति माता के खानदान और कुल पिता के खान-दान का नाम है। बल शरीर आदि की शक्ति को कहते हैं। रूप आकृति, आकार को कहा जाता है। इच्छा का निरोध करना तप है, विद्या तालीम या शिक्षण को, लाभ आमदनी को और ऐश्वर्य वैभव को समझना चाहिये। विद्यार्थी को जाति और कुल आदि का कभी अभिमान नहीं करना चाहिए। विद्या और अभिमान का नेवले और सर्प जैसा विरोध है, दोनों एक स्थान पर नहीं ठहर सकते। माया, छल, कपट, ये सब समानार्थक शब्द हैं। कहना कुछ, करना कुछ, बतलाना कुछ आदि सभी वक्र-वृत्तिपूर्ण चेष्टाएँ माया मानी जाती हैं। माया और विद्या का भी आपस में कोई मेल नहीं है। अतः विवेकशील विद्यार्थी को मायावी जीवन न बनाकर सरलतापूर्ण जीवन बनाना चाहिए। लोभ लालच को कहते हैं। भगवान महावीर के '**लोहो-सव्वाविणासणो**'[1] इन शब्दों के अनुसार लोभ, प्रीति, मित्रता, विनय आदि सभी सद्गुणों का नाश कर देता है। लोभ का पेट कभी भरा नहीं जा सकता, जैसे-जैसे व्यक्ति को लाभ की प्राप्ति होती चली जाती है, वैसे-वैसे उसका लोभ भी बढ़ता चला जाता है। क्योंकि लाभ से लोभ की वृद्धि का होना एक प्राकृतिक नियम है। पाठकों ने कपिल[2] की कहानी सुनी होगी। यह एक ब्राह्मण था। राजपुरोहित बनने का स्वप्न लेकर अपने पिता के मित्र के पास विद्याध्ययन करने लगा था, जिस घर में उसके भोजन की व्यवस्था थी, उस घर की एक दासी के साथ उसके वैषयिक सम्बन्ध हो गए, दासी के गर्भवती हो जाने पर गृहस्वामी ने दासी और कपिल दोनों को निकाल दिया। नगरी का राजा प्रातःकाल सबसे पहले आने वाले ब्राह्मण-याचक को दो मासे सोना देता है,

---

१ **कोहो पीइं पणासेइ, माणो विणयनासणो।**
माया मित्ताणि नासेइ, लोभोसव्वविणासणो॥

—दशवै० अ० ८/३८

२ **जहा लाहो तहा लोहो, लाहा लोहो पवड्ढइ।**
दोमासकयं कज्जं, कोडीए वि न निट्ठिअं॥

—उत्तरा० अ० ८/१७

इस बात का ज्ञान होने पर कपिल अन्धेरे में ही चल पड़ा। राजपुरुषों ने पकड़ लिया, जेल में भेज दिया प्रातः राज दरबार में पेश किया गया। दीनतापूर्ण सारी कथा सुनकर राजा को दया आ गई। परिणामस्वरूप राजा बोले—जो चाहिये माँग ले। तब क्या मांगू ? इस चिन्तना के करते-करते अन्त में राजा के राज्य तक को माँगने की बात सोचने लगा, फिर भी सन्तोष नहीं मिला*। भाव यह है कि लोभ का पेट सदा भूखा ही रहता है। अतः लोभ सर्वथा हेय और अनादेय समझना चाहिए, विद्यार्थी को लोभ-वृत्ति से सदा बचना चाहिए। विद्यार्थी के जीवन में विद्या का लोभ तो रहना ही चाहिये परन्तु स्वार्थप्रियता नहीं रहनी चाहिए। अतः यहाँ लोभ-वृत्ति का अर्थ स्वार्थप्रियता से समझना चाहिये। जिस विद्यार्थी में स्वार्थप्रियता है, केवल अपने स्वार्थ की पूर्ति की ही भावना निवास करती है, वह विद्यार्थी भी विद्या के प्रकाश से वंचित रहता है। भाव यह है कि विद्यार्थी को परमार्थी होना चाहिए। जहाँ वह अपने विकास और समुत्कर्ष का ध्यान रखता है वहाँ उसे अन्य विद्यार्थियों के विकास और अभ्युदय के लिए भी प्रयत्नशील रहना चाहिए।

दूसरे छात्रों का भला सोचना, उनके विकास, सुख सुविधा के लिए प्रयत्न करना, निर्धन छात्रों के लिए यथाशक्ति छात्रवृत्ति की व्यवस्था करना सुयोग्य विद्यार्थी का सर्वप्रथम कर्तव्य बनता है। ऐसा विद्यार्थी ही विद्या के धन से माला-माल हो सकता है अन्य नहीं।

निद्रा का अर्थ है—नाड़ी की वह अवस्था जिसमें संज्ञावहा नाड़ियों का काम रुक जाता है, आँखें बन्द हो जाती हैं, शरीर शिथिल पड़ जाता है और चेतना जाती सी रहती है। वैसे जीवन में नींद का अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है, निद्रा का न लेना भी खतरनाक होता है अतः व्यक्ति का आवश्यक और मर्यादित निद्रा लेना, विश्राम करना स्वास्थ्य के लिए आवश्यक हो जाता है परन्तु आवश्यकता से अधिक निद्रा लेना, सदा सोते ही रहना, असमय में सोना प्रमाद का रूप ले लेता है। यह विद्यार्थी जीवन के लिए अहितकर और हानिकारक माना गया है। इसलिए यह हेय है, अनादेय है। मर्यादा से अधिक सोने वाला व्यक्ति स्वास्थ्य की दृष्टि से भी घाटे में रहता है। फलतः विवेकशील विद्यार्थी को आवश्यक निद्रा के बिना और अधिक निद्रा लेने का स्वभाव छोड़ देना चाहिए। दूसरी बात यदि निद्रा को बढ़ाते चले जाएँ तो यह बढ़ती चली जाती है। इसके विपरीत इसको यदि घटाना आरम्भ कर दें

---

* आगे के समस्त वृत्तान्त जानने की अभिलाषा रखने वालों को उत्तराध्ययन सूत्र का आठवाँ अध्ययन देखना चाहिए।

तो यह घटती भी चली जाती है। निद्रा की ही केवल बात नहीं है, आलस्य मैथुन आदि अन्य भी कई एक ऐसी प्रवृत्तियाँ हैं जो बढ़ाने से बढ़ती हैं और घटाने से घटती हैं। इसीलिए महाभारत में वासुदेव कृष्ण अर्जुन को समझाते हुए कह रहे हैं—

वर्द्धन्ते पञ्च कौन्तेय ! सेव्यमानानि नित्यशः।
आलस्यं मैथुनं निद्रा, क्षुधा क्रोधश्च पञ्चमः॥

—हे अर्जुन ! १. आलस्य [काम करने की अनिच्छा, सुस्ती] २. मैथुन [वासना, रतिक्रिया, स्त्री-पुरुष का समागम] ३. निद्रा-नींद, ४. क्षुधा [आहार की आवश्यकता से उत्पन्न विकलता, भोजनेच्छा, भूख] और ५. क्रोध [गुस्सा, दूसरे का अनिष्ट करने का तीव्र मनोविकार] इन पाँचों का प्रतिदिन ज्यों-ज्यों सेवन करते जाओ त्यों-त्यों ये दिनोंदिन बढ़ती चली जाती हैं। अर्थात् आलस्य आदि प्रवृत्तियों का लगातार सेवन करने से ये समाप्त नहीं होतीं, प्रत्युत इनको बढ़ावा मिलता है इनका महावृक्ष अधिकाधिक फैलता चला जाता है।

पाँचवा प्रमाद विकथा है। राग—द्वेष के साथ जो शब्द बोले जाते हैं उन सबका विकथा शब्द से ग्रहण होता है। यह—स्त्री, भोजन, देश और राज इन भेदों से चार प्रकार की होती है। स्त्री जगत से सम्बन्धित वासना-मय वार्तालाप **स्त्री विकथा** है। अमुक स्त्री बड़ी सुन्दर है, आँख, नाक, मुख आदि अवयव ऐसे लगते हैं जैसे किसी ने इनको फ़ुरसत (अवकाश) में बैठकर बनाया है। स्वर्ग की अप्सरा भी इसके सम्मुख नगण्य है, तुच्छ है, जिस पुरुष को यह प्राप्त होगी वह बहुत-बड़ा भाग्यशाली होगा। लोगों को तो मरने के बाद स्वर्ग मिलता है, परन्तु उसे तो सचमुच इसी जीवन में स्वर्ग की उपलब्धि हो जाएगी, वासना को उत्तेजित करने वाला इस तरह का जितना भी वाणी-विलास है, वह सब स्त्री विकथा के अन्तर्गत आ जाता है। भोजन से सम्बन्ध रखने वाला वाणी-विलास **भोजनविकथा** है। आज भोजन बड़ा स्वादिष्ट था, मजेदार था यदि इसमें अमुक-अमुक पदार्थों का और संगम हो जाता है तब तो क्या कहना था ? इस तरह की सब बातें भोजनविकथारूप समझनी चाहिये। यह सत्य है कि भोजन का जीवन में बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है इसके बिना जीवन का निर्वाह नहीं हो सकता, तथापि भोजन पर आसक्त होना, केवल रसना के आस्वाद की दृष्टि से उसका आसेवन करना उचित नहीं है। क्योंकि भोजन जीवन के लिए होता है, न कि जीवन भोजन के लिए। जो लोग जीवन को भोजन के लिए गुजारते हैं, वे भोजन के लिए पापाचार से भी

विकथाओं के झंझट से सर्वथा दूर रहता है। विद्यार्थी जीवन यदि इन विकथाओं में उलझा रहेगा, स्त्री, भोजन आदि की आलोचना और प्रत्यालोचना में अपना समय खोता रहेगा, तो वह विद्या के क्षेत्र में कभी उन्नति और प्रगति नहीं कर सकता, विद्या के आलोक से उसे वंचित ही रहना पड़ेगा। प्राय: देखा जाता है कि आजकल के छात्र जितना ध्यान इधर-उधर की निकम्मी बातों की ओर देते हैं, उतना ध्यान अपनी पढ़ाई-लिखाई की ओर नहीं देने पाते। यही कारण है कि इनका भविष्य समुज्ज्वल नहीं होने पाता। राजनैतिक आन्दोलनों में भाग लेना, जुलूस निकालने, प्रदर्शन करने, देश की चल और अचल सम्पत्ति को दग्ध करके राख की ढेरी बना देना, अश्लील उपहास करना, लड़कियों से वासना सम्बन्ध स्थापित करना, परीक्षा में सैकड़ों हजारों की संख्या में, विद्यार्थियों का अनुत्तीर्ण रहना आदि जितनी भी दुर्घटनाएँ दृष्टिगोचर हो रही हैं यह सब विद्यार्थी-जगत की निकम्मी और अवांछनीय प्रवृत्तियों का दुष्परिणाम ही समझना चाहिए, इसके विपरीत यदि विद्यार्थी-जगत अपनी शक्ति का सदुपयोग करे, विद्या के विकास और समुत्कर्ष के लिए अधिकाधिक परिश्रम करे तो यह देश, जाति के लिए एक दिन वरदान प्रमाणित हो सकता है।

हमारे चरितनायक श्री माडूसिंह जी प्रमाद-रूप दोष से अपने आपको सदा सुरक्षित रखने का प्रयास किया करते थे। सन्त-समागम के कारण तथा सत्संग में धार्मिक प्रवचन श्रवण करते रहने के कारण मद्य आदि असत् प्रवृत्तियों से तो इनको बचपन से ही घृणा थी, ये स्वयं तो इन दोषों से दूर रहते ही थे परन्तु यदि किसी अन्य विद्यार्थी में प्रमाद के पंचविध प्रकारों में से कोई भी प्रकार देख लेते तो उसे भी प्रेम के साथ समझाने और उस दोष से उसे हटाने का प्रयास करते। श्री माडूसिंह जी की इसी विशेषता के कारण ये सबके लिए सम्मानास्पद और आदरास्पद बन रहे थे। विद्यार्थियों के अलावा पाठशाला के अध्यापक भी इनका आदर किया करते थे। संक्षेप में यदि अपनी बात कह दूँ तो इतना ही निवेदन किए देता हूँ कि श्री माडूसिंह जी का विद्यार्थी जीवन क्या विद्यार्थी और क्या अध्यापक हर एक के लिए आकर्षण का केन्द्र बन गया था और ये विद्या-क्षेत्र में धीरे-धीरे विकास की पगडण्डियाँ पार करते जा रहे थे।

विद्यार्थी जीवन के पंचविध दोषों में से चतुर्थ दोष रोग होता है। शरीर की विकार-पूर्ण अवस्था, अस्वास्थ्य का नाम रोग है। शास्त्रकार फरमाते हैं कि रोग विद्यार्थी जीवन में एक दोष है उसकी प्राप्ति का बाधक है। रोगाक्रान्त विद्यार्थी विद्या की प्राप्ति नहीं कर सकता, जिस विद्यार्थी को

कोई न कोई बीमारी सदा घेरे रखती है वह पढ़ भी क्या सकता है ? कभी सर दुखता है, कभी पेट में दर्द है, कभी शिरोव्यथा है, कभी घुटने में दर्द है, कभी ज्वर है, कभी प्रतिश्याय है, कभी सिर चकरा रहा है। इस तरह कोई न कोई बीमारी चलती ही रहती है तो ऐसी दशा में विद्यार्थी का पढ़ना, लिखना सर्वथा असम्भव है। विद्या प्राप्ति की ही क्या बात है, भगवान का भजन, चिन्तन, मनन और धर्म का परिचलन करने के लिए भी शरीर का सबल, निर्दोष और स्वस्थ होना बहुत जरूरी है। सम्भव है, इसीलिए भारत के महापुरुषों को यह उद्घोष करना पड़ा हो—

"शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्"

भारतीय अध्यात्म दर्शन का कहना है कि धर्म की साधना और आराधना का पहला साधन शरीर है, शरीर-गत स्वास्थ्य है, तन्दुरुस्ती है और रोगों का अभाव है। यदि शरीर अस्वस्थ है, रोगी है, व्याधि का मन्दिर बना हुआ है तो धर्म की साधना सम्पन्न नहीं की जा सकती।

हमारे चरितनायक श्री माडूसिंह जी शारीरिक दृष्टि से प्रायः स्वस्थ रहा करते थे। जब सातावेदनीय कर्म का उदय हो और असातावेदनीय कर्म का प्रकोप शान्त हो तब बीमारी आ भी कैसे सकती है ? दूसरी बात, खाने-पीने पर जिसका पूरा नियन्त्रण हो, कण्ट्रोल हो और जो शरीर को अस्वस्थ बनाने वाले भोजन का कभी ग्रहण न करता हो, रोग उसके निकट नहीं आने पाते, वह सदा नीरोग, स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट ही रहा करता है। श्री माडूसिंह जी की अवस्था बहुत बड़ी नहीं थी ये स्वल्पवयस्क ही थे, परन्तु अपने स्वास्थ्य का पूरा-पूरा ध्यान रखते थे, जहाँ समय पर भोजन करते थे वहाँ अस्वास्थ्य-जनक किसी भी पदार्थ का आसेवन नहीं करते थे। माँस, अण्डा, मदिरा, सिगरेट, आदि हिंसापूर्ण और मादक पदार्थ तो इनके घर में ही प्रविष्ट नहीं हो सकते थे। दैनिक भोजन भी इनका बड़ा सात्त्विक था, पशुओं की भाँति दिन भर चरने या मुँह चलाने का इनका स्वभाव नहीं था, रसना पर इनका पूर्णतया नियन्त्रण था। बालक में इतना बड़ा और कड़ा नियन्त्रण कुछ असम्भव सा दिखाई देता है, परन्तु जिस बालक को ऊपर उठना हो पुरुष से महापुरुष बनना हो, संयम साधना का महान उपदेशक बनकर जगती के सम्मुख उपस्थित होना हो तो उसमें महापुरुषत्व की इस भूमिका के दर्शन बचपन में ही होने लगते हैं। **'होनहार विरवान के होत चीकने पात''** की लोकोक्ति ऐसे ही भावी महापुरुषों में साकार रूप धारण किया करती है। हमारे माडूसिंह जी भी भावी महापुरुष थे, परिणामस्वरूप

उसकी पूर्व भूमिका वचपन में दिखाई देने लगी थी। ये खान-पान की दृष्टि से पूर्ण सतर्कता और सावधानी से जीवन-यात्रा सम्पन्न करते जा रहे थे। "कम खाना, गम खाना और नम जाना" इस स्वास्थ्य-वर्धक त्रिवेणी में सदा निमग्न रहा करते थे। और इसीलिए विद्या भगवती इन पर पूर्ण प्रसन्न हो रही थी।

विद्यार्थी जीवन का पाँचवाँ दोष आलस्य है। काम करने की अनिच्छा, सुस्ती, ढिलाई, चुस्ती का अभाव ही आलस्य होता है। विद्यार्थी यदि आलसी है, सुस्त है, लापरवाह है, काहिल है, करणीय कार्य के प्रति—"अभी करता हूँ, अभी करना है" ऐसी दृष्टि रखकर भी कार्य करनेवाला नहीं है, पोस्तियों की भाँति पड़ा रहने वाला है तो वह विद्या के क्षेत्र में असफल ही रहता है, उसको विद्या की कभी प्राप्ति नहीं हो सकती। दिन और रात का, विप और अमृत का, अन्धकार और प्रकाश का, सत्य और असत्य का, सदाचार और दुराचार का जैसे विरोध रहता है, वैसे विद्या और आलस्य का विरोध पाया जाता है। जहाँ विद्या है, वहाँ आलस्य नहीं टिक सकता और जहाँ आलस्य है, वहाँ पर भगवती विद्या विराजमान नहीं होने पाती। अतः दीर्घदर्शी, सुशील, सुयोग्य अपने भविष्य को समुज्ज्वल वनाने की कामना रखने वाला विद्यार्थी कभी आलस्य के निकट नहीं जाता, वह आलस्य का परित्याग करके चुस्ती से काम लेता है, अपना एक क्षण भी व्यर्थ नहीं गंवाता। विश्ववन्द्य भगवान महावीर ने अपने प्रधान शिष्य महामहिम, स्वनामधन्य अनगार शिरोमणि गणधर श्री इन्द्रभूति जी महाराज को समझाते हुए जो—

"समयं गोयम ! मा पमायए"[1]

यह कहा था सुयोग्य विद्यार्थी इसे जीवन में मूर्त्तरूप देने का प्रयास करता है। यह सत्य है कि विद्यार्थियों को प्रायः आलस्य प्रिय लगता है, परन्तु इसका अन्त उनके लिए हानिकारक और अनिष्टकारक ही सिद्ध होता है। वैसे तो आलस्य सर्वत्र ही हानिकारक माना गया है परन्तु विद्या के क्षेत्र में तो आलस्य और भी अधिक अनिष्टप्रद होता है। जो विद्यार्थी यही विचार करता रहता है कि अभी तो सारा दिन पड़ा है क्या चिन्ता की वात है? सायंकाल को

---

[1] "हे गौतम ! तू समय मात्र भी प्रमाद न कर।" काल के सूक्ष्मतम काल को समय कहते हैं। इसकी तुलना में क्षण वहुत वड़ा काल है। भगवान महावीर का श्री गौतम को—"एक समय के लिए प्रमाद न कर।" यह कहने का अभिप्राय इतना ही है कि बुद्धिमान मनुष्य को सूक्ष्म से सूक्ष्म काल के लिए भी प्रमाद का सेवन नहीं करना चाहिए।

पढ़लेंगे । जब सायंकाल आता है तो फिर विचार करने लगता है कि क्या फिक्र है, अभी सारी रात अपने पास ही है । रात के आने पर सोचता है-- कि अब तो विश्राम करो, सो जाओ प्रातः जल्दी उठकर पढ़ लेंगे । प्रातःकाल उठने के लिए घड़ी को अलारम लगा देते हैं । जब प्रातःकाल घड़ी ने अलारम बजाया तो फिर कहता है कि अभी तो तारे दिखाई देते हैं, बहुत अन्धेरा है । इस तरह विचार करता हुआ फिर सो जाता है । इस प्रकार शेखचिल्ली की तरह जो सोचता रहता है और पढ़ता एक अक्षर भी नहीं है, वह विद्यार्थी विद्या की सम्पदा से सदा वञ्चित ही रहता है और जीवन भर मूर्ख रहकर मूर्खताजन्य दुष्परिणाम से आकुल-व्याकुल ही होने के सिवाय उसके हाथ कुछ नहीं आता ।

हमारे मान्य चरितनायक श्री माडूसिह जी आलस्य की बुराइयों को भलीभाँति समझते थे । ये जानते थे कि आलस्य करना विद्या की लक्ष्मी से हाथ धोना है, दरिद्रता को आमंत्रण देना है, अपने भविष्य को अन्धकारपूर्ण बनाना है. अन्तःस्वास्थ्य को बिगाड़ना है । परिणामस्वरूप ये आलस्य से सदा दूर रहते थे, समय पर शयन करते थे, समय पर प्रत्येक कार्य सम्पन्न करते थे, जिस कार्य को हाथ में लेते, पूरी तन्मयता और लग्न से करते, घण्टों का कार्य मिण्टों में कर डालते, मरे हुए मन से काम करना इनको कतई पसन्द नहीं था । इसके अतिरिक्त पाठशाला में जो पढ़ते, ध्यानपूर्वक पढ़ते, फिर घर आकर उसे याद करते, पाठशाला का कार्य करने के अनन्तर ही घर के किसी अन्य काम में हाथ डालते । यही कारण था कि पाठशाला में जब अध्यापक कोई बात पूछते तो तत्काल निर्भयता के साथ उसका जवाब देते जवाब भी ऊटपटांग नहीं प्रत्युत सर्वथा यथार्थ और पाठ्य पुस्तकों के बिल्कुल अनुसार । देखा जाता है कि अध्यापक जब पूछता है, तो कई बालक इधर-उधर की गप्पें मारकर समय बर्बाद करने वाले होते हैं परन्तु हमारे चरित नायक के विद्यार्थी जीवन में इस प्रकार का कोई दोष न था ! फलतः पाठशाला में अपनी कक्षा के सभी छात्रों में ये बुद्धिमान, फुर्तीले, परिश्रमी और विनयवान समझे जाते थे ।

पाप-कर्म का भयंकर चक्र

कर्म का अस्तित्व—

संसार एक रंगमंच है, यहाँ नाना प्रकार के पात्र हमें दृष्टिगोचर होते हैं, इनमें कोई अमीर है तो कोई गरीब कोई राजा है तो कोई रंक, कोई लखपति है तो कोई खाकपति, कोई सबल है तो कोई निर्बल, कोई विद्वान है तो कोई मूर्ख, कोई स्वस्थ शरीरवाला है तो कोई रोगों की शय्या पर सदा कराहता रहता है, किसी को सर्वत्र अभिनन्दन और अभिवन्दन की ध्वनियाँ सुनने को मिलती है तो किसी पर दुत्कार और फटकार की वर्षा होती है, किसी के दर्शन के लिए जनता जनार्दन लालायित रहता है तो किसी को कोई फूटी आँख से निहारना भी पसन्द नहीं करता, कोई अन्न के कण तक को तरसता है तो कोई अजीर्ण से व्याकुल होकर डाक्टरों की शरण लेता है। कोई देखने में कामदेव जैसी आकृतिवाला प्रतीत होता है तो कोई तवे से भी अधिक कालिमा लिए हुए है, किसी के आँख, नाक, हाथ आदि शारीरिक अवयव इतने सुन्दर और सुव्यवस्थित हैं कि जैसे सांचे में ढालकर बनाए गए हों तो किसी के आँख नाक आदि शारीरिक अवयव इतने बेढब, बेडौल और भद्दे लगते हैं कि देखने को मन ही नहीं करता, देखने वाला मुँह दूसरी ओर फेर लेता है। इस तरह संसार के सभी पात्र विभिन्न रूपों में दिखाई देते हैं। प्रश्न हो सकता है कि इस विभिन्नता का कारण क्या है ? जीवनगत यह अन्तर क्यों उपलब्ध होते हैं ? इस विचित्रता के मूल में कौन सी शक्ति काम कर रही है ? इस सम्बन्ध में अनेकों समाधान सम्प्राप्त होते हैं। वैदिक परम्परा इस भिन्नता का कारण ईश्वर को मानती है कोई इसका कारण सामाजिक अव्यवस्था बतलाता है, परन्तु जैनदर्शन जगती के जीवों में दिखाई देने वाली विषमता, अनेकता विविधता या विभिन्नता का कारण कर्म स्वीकार करता है। जैनदर्शन जीवनगत विभिन्न परिस्थितियों का उत्तरदायित्व ईश्वर पर नहीं डालता। इस दर्शन का सदा यही उद्घोष रहा है कि जीवन में अच्छी बुरी जो भी अवस्था देखने को मिलती है इसका कारण परमपिता परमात्मा नहीं है क्योंकि—

राम किसी को मारे नहीं मारे सो नहिं राम।
आप ही आप मर जाएगा, करके खोटे काम ॥

जैन दर्शन की मान्यतानुसार ईश्वर किसी को सुख या दुःख नहीं देता, जीवन में सुखों या दुःखों के जो भी भूचाल आते हैं उनमें न ईश्वर का[१] हाथ है और न किसी देवी-देवता की शक्ति का हस्तक्षेप है। प्रत्युत सुख-दुःख का मूल कारण जीव का अपना ही कृत-कर्म है और यही कर्म सुख और दुःख की सृष्टि करता है। वास्तव में देखा जाय तो सुख और दुख के वीज व्यक्ति की भावनाओं में ही छिपे रहते हैं। हमारा वर्तमान कालिक जीवन एक वृक्ष के समान है उसके वीज हमारे अन्तर्जीवन की भूमि पर कहीं न कहीं प्रच्छन्न रहते है, जो समय आने पर मूर्त रूप धारण कर लेते हैं। यही वीज जैन जगत में कर्म के नाम से व्यक्त किए जाते हैं। भारत के एक मनीषी सन्त ने इस सम्वन्ध में कितनी सुन्दर वात कही है—

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता,
परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।
अहं करोमीति वृथाभिमानः,
स्वकर्म सूत्रग्रथितोहि लोकः ॥

सुख और दुःख का देने वाला अपना ही शुभाशुभ कर्म है, सुख और दुख का दाता ईश्वर या किसी अन्य दैविक शक्ति को समझना एक वड़ी भारी भ्रान्ति है। मनुष्य का—मैं ही सव कुछ करता हूँ ऐसा अभिमान करना भी व्यर्थ है। वास्तव में सारा संसार अपने कर्म रूप सूत्र से ही ग्रथित हो रहा है।

कर्म शब्द का अर्थ—

कर्म शब्द को जैन, बौद्ध, सांख्य, योग, नैयायिक, वैशेषिक और मीमांसक आदि सभी आत्मवादी और अनात्मवादी दर्शन स्वीकार करते हैं। कर्म शब्द अनेकार्थक माना गया है। काम, धन्धे के अर्थ में कर्म शब्द का प्रयोग होता है। खाना-पीना, चलना-फिरना आदि क्रिया का भी कर्म शब्द से व्यवहार किया जाता है। इसी प्रकार कर्मकाण्डी मीमांसक, यज्ञ आदि क्रियाकांड के अर्थ मे, स्मार्त विद्वान ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि चारों वर्णों तथा ब्रह्मचर्य आदि

---

[१] ईश्वर जगन्निर्माता क्यों नहीं है? भाग्यनिर्माता या कर्मफलप्रदाता भी क्यों नहीं है? इस सम्बन्ध में जिज्ञासा रखने वाले महानुभावों को लेखक की लिखी "भगवान महावीर के ५ सिद्धान्त" पुस्तक का परिशीलन करना चाहिए। यह पुस्तक आचार्य श्री आत्माराम जैन मॉडल स्कूल, २६ डी, कमला नगर, दिल्ली-७ से उपलब्ध की जा सकती है।

चारों आश्रमों के लिये नियत किए गए कर्मरूप अर्थ में, पौराणिक लोग, व्रत, नियम आदि धार्मिक क्रियाओं के अर्थ में, व्याकरण के निर्माता लोग—कर्ता अपनी क्रिया के द्वारा जिस को प्राप्त करना चाहता है या जिस पर कर्ता के व्यापार का फल गिरता है इस अर्थ में, और नैयायिक लोग उत्क्षेपण (ऊपर को फैंकना) आदि पांच सांकेतिक कर्मों के लिए कर्म शब्द का प्रयोग करते हैं, परन्तु जैन-दर्शन में कर्म शब्द एक पारिभाषिक अर्थ में व्यवहृत किया जाता है। जैन दर्शन की मान्यतानुसार कर्म नैयायिकों या वैशेषिकों की भांति क्रिया रूप नहीं है किन्तु पौद्गलिक है, द्रव्यरूप है, आत्मा के साथ प्रवाहरूप से सम्बन्ध रखने वाला एक अजीवद्रव्य है।

जैन-दृष्टि से कर्म के—द्रव्य और भाव ये दो भेद होते हैं, जीव से सम्बद्ध कर्म पुद्गल, द्रव्यकर्म कहलाते हैं और द्रव्यकर्म के प्रभाव से होने वाले जीव के राग और द्वेषरूप भावों को भावकर्म कहते हैं। जब कोई आत्मा किसी भी प्रकार का कोई संकल्प विकल्प करता है राग-द्वेषपूर्ण चिन्तना में व्यस्त हो जाता है तो उस समय उसके आत्म-प्रदेशों में एक प्रकार का कम्पन सा होता है या एक प्रकार की हलचल सी पैदा होती है, परिणामस्वरूप उस स्थान में स्थित कर्मयोग्य पुद्गल (परमाणुपुञ्ज) आत्मप्रदेशों की ओर आकृष्ट होते हैं, और फिर उनसे सम्बन्धित हो जाते हैं, जुड़ जाते हैं, खौलते तेल में डाली हुई पूरी जैसे तेल को खींच लेती है, वैसे ही शुभाशुभ अध्यवसाय के कारण आत्मा शुभाशुभ परमाणुओं को अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। आत्मा और पुद्गलों का मेल ठीक वैसा ही होता है, जैसा राहु और चन्द्रमा का होता है। राहु जैसे चन्द्रमा को आच्छादित कर लेता है, वैसे कर्म आत्मा को आवृत कर लेते हैं। इस प्रकार आत्मप्रदेशों के साथ कर्मबन्ध को प्राप्त पुद्गलों का नाम ही द्रव्य कर्म होता है। ये कर्म पुद्गल रूपी[१] होने से मूर्त हैं, जड़ हैं। द्रव्यकर्म रागद्वेप का निमित्त पाकर आत्म-प्रदेशों के साथ बंधा है, अतः राग-द्वेप रूप भावों को भावकर्म कहते हैं। द्रव्यकर्म भावकर्म का कारण है और भावकर्म द्रव्यकर्म का। द्रव्यकर्म के बिना भावकर्म नहीं रहता और भावकर्म के बिना द्रव्यकर्म नहीं रहने पाता। दोनों सदा साथ-साथ ही रहते हैं।

कर्म का भयंकर चक्र—

कर्म द्रव्य और भाव इन भेदों से दो प्रकार का होता है, यह ऊपर बताया जा चुका है। द्रव्य कर्म के दो भेद होते हैं—एक शुभ और दूसरा अशुभ। शुभ कर्म को पुण्य और अशुभ कर्म को पाप कहा जाता है। पुण्य

---

[१] रूप, वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाले पदार्थ रूपी कहलाते हैं।

और पाप दोनों का अपना-अपना प्रभाव होता है। प्रस्तुत में हम पापकर्म के भयंकर चक्र की चर्चा करेंगे। पापकर्म भी अनेक विध का होता है। इसके अनेक प्रकारों में एक प्रकार निकाचित होता है। निकाचित कर्म तपस्या आदि धार्मिक अनुष्ठानों से तोड़ा नहीं जा सकता, इसको तो भोगना ही पड़ता है, विना भोगे इससे जीव का छुटकारा नहीं होता। अतः यह कर्म भी एक वहुत वड़ी शक्ति है, जो वहुत वलवान मानी गई है, इसके आगे किसी का वश नहीं चलता। इस शक्ति का प्रकोप जिस जीवन में होता है उसे वड़ी भयंकर परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। जनसाधारण की तो वात जाने दें इसके प्रकोप से अनन्तवली तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वासुदेव, वलदेव आदि सभी महापुरुषों को अनेकानेक कष्ट उठाने पड़ते हैं। इतिहास का विद्यार्थी यह अच्छी तरह जानता है कि आदिम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव को वारह वर्ष विना अन्नजल के रहना पड़ा, सत्यवादी हरिश्चन्द्र को काशी के वाजार में पशुओं की भाँति विकना पड़ा, मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम को १४ वर्षों तक वनों में भ्रमण करना पड़ा, कर्मयोगी वासुदेव श्री कृष्ण को कारागार-जेल में जन्म लेना पड़ा युधिष्ठिर, जैसे धर्मराज और महावली अर्जुन आदि पाण्डवों को वारह वर्ष तक संकट झेलने पड़े और अज्ञातवास में जीवन के दिन व्यतीत करने पड़े, इसी कर्म-शक्ति के प्रकोप के कारण ही चरम तीर्थंकर भगवान महावीर को साढे वारह वर्ष तक असह्य और भीषण उपसर्गों-संकटों का सामना करना पड़ा, इन्हें पर्वतों से गिराया गया, इनके कानों में कीलें ठोकी गई, यह सव कर्मशक्ति के प्रकोप का ही परिणाम था, इसीलिए मैं कह रहा हूँ कि पाप कर्म की शक्ति वड़ी प्रवल है इसके आगे धन, परिजन आदि की सभी शक्तियाँ निर्वल और निस्तेज पड़ जाती हैं। इस महाशक्ति पर विजय पाने वाली संसार में यदि कोई शक्ति है तो वह केवल धर्म की ही शक्ति है। धर्म-शक्ति का धारक महापुरुष ही कर्म-शक्ति पर विजय प्राप्त करता है और धीरे-धीरे, अध्यात्म-साधना की पगडण्डियाँ नापता हुआ एक दिन वह निर्वाणपद-मोक्षपद की उपलब्धि कर लेता है।

सर्प का डंक मारना—

कर्मो के भयंकर चक्र की वात ऊपर की पंक्तियों में निवेदन कर चुका हूँ। कर्मो के इस भयंकर चक्र में सुर, नर और असुर सभी उलझे हुए हैं। कोई इनसे वचा हो ऐसा दिखाई नहीं देता। हमारे चरितनायक श्री माडूसिंह जी भी इस चक्र से वच नहीं सके। कर्मो ने इनको वुरी तरह आक्रान्त कर लिया था। इन्होंने अभी शैशवावस्था पार की थी, वाल्यावस्था में पदार्पण करने ही लगे थे कि एक वार अपने खेत की ओर जा रहे थे, अभी खेत के

निकट ही पहुँचे थे कि अचानक झाड़ी[1] से एक विषैला सर्प निकला और उसने निकलते ही हमारे चरितनायक के जाँघ पर डंक दे मारा। डंक लगते ही वेदना का होना तो स्वाभाविक ही था, परन्तु उस वेदना काल में भी ये घबराये नहीं और जैसे-तैसे अपने खेत में पहुँचते ही सर्प के डंक मारने की सारी कहानी इन्होंने अपने पूज्य पिता चौधरी तेजाराम जी को सुनाई। चौधरी साहिब सर्प डंक की दुर्घटना सुनकर एकदम घबरा गए। उन्होंने तत्काल पास के खेत में काम कर रहे अपने एक पुराने साथी को बुलाया, उसके आ जाने पर उससे बोले—माडू के जाँघ पर सर्प ने डंक मार दिया है, यदि देर हो गई तो इसकी जीवन-लीला समाप्त हो जाएगी, इसलिए तू माडू की टाँग को जोर से पकड़ कर रख, ताकि विष का असर आगे न बढ़े और मैं अभी सर्प के विष को जला देता हूँ। चौधरी साहिब के कहने के अनुसार उनके साथी ने चरितनायक की टाँग को पूरी शक्ति के साथ पकड़ लिया, और जहाँ पर सर्प ने डंक मारा था उतने भाग को जला दिया।[2] विष को जलाने से चरितनायक जी को कष्टानुभूति तो बहुत हुई, परन्तु इन्होंने पूर्णरूपेण धीरता रखकर उसे सहन किया। इस कष्ट सहिष्णुता का सुपरिणाम यह निकला कि विष का प्रभाव जड़ से ही मिटा दिया गया और इनके प्राणों की रक्षा हो गई।

चौधरी तेजाराम के लाड़ले माडूसिंह को सर्प ने डंक मार दिया, इस दुर्घटना की खबर पपिलाद गाँव में बिजली की भाँति फैल गई। गाँव के जिस किसी व्यक्ति ने जब इस दुःखद घटना को सुना तो उसे हार्दिक दुःख एवं विक्षोभ हुआ। साथ में तत्काल वह अपने-अपने इष्टदेव के आगे प्रार्थना करने लगा कि हे प्रभो! हमारे माडू को बचाओ वह हमारे गाँव की शान है, हमारा गौरव है, उसका बाल भी बाँका नहीं होना चाहिये। हितचिन्तक लोग अपने इष्टदेव से प्रार्थना भी कर रहे थे और साथ में चौधरी तेजाराम

---

[1] कँटीले पौधों या झाड़ों के समूह को झाड़ी कहते हैं। झाड़ का अर्थ है—छोटा पेड़ या पौधा जिस जड़ से डालियों जैसे कई तने निकल झाड़ियों के शक्ल में फैल जाएँ। —**बृहत् हिन्दीकोष**

[2] वयोवृद्ध लोगों का कहना है कि सौ साल पहले विष जलाने की अनेकों पद्धतियाँ मिलती हैं। जैसे—डंक-स्थान पर जाज्वल्यमान लोहे का स्पर्श कराना, या डंक स्थान पर धधकते अङ्गारे रखना, या डंक स्थान पर औषध-विशेष का प्रयोग करना या मंत्र विशेष को अमुक संख्या में पढ़ कर डंक स्थान पर फूँकें मारना।

के खेत की ओर भागे जा रहे थे, श्री माडूसिंह के स्वास्थ्य का पता लगाने के लिए आने वाले हितचिन्तक लोगों की चौधरी तेजाराम के खेत में धीरे-धीरे वहुत वड़ी भीड़ जमा हो गई। सव सम्वेदना प्रकट कर रहे थे, परन्तु जब उनको यह वताया गया कि विप को जला दिया है, और माडू को वचा लिया गया है तव सव आनन्द-विभोर हो उठे और अपने-अपने इष्टदेव का धन्यवाद करने लगे। सव की रसना पर एक ही स्वर गूँज रहा था—

जाको राखे साइयाँ, मार सके न कोय।
वाल न बाँका कर सके, जो जग वैरी होय॥

—जिस मनुष्य को साई (पुण्य) वचानेवाला होता है, उसे कोई मार नहीं सकता वह सदा सुरक्षित रहता है। मारणान्तिक कष्ट आने पर भी वह वच जाता है। यदि समस्त जगत् भी उसके विरोध में खड़ा हो जाए तो भी उसका वाल-वाँका नहीं हो सकता।

पञ्चतन्त्र के निर्माता आचार्य विष्णु शर्मा के स्वर के साथ पपिलाद गाँव के लोगों का स्वर मिलाकर यदि कहना चाहें तो कह सकते हैं—

अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितं, सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति।
जीवत्यनाथोऽपि वने विसर्जितः, कृतप्रयत्नोऽपि गृहे विनश्यति॥

—रक्षा का कोई साधन न होने पर भी दैवरक्षित (भाग्य द्वारा वचाया हुआ) मनुष्य सदा सुरक्षित रहता है। और रक्षा के सभी साधन विद्यमान होने पर भी दैवहत-भाग्य से असुरक्षित मनुष्य विनष्ट हो जाता है। देखा जाता है कि वन में छोड़ा हुआ अनाथ मनुष्य वच जाता है और घर में अनेक विधि प्रयत्न करने पर भी मनुष्य मृत्यु का ग्रास वन जाता है।

चरितनायक के सर्प डंक को लेकर सम्वेदना प्रकट करने के लिए जितने भी सज्जन आए थे चौधरी तेजाराम ने सव का स्वागत किया और उनको जव सानन्द विदा कर दिया तो एकान्त स्थान में वैठ जाने पर उनके हृदय सागर में अनेक विध तरङ्गें उठने लगीं। ये चरितनायक के सर्प डंक की आकस्मिक दुर्घटना से वड़े प्रभावित हो रहे थे। परिणामस्वरूप वे सोचने लगे—

कर्म की गति कितनी गहन है? कौन इसका पार पा सकता है? यह किसी को नहीं छोड़ता, वड़े-वड़े लोगों की क्या वात करें, यह छोटे-छोटे नन्हे मुन्ने वालकों को भी क्षमा नहीं करता, माडू की क्या उम्र है? छोटा-सा वच्चा है, कितना अच्छा है, आज्ञाकारी, सुशील, सुविनीत और सुयोग्य है किसी से लड़ता नहीं, झगड़ता नहीं, मांसाहार, धूम्रपान आदि किसी भी प्रकार का इसमें कोई कुव्यसन नहीं है। साधु-सन्तों का यह परमभक्त है, नित्य-

नियम भी करता है, बच्चा होने पर भी खेल-कूद की ओर इसका जरा ध्यान नहीं है, सर्वथा सात्त्विकवृत्ति से अपना जीवन चला रहा है, तथापि कर्म ऐसे भयंकर हैं कि इस जैसे सात्त्विक और प्रभु-भक्त बच्चे पर भी दया नहीं करते। आज तो अनर्थ हो गया होता, विषैले सर्प ने ऐसा भयंकर डंक मारा था कि बेचारे माडू की जीवन-नय्या ही मँझधार में आ गई थी। पीछे इसने कोई दान-पुण्य ही कर रक्खा था, जिसके प्रताप से यह बच गया, नहीं तो कर्मों ने इसको मारने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी।

हमारे मान्य चरितनायक के पूज्य पिता चौधरी तेजाराम जी जो कुछ विचार कर रहे थे, वह सर्वथा यथार्थ, व्यवहार सम्मत और शास्त्रसम्मत ही था, वस्तुतः कर्म की शक्ति है भी प्रबल, इसकी प्रबलता से किसी को क्या इन्कार हो सकता है ? तभी तो भक्तराज भर्तृहरि को यह कहना पड़ा था—**तस्मै नमः कर्मणे** हे कर्मदेव ! विश्व की बड़ी से बड़ी शक्ति को देखा। समय आने पर उसका सामना भी किया, परन्तु मन में कभी व्याकुलता नहीं आई, कर्मराज ! केवल तेरी ही शक्ति ऐसी विलक्षण है कि उसके सामने नतमस्तक हुए बिना कोई चारा नहीं। तेरी शक्ति के सम्मुख अन्य सब शक्तियां निस्तेज हो जाती है। कविता की भाषा में यदि इस तथ्य को अभिव्यक्त करना चाहें तो कह सकते हैं—

शक्ति कर्म की प्रबल है, छोड़े नहीं सुरेश।
खेदखिन्न "मुनिज्ञान" है, जपी, तपी अखिलेश॥
कीले कानों में ठुके, वीर प्रभु वर्द्धमान।
नहीं बचे "मुनिज्ञान" हैं, तीर्थंकर भगवान॥
कोल्हू में खन्धक पिले, पाया दुःख अपार।
तभी कहत 'मुनिज्ञान" हैं, कर्म बड़े बलवान॥
हरिश्चन्द्र काशी बिके, संकट का ना पार।
कर्म बली "मुनिज्ञान" है, बचे न कृष्ण मुरार॥
रामचन्द्र भी कर्म से, बहुत हुए हैरान।
राज्य तजा, वन-वन फिरे, सब जानें "मुनिज्ञान"॥
चन्दनबाला, द्रौपदी, कैसी थीं गुणवान।
संकट झेले खूब थे, काँप उठा 'मुनिज्ञान"॥
ऊँची जिनकी साधना, ऊँचा है आचार।
परम-सन्त "मुनिज्ञान" भी, कर्मों से लाचार॥

संसार के छोटे-बड़े सभी प्राणी कर्मों के चक्र में फँसे हुए हैं। जब तक यह जीव जन्म-मरण के जाल में फँसा हुआ है तब तक इस पर कर्म च-

अपना प्रभाव दिखलाता ही रहता है, इससे न कोई संसारी जीव अछूता रह सका है, और न किसी के अछूता रहने की संभावना है। चाहे राजा हो या रंक, योगी हो या भोगी, धनी हो या निर्धन, बूढ़ा हो या बालक, कर्मों के प्रहारों से अपने आप को कोई नहीं बचा पाया। इस तरह चौधरी तेजारामजी की विचारणा गम्भीरता की पगडण्डियाँ पार करती जा रही थीं। चौधरी साहिब की अन्तरात्मा ने फिर कहा—जब तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वासुदेव जैसे पुण्यात्मा महापुरुष को भी कर्मों ने नहीं छोड़े तो बेचारा माडू किस गणना में है। सौभाग्य की बात है कि कर्मों के लपेट में आ जाने पर भी माडू बाल-बाल बच गया।

चौधरी साहिब ज्वराक्रान्त—

पाठकों ने हिण्डोला तो देखा ही होगा, उसके चार भाग होते हैं, दो मध्य में एक ऊपर और एक सब से नीचे। जब हिण्डोला चलता है तो उसका नीचे का भाग मध्य में आ जाता है मध्य वाला ऊपर और ऊपर वाला भाग मध्य में होता हुआ अन्त में नीचे चला जाता है। इस तरह ऊपर के भाग में बैठने वाले व्यक्ति नीचे और नीचे के भाग में बैठने वाले लोग ऊपर चले जाते हैं। अनुभवी महापुरुषों का फरमान है कि प्राणिजगत का जीवन भी एक प्रकार का हिण्डोला होता है। हिण्डोले की भाँति लोगों के जीवन में भी कभी उतार और कभी चढ़ाव आते दिखाई देते है। जीवन में जब शुभ कर्मों का चक्र चलता है, पुण्य का देवता सन्तुष्ट होता है तो उस समय चारों ओर से सुखों के दर्शन होते हैं, जीवन नभ पर आनन्द और शान्ति के मेघ उमड़-उमड़ कर आते दिखाई देते हैं, सभी सुख-सुविधाएँ सम्प्राप्त होती हैं, किसी भी प्रकार की प्रतिकूलता नही रहने पाती, किन्तु जब जीवन में अशुभ कर्मों का चक्र चलना आरम्भ हो जाता है तो जीवन बगिया उजड़ती दिखाई देती है जीवन को दुःख और संकट की भयंकर ज्वालाएँ बुरी तरह दग्ध करने लग जाती हैं, सर्वत्र निराशा और हताशा का साम्राज्य स्थापित हो जाता है, अपने भी बेगाने हो जाते हैं।

बताया जा चुका है कि चौधरी तेजाराम और माता यमुनादेवी की जीवन यात्रा बड़ी शान्ति और मस्ती से सम्पन्न हो रही थी। शुभ कर्मों के महादेव की इतनी अधिक दयादृष्टि थी कि कुछ कहते नहीं बनता। जब शुभ कर्म साथ दे रहा हो, तो फिर दुःख और क्लेश का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता चौधरी जी के घर में सब प्रकार से आनन्द मंगल चल रहा था परन्तु शुभ कर्म ने जब अपनी दृष्टि परिवर्तित करली, अशुभ कर्म का उदय हो गया तो जीवनोद्यान के सुखरूपी पौधे मुरझाने आरम्भ हो गये। जिस घर में सर्वथा

सुख शान्ति थी, शोक व चिन्ता का चिन्ह भी नहीं था, अब उसी घर में दुःख-दानव साकार हो कर नृत्य करने लगा, सुख देवता वहाँ से प्रस्थान करता दिखाई देने लगा, जीवन-नभ पर दुःखों की काली-काली घटाएँ मँडराने लगीं, दुःखों के प्रहार होने लगे। प्रहार भी इतने भयंकर कि सारे परिवार के होश भुला दिए और उसे दुःखों के भयंकर नरक में ला पटका।

एक दिन की बात कि प्रातः काल होने पर चौधरी तेजाराम जी अपनी शय्या से उठे, बाहिर शौच गए, उन्होंने कूँए पर स्नान किया और जब वस्त्र धारण करने लगे तब वे कुछ सरदी अनुभव करने लगे, परन्तु उन्होंने कुछ परवाह नहीं की। कहीं बाहिर किसी रिस्तेदार को मिलने जाना था, फलतः वहाँ जाने की तैयारी करने लगे, कुछ सामान घर से लेना था, इसलिए शीघ्रता से वे घर पहुँचे। घर में प्रवेश करने की देर थी कि उनका शरीर काँपने लगा, प्रतिक्षण कपकपी बढ़ती जा रही थी, अन्त में शरीर निढाल हो गया, लाचार होकर वे अपनी धर्मपत्नी यमुनादेवी से बोले—मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं है। मैं लेटना चाहता हूँ। अपने पति की कपकपी देखकर स्वयं यमुनादेवी हैरान रह गई, वह तत्काल उठीं, खाट पर बिस्तर बिछा दिया और चौधरी साहिब उस पर विश्राम करने लगे। अशुभ कर्मो का प्रकोप समझिए कि शरीर की दशा और खराब होने लगी। माता यमुनादेवी ने जब चौधरी साहिब के शरीर का स्पर्श किया तो वह अंगीठी पर रक्खे तवे की तरह तप रहा था। बोली—आपको तो बहुत तेज ज्वर चढ़ गया है। मैं अभी वैद्य को बुलाती हूँ। जब यमुनादेवी घर से निकलने लगीं तो चौधरी साहिब बोले—क्या करेगी वैद्य को बुलाकर, यह ज्वर नहीं है यह तो यमराज का बुलावा दिखाई देता है। जीवन में इतना भयंकर संकट कभी नहीं देखा, मालूम होता है जीवन की अन्तिम घड़ी आ गई है। आराम से घर बैठो, कोई भगवान का भजन सुना, अब अन्य किसी औषधि की आवश्यकता नहीं। इतना कहकर चौधरी साहिब मौन हो गए और असह्य व्यथा के कारण कराहने लगे।

पूज्य पतिदेव के कराहने की आवाज सुनकर यमुनादेवी सन्न रह गई उसके हाथों के तोते उड़ गए। पहले तो पतिदेव की बातों ने ही दिल दहला दिया था परन्तु अब उनकी चिन्तनीय स्थिति देखकर उसे वज्राहत की भांति वेदना हुई, उसकी आँखों के आगे अन्धेरा आ गया, गश खाकर गिर पड़ी। इधर बाहिर से अचानक हमारे चरितनायक श्री माडूसिंहजी आ गए। माता यमुनादेवी के एकदम भूमि पर गिरने से बड़े जोर की आवाज हुई। चरित्र-नायक तत्काल घर के अन्दर गए, माता को बेहोश पड़े देखा, तो मन को बड़ा धक्का लगा उसी समय माता को संभाला, उसे होश में लाया गया। होश में आते ही अपने लाल को निहार कर माता यमुनादेवी भरे गले से कहने लगीं-

वेटा ! मेरा कुछ नहीं 'विगड़ा' मैं तो ठीक हूँ । अपने पिता को संभाः उनकी स्थिति समझ से वाहिर होती जा रही है । जल्दी कर, वैद्य को वुलाः नहीं तो हाथ मलता रह जाएगा । देख सामने मछली की तरह कैसे तड़प रहे हैं ?

चरितनायक अपनी माता की वात सुनकर जव अपने पिता की ओर जाने लगे तो एकदम इनकी माता ने फिर आवाज दी—वेटा तू वैद्य को ला, इनको क्या देखेगा यह तो आँखें फेरते दिखाई दे रहे हैं, पता नहीं कौन सा पाप उदय में आ गया है । जा तू देर मत कर, वैद्य को ले आ । ध्यान रखना, वैद्य को साथ लाना । पूज्य माता जी की आवाज के साथ चरित नायक वापिस हो लिए और तत्काल गाँव के प्रसिद्ध वैद्य को वुला लाए । वैद्य गांव में सवसे पुराना था, अनुभवी और सुयोग्य समझा जाता था । हजारों व्यक्तियों ने इनके हाथों जीवन उपलब्ध किया था, किन्तु वैद्य जी जव घर में प्रविष्ट हुए तो चौधरी तेजाराम जी ज्वराधिक्य के कारण वेहोश हो रहे थे और वड़वड़ाने लगे थे । चौधरी साहिव की यह दशा देखकर वैद्यजी वड़े घवराए । यमुनादेवी को रोती देखकर वोले—वेटी ! रो मत, रोना हर वीमारी का इलाज नहीं होता, प्रयत्न करना अपना कर्तव्य है । जव तक सास है तव तक मनुष्य को आशा होती है । वैसे चौधरी साहिव वहुत वुरी तरह से घिर चुके हैं । वीमारी ने इनको पूरी तरह से दवोच लिया है । अव तो आयुष्कर्म के वलवान होने की वात है । यदि चौधरी साहिव का आयुष्कर्म शेष है । वाकी है तो इनका कुछ नहीं विगड़ा है, दुनिया की कोई वीमारी इनका वाल भी वांका नहीं कर सकती । औपधि देकर देखते हैं । वैद्य जी ने चौधरी साहिव को दवाई दी, परन्तु औपधि का कोई असर नहीं हुआ । वही वात वनी—
"मर्ज वढ़ता गया, ज्यों-ज्यों दवा की ।"

चौधरी तेजाराम जी जव होश में आए तव उन्होंने पास में बैठे वैद्य को देखा । दवाई लेने से विल्कुल इनकार करते हुए वे कहने लगे—वैद्य जी ! यमराज के क्रूर हाथ जव मनुष्य को दवोच लेते हैं तव सामान्य दवाई की तो वात क्या है, यदि रोगी को रसायन भी खिला दी जाए तो उसका भी कोई प्रभाव नहीं हो सकता, माडू की माँ तो भोली है, यह मुझे यमराज के चंगुल से छुड़ाना चाहती है, और इसीलिए आप को वुलाया गया है, परन्तु अव मेरा यमराज के चंगुल से छूटना मुश्किल ही नहीं, असम्भव है । मुझे कोई दवाई देने का कष्ट न करें अव तो भगवान् के घर की कोई वात हो तो सुनाएँ । इतना कहने के साथ ही चौधरी साहिव फिर वेहोश हो गए ।

ज्वर की भयंकरता ने चौधरी तेजाराम जी के शरीर को विल्कुल निढाल

कर दिया। शरीर की चिन्तनीय दशा को देखकर वैद्य जी बिल्कुल निराश हो गए। चौधरी साहिब का स्वास्थ्य सुधर सकेगा इस बात को उन्होंने अपने हृदय से निकाल दिया, परिणाम स्वरूप वे निराशापूर्ण स्वर में चरितनायक की पूज्य माता से बोले— बेटी यमुना ! चौधरी तेजाराम की जीवन नय्या तो मंझधार में आ गयी है। कोई ऊपर की शक्ति बचा दे तो इनको बचा दे, नहीं तो अभी कोई स्थिति अच्छी दिखाई नहीं देती। माता यमुनादेवी वैद्यराज की बात सुनकर चित्रलिखित सी रह गई, क्षणों में सौभाग्य के लुट जाने की स्थिति बन जायगी, स्वर्ग जैसा घर नरक बन जाएगा, ऐसी उसे स्वप्न में भी आशा नहीं थी। माता यमुना की आँखे यमुना की धारा की भाँति आँसू बहाने लगीं, हमारे चरितनायक तथा अन्य सभी परिवार के सदस्य भी अपने को नियन्त्रण में न रख सके। सभी की आँखों पें आँसू बरबस प्रवाहित होने लगे।

चौधरी साहिब का देहान्त—

बताया जा चुका है कि चौधरी तेजाराम जी की स्थिति पूर्णरूपेण चिन्ता जनक हो चुकी थी, वैद्य जी ने जवाब दे दिया था माता यमुनादेवी, चरित-नायक तथा परिवार के सभी सदस्य भी सर्वथा निराश हो रहे थे, सबकी आँखें सावन-भादों के महीने की तरह आँसुओं की वर्षा कर रही थीं, घर का सारा वातावरण ही दुःखमय बन चुका था। चौधरी साहिब की चिन्ताजनक स्थिति की खबर पपिलाद गांव के कोने-कोने में फैल चुकी थी, फलतः सभी लोग चौधरी साहिब की खबर लेने के लिए उनके घर पहुँच रहे थे। चौधरी साहिब की मरणासन्न दशा देख कर सभी को हार्दिक दुःख था पर क्या कर सकते थे, भवितव्यता के आगे सब लाचार थे, म्लान-मुख हुए सभी अपने अपने इष्टदेव का स्मरण करते हुए चौधरी साहिब की जीवन रक्षा के लिए मंगलकामना कर रहे थे, परन्तु काल विकराल के आगे किसका वश चल सका है, यहाँ चक्रवर्ती और तीर्थंकर जैसी सर्वोच्च शक्तियाँ भी नहीं टिक सकी हैं। फिर बेचारे तेजाराम जी किस गणना में थे ? सब देखते ही रह गए कि चौधरी साहिब को एक जोर की उबासी आई और चौधरी साहिब सदा के लिए शान्त हो गए। इस पार्थिव शरीर को छोड़कर परलोक सिधार गए। परन्तु यह देखकर सब के सब आश्चर्य-चकित हो रहे थे कि दिवंगत चौधरी साहिब के मुख पर दीनता या विषाद का कोई भी चिन्ह नहीं था प्रत्युत उनके मुख पर शान्ति और गम्भीरता मानो साकार होकर नृत्य कर रही थी।

शोक की काली घटाएँ

चौधरी साहिब के मृत्यु के समाचार को जिस किसी ने सुना, उसे हार्दिक विक्षोभ हुए विना नहीं रहा। सवकी अन्तरात्मा तड़प उठी। सवको ऐसा धक्का-सा लगा कि कुछ कहते ही नहीं वनता। सवको यही अनुभव हो रहा था जैसे कोई अनमोल वस्तु हमसे छिन गई है। जिस किसी को देखो उसी की रसना पर चौधरी तेजाराम के दुःखद और आकस्मिक निधन की चर्चा चल रही थी और सभी की हृत्तंत्री पर यही स्वर नाच रहे थे कि चौधरी तेजाराम बड़े अच्छे व्यक्ति थे, आचार, विचार की दृष्टि से महान थे, गाँव के किसी व्यक्ति के साथ उनका मनमुटाव नहीं था। हो सके तो वे सवके काम संवारते थे, उनसे किसी को अनिष्ट की कभी संभावना नहीं होती थी, वे सवके थे। आँखें उनकी सदा नीची रहती थीं। मन में जरा अभिमान नहीं था किसी की धी-वहिन को बुरी दृष्टि से देखने का प्रश्न ही नहीं उठता था। गाँव की प्रत्येक धी-वहिन को अपनी ही धी-वहिन मानते थे, लेन-देन में वड़े प्रामाणिक थे, किसी को धोखा देना, किसी के साथ विश्वासघात करना तो इन्होंने सीखा ही नहीं था, साधु-सन्तों के सच्चे भक्त थे, पक्के सतसंगी थे, कितने भी व्यस्त और अस्वस्थ हों परन्तु यथासंभव कोई सत्संग नहीं छोड़ते थे, इस तरह गाँव के लोग चौधरी तेजाराम जी के व्यक्तित्व की सराहना करते थकते नहीं थे। विज्ञ पाठक जानते ही हैं कि वास्तविक मृत्यु वही मानी जाती है जिस पर जनता जनार्दन दुःखानुभूति व्यक्त करे अन्यथा मरने को तो जगती के सभी प्राणियों को अन्त में एक दिन मरना ही होता है। उर्दू भाषा का कवि कितनी हृदयस्पर्शी वात कह रहा है—

मौत उसकी है, करे जिस पर जमाना अफसोस।
यूँ तो आते हैं सभी लोग ही मरने के लिए।

खेती जव पक जाती है और किसान को जव अनाज से अपना घर भर जाने की घड़ी सम्मुख आती दिखाई देती है तव उस समय उस लहलहाती खेती को यदि कोई आग लगादे और जलाकर उसे राख की ढेरी वना डाले तो जो दशा उस किसान की होती है, उससे भी भयंकर दशा हमारे मान्य चरितनायक श्री माडूसिंहजी की पूज्य माता श्री यमुनादेवी की वन रही थी। पति नारी का सर्वस्व होता है, उसके जीवन का प्राण माना गया है, उसके स्वर्गवासी वन जाने पर नारी का तड़पना, अस्वाभाविक नहीं है, फिर माता यमुनादेवी तो एक पतिव्रता और एक चरित्रशील नारी थीं। पतिदेव का देहान्त हो जाने पर इनका परिपीड़ित होना या इनके जीवन में एक भूकम्प आना तो स्वाभाविक ही था, मृत-पतिदेव के चरणों में मस्तक रखकर

"रहे वीर ना धीर भी, रहे नहीं गुणवान ।'[1]
काल वली ने खालिए, वड़े-वड़े मुनिज्ञान ॥"
राज्य किया छह खण्ड पर, झुकता था संसार ।
सभी गए "मुनि ज्ञान" हैं जिनका तेज अपार ॥
मरना सबको एक दिन, रक्खो यह विश्वास ।
जपी, तपी "मुनि ज्ञान" हो, या राजा स्वामी दास ॥
चार दिनों की जिन्दगी, इतना क्यों अभिमान ।
सोच जरा "मुनिज्ञान" तू क्यों बनता नादान ॥
जन्म लिया जिस जीव ने, मरना उसे जरूर ।
बचे नहीं "मुनि ज्ञान" हैं, योद्धा, दानी, शूर ॥

हमारे चरितनायक की पूज्य माताजी काल-गति की विचित्रता को भलीभाँति समझती थीं और यह भी खूब जानती थीं कि—

नव द्वारे का पिंजरा, पंछी तामें पौन ।
रहने को अचरज है, गए अचंभा कौन ॥

यह शरीर नव द्वारों वाला एक पिञ्जरा है जीवरूपी पवन इसमें पक्षी निवास करता है । नव द्वार निकलने के होने पर भी जीव इसमें ठहर रहा है यही आश्चर्य का स्थान है, इस पिंजरे में से जीव के निकल जाने का क्या आश्चर्य हो सकता है ? ममता एक बन्धन है— माता यमुनादेवी समझती थीं कि जीवरूपी पवन का नवद्वार वाले पिंजरे में निकल जाना कोई आश्चर्य वाली बात नहीं है ।

तथापि पति-पत्नी के ममता-पूर्ण कुछ ऐसे ही सम्बन्ध होते हैं जिनके कारण उसे अपने पतिदेव के वियोग को सहन करना असह्य हो गया था । ममता-सम्बन्ध का भी जीवन में एक विलक्षण स्थान है । ममता का अर्थ है—मेरा पन । मेरा-पन भी एक जबर्दस्त बन्धन है । लोहे के बन्धन को तोड़ना आसान है, परन्तु ममता के बन्धन को तोड़ना बड़ा कठिन कार्य है । ममता के क्षेत्र में संसारी जीव तो उलझ ही रहे हैं परन्तु संसार-त्यागी साधु मुनिराजों को भी इस ममता पर विजय प्राप्त करना साधारण बात नहीं है । इतिहास इस सत्य का गवाह है । श्रेष्ठिपुत्र शालिभद्र जैसे महामुनि, परमजितेन्द्रिय और परमत्यागी महापुरुष भी ममतादेवी के आगे पराजित हो गए थे । १४ हजार साधुओं के नायक श्री इन्द्रभूति गौतम भी ममता के

---

[1] ध्वनि—दोहा—छन्द

बन्धनों को नहीं तोड़ सके और ममता के बन्धनों से आवद्ध होने के कारण ही केवलज्ञान की विभूति से वञ्चित रह गए। महावीर-निर्वाण के अनन्तर जब इन्होंने ममता के बन्धन को तोड़ा तब कहीं जाकर ये केवलज्ञान की पावन ज्योति से ज्योतित हो सके थे। मैं कह रहा था, ममता को तोड़ना बड़ा मुश्किल होता है। ममता से ही जीव अनेकानेक दुःख भोगता है। माता यमुनादेवी धर्मप्रिया और विवेकवती होने पर भी ममता से पिण्ड नहीं छुड़ा सकी थीं। केवल ममत्व के कारण ही उसे चौधरी तेजाराम के वियोग-जन्य दुःख सहन करना कठिन हो गया था। दूसरे, प्रीतम के स्वर्गवासी हो जाने पर नारी का सब संसार सूना हो जाता है, उसका जीवन धन लुट जाता है, उसकी आशाओं के सब दीपक बुझ जाते हैं, और उसके-जीवन मन्दिर में निराशा का भयंकर अन्धकार व्याप्त हो जाता है। इस दृष्टि से भी माता यमुनादेवी का अपना सर्वस्व खोकर आकुल-व्याकुल होना और उसका हृदयाकाश दुःख, शोक एवं चिन्ता की काली-काली डरावनी घटाओं से आच्छादित हो जाना स्वाभाविक ही है।

यमुनादेवी का मन को समझाना—

मनोविज्ञान का अनादिकालीन एक नियम है कि जब मनुष्य के जीवन में निराशा और हताशा अपने यौवन पर आजाती है और कहीं पर उसे जब प्रकाश की कोई किरण दिखाई नहीं देती तो वह जीवन की अपेक्षा मृत्यु को अधिक महत्व प्रदान करने लग जाता है, उसके हृदय से सदा यही आवाज निकलती है कि मर जाऊँ, आत्महत्या कर लूं, गाड़ी के नीचे सिर रखकर अपनी जीवन-लीला समाप्त कर दूं, या संखिया खाकर मृत्यु की गोद में सदा के लिए सो जाऊँ, या मिट्टी का तेल अपने ऊपर छिड़ककर अग्नि के द्वारा अपने आप को भस्म कर डालूं और दुनियाँ की आँखों से सदा के लिए ओझल हो जाऊँ या दरिया या किसी गहरी नहर में छलांग लगाकर पानी की लहरों में सदा के लिए समा जाऊँ और जीवनगत दुःखों, क्लेशों, संकटों, आपदाओं एवं प्रतिकूल परिस्थितियों से मुक्ति अधिगत कर लूं, इस तरह निराश और दुःखी व्यक्ति प्रतिपल. प्रतिक्षण मर जाने की ही बात सोचता रहता है, जीवित रहने की अपेक्षा जीवनान्त को वह अधिक श्रेष्ठ मानता है। परन्तु जब उसे किसी सन्तजन सत्संग या किसी धर्मशास्त्र का सम्पर्क मिलता है और उसके कर्णकुटीर में ये आवाजें पड़ती हैं कि आत्महत्या करना एक भयंकर पाप है, एक कुत्सित कायरता है या एक घृणित दुर्बलता है और मनुष्य-जीवन की सबसे बड़ी भूल है तथा उसे जब कोई मनीषी व्यक्ति समझाता है कि आत्म-

हत्या को सुख का साधन जानना सर्वनिन्दित मूर्खता है, जीवन का पतन करनेवाली विवेक विकलता है और नरक प्रदात्री अज्ञानता है तब वह निराश व्यक्ति आत्महत्या के दुःखद, जन्म-मरण की परम्परा के सम्वर्धक एवं गर्हित मार्ग से दूर रहने की बात सोचता है। हानि-लाभ की गम्भीर चिन्तना के अनन्तर अन्त में उसकी अन्तर्वीणा स्वयं ही झंकृत हो उठती है, जिसमें से वही स्वर निकलते सुनाई पड़ते हैं—

अब तो घबराके कहते हैं कि मर जाएँगे।
मरके भी चैन न पाया तो किधर जाएँगे ? ॥

देखा भी जाता है कि सुख-शान्ति पाना, या दुःखों, क्लेशों से किनारा प्राप्त कर लेना मनुष्य के अपने हाथ की बात नहीं है। यदि सुखी होना या दुःखों से उन्मुक्त रहना मनुष्य के अपने हाथ में होता तो वह सर्वदा सुखी ही रहता, और दुःखों को कभी निकट न आने देता। वास्तव में देखा जाए तो इस सत्य को स्वीकार ही करना पड़ता है कि जीवन में सुख-दुःख का जो चक्र चलता है व्यक्ति कभी सुख सम्पदा की शय्या पर विश्राम करता है और कभी दुखों की भीषण ज्वालाओं से भस्मसात् हो जाता है, इसके पीछे ईश्वर नाम की किसी परम शक्ति या किसी देवी-देवता आदि दिव्यशक्ति का कोई हाथ नहीं है, यहाँ पर तो केवल कर्म की शक्ति का ही हाथ चलता है। सुख-दुःख का मूल कारण जीव का अपना ही कृत-कर्म है। कर्म ही जीव को सुखी एवं दुःखी बनाता है। जीवनोपवन में वसन्त और पतझड़ कर्म की कृपा से साकार रूप ग्रहण करते दिखाई देते हैं।

जैन दर्शन के विश्वासानुसार कर्म शुभ और अशुभ दोनों ही प्रकार के होते हैं। जीवन में जब शुभकर्म का आगमन होता है तो जीवन मस्ती में झूमने लगता है, चारों ओर से जीवनांगण में सुखों की वर्षा होने लगती हैं। शत्रु नतमस्तक हो जाते हैं, विरोध करना छोड़ देते हैं। अधिक क्या समस्त संसार भी पुण्यवान के सम्मुख विरोधी बनकर खड़ा हो तब भी उसका बाल-बाँका नहीं होने पाता, पराजय-जन्य दुःख ढूँढ़ने पर भी उसके सामने नहीं आ सकता! इसी तथ्य को कविता की भाषा में कहें तो कह सकते हैं—

पुण्य देव रक्षा करें, सिर पर राखें हाथ।
अरिजन भी 'मुनि ज्ञान' फिर, सभी झुकाएं माथ॥
अनपढ़ मानुष पुण्य से, लगता है विद्वान।
पुण्यदेव 'मुनि ज्ञान' है, देता सौख्यनिधान॥

कुष्ट रोग भी हो भले पल में होवे दूर।
पुण्यरूप 'मुनि ज्ञान' है, सब नूरों का नूर॥
पुन्यवान से सब डरं, क्या देवी क्या देव।
सुर नर भी 'मुनि ज्ञान' सब, उसकी करते सेव॥

इसके विपरीत जब अशुभ कर्म की अमावस्या जीवन को आक्रान्त कर लेती है तब दुःख जन्म लेना आरंभ कर देते हैं, शरीर में बीमारियाँ फूट पड़ती हैं, शरीर रोगों का घर बन जाता है, अपने बेगाने बन जाते हैं, मित्र शत्रुता का प्रदर्शन करने लगते हैं. व्यापार में नुकसान होता है सारा संसार भी यदि अनुकूलता या हितैषिता की बात करने लगे फिर भी कर्महीन को कुछ लाभ नहीं होता, स्वयं सुख का देवता भी सुखों की वर्षा करना चाहे तब भी भाग्यहीन को सुखों की प्राप्ति नहीं होती, अधिक क्या आचार-विचार की समुज्ज्वल ज्योति से सदा ज्योतित रहने वाले तथा महान प्रभाविक ऋद्धि-सिद्धियों के अखूट भण्डार साधु-मुनिराजों के चरण-स्पर्श कर लेने पर भी भाग्य-हीन व्यक्ति की मंझधार में आई नौका किनारा प्राप्त करने में विफल रहती है। इसीलिए तो अनुभवी महापुरुषों को यह उद्घोष करना पड़ा—

भाग्यहीन को न मिले, भली वस्तु का योग।
जब दाखें पकने लगीं, काग कण्ठ भयो रोग॥

पाप कर्म के दुष्परिणाम कितने भयंकर होते हैं ? इस सम्बन्ध में कविता की भाषा में कुछ और निवेदन करता है—

पाप उदय जब होत है, छा जाए अन्धेर।
सुर नर को 'मुनि ज्ञान' फिर, संकट ले झट घेर॥
सूझबूझ फिर नष्ट हो, दुश्मन बने जहान।
पाप शत्रु बलवान है, जगती में 'मुनि ज्ञान'॥
नहीं रहे सुख सम्पदा, दुखिया हो परिवार।
सौख्य कहाँ 'मुनि ज्ञान' फिर, पाप करें जब ख्वार॥

जीवन दर्शन का दर्शन करने पर बिना किसी झिझक के यह कहा जा सकता है कि जीवन में जो भी अच्छा और बुरा वातावरण दृष्टिगोचर होता है, शुभाशुभ कर्म के बिना उसका अन्य कोई कारण नहीं है। कर्म ही जीवन क्षेत्र को केसर की क्यारी बनाता है, यही कर्म उसे वीरान बनाने वाला है और यही कर्म उसमें जहरीले कांटे उगा देता है। जो लोग कर्मराज के इस स्वरूप को समझ लेते हैं, वे सुख-दुःख की वर्षा होने पर समरस रहते हैं।

दुःखों में कभी घबराते नहीं, भले ही जीवन में दुःखों की आँधियाँ चलने लग जाएँ तथापि वे शान्त और स्वस्थ रहते हैं, विवेक, धैर्य और सहनशीलता को हाथ से जाने नहीं देते और जब व्यक्ति के जीवन में सुखों की शीतल छाया का प्रसार होता है, सुखों के झूले पर जीवन झूलने लगता है, तब वह कर्म-मर्मज्ञ व्यक्ति कभी अभिमान नहीं करता, सुखों के अपार भण्डार हाथ आने पर भी सदा निरभिमान, नम्र और सूर्य की भाँति समरस रह कर ही जीवन यात्रा सम्पन्न करता है। हमारे सहृदय पाठक यह अच्छी तरह जानते ही हैं कि सूर्य जब उदय होता है तब खूब लाल सुर्ख होता है तेजस्विता और प्रसन्नता की वर्षा करता दिखाई देता है और जब सूर्य का अस्तकाल आता है वह अस्ताचल की ओर पांव बढ़ाता है तब भी वह उदयकाल की भाँति लाल सुर्ख दृष्टिगोचर होता है, उसकी लालिमा प्रातःकालीन लालिमा के समान दृष्टिगोचर होती है। जीवन के उदय काल में वह लाल हो, तेजस्वी हो और अस्तकाल आने पर खेदखिन्न होता हुआ अपनी लालिमा को छोड़ दे ऐसी स्थिति सूर्य की नहीं होती। फलतः सूर्य उदय और अस्त में, सुख और दुःख में, विकास और ह्रास में तथा जीवन की चढ़ाई और उतराई में एक समान रहता है, समरसता को खुले हाथों बाँटता देखा जाता है। सूर्य देवता की इस समरसता को संस्कृत भाषा के एक विद्वान आचार्य कितनी सुन्दरता से अभिव्यक्त कर रहे हैं—

उदये सविता रक्तः रक्तश्चास्तमये तथा।
सम्पत्तौ च विपत्तौ च, महतामेकरूपता॥

—उदय हो, अस्त हो, दोनों अवस्थाओं में जैसे सूर्य अपनी लालिमा का परित्याग नहीं करता, वैसे विवेकशील व्यक्ति भी जीवन की उदय और अस्त अर्थात् सुखमयी और दुःखमयी अवस्था में एकरूप रहता है, अपने बौद्धिक सन्तुलन से डांवाडोल नहीं होता। सुखी होने पर अभिमान नहीं करता और दुःखी होने पर निराश नहीं होता। भाव यह है कि वह अनुकूल और प्रतिकूल दोनों परिस्थितियों में एकरस रहता है।

हमारे मान्य चरितनायक श्री माडूसिंहजी की पूज्य माता श्री यमुनादेवी उपर्युक्त सत्यता को भलीभाँति समझती थीं। दैनिक सत्संग और साधु सन्तों के व्याख्यान का श्रवण करते रहने से इनका मानस शास्त्रीय ज्ञान के प्रकाश प्रकाशमान हो चुका था, इसीलिए भयंकर संकट-वेला में भी ये अपना मागी सन्तुलन खराब नहीं होने देती थीं। यह सत्य है कि चौधरी तेजारामजी आकस्मिक देहान्त हो जाने के कारण इनके जीवन में वैधव्य के दुःख का

जो भयंकर भूचाल आ गया था, उससे ये अवश्य तड़प उठी थीं, सुधबुध खो बैठी थीं। परन्तु ऐसा होना अस्वाभाविक नहीं था। क्योंकि नारी जीवन में वैधव्य से बढ़कर कोई दुःख नहीं होता। जिस नारी का सौभाग्य लुट जाता है, उसका सर्वस्व छिन जाता है। ऐसी दशा में पतिव्रता नारी का परिव्यथित होना, सुधबुध खो बैठना स्वाभाविक ही है। इसी स्वाभाविकता के कारण माता यमुनादेवी ने पति वियोग-जन्य दुःख से विह्वल होकर रुदन किया, दूसरों के हृदयों को कम्पित कर देने वाले करुणाजनक विलाप भी किए परन्तु ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता गया त्यों-त्यों उनका मन शान्ति अनुभव करने लगा। साधु-सन्तों के व्याख्यानों में सुने हुए अनित्य आदि भावनाओं के स्वरूपावबोध के कारण सम्प्राप्त हुए—

राजा, राणा छत्रपति, हाथिन के असवार।
मरना सबको एक दिन, अपनी-अपनी वार॥
दल बल देवी देवता, मात पिता परिवार।
मरतीं विरियां जीव का, कोई न राखनहार॥
आप अकेला अवतरे, मरे अकेला होय।
यों कबहूं इस जीव को, साथी सगा न कोय॥

इस ज्ञान-प्रकाश से मोहान्धकार समाप्त होने लगा। अन्त में इन्होंने विचार करना आरम्भ किया कि मेरा पतिदेव से इतना ही सम्बन्ध था, यदि उनसे मेरा इससे अधिक अथवा सदा का सम्बन्ध होता तो यह वियोग की घड़ी कभी सामने नहीं आ सकती थी। दूसरी बात, कौन किस का पति है कौन किसकी पत्नी है? ये तो काल्पनिक सम्बन्ध है। अतीत काल में जो पुत्र था वह वर्तमान में पिता बन जाता है और पिछले जन्म में जो पिता था, वह यहाँ पर पुत्र का रूप धारण कर लेता है। पिता का पुत्र बनना, पुत्र का पिता बनना इसी प्रकार पत्नी का पति बनना और पति का पत्नी बनना, साले का बहनोई बनना और बहनोई का साला बनना आदि सम्बन्ध क्रम अनादिकाल से चला आ रहा है। फिर इसको लेकर रुदन करने या विलाप करने का क्या मतलब?

माता यमुनादेवी इस परम सत्य को भी समझती थी कि संयोग के साथ वियोग का बहुत पुराना सम्बन्ध है। इसे कौन तोड़ सकता है? जहाँ संयोग होता है, वहाँ वियोग भी रहता है। आयुष्कर्म का संयोग जब समाप्ति पर आता है तो जीवन का महावृक्ष तत्काल धराशायी हो जाता है, उसे खड़ा रखने की किसी में क्षमता नहीं होती। सामान्य मनुष्य की तो बात क्या

है ? अनन्त वल के धारक स्वयं तीर्थंकर भगवान भी आयुष्कर्म का अन्त आ जाने पर जीवन की सुरक्षा नहीं कर सके। इतिहास इस सत्य का गवाह है। श्री कल्पसूत्र की मान्यतानुसार जब भगवान महावीर का निर्वाण होने लगा था तब प्रथम देवलोक के अधिनायक शक्रेन्द्र महाराज ने प्रभु महावीर के चरणों मे उपस्थित होकर निवेदन किया था कि भगवन् ! निर्वाण की घड़ी निकट आ रही है लगभग अर्द्धरात्रि को इस पार्थिव शरीर को छोड़कर आपको मुक्तिधाम में विराजमान हो जाना है परन्तु हमारी विनीत प्रार्थना है कि आप दो घड़ी के लिए जीवन के धागे को टूटने न दें, केवल दो घड़ी के लिए अपनी आयु को बढ़ालें ! तो भगवान महावीर ने —'आयु का सम्वर्धन नहीं होता, आयु कभी बढ़ाई जा नहीं सकती" यह सत्य स्वीकार करते हुए फरमाया था—

"असंखयं जीवियं मा पमायए"

भगवान महावीर के फरमान के अनुसार— जीवन असंस्कृत है, इसका संस्कार नहीं हो सकता, टूटे हुए आयु के धागे को जोड़ा नहीं जा सकता, अतः प्रमाद मत करो।

जब सर्वज्ञ, सर्वदर्शी अनन्तवली और धर्मरूप तीर्थ के संस्थापक तीर्थंकर भगवान आयु को नहीं बढ़ा सकते, उनसे भी मृत्यु के प्रहार का निवारण नहीं किया जा सकता तो साधारण मनुष्य क्या कर सकता है ? माता यमुनादेवी की अन्तर्चेतना गम्भीर होती जा रही थी पुनः वे विचार करने लगीं कि मेरे पूज्य पतिदेव का आयुष्कर्म समाप्ति पर आ चुका था, इसीलिए देखते-ही देखते वे हम से जुदा हो गए और पार्थिव शरीर को छोड़कर स्वर्गधाम में जा विराजे। जब आयुष्कर्म ने ही साथ छोड़ दिया तो फिर वहाँ पर औषधियाँ क्या कर सकती थीं ? औषधियों से मरनेवाले को बचाया जा सकता होता तो किसी को कोई मरने नहीं देता, तब तो समस्त संसार औषधियों की कृपा से सदा अमर हो जाता, कोई भी मरने न पाता, सुर-असुर, नर पशु सभी जीव अमरता के सिंहासन पर विराजमान हो जाते, परन्तु न कभी ऐसा हो सका और न ऐसा होने की कभी सम्भावना की जा सकती है। वस्तु-स्थिति यही है कि जो पैदा हुआ है उसे एक दिन अवश्य मरना है। **"जातस्य ध्रुवो मृत्युः"**[1] के सिद्धान्त को कभी झुठलाया नहीं जा सकता।

इसके अलावा माता यमुनादेवी ने यह भी विचार किया कि किसी के मर जाने पर आँसू बहाना भी व्यर्थ है। क्योंकि आँखों का खारा पानी कभी

---

[1] पैदा होने वाले की मृत्यु ध्रुव है, निश्चित है। —भगवद्गीता

किसी को बचा नहीं सकता और मृतक जीव को कभी वापिस बुला नहीं सकता। रोना तो आर्तध्यान माना गया है। एक बार श्रद्धेय गुरु महाराज ने व्याख्यान देते हुए फरमाया था कि एक ध्येय पर मन को एकाग्र कर लेना ध्यान होता है। इसके— **आर्तध्यान, रौद्रध्यान, शुक्लध्यान** और **धर्मध्यान** ये चार भेद होते हैं। अति-दुःख में दुःखपूर्ण जो मानसिक एकाग्रता है, उसे आर्तध्यान कहते हैं। यह ध्यान इष्टवस्तु के वियोग और अनिष्टवस्तु के संयोग आदि कारणों से होने वाली चित्त की व्याकुलतापूर्ण तन्मयता से उत्पन्न होता है। रुद्र-हिंसक एवं कठोर व्यक्ति का नाम है। उसकी हिंसा-पूर्ण मानसिक एकाग्रता रौद्र ध्यान कहलाती है। अहिंसा, संयम और तप को धर्म कहते हैं। धर्म-पूर्ण मानसिक एकाग्रता धर्मध्यान है। इन्द्रिय जन्य विषयों का सम्बन्ध होने पर वैराग्यबल से मन को विषयों से अछूता रखना, शरीर के विनाश की घड़ी उपस्थित हो जाने पर भी मन को विकृत न होने देना, मन की इस स्थिरता को तथा मन, वचन और काया के योग-व्यापार का निरोध करने को शुक्लध्यान कहते हैं। इन चारों ध्यानों में आदि के दो ध्यान जन्म-मरण-रूप संसार के सम्वर्धक होने से दुर्ध्यान और धर्म एवं शुक्लध्यान आत्म-कल्याण के निमित्त होने के कारण शुभध्यान कहलाते हैं। दो दुर्ध्यानों में पहला आर्तध्यान है। इसके चार चिह्न होते हैं—(१) **आक्रन्दन,** (२) **शोचन,** (३) **परिवेदना,** और (४) **तेपनता।** ऊँचे स्वर से रोना और चिल्लाना आक्रन्दन होता है, आँखों में आँसू लाकर दीनभाव धारण करना शोचन है। बार-बार क्लिष्ट-दुःखद वचन बोलना, विलाप करना परिवेदना है और आँसुओं को गिराते रहना, रोते रहना तेपनता है। आर्तध्यान जीव की गति बिगाड़ देता है, उसे दुर्गतियों में भटकाता है। अतः यह हेय है, त्याज्य है। माता यमुनादेवी मन ही मन पुनः विचार करने लगीं कि गुरु महाराज जीवन के भविष्य को समुज्ज्वल बनाने के लिए जो उपदेश सुनाते हैं, उसको श्रवण करना तभी सफल हो सकता है यदि उसे जीवन में उतारा जाए। यदि श्रुत उपदेश को जीवनाङ्गी न बनाया जाए, तो उसका सुनना या न सुनना एक बराबर है। व्याख्यान-सभा में प्रतिदिन जाना, व्याख्याता के व्याख्यान को सुनना परन्तु वहाँ से उठते समय सब कुछ वहीं पर झाड़ देना एक बाल भी पल्ले न रखना, बहुत बड़ी भूल है। निरी मूर्खता है। अतः मेरा कर्तव्य बनता है कि गुरु महाराज के चरणों में बैठकर सुने हुए उपदेश को मैं जीवन में उतारूँ और आर्तध्यान के निकट न जाकर धर्मध्यान की आराधना में ही अपने मन को लगाऊँ। इस तरह विचार करती हुई माता यमुना देवी पति वियोग-जन्य दुःख को शान्ति से सहन करती हुई धर्म-

ध्यान में ही समय व्यतीत करने लगी और इन्होंने शृंगार तथा विलासिता प्रधान सभी प्रवृत्तियों को छोड़ दिया, सादगी की सजीव-प्रतिमा बनकर, मनसा, वाचा कर्मणा, ब्रह्मचर्य की आराधना करती हुई अपने परिवार का संरक्षण और पालन-पोषण करने लगी।

नारी का नारीत्व—

नारी-जीवन के सम्बन्ध में मनुष्यजगत में एक धारणा विशेष रूप से पाई जाती है कि नारी-जीवन सदा से निर्बल रहा है, स्वभाव से शक्तिहीन है, अत्यधिक सुकोमल और सुकुमार है। अत्यधिक सुकोमलता और सुकुमारता के कारण ही नारी जीवन पुरुष योग्य किसी श्रमसाध्य कठोर कार्य को करने की क्षमता नहीं रखता, कष्टसहिष्णुता का तो नारी में सर्वथा अभाव ही होता है। देखा गया है कि जरा सा कष्ट आ जाने पर यह घबरा उठती है अपना बौद्धिक सन्तुलन खो बैठती है, अधिक क्या, आंसुओं की झड़ियाँ लगा कर अपना हुलिया ही बिगाड़ लेती है। अतः नारी स्वभाव से ही अबला है, निर्बला है, शक्तिहीना एवं उत्साह शून्या होती है।

नारी जीवन को अबला मानने की धारणा जो मनुष्य जगत में उपलब्ध होती है, यदि इसका सूक्ष्म और गम्भीर दृष्टि से चिन्तन करते हैं तो यह बिना किसी संकोच के कहा जा सकता है कि नारी जीवन किसी एक दृष्टि से अबला हो सकता है किन्तु सभी दृष्टियों से निर्बल एवं शक्तिशून्य नहीं माना जा सकता, क्योंकि नारीजीवन का अतीतकालीन इतिहास देखने पर उसमें शूरता और वीरता के पूर्णरूपेण दर्शन होते हैं। कहीं-कहीं तो नारीजीवन ने साहस, शौर्य्य और उत्साह के वे निराले जौहर दिखाए थे कि कुछ कहा नहीं जा सकता। साहस और वीरता का अभिमान रखने वाले बड़े-बड़े वीर-पुरुषों को भी आश्चर्य-चकित करके रख दिया था। महाराणा प्रताप को कौन नहीं जानता? इतिहास के सब विद्यार्थी जानते हैं कि महाराणा प्रताप राजस्थान के बबर शेर माने जाते हैं। सूर्य ज्योति के सामने जैसे अन्धकार नहीं टिकने पाता, वैसे भय, खौफ और डर आदि इनके पास आने का साहस भी नहीं कर सकते थे, परन्तु इनके जीवन में भी एक ऐसा अवसर आया था कि पुरुषसिंह महाराणा प्रताप का साहस और शौर्य्य भी डाँवाँडोल हो गया था, इतिहास बतलाता है कि आपत्काल में महाराणा प्रताप जंगलों में दिन काट रहे थे, मुगल बादशाह अकबर और उसके हाथों में खेलने वाले राजा मानसिंह आदि कई देशद्रोही राजपूतों ने राणा का — कुछ बरबाद कर दिया था, महलों में सोने के पलंगों पर जीवन गुजारने

वाले राणा को सिर छुपाना भी मुश्किल हो रहा था। सब साथी बिछुड़ चुके थे ! रह गये एक स्वयं राणा, एक उनकी सतवन्ती रानी, दस-बारह वर्ष की एक लड़की और चार वर्ष का एक लड़का।

महाराणा प्रताप के लिए भोजन भी एक समस्या बन गया, था, कई बार तो इन्हें और इनके समस्त परिवार को भूखा ही रहना पड़ता था। लड़की को भूख असह्य हो जाती थी। अन्त में, भूख के दुःख से लड़की बीमार हो गई, ज्वराधिक्य के कारण वह बेहोश हो कर गिर पड़ी। पिता ने पुत्री को उठाया और अपनी गोद में रख लिया। लड़का रोटी के लिए बिलखता सो गया था। बच्चों की यह दशा देख रानी ने भखडे के दाने इकट्ठे किए और पत्थरों से उन्हें पीस कर रोटी बनाई, आधी रोटी महाराणा प्रताप ने खाई। आधी रोटी में से आधा, रानी ने खाया और अवशिष्ट आधा भाग बच्चे के लिए रख दिया। तदनन्तर सोया बालक जाग उठा। जागते ही उस के मुख से पहली आवाज निकली—माँ ! रोटी। तत्काल रानी ने उसे रोटी का टुकड़ा दे दिया। कई दिनों के अनन्तर रोटी देखकर बालक खुशी से झूमने लगा परन्तु यह खुशी शीघ्र ही शोक के रूप में परिवर्तित हो गई। बालक अभी रोटी का टुकड़ा मुंह के पास ही ले गया था कि तभी जगली बिल्ली ने झपट मारी और वह टुकड़ा छीन कर दौड़ गई। हाथ से रोटी छिन जाने से बालक की चीख निकल गई।

बालक के चीत्कारों ने राणा का दिल हिला दिया, जो राणा बड़े से बडे संकट में भी कभी डाँवाडोल नहीं हुआ, बालक के रुदन ने शेरदिल राणा प्रताप के दिमाग की जड़ें हिलादीं; उसे बडी ग्लानि आई, उसका स्वाभिमान, उसकी अनख, उसका धैर्य्य, उसकी वीरता, उसका क्षात्रधर्म, उसकी देशभक्ति और उसका विश्वास सब कुछ पानी बनकर आंखों के मार्ग से बहने लगा। वे सोचने लगे—इससे बढ़कर धिक्कृत जीवन और क्या हो सकता है ? लाखों को अन्नदान करने वाला राणा आज अपने बच्चे को रोटी भी नहीं दे सकता, अन्त में राणा रानी से कहने लगे—

देवि ! सहिष्णुता समाप्त हो गई है। अब और कुछ सहन करने की क्षमता नहीं है। मैंने सब संकट झेले परन्तु बच्चे की चीखों ने मेरा हृदय हिला दिया है। इस तरह भूखे मरने से तो मुगल बादशाह अकबर से सन्धि करना ही उचित प्रतीत होता है। लाओ, कागज और लेखनी, अकबर की अधीनता स्वीकार कर लेता हूँ।

वह महाराणा प्रताप जिसको मुगल बादशाह अकबर की भयंकर तोपें

और सुतीक्ष्ण तलवारें नहीं झुका सकी थीं, परन्तु बच्चे की ममता ने उसे झुका दिया। महाराणा प्रताप की बीमार लड़की ने जब सुना कि "मैं अकबर की अधीनता स्वीकार कर लेता हूँ" तो वह तड़प उठी उसका क्षात्रधर्म अङ्गड़ाई लेने लगा, वह जोश और आवेश में आकर खड़ी हो गई। उसकी आँखें अंगारों की भाँति जल रही थीं, स्वाभिमान की वर्षा करती हुई कहने लगी —

पिताजी ! मैं यह क्या सुन रही हूँ क्या राजस्थान के बबर शेर महाराणा प्रताप मुगल बादशाह अकबर की अधीनता स्वीकार कर लेंगे ? अपनी अनख और सम्मान को समाप्त कर देंगे ? क्या क्षात्रधर्म का जीवन्त प्रतीक राणा का मस्तक अकबर के चरणों में प्रणत हो जाएगा ? शोक, महाशोक ! यदि मैं मर जाती तो क्या ही अच्छा होता, कम से कम अपने कुल को कलंकित करने वाले ये शब्द तो न सुनती। मैं मान किया करती थी कि भारत माता के सच्चे सपूत, देशभक्त, नरसिंह महाराणा की औलाद हूँ, किन्तु मुझे आज पता चला है कि मैंने अनखहीन, जाति को नीलाम करने वाले, कायर और देशद्रोही इन्सान के घर में जन्म लेकर अपना जीवन भ्रष्ट कर लिया है।

मेरे तात ! आपको इस बच्चे का ख्याल आता है, किन्तु देश के करोड़ों बच्चे रो रहे हैं, उनका कभी आपने ख्याल किया ? जिस आततायी, नर-पिशाच मुगल बादशाह ने भारत की मातृशक्ति को अपमानित किया। लाखों सौभाग्यवतियों के सौभाग्य लूटे, करोड़ों बच्चों को अनाथ बनाया ऐसे कसाई व्यक्ति के सामने नतमस्तक होने का निर्णय करते आपको लज्जा नहीं आई ? कितना खेद है ? कहाँ है आपकी अनखी तलवार ? कहाँ खो गई आपकी सिंहगर्जना ? कहाँ गया पूर्वजों का खून ? दुश्मन के सम्मुख झुकने की अपेक्षा मर जाना अच्छा है। आप विश्वास रक्खें कि जब तक मैं और मेरी माता जीवित हैं, ऐसा अधम कार्य कभी नहीं करने दिया जाएगा। हमारे जीते जी हमारे कुल का अमर यश कलंकित हो यह कभी नहीं हो सकता, यदि आप थक गये हैं तो कोई बात नहीं, आप विश्राम करें। हम दुश्मन से लड़ेंगी और खून का बदला खून से लेंगी। कितना भी बलिदान करना पड़े, किया जावेगा, देशरक्षा के सत्कार्य से हम कभी पीछे नहीं होंगी किन्तु किसी भी परिस्थिति में देशघातक और नराधम यवन नृप के आगे हथियार डालकर अपने राजपूती वंश को कलंकित नहीं होने दिया जाएगा। यह कहते ही राणा की शेरनी बच्ची धड़ाम से धरती पर जा गिरी और गिरते ही उसके प्राण पखेरू उड़ गये।

लड़की की सदा जीवित रहने वाली मृत्यु ने महाराणा प्रताप की आँखें

समझना उचित नहीं है। यह सत्य है कि जब तक नारी जीवन अपने आपको नहीं पहचानता, नारीत्व के अपने विलक्षण तेज को नहीं समझता तब तक वह निर्बल और शौर्य्यहीन समझा जाता है, परन्तु जब यह जाग उठता है, इसका सोया शौर्य्य अङ्गड़ाई लेने लगता है तब तो यह वज्रादपि कठोर बन कर जगती के सम्मुख आ खड़ा होता है। कई वार तो फिर यह पुरुषत्व को भी निस्तेज बनाए बिना नहीं रहता। तभी तो भारत के मनीषियों को इस परम सत्य को स्वीकार करना पड़ा—

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः"

भाव यह है कि जहाँ नारी जीवन की पूजा होती, उसे आदर और सम्मान से निहारा जाता है, वहाँ देवता लोग रमण करते हैं, दैविक शक्तियाँ क्रीड़ा करती दिखाई देती हैं।

माता यमुनादेवी की दीक्षा—

परम आदरणीय माता यमुनादेवी बीसवीं शताब्दी की एक समुज्ज्वल नारी-रत्न थी, माताजी पपिलाद गाँव के चौधरी तेजाराम जी की धर्मप्रिया, पतिव्रता और आदर्श-चारित्रा अर्धाङ्गिनी थीं और इन्हें हमारे महामान्य चरितनायक, अहिंसा संयम और तप के अमर आराधक, शास्त्रविशारद, मुनि-वरेण्य श्रद्धेय श्री स्वामी श्री छगनलाल जी महाराज की जननी बनने का सौभाग्य भी प्राप्त हो रहा था। पूज्य माताजी स्वभाव से बड़े सरस, सात्त्विक, धार्मिक, सरल, सहिष्णु, उदार, मिलनसार, सदय, व्यवहार-कुशल, दीर्घदर्शी, कर्मठ, गम्भीर, साहसी और पराक्रम की सजीव प्रतिमा थीं। दुःख और शोक की घड़ियों में भी ये समभाव के धागे को कभी निर्बल नहीं होने देती थीं। देखा गया है कि हर्ष की घड़ियों में तो सभी प्रसन्न रहते हैं, परन्तु प्रतिकूल वातावरण में अपने को स्वस्थ रखना, अपने अन्तःस्वास्थ्य को दूषित न होने देना बड़ा कठिन कार्य होता है। कोई भक्तिमार्ग का पथिक, वीतरागता की समुपासक और कोई विवेकशील व्यक्ति ही दुःखावेश में अपने अन्तःस्वास्थ्य को सुरक्षित रख सकता है, साधारण व्यक्ति के वश की बात नहीं है। माता यमुना देवी के असाधारण जीवन में यह तथ्य पूर्णतया चरितार्थ हो रहा था।

कहा जा चुका है कि हमारे मान्य चरितनायक के पूज्य पिता चौधरी तेजाराम जी स्वर्गवासी हो चुके हैं, पतिदेव की सुखद छाया उठ जाने पर नारी जीवन का हताश और निराश होना, उसके आशा-भवन का धराशायी हो जाना स्वाभाविक ही है, परिणामस्वरूप पतिवियोगजन्य असह्य दुःख से माता यमुना देवी का कण-कण मार्मिक पीड़ा से परिपीड़ित होने लगा, ये

सिहर उठीं, परन्तु ये बचपन से ही धार्मिक वातावरण में पलीं थीं, संयोग-वियोग के स्वरूप को भलीभाँति समझती थीं, अनुभव और आत्मबोध की समुज्ज्वल ज्योति से इनका मानस सदा ज्योतिर्मान रहता था, परिणामस्वरूप प्रतिकूल परिस्थितियों के भयंकर प्रहारों से आक्रान्त होने पर भी इन्होंने साहस और धैर्य को सर्वथा भंग नहीं होने दिया, ढेरी होने से उसे बचा लिया, सोने में सुहागे की बात समझिए, कि माता यमुनादेवी की सहेलियाँ कुछ ऐसी बहिनें भी थीं जो ओसवाल परिवार से सम्बन्धित थीं। इसलिए माता यमुनादेवी का ओसवाल घरों में आना-जाना काफी था। ओसवाल प्रायः जैनधर्म को मानने वाले होते हैं। फलतः माता यमुनादेवी को जैन धर्म की परम्पराओं से काफी लगाव था। ये जैन साधुओं के दर्शन करतीं, उनके व्याख्यान सुनतीं और यथावसर उनसे धर्म-चर्चा भी कर लेतीं। जिन दिनों चौधरी तेजाराम जी का देहान्त हुआ था, उन दिनों पपिलाद गाँव में जैन-साध्विएँ भी विराजमान थीं। जैन-साध्विएँ माता यमुनादेवी से बड़ा धर्म स्नेह रखती थीं अतः साध्वी मण्डल को भी चौधरी तेजाराम के स्वर्गवास का बड़ा विक्षोभ था। वैधव्य-दुःख से आक्रान्त और आकुल-व्याकुल यमुनादेवी को ये सदा समवेदनापूर्ण शब्दों से सान्त्वना प्रदान करतीं, तथा अनित्य आदि भावनाओं का—

दाम बिना निर्धन दुखी, तृष्णावश धनवान।
कहूँ न सुख संसार में, सब जग देख्या छान।
जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपना कोय।
घर संपति पर प्रकट यह, पर हैं परिजन लोय॥
दिपै चाम चादर मढी, हाड पींजरा देह।
भीतर या सम जगत में, और नहीं घिन गेह॥
जगवासी घूमें सदा, मोह नींद के जोर।
सब लूटें नहीं दीसता, कर्मचोर चहुं ओर॥
मोह नींद जब उपशमे, सतगुरु देत जगाय।
कर्म चोर आवत रुके, तब कुछ बने उपाय॥
धन जन कंचन राजसुख, सबहि सुलभ कर जान।
दुर्लभ है संसार में, एक यथारथ ज्ञान॥
जाचे सुरतरु देय सुख, चिन्तित चिन्तारैन।
बिन जाचे बिन चिन्तिए, धर्म सदा सुखदैन॥

ये पद्य सुनाकर धर्म का स्वरूप समझातीं, तथा माता यमुनादेवी को तप, त्याग, और संयम के महापथ पर चलने का आदर्श परामर्श देतीं। महामहिम जैन साध्वियों का प्यार भरा, मंगलमय यह सान्निध्य माता यमुनादेवी के लिए वरदान बन गया। जैनसाध्वियों के उपदेश सुनकर माता यमुनादेवी का मानस आर्तध्यान को छोड़कर धर्म ध्यान की ओर अग्रसर होने लगा, अन्य साधु सन्तों का समागम प्राप्त होते रहने से माता यमुनादेवी धीरे-धीरे संसार से उपराम होने लगीं, इनके हृदय-मन्दिर में वैराग्य की ज्योति जगमगाने लगी, संसार के सभी मोहक पदार्थ इन्हें बन्धन रूप दिखाई देने लगे।

अध्यात्म जगत में सत्संग का अपना एक विशिष्ट स्थान पाया जाता है। व्यक्ति कितना भी अधम, नीच, आततायी और उदण्ड हो, परन्तु यदि वह प्रतिदिन सत्संग में आना आरम्भ कर देता है, तो एक दिन वह अवश्य सुधर जाता है, उसकी बुरी आदतें छूट जाती हैं, और वह सन्त हृदय व्यक्ति बनकर समाज और राष्ट्र का भविष्य समुज्ज्वल बनाने वाला बन जाता है। सत्संगति जीवन को किस तरह समुज्ज्वल बना डालती है? इस सम्बन्ध में भारत के मनीषी महापुरुषों की कुछ उक्तियां निवेदन करता हूँ। श्री भगवती सूत्र में भगवान महावीर फरमाते हैं—

१—सवणे नाणे विन्नाणे, पच्चक्खाणे य संजमे।
अणण्हवे तवे चेव, वोदाणे अकिरिया सिद्धी॥

—भगवती २/५

—साधु संग से धर्म-श्रवण, धर्म-श्रवण से तत्व ज्ञान, तत्व ज्ञान से विज्ञान—विशिष्ट तत्वबोध, विज्ञान से प्रत्याख्यान—सांसारिक पदार्थों से विरक्ति, प्रत्याख्यान से संयम, संयम से अनाश्रव-नवीन कर्मों का अभाव, अनाश्रव से तप, तप से व्यवदान—पूर्वबद्ध कर्मों का नाश, व्यवदान से निष्कर्मता—कर्मों का सर्वथा अभाव, और निष्कर्मता से सिद्धि-मुक्ति प्राप्त होती है।

२—कीटोऽपि सुमनः संगादारोहति सतां शिरः।
अश्मापि याति देवत्वं, महद्भिः सुप्रतिष्ठितः॥

—हितोपदेश

—फूल के संग से कीड़ा भी सज्जनों के मस्तक पर विराजमान हो जाता है, महापुरुषों के द्वारा प्रतिष्ठित पत्थर भी देवरूप बन जाता है।

३—चन्दनं शीतलं लोके, चन्दनादपि चन्द्रमाः।
चन्द्र चन्दनयोर्मध्ये, शीतला साधु संगतिः॥

—चन्दन जगत में शीतल है, और चन्दन से भी चन्द्रमा शीतल है, चन्द्र और चन्दन इन दोनों में से भी साधुओं की संगति अत्यधिक शीतल है।

४—तात मिले पुनि मात मिले, सुत भ्रात मिले युवती सुखदाई।
राज मिले गजवाज मिले, सब साज मिले मन वंछित आई।
लोक मिले परलोक मिले, सुरलोक मिले वैकुण्ठ में जाई।
सुन्दर आय मिलें सबहिं इक दुर्लभ सन्त समागम भाई॥

कवि सुन्दरदास जी कहते हैं कि इस जीव को माता पिता, सुत भ्राता सुखोत्पादक नारी, राज्य हाथी, घोड़े, वाञ्छनीय अन्य साजोसामान, इस लोक, परलोक, सुरलोक और वैकुण्ठ धाम के सुखों का उपलब्ध होना कोई कठिन कार्य नहीं है, परन्तु सन्तजनों का समागम प्राप्त करना ही कठिन होता है।

इस तरह सत्संग की उपादेयता और उपयोगिता के वर्णन वचन भारतीय साहित्य में यत्र तत्र, सर्वत्र पर्याप्त रूप से उपलब्ध होते हैं। वस्तुतः सत्संग बहुत ऊँची वस्तु है व्यक्ति का जीवन कितना भी साधारण हो, गिरा हुआ हो, किन्तु सत्संग उसे असाधारण बना डालता है। सत्संग उसे ऊँचा उठा देता है। इसीलिए सत्संग को तेजस्विता, वर्चस्विता और ओजस्विता का पावन भण्डार माना जाता है। पापियों के बेड़े सत्संग के प्रताप से ही किनारे लगते हैं। इतिहास इस सत्य का पूर्णतया समर्थक है। मगध-देश के विख्यात प्रभव चोर को कौन नहीं जानता ? प्रभव चोर अपने युग का बहुत बड़ा शक्तिशाली लुटेरा था, पांच सौ इसके साथी थे, हाथ लगाते ही ताला खोल देने की वह विलक्षण कला जानता था। मगधनरेश महाराजा श्रेणिक की समस्त सैनिक शक्ति इस पर नियंत्रण नहीं पा सकी थी, लोग इसका नाम सुनकर काँप उठते थे। यही प्रभव चोर अपने पाँच सौ साथियों के साथ राजगृह के विख्यात श्रेष्ठ पुत्र जम्बूकुमार को लूटने गया था, परन्तु यतिशिरोमणि श्री जम्बूकुमार के दो घड़ी के सत्संग ने इसकी जीवन की दिशा ही बदल दी, अन्त में चोरी का परित्याग करके अपने पाँच सौ साथियों के साथ श्री जम्बूकुमार के नेतृत्व में दीक्षा अंगीकार कर लेता है, हिंसा झूठ आदि आत्मघातक दुर्गुणों को छोड़कर अहिंसा और सत्य के कल्याणकारी महामार्ग का पथिक बन जाता है, तथा जम्बूस्वामी के निर्वाण के अनन्तर भगवान महावीर की गद्दी पर "प्रभवाचार्य" के रूप में आसीन होने का सौभाग्य प्राप्त कर लेता है। कहाँ चोर-शिरोमणि प्रभव और कहाँ साधु-शिरोमणि प्रभवाचार्य ? यह सब सत्संग का ही प्रताप था।

कहा जा चुका है कि हमारे चरितनायक की पूज्य माता श्री यमुनादेवी जैनसाध्वियों के सत्संग में प्रतिदिन आते जाते रहने के कारण सांसारिकता से उपराम हो चुकी थीं। इनका अन्तःकरण घर-गृहस्थी के प्रपंचों, झंझटों से दूर रहने लगा था, जगती के सब प्रलोभन इन्हें निस्सार और दुःखान्त प्रतीत हो रहे थे, प्रभु और आत्मोत्थान की चर्चा के अतिरिक्त इन्हें अन्य कुछ अच्छा नहीं लगता था, अन्त में इन्होंने मोह-माया के बन्धनों को तोड़कर संयम साधना के महापथ पर चलने का निर्णय कर लिया। परन्तु इनके सामने हमारे चरितनायक श्री माड़ूसिंहजी के भविष्य को सुरक्षित रखने तथा उसे समुज्ज्वल बनाने की बहुत-बड़ी समस्या थी। पाठक जानते ही हैं कि चरितनायक श्री माड़ूसिंह जी अभी स्वल्पवयस्क थे, इनकी आयु बहुत छोटी थी, ये बालक थे इसीलिए मेरे दीक्षित हो जाने के बाद माड़ू क्या बनेगा ?" यह चिन्ता माता यमुनादेवी को सदा चिन्तित बनाए रखती थी। माताजी की यह भी हार्दिक इच्छा थी कि माड़ू दुनिया के प्रपंचों में न फँसे, मोह-माया के बन्धन से दूर रहे और युवा होने पर संयम साधना के महापथ पर चलकर अपना कल्याण करे। माताजी की यह इच्छा तभी साकार रूप धारण कर सकती थी, यदि चरितनायक को किसी चरित्रशील संयमी मुनिराज की देखरेख में छोड़ा जाए। फलतः माता यमुनादेवी ने किसी महामना, त्यागी, वैरागी संयमी महापुरुष की खोज करनी आरम्भ करदी।

मेरी तरह मेरा पुत्र माडूसिंह भी संयमसाधना के पथ पर चले और आत्म-कल्याण करले। अतः मेरी विनीत प्रार्थना है कि आप इसे अपने शरण में लेने की कृपा करें, अपने पास रखें, पढ़ाएँ, लिखाएँ, धर्म-शिक्षण दें, संयम साधना के महामार्ग पर चलने के लिए यह तैयार हो जाए, ऐसी इसे प्रेरणा देने का अनुग्रह करें। यदि यह शिक्षा धारण कर लेता है, तो मैं अपना और अपने बच्चे का सौभाग्य समझूँगी। यह सब कुछ आपकी दया दृष्टि से ही सम्भव हो सकता है।

करुणा की सजीव प्रतिमा, श्रद्धेय श्री रंगलालजी महाराज माता यमुना देवी की विनीत प्रार्थना सुनकर उस पर गंभीरता से विचार करने लगे और अन्त में सहृदयता के साथ फरमाने लगे—

देवि ! धर्म के महामार्ग पर चलने के लिए जनजीवन को प्रेरणा देना और उसके लिए प्रत्येक दृष्टि से प्रयत्न करना साधु जीवन का अपना कर्तव्य होता है। इस कर्तव्यपूर्ति के लिए हम कभी उदासीन नहीं होते। ऐसे सत्कार्य के लिए हम सदा जागरूक रहते हैं। आपका बच्चा माडूसिंह यदि हमारी प्रेरणा से प्रतिलाभित हो और संयम साधना के महामार्ग पर चलने के लिए तैयार हो जाए तो हमें हार्दिक हर्ष होगा। जननी की ममता ही विशेष रूप से संयम साधना के पथ के पथिकों के लिए विघ्न उपस्थित किया करती है, परन्तु महान हर्ष का विषय है कि यहाँ जननी की ममता स्वयं इस सत्कार्य के लिए प्रेरणा प्रदान कर रही है। माडूसिंह का भी यह बहुत बड़ा सौभाग्य है कि जिसे ऐसी धर्म-प्रिया जननी प्राप्त हो रही है। देवि ! तुम भी भाग्य-शालिनी हो जो अपने बच्चे को आत्मकल्याण के महापथ पर चलता हुआ देखने की पवित्र आकांक्षा मन में रख रही हो। ऐसी सुयोग्य माता लाखों में कोई एक मुश्किल से मिला करती है। तुम्हारी विचारण धर्मप्रियता और उदारता सर्वथा आदरणीय, आचरणीय एवं सराहनीय है।

वैसे, जब से मैंने इस बच्चे का मस्तक देखा है, तब से ही मेरी अन्त-रात्मा यह आवाज दे रही है कि यह बच्चा होनहार है, पुण्यशाली है, इसका भविष्य मुझे समुज्ज्वल दिखाई दे रहा है, जहाँ तक मेरा अनुभव कहता है उसके आधार पर मैं यह बिना किसी झिझक के कह सकता हूँ कि आज का माडूसिंह भविष्य में एक आदरास्पद साधु-रत्न बनकर दिखलाएगा, यह सामान्य साधु नहीं होगा प्रत्युत त्यागी-वैरागी और जाना-माना, ख्यातिप्राप्त चमत्कारी, संयमी सन्त बनेगा।

क्षमामूर्ति श्रद्धेय श्री रंगलालजी महाराज की परमपावनी भविष्यवाणी

सुनकर माता यमुनादेवी आनन्द विभोर हो उठी, हर्ष के मारे उनका कण-कण नाचने लगा, खुशी के आँसुओं से उनके दोनों नयन-कटोरे खुशी के आँसुओं से मुख तक भर गए। अन्त में, गुरुदेव की इस कृपालुता और दयालुता के लिए उनका आभार प्रकट करके माता यमुनादेवी ने माडूसिंह को दीक्षित करने के लिए एक आज्ञापत्र[1] लिखकर उनके चरणों में रख दिया ताकि भविष्य में चरितनायक का बड़ा भाई या अन्य कोई रिश्तेदार दीक्षा जैसे मांगलिक कार्य में विघ्न उपस्थित न कर सके।

हमारे आदरणीय चरितनायक श्री माडूसिंह जी को स्वनामधन्य पूज्य-पाद, श्री रंगलाल जी महाराज के चरणों में सौंपने के बाद माता यमुनादेवी किसी योग्य जैनसाध्वी से साधु-धर्म के विधि विधान का गम्भीरता से अध्ययन करने लगीं। इन्होंने दशवैकालिक आदि शास्त्र पढे, २५ बोल का थोकड़ा तथा २६ द्वार आदि अनेक विध थोकड़े सीखे। अन्त में ये दीक्षित हो गईं, जैन-साध्वी बनकर संयम साधना के महापथ पर धीरे-धीरे अग्रसर होने लगीं।

वैराग्य की पगडण्डियां

कर्मों के प्रहार—वैदिक और बौद्ध आदि सभी दर्शन-शास्त्रों में कर्मवाद का निरूपण किया गया है, यह सत्य है, इससे किसी को कोई मतभेद नहीं है, परन्तु यह भी एक परम सत्य है कि जैनदर्शन ने कर्मवाद के सिद्धान्त को लेकर जितनी गहराई और सूक्ष्मदृष्टि से चिन्तन प्रस्तुत किया है, वैज्ञानिक पद्धति से विश्लेषण करके उसकी जितनी विवेचना की है, कर्मसम्बन्धी उतनी चिन्तना और विवेचना अन्य किसी दर्शन में देखने को नहीं मिलती। यह बिना किसी संकोच के कह सकता हूँ कि विश्व दर्शन को कर्मवाद जैनदर्शन की बहुत बड़ी देन है।

जैन दृष्टि से कर्म के शुभ और अशुभ में दो रूप होते हैं, शुभकर्म सुख रूप और अशुभकर्म दुःख रूप होता है। जीवन की बगिया में नव शुभ कर्म का वसन्त आता है तो जीवन-वाटिका का पत्ता-पत्ता मुसकाराने लगता है और जब जीवन में अशुभ कर्म अपना प्रहार करना आरम्भ कर देता है तो जीवन का आकर्षक उपवन वीरान होना आरम्भ हो जाता है, जीवन में ऐसी-ऐसी दुःखपूर्ण घटनाएँ सर उठाने लगती हैं कि जिनकी कभी सम्भावना भी नहीं

---

१ जैन धर्म के विधि-विधान के अनुसार दीक्षार्थी को दीक्षा देने से पूर्व उसके माता पिता से दीक्षा की आज्ञा लेनी आवश्यक होती है। अतएव माता या पिता से आज्ञापत्र लिखाया जाता है।

की जा सकती, और व्यक्ति हाथ मलता देखता ही रह जाता है। यह सत्य हमारे मान्य आदरणीय चरितनायक श्रद्धेय श्री छगनलालजी महाराज के जीवन में पूर्णतया व्यवहार का रूप धारण करता दिखाई दे रहा है।

पाठकों को ज्ञात ही है कि हमारे चरितनायक श्री माडूसिंह जी मस्ती से जीवन-यात्रा सम्पन्न कर रहे थे, माता-पिता का प्यार उन्हें जी भर कर प्राप्त हो रहा था, भाई तथा अन्य रिश्तेदार द्वितीया के चन्द्रमा की भाँति उन्हें देख-देख कर जी रहे थे, इनके खेतों से अन्न की वर्षा हो रही थी, रुपये पैसे की दृष्टि से भी इनको पूर्णतया सन्तुष्टि थी, इस तरह चरितनायक सर्व तरह से सानन्द थे, इनको किसी प्रकार का कोई दुःख नहीं था, नाही किसी प्रकार का क्लेश और नाहीं उन्हें किसी प्रकार की कोई चिन्ता थी। इनके जीवन में मस्ती ने मानो साकार रूप धारण कर लिया था। दुःख और संकट की बात तो इनके दिमाग से ही निकल गई थी परन्तु अशुभकर्मो ने आकर जब इनको झटका दिया तब सारा गुड़-गोबर हो गया, बना बनाया खेल बिगड़ गया, चारों ओर से दुःख और शोक की आँधियाँ उठने लगीं स्वर्ग जैसा सुखद घर नरक से भी बढ़कर दुःखों का घर बन गया।

पीछे बताया जा चुका है कि एक दिन अचानक चरितनायक के पाँव पर सर्प ने डंक मार दिया था, इनके पूज्य पिता चौधरी तेजाराम ने बड़ी मुश्किल से विष को जला कर इनके जीवन की सुरक्षा की थी। परन्तु अशुभकर्म को सर्प बनकर डंक मार लेने पर भी सब्र नहीं आया। एक बार फिर अशुभकर्म ने इन पर भयंकर प्रहार कर दिया। अचानक इनके पूज्य पिता चौधरी तेजाराम जी ज्वराक्रान्त हो गए, और देखते-देखते ही मृत्यु की गोद में सो गए। चौधरी साहिब का जब देहान्त हुआ तब घर की बड़ी वीभत्स स्थिति हो गई थी। गाँव के सैकड़ो लोग बुरी तरह से रो रहे थे। अपने हाथों की चूड़ियाँ तोड़ कर तथा सर के बाल बिखेर कर माता यमुनादेवी चीखें मार रही थी। पति वियोग-जन्य असह्य दुःख के कारण उसे गश पर गश पड़ने लगीं थीं, गश खुल जाने पर बड़ा हृदयविदारक विलाप करने लगती थीं। हमारे चरितनायक यह सब दृश्य देखकर स्वयं अपने पर नियन्त्रण नहीं रख सके, ये भी विह्वल हो उठे इनकी आँखों के आगे अन्धकार छा गया, बरसात की झड़ी की भाँति इनकी आँखें आँसू बरसाने लगीं, ये अपने पिताजी के मृत शरीर से लिपट गए, पूज्य पिताजी, हाय पिताजी ! कहकर करुणाजनक स्वर में रोने लगे। चरितनायक का रुदन, विलाप, अश्रुविमोचन इतना अधिक करुणा-जनक था कि कुछ कहते नहीं बनता, पाषाणहृदय व्यक्ति भी उसे देखकर द्रवित हुए बिना नहीं रह सकता था। पपिलाद गाँव का कोई ऐसा

व्यक्ति नहीं बचा होगा जिसने चरितनायक के दयनीय रुदन पर अपने आँसू न गिराए हों।

घर से उपरामता—

चौधरी तेजाराम जी का देहान्त हो जाने के कारण इनके घर का सारा वातावरण ही बदल गया था, सारा घर सूना-सूना दिखाई दे रहा था। घर का कण-कण मानों उदासीनता तथा निराशा की वर्षा कर रहा था। माता यमुनादेवी की आँखें सदा भरी रहती थीं, पूज्य पतिदेव का आकस्मिक वियोग उनके लिए मार्मिक पीड़ा का कारण बन रहा था, जो घर कभी शान्ति और मस्ती का सदन बन रहा था, वहाँ दुःखों और विपत्तियों ने आकर आसन जमा लिया था, घर के इस वातावरण का चरितनायक के मन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा, इनको कुछ समझ नहीं आ रहा था। वे सोच रहे थे, यह क्या हो गया? प्रातःकाल पिताजी बिल्कुल स्वस्थ थे, बीमारी क्या है? यह किसी ने सोचा ही नहीं था। सभी व्यक्ति मस्ती के सुखद झूठे पर मस्ती से झूल रहे थे। दोपहर में न जाने यह क्या भूचाल आ गया, सिवाय रोने के, आहें भरने के कोई काम ही नहीं रहा। पहलवानों जैसा पिताजी का सुडौल शरीर मिट्टी की ढेरी बन गया, पिताजी की सिंह जैसी गर्जना सदा के लिए शान्त हो गई। पूज्य माताजी की जो दुर्दशा हो रही है, वह देखी नहीं जा रही, स्वर्ग-देवी जैसी शान्त और सौम्य माताजी की आकृति कितनी वीभत्स लग रही है? एक ही दिन में प्रथम प्रहर और तीसरे प्रहर में इतना अन्तर कैसे आ गया? हताशा और निराशा से आक्रान्त हुआ चरितनायक का अशान्त मानस गम्भीर होता जा रहा था।

चरितनायक पुनः विचार करने लगे कि संसार में जितना दुःख है वह सब ममता का ही होता है। सन्तों के व्याख्यान में अनेकों बार सुना है कि भगवान महावीर ममता के बन्धन को महाभय[1] का उत्पादक मानते हैं। आचार्य शंकर ममता को दुःखों का[2] मूल बतलाते हैं। ममता के स्वरूप को जानने वाले एक साधक ने कितनी सुन्दर बात कही है कि—जहाँ-जहाँ ममता है वहाँ-वहाँ ही मुझे संताप है, जहाँ मैं[3] उदासीन बन जाता हूँ। वहाँ

---

[1] "ममत्तबन्ध च महब्भयावहं" —उत्तराध्ययन १९/९८

[2] किं दु.खमूलं? ममताभिधानः। —शंकर प्रश्नोत्तरी

[3] यत्रास्माकं ममता, मम तापस्तत्र तत्रैव।
यत्रैवाहमुदाशे तत्र मुदाशे स्वभावसन्तुष्टः॥

स्वभाव में सन्तुष्ट होकर परम आनन्द में रमण करने लगता हूँ। महाभारत में तो इससे भी ऊँची बात लिखी है। महाभारतकार[1] कहते हैं कि दो अक्षरों का 'मम'' अर्थात् ममत्व मारने वाला है और तीन अक्षरों का 'न मम' अर्थात् निर्ममत्व तारने वाला है। वस्तुतः ममता दुःख का ही पर्यायवाची शब्द है। ममता जितनी-जितनी मात्रा में अधिक होती चली जाती है, उतनी ही मात्रा में दुःखों में अधिकता आती चली जाती है और जितना ममता को घटा दिया जाता है, दुःख उतना ही कम होता चला जाता है। व्यवहार-क्षेत्र में इस सत्य को प्रत्यक्षरूप से देखा जा सकता है। उदाहरणार्थ, एक मकान है उसमें मालिक को ममता का होना स्वाभाविक है। इस मकान की यदि कोई एक ईंट भी हिला देता है तो इससे उसके मालिक-मकान का दिल हिल जाता है। ईंट हिलाने वाले व्यक्ति के वह गले पड़ जाता है, उसको गालियाँ निकालता है। मार-पिटाई की भी यदि आवश्यकता हो तो वह ऐसा करने में भी संकोच नहीं करता, परन्तु वही मकान किसी कारण से जब यदि बेच दिया जाता है और जब उससे सब ममता सम्बन्ध तोड़ लिए जाते हैं, तब उस समय यदि कोई उस मकान की जड़ें भी हिला दे और उसे भूमिसात् बना दें तो ऐसी स्थिति में भी पहले मालिक-मकान को कोई व्याकुलता नहीं होती। रत्ती भर भी उसे कोई कष्ट नहीं होने पाता। प्रश्न हो सकता है कि ऐसा क्यों ? मकान भी वही है और मालिक मकान भी वही है। अब मकान के धराशायी होने पर मकान मालिक को बौखलाहट क्यों नहीं आती ? उत्तर स्पष्ट है कि कि अब पहले मालिक मकान को उस मकान से ममता नहीं रही। मालिक मकान के मन में पहले उस मकान के लिए जो ममता थी। मकान के बेच देने पर वह ममता नहीं रहती, उसकी समाप्ति हो गई। इसी कारण मकान का सर्वनाश हो जाने पर भी उसे कोई खेदानुभूति नहीं होती। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि दुःख का मूलस्रोत ममता है। दुःखों का जनक ममत्व है। कितना आश्चर्य और खेद है कि यह सब कुछ समझ लेने पर भी यह मानवी प्राणी दुनिया की मोह-ममता में क्यों फँस रहा है ? क्यों दिन रात ममता के जाल बुनता रहता है। वस्तुतः ममता में उलझना दुःखों में उलझना है, और क्लेशों को आमन्त्रित करना है। और विपत्तियों और संकटों के भयंकर गर्त में अपने जीवन को अपने हाथों से धकेल देना है। दूसरी बात,

---

[1] द्व्यक्षरस्तु भवेन्मृत्युस्त्र्यक्षरं ब्रह्म शाश्वतम्।
ममेति च भवेन्मृत्युः, न ममेति च शाश्वतम्॥

—महाभारत शान्तिपर्व १

प्रत्येक व्यक्ति यह भी जानता है और अच्छी तरह समझता है कि संसार का कोई भौतिक पदार्थ इसके साथ परलोक में जाने वाला नहीं है। जीव अकेला ही इस जगत में आता है और अकेला ही यहाँ से प्रस्थान करता है। आते समय यह खाली हाथ ही आता है और खाली हाथ ही यहाँ से विदा होता है। समझ में नहीं आता फिर यह क्यों हाय-हाय कर रहा है ? संसार में ऐसा धरा भी क्या है जिसके पीछे यह मनुष्य पागल होकर और दुनिया के झूठे प्रपचों में अपने को उलझाकर सोने जैसा अपना भविष्य बिगाड़ रहा है ? चरितनायक की इस चिन्तना को यदि कविता की भाषा में कहें तो निःसंकोच कहा जा सकता है—

> है भला संसार में धरा क्या, स्वप्न सा इक है तमाशा,
> हैं दो दिन के सब बहलावे, आगे चलकर हैं पछतावे।
> रेत की सी दीवार है दुनिया, ओछे का सा प्यार है दुनिया,
> बिजली जैसी चमक है इसकी, पल दो पल की झलक है इसकी।
> पानी का सा है यह पचारा जुगनू का सा है चमकारा,
> आज यहाँ जंगल में मंगल, कल सुनसान पड़ा है जंगल।
> आज है मेला हरदम दूना, कल ही ग्राम पड़ा है सूना,
> आज है रहने की तैयारी, और कल है चलने की बारी।
> आज है पाना कल है खोना, आज है हँसना कल है रोना,
> कभी है बाधा कभी है घाटा, कभी है ज्वार कभी है भाटा।
> हार कभी और जीत कभी है, इस दुनिया की रीति यही है,
> खुशी में खेद मिला हुआ है, अमृत में विष घुला हुआ है।
> गिरते हैं यहाँ चढ़ने वाले, घटते हैं यहाँ बढ़ने वाले।
> ओ नशे के अन्दर जाने वाले, खुश न हो तू ऐ मतवाले !
> दुख की घटा है आती देखो, घंटी मृत्यु बजाती देखो।

चरितनायक विचार करते ही जा रहे थे। पुनः विचार करने लगे कि हमारे पपिलाद गाँव में एक बार बहुत ऊँचे व्याख्याता सन्त पधारे थे, उन्होंने अपने भाषण में दुनिया का सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है ? इस सम्बन्ध में चर्चा करते हुए फरमाया था—

> अहन्यहनि गच्छन्ति जीवा यममन्दिरम्।[1]
> शेषाजीवितुमिच्छन्ति, किमाश्चर्यमतःपरम्॥

---

[1] महाभारत में धर्मराज युधिष्ठिर की उक्ति।

—प्रतिदिन जीव यमराज के घर जा रहे हैं, अर्थात् मर रहे हैं, तथापि शेष बचे लोग जीवित रहना चाहते हैं इससे बढ़कर और क्या आश्चर्य हो सकता है ?

पूज्य मुनिराज ने बिल्कुल ठीक ही फरमाया था। दुनिया का सबसे बड़ा आश्चर्य यही है। मनुष्य अपनी आँखो से अपने सम्बन्धिजनों को मरते देखता है तथापि वह अपनी मृत्यु को भुलाए बैठा है, अपने गाँव निवासियों, नगर-निवासियों के कामदेव जैसे सुन्दर कचन शरीर का चिताओं की ज्वालाओं में दग्ध होते और भस्म बनते निहारता है तथापि उसे कभी मरने का विचार नहीं आता, यह वह अच्छी तरह जानता है कि संसार के सब पदार्थ दुःख-दायक हैं, इनमें सुख का लेश भी नहीं है, ६ खण्ड के नाथ चक्रवर्ती भी अतृप्त ही यहाँ से चलते बने हैं, जगती का कोई पदार्थ सदा साथ देने वाला और साथ जाने वाला नहीं है, व माता, पिता, भाई, बहिन, मित्र, कलत्र, धन, जन, मकान, दुकान, आदि सब ऐश्वर्य यहीं छूट जाता है, परन्तु फिर भी यह अज्ञ प्राणी दुनिया के पदार्थों में ऐसे आसक्त हो रहा है जैसे वे सदा उसके साथ ही रहेंगे और सदा इसका साथ देंगे। जिसके आने में रत्ती की भी आशंका नहीं है, उस मौत को तो इस जीव ने बिल्कुल भुला ही दिया है। सन्तजनों की निम्नोक्त वाणी को भी यह कभी याद नहीं रखता—

छोड़ना होगा तुम्हें, इक रोज तख्तोताज को,
छोड़ना होगा तुम्हें, इक रोज अपने राज को।
छोड़ना होगा तुम्हें, इक रोज घर और बार को,
छोड़ना होगा तुम्हें,[1] दिलयार और[2] अगयार को।
छोड़ना होगा तुम्हें, माँ बाप और औलाद को,
छोड़ना होगा तुम्हें, सब बेटी व दामाद को।
छोड़ना होगा तुम्हें, हर पेशा व हर काम को,
छोड़ना होगा तुम्हें, हर काम के अन्जाम को।
छोड़ना होगा तुम्हें, आलम जवानी[3] एक दिन,
छोड़ना होगा तुम्हें, यह जिस्में फानी एक दिन।
छोड़ना है हर एक, चीज को तो छोड़ दे,
छोड़ने से पेशतर[4] मुजतर[5] तअल्लुक छोड़ दे।

---

[1] प्रियजन, [2] पराए, [3] युवावस्था, [4] पहले, [5] कर्

—सन्तों की यह वाणी कितनी सुन्दर पद्धति से जीवन-शास्त्र का परम-सत्य उद्घोषित कर रही है कि मनुष्य को एक दिन सब कुछ छोड़ना पड़ेगा, सोने का आकर्षक सिंहासन, हीरों और पन्नों से जड़ा ताज, जनता के भाग्य का निर्णय करने वाला शासन (हकूमत), सुखों का आवास स्थान घर-बार, जान से भी प्यारे अपने साथी अन्य नौकर-चाकर, माता-पिता, सन्तान, पुत्री और दामाद, इन सबको छोड़ना होगा, सब धन्धे छोड़ने होंगे, प्रत्येक कार्य के परिणाम=फल को छोड़ना होगा, जवानी की बहारों से किनारा करना होगा, सदा स्थिर न रहने वाला यह शरीर त्यागना होगा। अयि भोले मनुष्य ! जब इन सब वस्तुओं ने एक दिन तुमसे छूट ही जाना है, तो फिर इनके छूटने से पहले तू स्वयं ही इनका क्यों नहीं छोड़ देता इनसे किनारा कर लेता, इसी में तेरा भला है, तेरी बुद्धिमत्ता है।

हमारे चरितनायक भले ही स्वल्पवयस्क थे, छोटी सी अवस्था के थे, परन्तु जन्म-जन्मान्तर के पिछले शुभ संस्कारों के कारण इनका मानस संसार की अनिश्चितता और क्षणभंगुरता से अनजाना नहीं था, उसके स्वरूप उससे भली भाँति परिचित था, ये खूब समझते थे कि यह दुनिया एक धर्मशाला के तुल्य है, जैसे धर्मशाला में यात्रियों का आवागमन होता रहता है, वैसे दुनिया में भी जीवों का यातायात चलता रहता है। यहाँ पर स्थायी रूप से कोई टिक नहीं सकता, यहाँ की अवस्थिति अस्थायी है, सबको एक दिन यहाँ से बिहार करना होता है। सूर्य प्रातः उदित होता है, सायंकाल को जैसे वह अस्ताचल की गोद में चला जाता है, वसी ही दशा इस मानवी जीवन की होती है, मानव भी एक दिन समाप्ति के अस्ताचल में समा जाता है। कौन नहीं जानता औरों की शवयात्रा देखने वाले एक दिन स्वयं शवयात्रा कर रहे होते हैं। कितना भोला है यह मनुष्य, जो दुनिया की अनित्यता को देखता हुआ भी अनजाना बन रहा है। विषयभोगों, निन्दा, चुगली, और दुनिया के झूठे प्रपंचों में फँस रहा है। बिना किसी झिझक के कहा जा सकता है कि यदि मनुष्य जीवन की इस अनित्यता को अच्छी तरह से समझ ले तो दुनिया की मोह ममता में यह अपने को उलझाने की कभी भूल न करे, जगती के निस्सार और दुःखान्त मोह-जाल से किनारा करके तत्काल आत्मकल्याण के महापथ पर चलना आरम्भ करदे।

अपने पूज्य पिता चौधरी तेजाराम जी के आकस्मिक स्वर्गवासी हो जाने के कारण ससार की अनित्यता साकार होकर चरितनायक के सन्मुख नृत्य करने लगी थी, इसीलिए चरितनायक का अन्तःकरण जगत की झूठी मोह

ममता से उपराम होने लगा था, अन्त में, इन्होंने अपने मन में यह निश्चय कर लिया था कि मुझे दुनिया के मोह बन्धनों से सर्वथा दूर रहना है, गृहस्थ जीवन के जाल में बिल्कुल नहीं फँसना है, जीवन भर ब्रह्मचर्य के महादेव की आराधना करनी है, विवाह के बन्धनों में अपने को नहीं बाँधना है और घर-बार की ममता छोड़कर संयम साधना के द्वारा अपनी जीवन यात्रा सम्पन्न करनी है, इस निश्चय को साकार बनाने के लिए इन्होंने अपना अधिक समय प्रभुभजन, आत्मचिन्तन, अहिंसा, सत्य, त्याग और वैराग्य का उपदेश देने वाले धर्मशास्त्र के श्रवण और सत्संग में ही व्यतीत करना आरम्भ कर दिया और साथ में ये किसी योग्य त्यागी। वैरागी, चरित्रशील मार्गदर्शक का अन्वेषण भी करने लगे।

वैराग्य की परिभाषा

शास्त्रों का परिशीलन करने पर पता चलता है कि वैराग्य शब्द अनेकार्थक होता है, इसके अनेकों अर्थ उपलब्ध होते हैं। पातञ्जलयोग दर्शन में वैराग्य शब्द की अर्थ विचारणा करते हुए आचार्य पतञ्जलि लिखते हैं—

ज्ञानस्य पराकाष्ठा वैराग्यम्, ११/६

—ज्ञान की पराकाष्ठा—(अन्तिम सीमा) का नाम वैराग्य है। भाव यह है कि विषय वासनाओं के दुःखान्त परिणाम, पापों की अनिष्टकारिता, और संसार के स्वरूप का वास्तविक बोध और पूर्ण ज्ञान ही वस्तुतः वैराग्य का जनक होने से वैराग्य कहलाता है। महाराज भर्तृहरि अपने वैराग्यशतक में वैराग्य के स्वरूप का दिग्दर्शन कराते हुए कितनी सुन्दर बात कह रहे हैं—

भक्तिर्भवे मरण-जन्म भयं हृदिस्थं,
स्नेहो न बन्धुषु, न मन्मथजा विकाराः।[1]
संसर्गदोषरहिता विजना वनान्ता,
वैराग्यमस्ति किमतः परमर्थनीयम् ॥

—भगवान में भक्ति हो जाए, हृदय में जन्म-मरण का भय हो जाए, बन्धुजनों में स्नेह न रहे, मन से काम विकार विनष्ट हो जाए, तथा संसर्ग दोष से रहित निर्जन वन में निवास हो जाय तो फिर बताओ, इससे बढ़कर और वैराग्य है ही क्या ? जिसके निमित्त भगवान से प्रार्थना की जाए ?

विवेक चूड़ामणि-कार ने योग्य वस्तुओं के प्रति वासना का उदय न होना,

---

[1] वैराग्यशतक ७५

वैराग्य की चरमसीमा बतलाई है। विवेक-चूडामणि-कार के अपने शब्द इस प्रकार हैं—

वासनाऽनुदये भोग्ये, वैराग्यस्य परोवधिः।
अहंभावोदयाभावो, बोधस्य परमोऽवधिः॥

—विवेक-चूड़ामणि ४/२५

—भोग योग्य वस्तुओं को देखकर हृदय में वासना का न जागना वैराग्य की चरमसीमा मानी गई है तथा अहंभाव के उदय का अभाव होना ज्ञान की परम अवधि स्वीकार की गई है।

कोषकारों के मत में वैराग्य का अर्थ है—विषय वासना, और सांसारिक सम्बन्धों से मन का उचट जाना, उदासीनता, विरक्ति, राग और द्वेष का अभाव। वैराग्य शब्द अपनी शाब्दिक रचना के अनुसार मुख्य रूप से राग और द्वेष के अभाव को ही अभिव्यक्त करता दिखाई दे रहा है। अतः सर्व-प्रथम राग और द्वेष इन दोनों शब्दों का अभिप्राय समझ लेना आवश्यक है। राग का अर्थ है—**असंयम-मय-सुखाभिप्रायो रागः**। अर्थात् संयमहीन पौद्-गलिक सुखों की अभिलाषा को राग कहते हैं। उत्तराध्ययन सूत्र के टीकाकार द्वेष का अर्थ करते हुए लिखते हैं—**द्वेष उपशम-त्यागात्मके विकारे**। अर्थात् उपशम भाव के त्याग रूप आत्मा के विकार को द्वेष कहा गया है। तत्वामृत कार—**दुःखानुशायी द्वेषः** यह लिखकर—दुःख की प्रतीति के पीछे रहने वाले क्लेश को द्वेष मानते हैं। सामान्य रूप से मन पसन्द वस्तु पर उत्पन्न होने वाला मोह राग कहलाता है और मन को जो वस्तु पसन्द नहीं है, उसे देख कर हृदय में जो घृणा या नफरत उत्पन्न होती है, घृणास्वरूप उस मनोदशा को द्वेष कहते हैं। राग और द्वेष ये दोनों परस्पर बड़े निकटतम साथी हैं, ये दोनों सदा इकट्ठे ही रहते हैं, जहाँ पर राग रहता है, वहाँ पर द्वेष का अस्तित्व नियमित रूप से पाया जाता है, द्वेष की विद्यमानता में राग की सत्ता कभी समाप्त नहीं होने पाती। इस तरह ये दोनों जन्मजात मित्र एक दूसरे से कभी विमुक्त नहीं होते। जैन दृष्टि से राग और द्वेष ये दोनों आत्मा के आन्तरिक शत्रु माने गए हैं, इन्हीं की दया से ही बहिरंग शत्रुओं का जन्म होता है यदि ये दोनों नष्ट हो जाएँ, फिर तो अन्तरंग और बहिरंग सभी प्रकार के शत्रु तत्काल सदा के लिए धराशायी हो जाते हैं। अधिक क्या, राग द्वेष की समाप्ति का अर्थ है—जीवन के समस्त दुःखों की उपशान्ति, तथा काम, क्रोध आदि विकारों का अभाव।

जीवन शास्त्र का परिशीलन करने वाले मनीषी महापुरुषों की मान्यता है कि क्रोध, मान, माया—कपट और लोभ ये चार मुख्य रूप से जीवन के

महादोष माने गए हैं। क्रोध प्रीति का नाश करता है, अहंकार विनय, नम्रता, मधुरता और सरसता की जड़ें हिला देता है. माया-कपट दोस्ती के महावृक्ष को आरी की तरह काट देती है। कपट और मित्रता का दिन रात का सा विरोध चलता है, कपट मित्रता को निकट नहीं आने देता है, उसे समाप्त कर देता है और लोभ प्रेम, विनय एवं मित्रता इन सभी सद्गुणों को विनष्ट कर डालता है। क्रोध आदि तो एक-एक सद्गुण को हानि पहुँचाते हैं परन्तु लोभ की अवस्थिति में जीवन की प्रेमादि सभी गुण सम्पदा खतम हो जाती है।[1] जैन साहित्य में क्रोधादि महादोषों को चाण्डाल-चौकड़ी के नाम से व्यवहृत किया गया है। इनमें से एक भी दोष जहाँ आसन जमा लेता है, वहाँ पर उपद्रव सर उठाना आरम्भ कर देते हैं, फिर जहाँ इन चारों की बैठक हो वहाँ पर होने वाले उपद्रवों और अनर्थ का तो कहना ही क्या है? इस चाण्डाल-चौकड़ी की छायातले आपसी प्यार, बड़ों के प्रति आदरभाव, एक दूसरे का हार्दिक सान्निध्य, सुख शान्ति, आनन्द, उल्लास और उत्साह आदि सभी सद्-विचारों के जितने भी लहलहाते पौधे होते हैं, वे सबके सब मुरझाने आरम्भ हो जाते है। जीवन-बगिया बिल्कुल नीरस बन जाती है। क्रोध आदि इन महादोषों के उत्पादक भी राग द्वेष ही होते हैं। राग द्वेष की कृपा से ही क्रोधादि का जीवन फलता फूलता है। राग माया-कपट और लोभ को उत्पन्न करता है तथा द्वेष से क्रोध और मान का आविर्भाव होता है। इसीलिए, परमपिता परमात्मा भगवान महावीर ने राग और द्वेष को कर्मों का बीज स्वीकार किया है। प्रसिद्ध जैनागम श्री उत्तराध्ययन सूत्र में राग-द्वेष की रूप-रेखा का वर्णन करते हुए एक दिन स्वयं भगवान महावीर ने उद्बोधित किया था—

> रागो य दोसो वि य कम्मबीयं,[2]
> कम्मं च मोहप्पभवं वयन्ति।
> कम्मं च जाई मरणस्स मूलं,
> दुक्खं च जाई मरणं वयन्ति॥

—राग और द्वेष ये दोनों कर्मों के बीज माने जाते हैं, इनसे कर्म उत्पन्न

---

[1] कोहो पीइं पणासेइ, माणो विणयनासणो।
माया मित्ताणि नासेइ, लोहो सव्वविणासणो॥
—दशवै० ८, ३८

[2] उत्तराध्ययन [illegible]

होते हैं। कर्म से मोह पैदा होता है और यही जन्ममरण का मूल है तथा जन्म-मरण ही दुःख कहलाते हैं।

पतितपावन भगवान महावीर की अमर वाणी का सन्देश स्पष्टतया यह प्रमाणित कर रहा है कि राग और द्वेष इन दोनों से ही कर्मों की उत्पत्ति होती है, कर्म-महावृक्ष के परिपालक और परिपोषक ये दोनों ही शैतान समझने चाहिये। पानी से वनस्पति जैसे जीवन सम्प्राप्त करती है वैसे राग-द्वेष-रूप पानी के द्वारा कर्मों का महावृक्ष सम्वर्धित एवं सुदृढ़ होता रहता है तथा इन्धन के सान्निध्य से जैसे अग्नि अधिकाधिक फैलती चली जाती है। वैसे कर्मों की अग्नि भी रागद्वेष के इन्धन का सहयोग पाकर अपना क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत कर लेती है। आत्मा को हानि पहुँचानेवाली वैसे तो संसार में अनेकानेक वस्तुएँ दृष्टिगोचर होती हैं। परन्तु जीवजगत का जितना अधिक नुकसान रागद्वेष से होता है, उतना किसी और वस्तु से नहीं। आत्मिक जीवन के ये सबसे बड़े और सबसे अधिक बलवान प्रतिद्वन्द्वी माने गए हैं। अधिक क्या, रागद्वेष से आत्मा को कभी लाभ होगा यह तो स्वप्न में भी कभी सोचा नहीं जा सकता। इनसे तो जीवात्मा की हानि ही हुआ करती है।

जैन तथा जैनेतर सभी धर्मशास्त्रों ने रागद्वेष की अनिष्टकारिता को पूरे जोर के साथ स्वीकार किया है। श्री उत्तराध्ययन सूत्र—**रागदोसे य दो पावे, पावकम्मपवत्तणे**"[1] यह कहकर रागद्वेष को पाप कर्मों में प्रवृत्ति कराने वाले स्वीकार किया है। बौद्धजगत का महामान्य धर्मशास्त्र धम्मपद—"**नत्थि रागसमो आगि नत्थि दोससमो कलि**"[2] इन शब्दों के द्वारा कह रहा है कि राग के समान अग्नि नहीं है और द्वेष के समान क्लेश नहीं है। एक मनीषी विचारक कितनी सुन्दर बात कहता है। उसका कहना है कि बिजली दो प्रकार की होती है, एक बिजली ऐसी होती है जो प्राणी को अपनी ओर खींचती है और दूसरी बिजली उसे झटका देकर फैंक देती है, किन्तु दोनों प्रकार की ये बिजलियाँ प्राणी के जीवन का नाश कर देती हैं। बिल्कुल ऐसी ही स्थिति रागद्वेष की होती है। राग व्यक्ति को अपनी ओर आकृष्ट करता है और द्वेष उसे दूर फैंकता है, परन्तु आत्मिक जीवन के दोनों ही संहारक हैं।

यह सत्य है कि रागद्वेष दोनों ही शैतान है, आत्मिक जीवन के घातक हैं, उसकी आध्यात्मिक उन्नति में बाधक है, परन्तु यहाँ एक प्रश्न उपस्थित होता है कि रागद्वेष को समाप्त कैसे किया जाए? उत्तर में निवेदन है कि

---

[1] अध्याय ३२/३

[2] देखो १५/६

विद्वान आचार्यों ने रागद्वेप से विमुक्त होने का साधन वैराग्य बताया है। वैराग्य की अर्थविचारणा करते समय कहा गया था कि रागद्वेप से बचना, छुटकारा प्राप्त करना इनके चंगुल में न फंसना इनसे उपराम रहना या उपराम रहने का प्रयास या अभ्यास करना वैराग्य कहलाता है। रागद्वेप से कैसे बचा जाता है? यह प्रश्न होना भी स्वाभाविक है, इस का समाधान प्राप्त कर लेना भी आवश्यक है। किसी भी दोप का विनाश उसके प्रतिपक्षी गुण को अपनाने से हो सकता है। रागद्वेप का प्रतिपक्षी गुण वैराग्य माना गया है, इसके आश्रयण से ही रागद्वेप पर विजय प्राप्त की जा सकती है, अन्यथा नहीं। राग-द्वेप पर विजय पाने की जो पद्धति है, इसकी रूपरेखा इस प्रकार है—

संसार के जितने पदार्थ हैं उनको तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं। जैसे—१—**इष्ट**, २—**अनिष्ट**, और ३—**उपेक्षणीय**। जो पदार्थ हमारी इन्द्रियों को अच्छे लगते हैं, वे इष्ट कहलाते हैं, मन को प्रिय लगने वाले इन इष्ट पदार्थों पर संसारी जीवों का राग होता है। इसके विपरीत, जिन पदार्थों को इन्द्रियाँ और मन पसन्द नहीं करते और जो अप्रिय अनुभव होते हैं वे अनिष्ट पदार्थ कहलाते हैं, इन अनिष्ट पदार्थों पर मनुष्य को द्वेप हुआ करता है। जब विवेकशील व्यक्ति रागद्वेप से किनारा प्राप्त कर लेता है, पदार्थों में प्रियता या अप्रियता के दर्शन न करके उनके वास्तविक अनित्य और दुःखान्त रूप को निहारता है तो वे सब पदार्थ उस को उपेक्षणीय-अपेक्षा-शून्य दृष्टिगोचर होते हैं।

किसी भी पदार्थ का प्रिय होना या अप्रिय होना पदार्थ का अपना धर्म नहीं है। पदार्थ तो जैसे स्वभाववाले होते हैं वैसे ही अपने स्वरूप में अवस्थित रहते हैं परन्तु मनुष्य अपनी कल्पना के द्वारा उन्हें प्रिय या अप्रिय बना लेता है। जिस पदार्थ से वह प्यार करने लगता है उसे वह प्रिय समझ लेता है और जिस से उसको प्यार नहीं होता या जो उसे बुरा लगता है, उसे वह अप्रिय मान बैठता है। यही कारण है कि एक ही पदार्थ एक मनुष्य को प्रिय और वही पदार्थ दूसरे मनुष्य को अप्रिय दिखाई देता है। प्रिय लगना यदि पदार्थ का अपना धर्म होता तो वह सभी को एक सा प्रिय या अप्रिय लगना चाहिये था परन्तु वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। उदाहरणार्थ, नीम मनुष्य को कटु और अप्रिय लगता है परन्तु उसी नीम को ऊँट अत्यधिक मृदु और प्रिय मानता है। दही अनेक व्यक्तियों को बड़ा प्रिय अनुभव होता है, किन्तु कुछ व्यक्ति उसे देखना भी पसन्द नहीं करते वह उनकी प्रकृति के सर्वथा प्रतिकूल होता है। बच्चा बचपन में मिट्टी के खिलौनों से बड़ा प्यार करता

है, परन्तु युवक होने पर उसको उनमे जरा भी लगाव नहीं रहता। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इष्टता या अनिष्टता, प्रियता या अप्रियता किसी वस्तु का मूलधर्म नही है वह तो केवल व्यक्ति की कल्पना में ही उपलब्ध होती है, व्यक्ति अपनी कल्पना के द्वारा ही पदार्थों को प्रिय और अप्रिय बना लेता है।

इसके अतिरिक्त, कभी-कभी व्यक्ति एक ही वस्तु को विभिन्न अवस्थाओं में प्रिय और अप्रिय मानने लगता है। देखा जाता है कि पति को किसी समय जो पत्नी स्वर्गपुरी की परी से भी अधिक वांच्छनीय और इष्ट होती है परन्तु कालान्तर में वह उसी पत्नी को बुलाना या देखना पसन्द नही करता, आँखों के सामने यदि अचानक वह आ भी जाए तो उसे महान अन्तर्वेदना अनुभव होती है। कड़ी भूख लगने पर जो भोजन अत्यधिक प्रिय प्रतीत होता है पेट भर जाने पर वही प्रिय भोजन अप्रिय अनुभव होने लगता है। यदि कोई जबर्दस्ती उसे खिलाने का प्रयास करता है तो उससे उसका जी मिचलाने लगता है, वमन आने की उसकी दशा बन जाती है। प्रश्न हो सकता है कि ऐसा क्यों ? उत्तर स्पष्ट है प्रियता या अप्रियता वस्तुयें नहीं है व्यक्ति की अपनी चिन्तना में निवास करती है। प्रिय लगना यदि भोजन का नैसर्गिक गुण होता तो भूख में या पेट भर जाने पर, इन दोनों अवस्थाओं में भी वह प्रिय ही लगता तथा अप्रिय लगना यदि भोजन का स्वभाव या धर्म होता तो भी उक्त दोनों अवस्थाओं में वह अप्रिय रहता, परन्तु ऐसा देखने में आता नही है।

प्रस्तुत में राग और द्वेष की बात चल रही है। राग द्वेष भी मन की कल्पनाएं ही हैं। क्योंकि मन किसी पदार्थ से जब प्यार करता है तो उस पर उसका राग हो जाता है, और जब वह किसी पदार्थ से प्यार नहीं करता, उसे अनिष्ट या अहितकर मानता है, तो उससे उसको द्वेष होता है। इसीलिए राग-द्वेष को मन की कल्पनाएँ कहा जाता है। जो विवेकशील व्यक्ति पदार्थों के वास्तविक स्वरूप को जान लेते हैं, संसार के पदार्थ अनित्य असत्य है, निस्सार है, आत्मकल्याण के मार्ग में बाधक हैं, इनका ममत्व चतुर्गतिरूप संसार में रुलाने वाला है, इस तथ्य को अच्छी तरह से समझ लेते हैं, वे संसार के किसी पदार्थ को न तो प्रिय मानते हैं और न उन्हें अप्रिय कहते हैं। वे तो पदार्थों के दुःखान्त और निस्सार स्वरूप को देखकर उन्हें उपेक्षणीय, उपेक्षा के योग्य ही बतलाते हैं। संसार के पदार्थों को इष्ट या अनिष्टमान कर उन्हें उपेक्षणीय समझ लेना ही वास्तविक वैराग्य होता है।

है, परन्तु युवक होने पर उसको उनसे जरा भी लगाव नहीं रहता। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इष्टता या अनिष्टता, प्रियता या अप्रियता किसी वस्तु का मूलधर्म नहीं है वह तो केवल व्यक्ति की कल्पना में ही उपलब्ध होती है, व्यक्ति अपनी कल्पना के द्वारा ही पदार्थों को प्रिय और अप्रिय बना लेता है।

इसके अतिरिक्त, कभी-कभी व्यक्ति एक ही वस्तु को विभिन्न अवस्थाओं में प्रिय और अप्रिय मानने लगता है। देखा जाता है कि पति को किसी समय जो पत्नी स्वर्गपुरी की परी से भी अधिक वांच्छनीय और इष्ट होती है परन्तु कालान्तर में वह उसी पत्नी को बुलाना या देखना पसन्द नहीं करता, आँखों के सामने यदि अचानक वह आ भी जाए तो उसे महान अन्तर्वेदना अनुभव होती है। कड़ी भूख लगने पर जो भोजन अत्यधिक प्रिय प्रतीत होता है पेट भर जाने पर वही प्रिय भोजन अप्रिय अनुभव होने लगता है। यदि कोई जबर्दस्ती उसे खिलाने का प्रयास करता है तो उससे उसका जी मिचलाने लगता है, वमन आने की उसकी दशा बन जाती है। प्रश्न हो सकता है कि ऐसा क्यों? उत्तर स्पष्ट है प्रियता या अप्रियता वस्तुयें नहीं है व्यक्ति की अपनी चिन्तना में निवास करती है। प्रिय लगना यदि भोजन का नैसर्गिक गुण होता तो भूख में या पेट भर जाने पर, इन दोनों अवस्थाओं में भी वह प्रिय ही लगता तथा अप्रिय लगना यदि भोजन का स्वभाव या धर्म होता तो भी उक्त दोनों अवस्थाओं में वह अप्रिय रहता, परन्तु ऐसा देखने में आता नहीं है।

प्रस्तुत में राग और द्वेष की बात चल रही है। राग द्वेष भी मन की कल्पनाएं ही हैं। क्योंकि मन किसी पदार्थ से जब प्यार करता है तो उस पर उसका राग हो जाता है, और जब वह किसी पदार्थ से प्यार नहीं करता, उसे अनिष्ट या अहितकर मानता है, तो उससे उसको द्वेष होता है। इसीलिए राग-द्वेष को मन की कल्पनाएँ कहा जाता है। जो विवेकशील व्यक्ति पदार्थों के वास्तविक स्वरूप को जान लेते हैं, संसार के पदार्थ अनित्य असत्य है, निस्सार है, आत्मकल्याण के मार्ग में बाधक हैं, इनका ममत्व चतुर्गतिरूप संसार में रुलाने वाला है, इस तथ्य को अच्छी तरह से समझ लेते है, वे संसार के किसी पदार्थ को न तो प्रिय मानते हैं और न उन्हें अप्रिय कहते हैं। वे तो पदार्थों के दुःखान्त और निस्सार स्वरूप को देखकर उन्हें उपेक्षणीय, उपेक्षा के योग्य ही बतलाते हैं। संसार के पदार्थों को इष्ट या अनिष्टमान कर उन्हें उपेक्षणीय समझ लेना ही वास्तविक वैराग्य होता है।

कामना-डाकिनी पर विजय प्राप्त करनेवाला मनुष्य कितना महान बन जाता है ? इस सम्बन्ध में सिक्खधर्म का धर्मशास्त्र कितनी सुन्दर बात कह रहा है—

जो इस मारे सोई शूरा, जो इस मारे सोई पूरा,
जो इस मारे तिसहि बड़ाई, जो इस मारे तिस का दुख जाई।
जो इस मारे सोई जती, जो इस मारे तिस होवे गती,
इस मारे बिन थायं न परै, कोटि कर्म जाप ताप करै।

—गुरु ग्रन्थसाहिब, गौड़ी मुहल्ला ५

वास्तव में वही पुरुष शूर, वीर, परिपूर्ण, प्रशंसनीय, और सच्चा साधु है जो कामनाओं का परित्याग करके परम वैराग्यभाव को धारण करता है, जब तक राग-द्वेष से चित्त कलुषित है, कामनाओं की दुर्गन्धि से सड़ रहा है, तब तक ऊपरी क्रियाकाण्ड कुछ भी फल नहीं देता। जप करो, तप करो, कुछ भी करो यदि कामना नहीं गई है, वैराग्य का अंकुर नहीं फूटा है तो सब कुछ व्यर्थ ही समझना चाहिये।

वैराग्य के अनेकों प्रकार

वैराग्य की रूपरेखा के मर्मज्ञ महापुरुषों ने वैराग्य को **१—दुःखगर्भित वैराग्य २—मोहगर्भित वैराग्य और ३—ज्ञानगर्भित वैराग्य** इन तीन विभागों में विभक्त किया है। दुःख की प्रधानता के कारण जो वैराग्य पैदा होता है, उसे दुःखगर्भित वैराग्य कहते हैं। जीवन क्षेत्र का अध्ययन करने से पता चलता है कि अशुभकर्मों के प्रकोप के कारण जन-जीवन दुःखों से घिर जाता है, प्रतिकूल परिस्थितियाँ जब जीवन की जड़ें हिलाना आरम्भ कर देती हैं, निराशा और हताशा साकार होकर जब ताण्डव नृत्य करने लग जाती है तो ऐसे संकटापन्न व्यक्ति संसार से उपराम हो जाते हैं, उन्हें सारा संसार असार और दुःखस्वरूप दिखाई देने लगता है कालान्तर में ऐसे व्यक्तियों के जीवन में विरक्ति, साधु बन जाने की भावना और संयम साधना द्वारा जीवन-यापन करने की कामना अङ्गड़ाई लेने लगती है और अन्त में वे सन्त बन जाते हैं। शास्त्रीयभाषा में इन व्यक्तियों की यह विरक्ति दुःखगर्भित-वैराग्य के नाम से व्यवहृत की जाती है। "नारी मुई घर सम्पति नासी, मूण्ड मुंड़ाय भए संन्यासी" की लोक प्रसिद्ध उक्ति उक्त दुःखगर्भित वैराग्य वाले व्यक्तियों के लिए ही प्रयोग में लाई जाती है। यह वैराग्य प्रशस्त नहीं होता, सब से साधारण वैराग्य स्वीकार किया गया है। क्योंकि यह वैराग्य सदा अवस्थित नहीं रहता, आगे चलकर ऐसे वैराग्य को यदि ज्ञान का प्रकाश नहीं मिलता तो

भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं, वित्ते नृपालाद् भयम् ।
मौने दैन्यभयं बले रिपुभयं, रूपे जराया भयम् ।।
शास्त्रे वादभयं, गुणे खलभयं, काये कृतान्ताद् भयम् ।
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुविनृणां वैराग्यमेवाभयम् ।।

—वैराग्यशतक ३५

भोगी को रोग का भय होता है, कुलीन को क्षति का, धनी को राजा का, मौनी को दीनता का, बलवान को शत्रु का, रूप को बुढ़ापे का, शास्त्रज्ञ को वादविवाद का, गुणवान को दुर्जन का, और शरीर को मृत्यु का भय बना रहता है, इस प्रकार धरती पर सभी वस्तुएँ भय-सहित हैं, किन्तु अभय-भयरहित तो केवल एक वैराग्य ही होता है ।

"सुखा वीतरागता लोके ।" — सुत्तपिटक—उदान २/१

संसार में वीतरागता ही सुख है ।

"कस्य सुखं न करोति विरागः ?"

वैराग्य किसको सुख नहीं देता ? अर्थात् वैराग्य सुखस्वरूप और सबको सुखिया बना देता है ।

हृदय में किसी भी प्रकार की कामना या वासना का न होना वैराग्य का व्यावहारिक रूप होता है । वैराग्य और कामना का दिन-रात का सा विरोध होता है । वैराग्य के महादेव का वरद हस्त प्राप्त करने के लिए कामना से पिण्ड छुड़ाना अत्यावश्यक होता है । कामना का परित्याग करना साधारण बात नहीं है । सच पूछो तो कामना ही जीव को नाना प्रकार के दुःख प्रदान करती है और कामना ही मनुष्य का समुज्ज्वल भविष्य बिगाड़ कर उसे सदा के लिए अन्धकारपूर्ण बना डालती है । वैराग्य-वान आत्मा कामनाओं से बहुत ऊपर उठ जाता है । कामनाओं से ऊपर उठ जाने का अर्थ है—संसार की विपत्तियों से ऊपर उठ जाना । श्रीमद् भगवद्गीता की मान्यता के अनुसार जो व्यक्ति कामना पर काबू पा लेता है, वह स्थित-प्रज्ञ बन जाता है । गीताकार के अपने शब्द इस प्रकार हैं—

प्रजहाति यदा कामान्, सर्वान् पार्थ ! मनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः, स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ।।

—श्रीमद् भगवद्गीता, अ० २/५५

हे अर्जुन ! वही मनुष्य स्थिर बुद्धि वाला कहा जा सकता है जो मन में उत्पन्न होने वाली समस्त कामनाओं का क्षय करके अपनी आत्मा में ही सन्तुष्ट रहता है ।

कामना-डाकिनी पर विजय प्राप्त करनेवाला मनुष्य कितना महान वन जाता है ? इस सम्वन्ध में सिक्खधर्म का धर्मशास्त्र कितनी सुन्दर बात कह रहा है—

> **जो इस मारे सोई शूरा, जो इस मारे सोई पूरा,**
> **जो इस मारे तिसहि वड़ाई, जो इस मारे तिस का दुख जाई।**
> **जो इस मारे सोई जती, जो इस मारे तिस होवे गती,**
> **इस मारे विन थायं न परे, कोटि कर्म जाप ताप करे।**
>
> —गुरु ग्रन्थसाहिव, गौड़ी मुहल्ला ५

वास्तव में वही पुरुप शूर, वीर, परिपूर्ण, प्रशंसनीय, और सच्चा साधु है जो कामनाओं का परित्याग करके परम वैराग्यभाव को धारण करता है, जव तक राग-द्वेप से चित्त कलुपित है, कामनाओं की दुर्गन्धि से सड़ रहा है, तव तक ऊपरी क्रियाकाण्ड कुछ भी फल नहीं देता। जप करो, तप करो, कुछ भी करो यदि कामना नहीं गई है, वैराग्य का अंकुर नहीं फूटा है तो सव कुछ व्यर्थ ही समझना चाहिये।

वैराग्य के अनेकों प्रकार

वैराग्य की रूपरेखा के मर्मज्ञ महापुरुपों ने वैराग्य को **१—दुःखगर्भित वैराग्य २—मोहगर्भित वैराग्य और ३—ज्ञानगर्भित वैराग्य** इन तीन विभागों में विभक्त किया है। दुःख की प्रधानता के कारण जो वैराग्य पैदा होता है, उसे दुःखगर्भित वैराग्य कहते हैं। जीवन क्षेत्र का अध्ययन करने से पता चलता है कि अशुभकर्मों के प्रकोप के कारण जन-जीवन दुःखों से घिर जाता है, प्रतिकूल परिस्थितियाँ जव जीवन की जड़ें हिलाना आरम्भ कर देती हैं, निराशा और हताशा साकार होकर जव ताण्डव नृत्य करने लग जाती है तो ऐसे संकटापन्न व्यक्ति संसार से उपराम हो जाते हैं, उन्हें सारा संसार असार और दुःखस्वरूप दिखाई देने लगता है कालान्तर में ऐसे व्यक्तियों के जीवन में विरक्ति, साधु वन जाने की भावना और संयम साधना द्वारा जीवन-यापन करने की कामना अङ्गड़ाई लेने लगती है और अन्त में वे सन्त वन जाते हैं। शास्त्रीयभापा में इन व्यक्तियों की यह विरक्ति दुःखगर्भित-वैराग्य के नाम से व्यवहृत की जाती है। "नारी मुई घर सम्पति नासी, मूण्ड मुंड़ाय भए संन्यासी" की लोक प्रसिद्ध उक्ति उक्त दुःखगर्भित वैराग्य वाले व्यक्तियों के लिए ही प्रयोग में लाई जाती है। यह वैराग्य प्रशस्त नहीं होता, सव से साधारण वैराग्य स्वीकार किया गया है। क्योंकि यह वैराग्य सदा अवस्थित नहीं रहता, आगे चलकर ऐसे वैराग्य को यदि ज्ञान का प्रकाश नहीं मिलता तो

यह वैराग्य कारण सामग्री के न रहने पर स्वयं भी समाप्त हो जाता है। इसकी जड़ें ढीली होती हैं, मजबूत नहीं होतीं, कष्ट टल गया, इच्छा की पूर्ति हो गई तो तत्काल यह वैराग्य अपना स्वरूप खो बैठता है। इसीलिए इस वैराग्य को साधारण वैराग्य माना गया है।

माता, पिता, भाई, बहिन, पुत्र, पुत्री और स्त्री आदि सम्बन्धियों के मोह या ममत्व के कारण जो वैराग्य उत्पन्न होता है उसे मोहगर्भित वैराग्य कहा जाता है। उदाहरणार्थ, त्याग, वैराग्य की समुच्च भावना से प्रेरित होकर यदि पिता साधु जीवन अङ्गीकार कर लेते हैं, घरबार छोड़कर साधु बन जाते हैं, तो पिता का वियोग असह्य समझ कर उसका पुत्र त्याग-वैराग्य की भावना से सर्वथा शून्य होने पर भी साधु बन जाता है, पिता के सान्निध्य को सदा बनाए रखने के लिए घरबार को तिलाञ्जलि दे डालता है। इसी प्रकार पुत्र यदि साधना के मंगलमय मार्ग पर चल देता है तो उसके मोह में पिता भी संयम के महापथ को अङ्गीकार कर लेता है। माता यदि साध्वी बनकर आत्मकल्याण करने में जुट जाती है तो उसकी पुत्री ममता से आकृष्ट होकर साध्वी बन जाती है, यदि पुत्री पारिवारिक या सामाजिक मोह-जाल के कड़े बन्धनों को तोड़कर साध्वी बनती है, तो उसके प्रेम में आसक्त बनी हुई उसकी जननी भी पति आदि सम्बन्धियों से किनारा करके साध्वी हो जाती है। इस तरह माता, पिता, भाई, बहिन, पति, पत्नी, साला बहनोई या मित्र आदि इष्ट जनों के मोह से प्रभावित होकर जो वैराग्य को अपनाया जाता है, संसारी जीवन से जो उपरामता स्वीकार की जाती है, यह उपरामता विरक्ति या वैराग्य शास्त्रों की भाषा में मोहगर्भित वैराग्य माना जाता है। यह वैराग्य मध्यम माना गया है, इस वैराग्य को न साधारण कह सकते हैं और ना ही असाधारण, क्योंकि यदि आज किसी के मोह में आकर कोई सन्त बन जाता है अपने घर बार से किनारा प्राप्त कर लेता है तो कल को किसी सुन्दरी के सौन्दर्य से मोहित होकर माता, पिता आदि के मोह को वह छोड़ भी सकता है, साधु जीवन से अलग हो सकता है, ऐसी स्थिति में मोहगर्भित वैराग्य अस्थायी ही रहता है। इसीलिए इसे मध्यम माना गया है।

त्यागी, वैरागी जगतारक सन्तजनों के मङ्गलमय उपदेश सुनकर या अहिंसा, सत्य के अमर साधक अध्यात्म महापुरुषों द्वारा विनिर्मित धर्मशास्त्रों का पठन-पाठन करके साधक के हृदयमन्दिर में जो ज्ञान की ज्योति जगमगाती है उससे सांसारिक पदार्थों से जो विरक्ति पैदा होती है, उस विरक्ति को ज्ञानगर्भित वैराग्य माना जाता है। देखा गया है कि जन्म-जन्मान्तर के शुभ संस्कारों के आधार पर कई बार व्यक्ति का हृदय बचपन से ही अहिंसा और

सत्य की ज्योति से ज्योतिर्मान हो जाता है, किसी दुःखी को देखकर उसे स्वभाव से ही दया उत्पन्न होती है, विना किसी मार्गदर्शक, उपदेशक या प्रेरक के माता-पिता आदि सम्वन्धिजनों से तथा संसार के झूठे मोह-वन्धनों से वह विरक्त और उदासीन दिखाई देता है, सदा वैराग्य की पावन भावना से भावित रहता है, कई वार मनुष्य सरलता, सहृदयता, सहिष्णुता निर्लोभता और आध्यात्मिकता के अमर पुञ्ज सन्तजनों के प्रेरक उपदेशों से प्रेरणा लेकर सम्यग् ज्ञान की ज्योति से ज्योतित हुआ करता है और दुनिया के दुःखद विषय भोगों को विषतुल्य समझ कर तथा उनका परित्याग करके साधुता के महापथ पर चलना आरम्भ कर देता है, संयमसाधना के सौरभ से उसका कण-कण सुरभित हो उठता है और कई वार त्याग, वैराग्य का अमर पाठ पढ़ानेवाले अध्यात्म-शास्त्रों के स्वाध्याय के कारण दुनिया के झूठे ऐश्वर्य, वैभव और भोग-विलास से व्यक्ति का मन मुड़ता है, संसार के निस्सार ममताभाव से किनारा करके वह अहिंसा, संयम और तप की परम पावनी त्रिवेणी में गोते लगाना आरम्भ कर देता है, साधु वनकर स्वयं अपने मन को साधता है और जो भी उसके सम्पर्क में आता है उसे मन को साधने की कला सिखलाता है। इस तरह पिछले जन्मों के शुभ संस्कारों के आधार पर या गुरुजनों के परम पवित्र उपदेशों को श्रवण करने के अनन्तर अथवा ज्ञानस्रोत आध्यात्मिक शास्त्रों के परिशीलन के कारण हृदयों में जो ज्ञानपूर्ण विरक्ति पैदा होती है उस विरक्ति को आगमों की भाषा में ज्ञानगर्भित वैराग्य कहा गया है। यह वैराग्य सर्वोत्तम है, सर्वोच्च है, प्रत्येक दृष्टि से आदरणीय, समादरणीय, समाचरणीय होने से सराहनीय है।

वैदिक परम्परा के जाने-माने ग्रन्थ श्रीमद् भगवद्गीता की मान्यता के अनुसार भक्तों के चार प्रकार वतलाए जाते हैं। महाभारत के मैदान में भक्तों के स्वरूप का परिज्ञान कराते हुए त्रिखण्डाधिपति कृष्ण महाराज ने एक वार अर्जुन से कहा था—

चतुर्विधा भजन्ते मां, जनाः सुकृतिनोऽर्जुन !
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी, ज्ञानी च भरतर्षभ !

—भगवद्गीता अ० ७/१६

—भरतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन ! उत्तम कर्म वाले मेरे चार भक्त होते हैं। जैसे—१—आर्त=शारीरिक वाचनिक और मानसिक दुःखों, संकटों और विपत्तियों से निवृत्ति पाने के निमित्त भगवान के नाम का स्मरण करने वाले। २—जिज्ञासु=सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, सच्चिदानन्द, अजर, अमर, बुद्ध,

सब दुःख प्रवीण, परमपिता परमात्मा के स्वरूप का यथार्थ रूप से ज्ञान प्राप्त की आकांक्षा रखने वाले। ३—**अर्थार्थी**=धन, धान्य, सुवर्ण, रजत, मकान और दुकान आदि सांसारिक अर्थ सम्पदा की प्राप्ति की कामना से ईश का स्मरण करने वाले और, ४- **ज्ञानी**=बिना किसी सांसारिक प्रलोभन के केवल आत्मकल्याण, आत्मोत्थान, स्व-स्वरूप-रमण तथा परमार्थ की भावना से जगत्पिता परमेश्वर का भजन करने वाले।

श्रीमद्भगवद्गीता के मन्तव्यानुसार आर्त आदि इन चतुर्विध भक्तों में भी ज्ञानी[1] भक्त सबसे उत्तम, विशिष्ट एवं श्रेष्ठ कहा गया है। क्योंकि यह नित्ययुक्त=प्रभु में एकीभाव से सदा स्थिर रहने वाला, और एकभक्ति=अनन्य भक्ति वाला होता है।

वास्तविक वैराग्य के साधन—

वैराग्य के प्रकारों का संक्षेप में दिग्दर्शन ऊपर की पंक्तियों में कराया जा चुका है, इनके परिशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वैराग्यों में ज्ञान-गर्भित वैराग्य ही सर्वश्रेष्ठ वैराग्य होता है। इस सर्वश्रेष्ठ वैराग्य की उपलब्धि कैसे होती है ? यह जान लेना भी आवश्यक है। जैनाचार्यों की मान्यता के अनुसार शुद्ध या प्रशस्त वैराग्य १—**निसर्ग**=स्वभाव या २—**अधिगम**=उपदेश से उत्पन्न होता है।[1] जिस वैराग्य में पूर्वजन्मकृत सद्आचरण से जनित शुभ संस्कार ही निमित्त होते हैं या जो सन्तजनों के उपदेश या धर्म-शास्त्रों के स्वाध्याय से उत्पन्न न होकर स्वभाव से ही पैदा होता है उसे निसर्गज या नैसर्गिक वैराग्य कहते हैं। इस वैराग्य में किसी भी प्रकार के किसी बाह्य निमित्त की अपेक्षा नहीं होती, यह निर्झर के स्रोत की भाँति स्वतः ही प्रकट हो जाता है। इसके विपरीत, जिस वैराग्य में बाह्य निमित्त अपेक्षित हों, कञ्चन कामिनी के त्यागी साधु-सन्तों का दर्शन, उनका सत्संग, उनका उपदेश-श्रवण, शास्त्रों का अध्ययन, अध्यापन तथा दूसरे सहयोग की अपेक्षा रहती हो उसे अधिगमज या आधिगामिक वैराग्य कहते हैं। इस वैराग्य में किसी न किसी निमित्त की अवस्थिति नियमित रूप से पाई जाती

---

[1] तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च ममप्रियः॥

—भगवद्गीता अध्याय ७/१७

[1] तन्निसर्गादधिगमाद् वा।

—तत्वार्थ सूत्र अ० १।

है। इस वैराग्य में—"अमुक निमित्त ही मिलना आवश्यक है या अमुक निमित्त मिलना आवश्यक नहीं है या एक ही निमित्त मिलना चाहिये या अनेक निमित्त इकट्ठे होकर मिलने आवश्यक हैं"—इस प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नहीं है। निमित्त एक हो या वे अनेक संख्या में हो, या वह अमुक प्रकार का हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। परन्तु निमित्त मिलना चाहिए, फिर भले ही वह कैसा भी हो और उसकी संख्या भी कितनी हो।

इतिहास का परिशीलन करने से पता चलता है कि संसार में ऐसे भी महामना पुरुष सम्प्राप्त होते हैं, जिनको सूर्यमुखी कमल की पंखुड़ियों में जब भरा हुआ भ्रमर दृष्टिगोचर होता है तो उसकी दयनीय एवं शोचनीय दशा[1] देखकर वे संसार से उदासीन हो जाते हैं, वैरागी बन जाते हैं। किसी समय सिर के कृष्ण केशों में जब एक श्वेत केश दिखाई पड़ता है तो केश की श्वेतिमा का दर्शन भी मानव-हृदय को मोहममता से विरक्त और संसार से उदासीन बना डालती है। महात्मा बुद्ध का जीवन अरथी पर पड़े मृतक शरीर को निहार कर तथा एक वृद्ध के लड़खड़ाते शरीर की दयनीय दशा देखकर ही वैराग्य के महापथ का पथिक बन गया था। यतिशिरोमणि, महामहिम, श्रेष्ठिपुत्र जम्बूकुमार के जीवन की—"अचानक ऊपर से शिला का गिरना और उससे इनका बाल-बाल बचना" यह घटना ही इनको संसार से उपराम करवाने का कारण बन गई थी। ऐसे अन्य भी अनेकों उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं जिनमें घटना विशेष ही वैराग्य की उत्पत्ति के

---

[1] रात्रिर्गमिष्यति, भविष्यतिसुप्रभातम्,
भास्वानुदेष्यति, हसिष्यति पंकजश्रीः।
इत्थं विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे,
हा हन्त! हन्त! नलिनी गजउज्जहार।

—रात्रि हो जाने के कारण सूर्यमुखी कमल में फँसा हुआ भ्रमर विचार कर रहा है कि रात्रि व्यतीत होगी, सूर्योदय होने पर कमल खिलेगा, तदन्तर में यहाँ की कैद से मुक्त होकर अपने घर का रास्ता लूंगा परन्तु इतने में एक हाथी आता है वह उस कमल को तोड़कर अपनी टांगों के तले रखकर उसे पीस डालता है। कमल के साथ ही भ्रमर भी समाप्त हो जाता है। कवि के कहने का भाव यह है कि भ्रमर की भांति मनुष्य भी संकल्प-विकल्पों के जाल बुनता रहता है परन्तु मौत का हाथी आकर उसे सदा के लिए दबोच लेता है और उसके सबके सब मनोरथ धरे-धराए रह जाते हैं।

समुत्पादक दृष्टिगोचर होते हैं। ऐसे वैराग्य ही आधिगमिक वैराग्य कहलाते हैं।

हमारे चरितनायक श्री माडूसिंह जी संसार से उपराम हो रहे हैं, इनका मानस संसार के झूठे मोह बन्धनों से ऊब चुका है, वैराग्य की पावन ज्योति ने इनके अन्तर्जगत के ममता-तम को समाप्त करना आरम्भ कर दिया है, यह पीछे की पंक्तियों में हम निवेदन कर चुके हैं। इनके वैराग्य के मूल कारण पर भी यदि हम दृष्टिपात करते हैं तो विना संकोच के यह कहा जाता है कि इनका वैराग्य भी आधिगमिक वैराग्य ही था, इनके जीवन में भी एक ऐसी घटना घटित हुई थी, जिसके कारण इनका अन्तःकरण सांसारिकता के जाल को तोड़कर आध्यात्मिकता के समुच्च सिंहासन पर विराजमान होने की तैयारी करने लग गया था। वह घटना थी, इनके पूज्य पिता चौधरी तेजारामजी का होने वाला अचानक देहान्त। चौधरी तेजाराम जी की आकस्मिक मत्यु ने ही हमारे चरितनायक को वैराग्य के महापथ पर ला कर खड़ा कर दिया था। महात्मा बुद्ध जैसे अरथी या एक बूढे को देखकर विरक्त हो गए थे, वैसे ही हमारे चरितनायक अपने पूज्य पिता के मृतक शरीर को देखकर संसार के प्रपञ्चों से उदासीन हो गए।

बताया जा चुका है कि चरितनायक की आँखों के सामने इनके पूज्य पिता चौधरी तेजाराम जी का मृतक शरीर पड़ा है। बड़े ध्यान और तन्मयता से ये शरीर का निरीक्षण करते जा रहे थे, इनको अनुभव हो रहा था कि जो शरीर पहले प्रतप्त सोने की तरह झलकें मार रहा था, धीरे-धीरे उसकी चमक मिटती जा रही है, वह निस्तेज पड़ने लगा है, जिस शरीर को देखते ही ममता और प्यार मचलने लगता था अब उसे देखकर भय खौफ और संकोच अनुभव हो रहा है, यह सब देखकर चरितनायक सन्न रह गए, इनको सारा संसार अनित्य और अशरण दिखाई देने लगा, संसार की अनित्यता और अशरणता मानो साकार हो कर सामने आ खड़ी हुई, इन के कण-कण से अनित्यता और अशरणता का अभिव्यञ्जक जो स्वर निकल रहा था, उसे यदि कविता की भाषा में कहें तो निःसंकोच कहा जा सकता है—

मेरो देह मेरो गेह मेरो परिवार सब,
मेरो धनमाल मैं तो बहुविधि भारो हूँ।
मेरो सब सेवक, हुक्म कोउ मेटे नहीं,
मेरी युवती को मैं तो, अधिक पियारो हूँ।

मेरो वंश ऊँचो, मेरे वाप दादा ऐसे भए,
करत वड़ाई मैं तो जग उजियारो हूँ।
सुन्दर कहत मेरो मेरो कर जाने शठ,
ऐसो नहीं जाने मैं तो काल को ही चेरो हूँ।

—यह मनुष्य कितना भोला है ? जो कहता है कि मेरा शरीर है, मेरा घर है, मेरा सव परिवार है, मेरा धन है, माल है, मेरा व्यक्तित्व सव से ऊँचा है, मेरे नौकर-चाकर मेरी आज्ञा की कभी अवहेलना नहीं करते, मेरी युवती-पत्नी मुझे वहुत प्रिय है, मेरा खानदान वहुत प्रशस्त है, मेरे वाप-दादे वड़े यशस्वी रहे हैं, इस तरह यह मनुष्य अपनी वड़ाई करता-करता इतना आगे वढ़ जाता है कि अपने आप को ही जगती का उजियारा मानने लग जाता है। यह मूर्ख मनुष्य मेरा-मेरा तो खूव चिल्ला रहा है, परन्तु यह नहीं जानता कि मैं स्वयं तो काल का ही चेरा हूँ, दास हूँ, अर्थात् विकराल काल एक दिन मुझे सदा के लिए अपना भोजन वना लेगा।

हमारे मान्य चरितनायक श्री माडूसिंह जी की अन्तर्वीणा झंकृत होती ही चली गई। उसमें से संसार की असारता सूचक यही स्वर निकल रहे थे कि जीवित रहने में सन्देह हो सकता है। परन्तु मर जाने में रत्ती भर सन्देह के लिए अवकाश नहीं है। सामान्य मनुष्य की क्या वात की जाए ? वड़े-वड़े योद्धा, धनी, मानी, समृद्धिशाली, शक्तिशाली और अधिकार के आसन पर वैठकर सूर्य की भाँति अपनी तेजस्विता का प्रसार करने वाले शासक लोग भी यहाँ पर अमर वनकर नहीं रह सके। चक्रवर्ती के वैभव को कौन नहीं जानता ? यह छः खण्डों में निष्कण्टक राज्य करता है, ३२ हजार मुकुटधारी राजा इसके चरण सेवक होते हैं, ६४ हजार रानियाँ इसकी चरण दासियाँ होती हैं, इसके पास ८४ लाख हाथी और ८४ लाख घोड़े होते हैं और भी न जाने चक्रवर्ती की कितनी विशाल समृद्धि वैभव होती है। परन्तु इतनी वड़ी समृद्धि होने पर भी उसके जीवन को शान्ति नहीं होती। जव तक चक्रवर्ती अपने वैभव का त्याग करके संयम-साधना के महापथ पर नहीं चलता तव तक वे स्वर्ग या अपवर्ग=मोक्ष के अधिकारी नहीं हो सकता, इसके विपरीत यदि चक्रवर्ती राज्य का उपभोग करता-करता मृत्यु को प्राप्त हो जाता है तो निश्चित रूप से वह नरक में चला जाता है। कितना चिन्तनीय और ज्वलन्त सत्य है कि जव चक्रवर्ती भी वैभव के ममतापूर्ण वन्धनों को तोड़कर संयम-धर्म के देवता के चरणों में प्रणत हुए विना अपने जीवन का कल्याण **नहीं** कर सकता तो फिर हम जैसे पामर और साधारण जीवन का धर्म **का**

आराधन किये विना कैसे कल्याण एवं उत्थान हो सकता है ? इस प्रकार विचारणा करते हुए मान्य चरितनायक ने अन्त में घरवार और परिवार की ममता को छोड़कर संयमाराधना के महामार्ग पर चलने का सुदृढ़ निश्चय कर लिया ।

भगवान के घर की विद्या—

बताया जा चुका है कि पपिलाद गाँव के चौधरी तेजाराम जी ज्वराक्रान्त हो जाने के कारण स्वर्गवासी हो चुके हैं । जिन दिनों चौधरी तेजाराम जी का स्वर्गवास हुआ था, उन दिनों हमारे आदरणीय चरितनायक श्री माडूसिंह जी पपिलाद गाँव की पाठशाला में शिक्षण प्राप्त कर रहे थे । चरितनायक के मन में विद्याध्ययन की वड़ी लग्न थी, उच्च शिक्षा प्राप्त करने के सुदृढ़ संकल्प थे, अतएव ये वड़े परिश्रम और उत्साह से अध्ययन किया करते थे, पाठशाला के अध्यापक इन्हें जो पढ़ाते, उसे ये ध्यान से पढ़ते । उसका स्मरण करते, अगले दिन अध्यापक के पूछने पर स्मरण किए पाठ को वड़े साहस और उत्साह से उन्हें सुनाते । चरितनायक की प्रतिभा, साहस तथा इनके परिश्रम को देखकर सभी अध्यापक इनसे वड़े प्रभावित थे और विशेप रूप से ध्यान रखकर इनको अध्ययन कराया करते थे । परन्तु जिस दिन से चौधरी तेजाराम जी का देहान्त हुआ था, उस दिन से इनका मानस पढ़ाई में नहीं लग रहा था । संसार की असारता, अनित्यता और अशरणता का वातावरण ही प्रतिक्षण इनके मस्तिष्क में घूमता रहता था, हर समय पितृ-वियोग के भयकर दृश्य ही आँखों के सामने चक्कर काटते रहते थे । इन्हें सारा संसार सूना सा दृष्टिगोचर हो रहा था । पाठशाला की पढ़ाई जो केवल पैसे कमाने की कला सिखाती थी, इन्हें निस्सार अनुभव होने लगी थी । ये ऐसी पढ़ाई पढ़ना चाहते थे जो आत्मिक शान्ति को अधिगत करने में सहायक हो । परिणामस्वरूप पाठशाला की पढ़ाई को छोड़कर ये अध्यात्मविद्या की ओर झुकते जा रहे थे । आत्मा और परमात्मा में सम्पर्क साधने वाली धर्म-विद्या के सामने अर्थसम्पादन की कला सिखलाने वाली विद्या का मूल्य भी क्या हो सकता है ? जो विद्या केवल पेट भरने की कला सिखलाती हो, लोगों की जेवों से पैसे निकालने का हुनर वताती हो । मकान, दुकान, जायदाद, सम्पदा, घरवार और परिवार के झूठे मोह-चक्र में उलझाने की प्रेरणा प्रदान करती हो । वह विद्या वास्तविक विद्या नहीं होती । वस्तुतः विद्या वही विद्या कही जा सकती है जो विद्यार्थी को आत्मा-परमात्मा, पुण्य-पाप, ऊँच-नीच का ज्ञान करवाती हो. जन्म-मरण के वन्धनों को तोड़ने की कला वतलाती

हो, कर्मों से उन्मुक्त होकर परमसाध्य निर्वाण पद की प्राप्ति का महामार्ग सुझाती हो। जो मनुष्य को सम्यग्ज्ञान, (सच्चा ज्ञान), सम्यग् दर्शन (सच्चा विश्वास) और सम्यक् चारित्र (सच्चा आचरण) से दूर ले जाने का वातावरण तैयार करती हो उसे विद्या कहना बहुत बड़ी भ्रान्ति है। भूल है, अज्ञता है। सच पूछो, विद्या भगवती का सरासर (पूर्णतया) अपमान करना है। आत्मकल्याण और आत्मोत्थान की ज्योति जगाने वाली विद्या ही सचमुच विद्या शब्द से व्यवहृत की जानी चाहिए। सम्भव है इसीलिए भारत के मनीषी महापुरुषों को यह कहना पड़ा था—

"सा विद्या, या विमुक्तये"

—विद्या वही है, जो जीवन की विमुक्ति का पाठ पढ़ाती है। मनुष्य को कर्म-बन्धनों से उन्मुक्त करने तथा उसे अहिंसा सत्य का महासत्य समझाने में सहायक बनती है।

हमारे सन्तहृदय चरितनायक विद्या की उक्त यथार्थता तथा वास्तविकता को भली-भाँति समझने लग गये थे। यही कारण था कि अपने गाँव की पाठशाला की पढ़ाई से इनका मन ऊब चुका था और शीघ्रातिशीघ्र ये पाठशाला से किनारा कर लेना चाहते थे। पाठशाला के अध्यापकों को तथा चरितनायक के साथियों से चरितनायक का पाठशाला छोड़ देने का विचार छुपा नहीं रहा। अध्यापक तथा इनके मित्र इनकी मनःस्थिति को खूब समझते थे वे जानते थे कि माडूसिंह प्रभुभक्त, सत्संगप्रिय, सन्तजनों का पुजारी और धर्मध्यान में रस लेने वाला बालक है। परन्तु जिस दिन से चौधरी तेजाराम जी का देहान्त हुआ है तब से इसका मानस बहुत ज्यादा उचाट हो गया है। जो पहले सारा दिन किताबों के पढ़ने में ही लगा रहता था। अब किताब को हाथ तक नहीं लगाता तथा जो पहले ध्रुव भक्त की तन्मयता का आदर्श प्रस्तुत करता हुआ अध्यापक के शिक्षण को ध्यान से सुनता और उसे याद करता था। अब यह अन्यमनस्क सा होकर बैठा रहता है। इसलिए अब माडूसिंह पाठशाला में रहने की स्थिति में दिखाई नहीं देता अब तो यह किसी साधु मुनिराज के पुनीत चरणों में जाएगा और वहाँ पर ही भगवान की भक्ति, उपासना और आराधना करता हुआ जीवन व्यतीत करेगा। यह सब कुछ जानते हुए भी अध्यापक तथा चरितनायक के मित्र इनको ममता से समझाते और प्रत्येक दृष्टि से सहयोग देने का आश्वासन देते। परन्तु चरितनायक पर उनकी किसी बात का कोई असर नहीं होता था, ये तो सबको रटाघड़ाया एक ही उत्तर दे दिया करते थे कि पूज्य पिता के आकस्मिक स्वर्गवास ने मेरे मन

को सर्वथा विरक्त और उदासीन बना दिया है। अतः अब तो हम भगवान के घर की विद्या पढ़ेंगे। जो विद्या मनुष्य को मनुष्य बनने की कला न सिखलाए, आत्मकल्याण से दूर रक्खे, ऐसी विद्या पढ़ने से क्या लाभ? वास्तविक विद्या वही है, जो मनुष्य को भगवान का स्वरूप समझाकर उसे भगवत्स्वरूप बना डालती है। चरितनायक का यह उत्तर सुनकर अध्यापकों और मित्रों को सिवाय मौन रहने के अन्य कोई मार्ग समझ में नहीं आता था। अतः उन्होंने चरितनायक को भविष्य में कहना सुनना भी छोड़ दिया। अन्त में, एक दिन अवसर देखकर चरितनायक ने अपने गाँव की पाठशाला से त्यागपत्र दे दिया और ये अपना अधिक समय साधु-सन्तों की सेवा में व्यतीत करते, शास्त्र-श्रवण करते, माला जपते और शास्त्रों का वाचन करते हुए भगवान के घर की विद्या सीखने लगे। केवल भोजन के निमित्त ही अपने घर में आते। अन्यथा शेष सारा समय सन्तसमागम करते हुए मस्ती से गुजारने लगे। ●

संयम साधना के महाप्रकाश में

माता की ममता

कहा जा चुका है कि चौधरी तेजाराम जी के स्वर्गवास के अनन्तर इनकी धर्मपत्नी और हमारे मान्य चरितनायक जी की आदरणीय पूज्य जननी माता श्री यमुनादेवी ने संसार से उपराम होकर जैन साध्वी बनने का दृढ़ निश्चय कर लिया था, परन्तु जहाँ उनका साध्वी बन जाने का निश्चित विचार था, वहाँ इनको अपने लाड़ले माडूसिंह के भविष्य को समुज्ज्वल बनाने का भी पूरा-पूरा ध्यान था। ये साध्वी बनने से पूर्व अपने प्रिय पुत्र को किसी सुयोग्य मुनिराज के हाथों सौंपना चाहती थीं इनका विचार था कि जब मैं अपना भविष्य समुज्ज्वल बनाने के लिए संयम-साधना को सर्वाधिक श्रेष्ठ और कल्याणकारी महापथ मानती हूँ और इस पर चलने के लिए तैयार हो रही हूँ फिर क्यों न अपने लाड़ले माडूसिंह को भी इसी पावन मार्ग पर चलाऊँ? दुनियाँ की मोहममता में पड़कर सिवाय दुखों के और कुछ तो हाथ आने वाला है ही नहीं, फिर माडू को इस दलदल में क्यों फँसने दूँ? अच्छा है यह भी किसी पुण्यात्मा साधु मुनिराज के चरणो में बैठकर आत्मा परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करे, आत्मकल्याण की ज्योति से अपने को ज्योतिर्मान बनाए, सन्त बनकर अपना कल्याण करे और विश्व में साधुता का पावन अमृत बाँट-कर जन-जीवन को परम साध्य निर्वाण को प्राप्त करने का सदुपदेश दे। मेरा माता बनना भी तभी सार्थक हो सकता है यदि मेरे हाथों से माडूसिंह का हित सम्पन्न हो, इसका भविष्य अन्धकार-पूर्ण होने से बच जाए तथा वे यह सदा के लिए सुखों के झूले पर झूलता रहे।

माता यमुनादेवी बहुत अनुभवी प्रतीत होती हैं ये अपने तथा दूसरों के गृहस्थ-जीवन के दुःखपूर्ण वातावरण से खूब परिचित है, वे यह अच्छी तरह जानती है कि गृहस्थ-जीवन दुःखों और चिन्ताओं का घर होता है जिस किसी गृहस्थ से बात करलो, तो वह रोता हुआ और दुःखों की आग में जलता हुआ दिखाई देता है। यही कारण है कि माता यमुनादेवी अपने लाड़ले माडूसिंह को गृहस्थ जीवन की जाज्वल्यमान दुःखाग्नि से एक निराला आदर्श उपस्थित कर रही है।

जीवन क्षेत्र में माता का कितना विशिष्ट स्थान है ? वह पुत्र के उल्लास एवं विकास के लिये कितना कुछ सोचती है ? उसके भविष्य को उज्ज्वल एवं समुज्ज्वल बनाने में कितना अधिक ध्यान रखती है ? यह किसी भी अनुभवी व्यक्ति से अज्ञात व अनजाना नहीं है। माता अपनी सन्तति के लिए सभी संकट झेलने को सदा प्रस्तुत रहती है, सन्तति का हित और लाभ सम्पन्न होता हो तो माता उसके लिए सभी संभव बलिदान करने में भी कभी संकोच नहीं करती। इसीलिए माता के जीवन को सदा आदरास्पद और श्रद्धास्पद माना गया है। भारत के विचारक महापुरुषों की—

"जननी[1] जन्मभूमिश्च, स्वर्गादपि गरीयसी"

यह उक्ति भी माता की महानता एवं उसकी लोकप्रियता को अभिव्यक्त कर रही है। वैदिक परम्परा-मातृदेवो भव यह कह कर माता को देवतुल्य मानने की प्रेरणा दे रही है। तथा उसने—

उपाध्याया—दशाचार्याः, आचार्याणां शतं पिता।
पितॄणां तु सहस्रेण ह्येका मातातिरिच्यते।।

यह उद्‌घोषित करके दश उपाध्यायों में एक आचार्य, सौ आचार्यों से एक पिता, हजारों पिताओं से एक माता को विशिष्ट रूप से स्वीकार करने का बुद्धिशुद्ध प्रयास किया है। अहिंसा तथा सत्य के पावन अग्रदूत भगवान महावीर भी माता के उपकार का बदला चुकाना बहुत कठिन कार्य स्वीकार कर रहे हैं। श्री स्थानाङ्गसूत्र में लिखा है कि १—माता-पिता, २—सहारा देने वाला स्वामी और ३—धर्माचार्य इन तीनों के उपकार का बदला चुकाना बहुत मुश्किल कार्य है।

पतितपावन मङ्गलमूर्ति श्रमण भगवान महावीर ने अपनी पावन अमर वाणी द्वारा संसार के प्राणियों को सम्बोधित करते हुए फरमाया था कि माता-पिता ने सन्तति पर जो उपकार किए है, स्वयं दुःख सहकर सन्तति को सुखी बनाने के लिए जो प्रयास किए हैं, उनका बदला नहीं चुकाया जा सकता निर्धनता की घड़ियों में जब मनुष्य निराशा और हताशा ने चारों ओर से घेर रक्खा होता है उस समय धनादि की सहायता देकर उसे अपने पाँव पर खड़ा करने वाला जो उपकारी व्यक्ति है, उसके उपकार का भी बदला चुकाना बहुत मुश्किल कार्य है। तथा त्याग, वैराग्य तप; जप अहिंसा और सत्य की महाज्योति से जनताजनार्दन को ज्योतिर्मान बनाने वाले उसका कल्याण करने वाले पूज्य धर्माचार्य गुरुदेव का भी बदला नहीं चुकाया जा सकता।

---

[1] जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर होती है।

प्रस्तुत में माता के उपकार का प्रसंग चल रहा है। माता यमुनादेवी का जीवन भी इस दृष्टि से एक आदर्श जीवन रहा है। इनके पवित्र हृदय की उपकारमयी आकांक्षा से हमारे सहृदय पाठक अच्छी तरह से परिचित हैं। माताजी का उपकार-स्वरूप मानस चरितनायक जी के भावी जीवन को विल्कुल सुरक्षित तथा निरापद वनाना चाहता था और इसीलिए ये इनको किसी शास्त्रविशारद, महामहिम, पूज्य मुनिराज के चरणों में सौंपना चाहती थीं। वाग का माली जैसे वाग के प्रत्येक पौधे की पूर्ण सावधानता के साथ रक्षा करता है और उसे सरसब्ज और लहलहाता हुआ देखना चाहता है, माली की तरह वैसे ही माता का अपने पुत्र रूपी पौधे की रक्षा करना, और उसे फलता-फूलता देखने का इच्छुक होना भी स्वाभाविक ही है, इसी स्वाभाविकता के कारण माता यमुनादेवी अपने सुपुत्र माडूसिंह के संरक्षण से वर्धन और समुज्ज्वल भविष्य के सम्पादन के लिए पूर्ण सतर्कता के साथ विचार कर रहीं थीं।

कौन नहीं जानता कि मातृ जीवन में आमतौर पर यह ममतापूर्ण कामना एवं भावना स्वभावरूप से पाई जाती है कि मेरा वच्चा गृहस्थ में रहे, विवाह के वन्धनों में वँधकर पुत्रवधू को घर में लाए, सांसारिक विषय भोगों का आनन्द लूटे, पोते और पोती को जन्म देकर अपने वंश की वृद्धि करता हुआ हमारे नाम को सार्वकालिक और अमर वनादे, परन्तु धन्य है माता यमुनादेवी जो अपने वच्चे माडूसिंह को विषय वासना के दुःखान्त चक्कर से दूर रखकर मानव जीवन के अन्तिम लक्ष्य परमात्मपद की प्राप्ति के लिए सहायक वन रही है। ऐसी सुशीला धर्मप्रिया और सन्तति का वास्तविक हित सम्पादित करनेवाली माता किसी भाग्यशालिनी सन्तति को ही उपलब्ध होती है। विना किसी झिझक से कहा जा सकता है कि इस दृष्टि से हमारे चरितनायक श्री माडूसिंह जी एक तरणहार और पुण्यात्मा महापुरुष थे, जिन्हें एक पावन हृदया धर्मशीला और विवेकवती जननी का पुत्र वनने का सौभाग्य सम्प्राप्त हुआ।

अनुभवी आचार्यों का कहना है "श्रेयांसि बहुविघ्नानि" अर्थात् श्रेष्ठ कार्यों में कोई न कोई विघ्न अवश्य उपस्थित हो जाता है। देखा भी गया है कि किसी भी श्रेष्ठ कार्य को आरंभ करने लगें तो उस समय अनेकों विघ्न-वाधाएँ सर उठाती दिखाई देती हैं विशेष रूप से जब कोई व्यक्ति धर्म के क्षेत्र में आगे वढ़ना चाहता है, साधु वन जाने की तैयारी करने लगता है, तो अनेकों विघ्नोत्पादक लोग सामने आ जाते हैं कोई साधु वनने को बुरा-भला कहता है और कोई साधु वनने वाले के सम्बन्ध में ऊलजलूल वातें

बनाता है। माता की ममता तो ऐसे समय विशेपरूप से रुकावट डालती है साधु बनने वाले व्यक्ति के रास्ते में दीवार बन कर खड़ी हो जाती है ऐसे समय माता की ममता कभी रोती है, कभी विलाप करती है कभी चीखें मारने लगती है, कभी आत्महत्या कर लेने की धमकी देती दिखाई देती है, साधु बनने वाले को साधु बनने से रोकना ही उसका प्रधान उद्देश्य होता है, परन्तु हमारे चरितनायक बड़े सौभाग्यशाली व्यक्ति रहे हैं इनके शुभ कर्मों के प्रताप से हो त्याग वैराग्य के महापथ पर चलने के लिए इनकी माता बाधक न बन कर साधक या सहायक बन रही हैं। जीवन में इस प्रकार का परम पावन सहयोग जन्म जन्मान्तर के किसी शुभ कर्म के प्रताप से ही सम्प्राप्त हुआ करता है।

समय की बात समझिए कि इधर मान्य चरितनायक की पूज्य माता यमुनादेवी चरितनायक के समुज्ज्वल भविष्य की सुरक्षा के ध्यान से इनको किसी परिपूतचरण पूज्य मुनिराज के चरणों में सौंपना चाहती थीं, उधर चरितनायक भी स्वयं संसार से उपराम हो रहे थे, पितृ-वियोग-जन्य वैराग्य के कारण इन्होंने घरबार से किनारा कर लेने का पूर्णतया निश्चय कर लिया था, इनकी भी यह इच्छा चल रही थी कि दुनिया के झूठे मोह-बन्धनों को तोड़कर किसी सुयोग्य वन्दनीय चरण सन्तजन के चरणों में बैठकर भगवान के घर की विद्या का अध्ययन किया जाए। जन्म-जन्मान्तर के शुभ संस्कारों ने ऐसा मेल बैठाया कि अपनी-अपनी जगह माता और पुत्र दोनों ही संयम-साधना के महापथ के पथिक बनने जा रहे थे। माता किसी सुयोग्य साध्वी की शीतल छाया तले साध्वी बनकर अध्यात्म साधना-प्रकाश से प्रकाशमान होने की सोच रहीं थीं और माता का लाल चारित्र चूड़ामणि किसी सन्तजन के चरणों का आश्रय ढूंढ़ रहा था।

पूज्य गुरुदेव के पावन चरण—

जीवन जगत् में मार्गदर्शक का वही स्थान होता है शरीर-जगत में जो स्थान आँखों का माना गया है। आँखों के अभाव में जैसे शरीर की दुर्दशा होती है, वैसे मार्गदर्शक के विना जीवन की भी मिट्टी खराब होती है। अतः जीवन-यात्रा को सुविधापूर्वक सम्पन्न करने के लिए मार्गदर्शक का सान्निध्य प्राप्त करना आवश्यक होता है। मार्गदर्शक का अर्थ है— मार्ग दिखलाने वाला। मार्गदर्शक के अनेकों रूप होते हैं। कोई मार्गदर्शक व्यापार-जगत में मनुष्य का मार्गदर्शन करता है और कोई मार्गदर्शक व्यवहार-जगत में मनुष्य का नेतृत्व करता दिखाई देता है। इसी प्रकार जीवन जगत के—"भोजन

बनाना, पुस्तक लिखना, भवन बनाना" आदि जितने भी अन्य छोटे-बड़े कार्य होते हैं। सभी के अपने-अपने स्वतन्त्र मार्गदर्शक उपलब्ध होते हैं, परन्तु हमें यहाँ पर सभी की चर्चा करना अभीष्ट नहीं है। हम तो आत्मोत्थान और आत्मकल्याण की दृष्टि को आगे रखकर जो महापुरुष व्यक्ति का मार्गदर्शन करते हैं उनके सम्बन्ध में प्रस्तुत कुछ निवेदन करना चाहते हैं। आत्मकल्याण का विधिविधान बतलाने वाले उसका वास्तविक स्वरूप समझाने वाले तथा उसमें जो उतार-चढ़ाव आते हैं उनका दिग्दर्शन कराने वाले मार्गदर्शक अध्यात्म जगत में गुरु के नाम से व्यवहृत किए जाते हैं। वैसे कोपकारों के मतानुसार गुरु-पद का क्षेत्र बड़ा व्यापक है। परन्तु हम यहाँ पर गुरु शब्द का प्रयोग केवल अध्यात्म विद्या के प्रदाता महापुरुष के लिए ही कर रहे हैं।

"अणाबाह-सुहाभिकंखी, गुरुप्पसायाभिमुहो रमेज्जा"

—दशवैकालिक अ० ६/१-१०

—अनावाध=मुक्ति के सुख के अभिलापी शिष्य को गुरु की प्रसन्नता के लिये सदा प्रयत्न करना चाहिये।

जहाहियग्गि जलणं नमंसे, नाणाहुई-मंतपयाभिसित्तं।
एवायरियं उवचिट्ठएज्जा, अणंत-नाणोवगओऽवि संतो॥

—दशवैकालिक अ० ६/१-११

—जैसे अग्निहोत्री ब्राह्मण मधु और घृत आदि की विविध आहुतियों एवं मन्त्रों से अभिषिक्त अग्नि को नमस्कार आदि से पूजा करता है, ठीक उसी प्रकार अनन्त ज्ञान सम्पन्न हो जाने पर भी शिष्य को गुरु की उपासना करनी चाहिये।

"पितरमिव गुरुमुपचरेत्।"

—नीतिवाक्यामृत ११।२४

—शिष्य गुरु के साथ पिता के समान व्यवहार करे।

"प्रज्ञयातिशयानो न गुरुमवज्ञायेत।"

—नीतिवाक्यामृत ११।२०

—अधिक प्रज्ञावान होने पर भी शिष्य गुरु की अवज्ञा न करे।

अज्ञानतिमिरान्धानां, ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

—उपदेशतरंगिणी

—अज्ञान रूप तिमिर-अन्धकार के कारण जो व्यक्ति अन्ध हो गए हैं, ज्ञानरूप अञ्जन-काजल की शलाका-सलाई उनके ज्ञानचक्षुओं का जो गुरुजन उन्मीलन करते हैं, ऐसे ज्ञानप्रदाता गुरुमहाराज के चरणों में मेरा नमस्कार हो।

गुरुर्ब्रह्मा गुर्विष्णुः, गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुदेव परब्रह्म, तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

—गुरु ब्रह्मा हैं, गुरु विष्णु हैं, गुरु देवता हैं, गुरु महेश्वर हैं और गुरु ही परब्रह्म स्वरूप हैं, अतः गुरुदेव को नमस्कार है।

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्ति, पूजामूलं गुरोःपदम्।
मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं, मोक्षमूलं गुरोःकृपा॥

—गुरु की मूर्ति ध्यान का मूल कारण है, गुरु के चरण पूजा के मूल कारण हैं। गुरु की वाणी जगत के समस्त मन्त्रों का मूल कारण है और गुरु की कृपा ही मोक्षप्राप्ति का मूल कारण समझना चाहिये।

हीनान्न वस्त्रवेषः स्यात्, सर्वदा गुरुसन्निधौ।
उत्तिष्ठेत्प्रथम चास्य, चरमं चैव संविशेत्॥

—मनुस्मृति २।१९४

—शिष्य गुरु के सामने सदा सामान्य अन्न-वस्त्र और वेष में रहे और गुरु से पहले उठे तथा पीछे सोवे।

"नोदाहरेदस्य नाम, परोक्षमपि केवलम्"

—मनुस्मृति २।१९९

—शिष्य को गुरु के पीठ पीछे भी उनका खाली नाम नहीं लेना चाहिये।

गुरोर्यत्र परीवादो, निन्दा वापि प्रवर्तते।
कर्णौ तत्र पिधातव्यौ, गन्तव्यं वा ततोऽन्यतः॥

—मनुस्मृति २।२०

—जहाँ गुरु की बुराई या निन्दा होती हो वहाँ पर कानों को बन्द कर लेना चाहिये या वहाँ से उठकर किसी और जगह चला जाना चाहिए।

एकाक्षर प्रदातारं, यो गुरुं नाभिवन्दते।
श्वानयोनिशतं भुक्त्वा, चाण्डालेष्वभिजायते॥

—चाणक्य० १३।१९

—जो एक अक्षर भी ज्ञान देनेवाले गुरु को वन्दना नहीं करता, वह कुत्ते की सौ योनियाँ भोग कर चण्डालों में जन्म लेता है।

एकमेवाक्षरं यस्तु, गुरुः शिष्यं प्रबोधयेत्
पृथिव्यां नास्ति तद् द्रव्यं, यद्दत्वा चानृणीभवेत् ॥

—चाणक्यनीति १५।२

—गुरुमहाराज शिष्य को जो एक अक्षर का भी उपदेश करते हैं, उसके निमित्त पृथ्वी पर ऐसा कोई भी द्रव्य नहीं है जिसको देकर शिष्य उनसे ऋण हो सके।

मन भुजंग वहु विषभर्या, निर्विष क्यूं ही न होई।
'दादू' मिल्या गुरुगारुड़ी, निर्विष कीन्हा सोई ॥

—दादूवाणी

"गुरु परमेसरु एको जाणु,"
"विन गुरु मुकति न पाइए भाई"
"गुरु मेरी पूजा, गुरु गोविन्दु,
गुरु मेरा पारवह्मु, गुरु भगवन्तु।"

—गुरुग्रन्थसाहिव, मुहल्ला ५

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, किसके लागूँ पाय।
वलिहारी गुरुदेव की, गोविन्द दिया वताय ॥
सव धरती कागद करूँ, लेखनि सव वनराय।
सात समुद्र की मसि करूँ, गुरुगुन लिखा न जाय ॥
गुरु कुम्हार गुरु शिष्य है, घड़-घड़ काढै खोट।
अन्तर हाथ सहार दै, वाहर वाहै चोट ॥
कवीर ते नर अंध हैं, गुरु को कहते और।
हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहीं ठौर ॥
यह तन विष की वेलड़ी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिए जो गुरु मिले, तौ भी सस्ता जान ॥

—कवीरवाणी

ऊपर की पंक्तियों में गुरुमहिमा को लेकर जैन तथा जैनेतर साहित्य के कुछएक उद्धरण प्रस्तुत किए गए हैं। गुरुमहिमा के सम्बन्ध में वहुत कुछ लिखा जा सकता है, परन्तु विस्तारभय से केवल गुरुमहिमा की झाँकी ही प्रस्तुत की गई है। प्रश्न हो सकता है कि गुरु शब्द का अभिप्राय क्या है?

उत्तर में निवेदन है कि गुरुपद में गु और रु ये दो शब्द हैं। गु—शब्द अन्धकार का बोधक है। और रु—शब्द अन्धकार के विनाश का संसूचक है। दोनों पदों को मिलाकर अर्थ होता है—जो महापुरुष व्यक्ति की हृदयरूप गुफा के अज्ञानान्धकार को समाप्त करके उसमें ज्ञान के दीपक जगमगा देता है उसे गुरु कहते हैं।[1] गुरु वह प्रकाश स्तम्भ होता है जो जन-जीवन के आन्तरिक अन्धकार को दूर करके उसको अध्यात्म-ज्ञान-प्रकाश की सम्पदा से मालामाल बना डालता है। अज्ञान, अविवेक, हिंसा, असत्य, चौर्य्य, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान और माया-छल आदि जितने भी आत्म-दोष होते हैं, आध्यात्मिक दृष्टि से ये सब अन्धकार स्वरूप माने जाते हैं। गुरुमहाराज दोषों के इस अन्धकार को समाप्त करनेवाले होते हैं। ज्ञान, विवेक, अहिंसा, सत्य, अचौर्य्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह-अनासक्तिभाव, क्षमा, निरभिमानता और सरलता के दिव्य प्रकाश से जन-जीवन के अन्तर्जगत को प्रकाशमान बनाने का अनुग्रह करते हैं।

अध्यात्म साहित्य में गुरुपद के सम्बन्ध में यत्र-तत्र बड़ा सुन्दर चिन्तन उपलब्ध होता है। उदाहरणार्थ कुछ चिन्तन प्रस्तुत करता हूँ—

गृणाति धर्म शिष्यं प्रतीति गुरुः । अथवा— **गारयते-विज्ञापयते रहस्यं शिष्यं प्रतीति गुरुः** । अर्थात्—जो शिष्य को धर्म का शिक्षण देता है, अथवा जो शिष्य को तत्त्व का मर्म समझाता है, उसे गुरु कहते हैं।

"सर्वशरीरस्थ चैतन्यप्रापको गुरुरुपास्यः"

—निरालम्बोपनिषद्

—समूचे शरीर में व्याप्त चैतन्य देव को मिलाने वाला अर्थात् आत्मज्ञान देने वाला गुरु उपासना के योग्य होता है।

महाव्रतधरा धीराः, भैक्षमात्रोपजीविनः ।
सामायिकस्था धर्मोपदेशका गुरवोमताः ॥

—योगशास्त्र २।८

—महाव्रतधारी, धैर्यवान, केवल भिक्षा के द्वारा जीवन का निर्वाह करने वाले, समभाव के धारक तथा धर्म का उपदेश देने वाले महात्मागुरु माने जाते हैं।

को वा गुरुर्यो हि हितोपदेष्टा ।

—शंकरप्रश्नोत्तरी

---

[1] गुशब्दस्त्वन्धकारः स्याद्, रुशब्दः प्रतिरोधकः ।
अन्धकारनिरोधित्वाद्, गुरुरित्यभिधीयते ॥

—गुरु कौन हो सकते हैं ? वही जो हित का उपदेश देते हैं।

त्यक्तदाराः सदाचाराः, मुक्तभोगाः जितेन्द्रियाः।
जायन्ते गुरवो नित्यं, सर्वभूताभयप्रदाः॥
—महाभारत

—जो स्त्री के त्यागी हों, सदाचारी हों, भोगों से मुक्त हों, जितेन्द्रिय एवं सब जीवों को अभयदान देने वाले हों वे गुरु कहलाते हैं।

ऊपर की पंक्तियों में जो गुरुपद की अर्थ विचारणा प्रस्तुत की गई है, उसके परिशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि गुरुदेव ज्ञान-प्रकाश के अमर भण्डार होते हैं और वे शिष्य को ज्ञान का प्रकाश देकर उसके मन मन्दिर को सद्-ज्ञान-ज्योति से ज्योतित बना डालते हैं। परन्तु इस सत्य को भी सदा स्मरण रखना चाहिए कि जो दीपक स्वयं प्रकाशमान होता है, अन्धकार को विनष्ट करने की क्षमता रखता है वही दीपक दूसरों को प्रकाश प्रदान कर सकता है, इसके विपरीत जो दीपक स्वयं बुझा हुआ है, प्रकाश विहीन है वह औरों को कभी प्रकाश नहीं दे सकता है। बिल्कुल इसी तरह वही गुरु शिष्य के अन्तर्जगत को ज्ञान के आलोक से आलोकित कर सकता है, जो स्वयं ज्योतिर्मान है, और ज्ञान के पावन दीपकों से जगमगा रहा है। ज्ञान की ज्योति से विहीन गुरु कभी दूसरे का मार्गदर्शन नहीं कर सकता। अतः गुरु-महाराज का जीवन आचार-विचार की दृष्टि से बहुत ऊँचा उठा होना चाहिये, वे अहिंसा-सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह=अनासक्ति के मनसा, वाचा, कर्मणा परिपालक होने चाहिये। जर जोरु जमीन के त्यागी होने चाहिए। जो गुरु उदार, सहिष्णु, निरभिमान, सन्तोषी, दयालु, कृपालु और दुःखीजनों के प्रति सकरुण हों, जनकल्याण का पावन ध्वज लहराते हुए अहिंसा, सत्य का पावन अमृत घर-घर बाँटने वाले हों, रागद्वेष की दलदल में न फंसे हों और जिनकी अन्तर्वीणा वीतरागता के पवित्र स्वरों से पार्श्ववर्ती प्रदेश को सदा गुञ्जायमान कर रहे हों, वही वास्तव में गुरुपद के अधिकारी हो सकते हैं। जो व्यक्ति साधु-जीवन की मर्यादा से खाली है, करणी की अपेक्षा कथनी को अधिक महत्व दे रहा होता है। अपने अन्तर्जीवन को समु-ज्ज्वल न बनाकर मिथ्या बाह्याडम्बर में रस ले रहा है, मानसिक वाचिक और कायिक पवित्रता से बहुत दूर बैठा है, जर, जोरू और जमीन का गुलाम है, स्त्रीविकथा, भक्तविकथा, देशविकथा और राजविकथा के सदा गीत गाता रहता है, रागी-द्वेषी बनकर जनमानस के अन्तः स्वास्थ्य को दूषित कर रहा है, ऐसे व्यक्ति को गुरु का आदरास्पद और श्रद्धास्पद स्थान नहीं दिया सकता।

क्षमामूर्ति श्रद्धेय श्री रंगलालजी महाराज

कहा जा चुका है कि महामहिम गुरुदेव परोपकार, दया, सहानुभूति और कृपालुता के सजीव प्रतीक होते हैं, इनके जीवन के कण-कण से प्रतिक्षण, प्रतिपल परहित सम्पादक पावन आचार-विचार के मधुर और सरस स्वर निकलते रहते हैं। पर-पीड़ा के दूषित भाव तो स्वप्न में भी इनके निकट नहीं आने पाते, सदा परोपकार की ही ये वर्षा करते रहते हैं। अधिक क्या कहें, वन्दनीय गुरुदेव का परिपूत जीवन एक नेत्रचिकित्सक डाक्टर से भी अधिक लोकोपकारी होता है। वैसे नेत्रचिकित्सक डाक्टर का जीवन भी बड़ा उपकारी होता है, वह मनुष्य की आँखों का ऑपरेशन कर उसे आँखें देता है, उसे ज्योति प्रदान करता है, परन्तु उस डाक्टर से भी ज्यादा उपकारी और हितकारी सतगुरु होते हैं। डाक्टर तो बाह्य नेत्रों में ज्योति प्रकट करता है, किन्तु सतगुरु मनुष्य के आन्तरिक नेत्रों का ऑपरेशन करके उसे ज्ञाननेत्र देने का अनुग्रह करते हैं, हिंसा, असत्य आदि दोषों से हटाकर तथा अहिंसा, सत्य आदि सद्‌गुणों में प्रवृत्त कराके उसे स्वर्ग और अपवर्ग का अधिकारी बनाने की कृपा करते हैं। व्यक्ति को आधि, व्याधि और उपाधिजन्य दुःखों से छुटकारा दिलाने का श्रेय यदि किसी को सम्प्राप्त हो सकता है, तो वे परोपकार की साकार प्रतिमा नमस्करणीय पूज्यगुरुदेव ही होते हैं। गुरुदेव की महिमा का क्या वर्णन किया जाए, वह अपरम्पार है, शब्दों की सीमित रेखाओं में उसे बाँधा नहीं जा सकता है। इसीलिए विश्वसाहित्य ने—"तस्मै श्री गुरवे नमः" यह कहकर गुरुदेव के जगतारक चरणों में अपने श्रद्धा-सुमन समर्पित किए हैं।

गुरुपद की महत्ता या आदर्शता का सौभाग्य सभी व्यक्तियों को सम्प्राप्त नहीं होता, जगती में ऐसे कुछ विरले ही व्यक्ति होते हैं जिनमें गुरुपद की योग्यता के दर्शन उपलब्ध होते हैं। हमारे परमाराध्य, महामहिम जैन धर्म-दिवाकर, साहित्यरत्न, जैनागमरत्नाकर श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ के प्रथम आचार्य सम्राट् परमश्रद्धेय गुरुदेव पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज फरमाया करते थे कि—

—"यह सत्य है कि गुरुपद महान है, इसका कर्तव्य क्षेत्र बड़ा व्यापक है तथापि गुरुपद की कभी नास्ति नहीं होगी। यह कहीं न कहीं और किसी न किसी रूप में अवश्य अवस्थित रहेगा। आज भी गुरुपद का महान दायित्व निभाने वाले महापुरुष जगती में विद्यमान हैं। ऐसे महापुरुषों के आज भी दर्शन होते हैं जो पावन आचार-विचार की समुज्ज्वल ज्योति से ज्योतिर्मान

होते हुए जनता का अहिंसा और सत्यपूर्ण मार्गदर्शन करते हैं, अवन्धुओं के वन्धु, अमित्रों के मित्र और अनाथों के नाथ वनकर वात्सल्य-भाव की वर्षा करते हैं, परन्तु ऐसे महापुरुषों की सख्या अवश्य स्वल्प है ।"

अध्यात्म जगत के नभ पर जो सदा पावन आचार-विचार की समुज्ज्वल किरणों का प्रसार करते रहे, गुरुपद को सार्थक वनानेवाले ऐसे महापुरुष अतीतकाल में अनेकों हो चुके हैं। उनमें से एक महापुरुष का आज हम परिचय कराने लगे हैं, वे हैं—क्षमामूर्ति शास्त्रविशारद, सन्तहृदय, मुनिपुङ्गव परमश्रद्धेय श्री रगलालजी महाराज ![1] ये महापुरुष मारवाड़भूषण श्रद्धेय श्री

---

[1] श्री रंगलाल जी स्वामी की पूर्व परम्परा इस प्रकार है—

१. श्री सुधर्मास्वामी
२. श्री जम्वूस्वामी
३. प्रभवस्वामी
४. शय्यंभवस्वामी
५. यशोभद्र
६. संभूतविजय
७. भद्रवाहु
८. स्थूलिभद्र
९. आर्य महागिरी
१०. सुहस्तिस्वामी
११. सुप्रति वुधस्वामी
१२. इन्द्रदिन्न
१३. आर्यदिन्न
१४. वहिरस्वामी
१५. वज्रसेन स्वामी
१६. आर्यरोहस्व ामी
१७. पूशागिरी स्वामी
१८. फल्गुमित्र स्वामी
१९. धरणगिरी स्वामी
२०. शिवभूति स्वामी
२१. आर्य भद्रस्वामी
२२. आर्य नक्षत्रस्वामी
२३. आर्य रक्षित स्वामी
२४. नाग स्वामी
२५. जेहि विष्णुस्वामी
२६. शढीलअणगार
२७. देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण
२८. नागार्जुन
२९. हेमंताचार्य
३०. वाचकाचार्य
२१. गोविंदाचार्य
३२. भूतदिन्न
३३. लोहित
३४. दुष्यगणि
३५. सुखडिवुद्धि
३६. इन्द्रदिन्न
३७. वज्रसेन
३८. आर्य रोहक
३९. पुष्यगिरि
४०. नागा ऋषी
४१. जेहल्लविस्न
४२. साडिलाचार्य
४३. वलसिंह
४४. शांताचार्य
४५. सींहगिरि
४६. समंताचार्य
४७. लोहपागी
४८. लेतनंदि

स्वामीदासजी महाराज की सम्प्रदाय के जाने-माने साधुरत्न थे। आपकी संयम-साधना जप-तप, त्याग और वैराग्य की आराधना तो विलक्षण थी ही परन्तु क्षमा और सहिष्णुता तो मानों आपके जीवन में साकार होकर विराजमान हो रही थी, भयंकर से भयकर परिषह-संकट के आने पर भी आप कभी डाँवाडोल नहीं होते थे। क्षमा का रंग आपको इतना अधिक चढ़ा हुआ था कि आपके दर्शन होते ही क्षमावीर मुनि स्कन्धक कुमार की याद ताजा होने लगती थी। क्षमा भगवती की महिमा गाते हुए कभी-कभी आप फरमाया करते थे—

---

४९. वीरभद्र
५०. शंकरभद्र
५१. यशोभद्र
५२. वीरसेन
५३. निर्यामसेन
५४. यश:सेन
५५. हर्षसेन
५६ यवसेन
५७. जगमाल
५८. देवऋषि
५९. भीमऋषि
६०. कर्मसिरीष
६१. राजऋषि
६२. देवसेन
६३. शंकरसेन
६४. लक्ष्मिऋषि
६५. रामगीरऋषि
६६. पद्मऋषि
६७. हरिशीम ऋषि
६८. कुशल ऋषि
६९. उमण ऋषि
७०. यशेण ऋषि
७१. दिन्नचन्द्र ऋषि
७२. देवचन्द्र ऋषि
७३. सूरशेण ऋषि
७४. मायसिंग ऋषि
७५. महसेनऋषि
७६. जयराजऋषि
७७. गजसेण
७८. मंतसेण
७९. विजेसेण
८०. शिवराज
८१. लवजी ऋषि
८२. ग्यानाजी ऋषि
८३. भानुजी ऋषि
८४. रूपऋषिजी
८५. जीवराजजी
८६. लालचन्द्रजी
८७. दिपचन्द्रजी
८८. स्वामीदासजी
८९. उग्रसेण ऋषि
९०. घासीरामजी
९१. कनीरामजी
९२. रेखराजजी
९३. रंगलालजी

यह पट्टावली रोड़ी निवासी श्री दीवानचन्द्र जी जैन के सौजन्य से हमें [illegible] हुई है।

खामेमि सव्वजीवे, सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्वभूएसु, वेरं मज्झं न केणइ ॥

—आवश्यक सूत्र अ० ४

—चौरासी लाख योनि के सभी जीवों से मैं क्षमा चाहता हूँ, सभी जीव मुझे क्षमा करें, मेरा सभी प्राणियों के साथ मैत्रीभाव है। किसी के साथ मेरा वैरभाव नहीं है।

आयरिए उवज्झाए, सीसे साहम्मिए कुलगणे अ।
जे मे केइ कसाया, सव्वे तिविहेण खामेमि ॥
सव्वस्स समणसंघस्स, भगवओ अंजलिं करीअ सीसे।
सव्वे खमावइत्ता, खामेमि सव्वस्स अहयं पि ॥

—आचार्य, उपाध्याय, शिष्य, साधर्मिक, कुल और गण के प्रति मैंने जो क्रोधादि कषायपूर्वक व्यवहार किया है, उसके लिए मैं मन, वचन और कर्म से क्षमा चाहता हूँ।

मैं नतमस्तक हो, हाथ जोड़कर पूज्य श्रमण संघ से अपने सभी अपराधों के लिए क्षमा चाहता हूँ और उनके अपराध भी मैं क्षमा करता हूँ।

क्षमा ब्रह्म क्षमा सत्यं, क्षमा भूतं च भावि च।
क्षमा तपः क्षमा शौचं, क्षमयेदं धृतं जगत् ॥

—महाभारत वनपर्व २९/३७

—क्षमा ब्रह्म है, सत्य है, भूत और भविष्यत् है, क्षमा ही तप है और क्षमा ही शुद्धि है। क्षमा ने ही इस जगत को धारण कर रखा है।

नरस्य भूषणं रूपं, रूपस्याभूषणं गुणः।
गुणस्य भूषणं ज्ञानं, ज्ञानस्याभूषणं क्षमा ॥

—क्षेमेन्द्र

—नर का भूषण रूप है, रूप का भूषण गुण है, गुण का भूषण ज्ञान है और ज्ञान का भूषण क्षमा है।

"क्षमा गुणो ह्यशक्तानां, शक्तानां भूषणं क्षमा"

—विदुरनीति १/५४

—क्षमा अशक्तों के लिए गुण है, और समर्थ व्यक्तियों के लिए आभूषण है। वीर पुरुषों का शृंगार उनकी क्षमावृत्ति है।

क्षमा के अखूट भण्डार परमश्रद्धेय श्री रंगलालजी महाराज अपनी शिष्य-मण्डी सहित, साधु-मर्यादा के अनुसार ग्रामानुग्राम विहार करते हुए एक बार

पपिलाद गाँव में पधारे। पाठक समझते ही हैं कि यह वही पपिलाद गाँव है जो हमारे आदरणीय चरितनायक श्री माडूसिंह जी की जन्मभूमि है। पपिलाद गाँव में पूज्य मुनिराज के पधारने का समाचार विजली की भाँति सारे गाँव में फैल गया। गाँव की श्रद्धालु जनता उमड़-उमड़ कर सन्त-दर्शन के लिए आने लगी। हमारे चरितनायक की पूज्य माता भी अपने प्राणप्रिय माडूसिंह को साथ लेकर श्रद्धेय मुनिवर के पावन चरणों में उपस्थित हुई। सैकड़ों की संख्या में उपस्थित जनता आनन्द-विभोर हो रही थी, सभी अपने को धन्य-धन्य कह रहे थे और अनुभव कर रहे थे कि प्यासा तो कुएँ के पास जाता है किन्तु यह शुभ कर्मो का ही प्रताप समझना चाहिये कि कूआं प्यासे के पास आ गया है। यत्र, तत्र, सर्वत्र प्रसन्नता साकार होकर नाचती हुई दिखाई दे रही थी। गांव में मुनिराज क्या पधारे मानों बहार स्वयं ही चलकर आ गई। क्या बच्चा, क्या बूढ़ा, क्या युवक और क्या युवती सभी हर्ष के मारे फूले नहीं समा रहे थे। ऐसा क्यों न होता, सन्तदर्शन वस्तु ही ऐसी है, इससे जीवन-नभ पर हर्ष के सुन्दरातिसुन्दर मेघों का आच्छादित हो जाना स्वाभाविक ही होता है। यह सन्तदर्शन तो जन्म-जन्मान्तर के किसी शुभ कर्म के उदय से ही सम्प्राप्त हुआ करता है। सन्तसमागम की महिमा को कौन नहीं जानता ? सन्तसमागम की कल्याणकारिणी महिमा को भारत के सभी दार्शनिकों ने विना किसी ननु-नच के स्वीकार किया है। सन्तहृदय गोसाई श्री तुलसीदासजी का तभी तो यह कहना था—

सन्तसमागम हरिकथा, तुलसी दुर्लभ दोय।
सुत दारा और लक्ष्मी, पापी के भी होय।

इस दोहे में कितनी सुन्दर पद्धति से सन्तसमागम की महिमा का व्याख्यान किया गया है। श्री गोसाई जी कह रहे हैं कि सुत, दारा=पत्नी और लक्ष्मी=वैभव यह सांसारिक ऐश्वर्य का पाना कोई असाधारण बात नहीं है। पापिजनों को भी यह ऐश्वर्य सम्प्राप्त हो जाता है, परन्तु जगती में यदि कोई दुर्लभ वस्तु है तो वह प्रभु भजन और सन्तों का समागम ही होता है। अहिंसा और सत्य का पावन अमृत घर-घर बाँटनेवाले साधु-सन्तों के चरणों का स्पर्श, उनका सत्संग, उपदेश-श्रवण, कल्मपहारिणी उनकी ज्ञान-चर्चा का सान्निध्य किसी तरणहार और भाग्यशाली व्यक्ति को ही उपलब्ध हो सकता है। भाग्यहीन व्यक्ति सन्तसमागम की पावन ज्योति से सदा वंचित ही रहा करता है।

सन्त, सन्त में भी अन्तर होता है, सभी सन्त एक जैसे आचार-विचार वाले नहीं होते। कुछ सन्त आचार-विचार की दृष्टि से बहुत साधारण होते

हैं, वे त्याग-वैराग्य के महापथ पर पाँव रख लेने पर भी वहाँ पर नीरसता अनुभव करते हैं। शिथिलाचार की ओर बढ़ते हुए धीरे-धीरे वे दुनियादारों की भाँति दुनियाँ के मोह-जाल में अपने को फँसा लेते हैं। जर, जोरू और ज़मीन के गुलाम होने पर भी अपने को सन्त कहने से सकुचाते नहीं हैं। मुझे अच्छी तरह से स्मरण है कि मेरे परमश्रद्धेय गुरुदेव, जैनधर्मदिवाकर, साहित्यरत्न, जैनागमरत्नाकर, आचार्य सम्राट् पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज जैनस्थानक लुधियाना में विराजमान थे। मैं भी उन दिनों पूज्य गुरुदेव के पावन चरणों में सेवा का लाभ ले रहा था। लुधियाना जैन स्थानक के बिल्कुल सामने सनातन धर्म की परम्परा को मानने वाले एक महन्त का डेरा है। लोग उसे नौहरियों का ठाकुर द्वारा कहते हैं। डेरे के महन्त जी कई एक पुत्रों के पिता हैं और बड़ी भारी जायदाद तथा सम्पत्ति के मालिक हैं। मेरा भी महन्त-परिवार से अच्छा खासा परिचय है। महन्त जी के लड़के यदा-कदा मिलते-जुलते रहते हैं। एक दिन महन्तजी की धर्म-पत्नी (महन्तनी) जैनस्थानक में मेरे पास आई, बड़े स्नेह और प्रेम से कहने लगीं—महाराज जी ! मेरे लड़के की शादी है, आज घोड़ी है कल बारात जाएगी, मैं आपको निमंत्रित करने आई हूँ कि आप बारात में चलें। महन्तनी का प्यार भरा निमंत्रण पाकर मैंने कहा—माता जी ! हम तो जैन साधु हैं, जैन-साधु की मर्यादा के अनुसार हम लोग किसी बारात में नहीं जाया करते। आप तो स्वयं समझदार हैं, भला हम साधुओं का बारात से प्रयोजन भी क्या है ? मेरा जवाब सुनकर वे रोषपूर्ण स्वर में बोलीं—आप अगर जैन-साधु हैं तो हम भी साधु ही हैं। गृहस्थी गृहस्थियों के बारात में जाते हैं और साधुओं को साधुओं की बारात में जाना चाहिए। यदि साधु लोग ही साधुओं की बारात में नहीं जायेंगे तो फिर और कौन जाएगा ? महन्तनीजी की बात सुनकर मुझे हँसी आ गई, मैंने हँसते हुए कहा—माई ! साधु भी यदि विवाह के बन्धनों में बँधने लगेंगे और बारातें चढ़ने लगेंगी तो गृहस्थ और साधु में अन्तर क्या रहेगा ? साधुता के महान आदर्शों का यदि आप विचार करेंगी तो आपको यह मानना ही होगा कि साधु की शोभा त्याग में है, भोग में नहीं। बारात चढ़ना, शादियाँ करना ये तो गृहस्थों के काम होते हैं। साधु सन्तों को इनसे क्या मतलब ? साधु-जीवन का भूषण उसका त्याग, वैराग्य और ब्रह्मचर्य महाव्रत का आराधन करना ही होता है। त्यागपूर्ण आचार-विचार की समुज्ज्वल ज्योति से यदि साधु ज्योतिर्मान रहते हैं, तभी वे संसार में आदर्शरूप बन सकते हैं। मैं कह रहा था कि सभी साधु एक जैसे नहीं होते,

संसार में ऐसे भी साधु हैं, जो साधु होने का दावा तो करते हैं, परन्तु जो चौबीस घण्टे जर-जोरू जमीन के झगड़ों में उलझे रहते हैं।

जगती में ऐसे साधु भी देखने में आते हैं जो साधुता, सच्चरित्रता तथा आचरणशीलता के दिव्य भण्डार होते हैं, उनके जीवन के कण-कण से त्याग, वैराग्य, जप, तप, उदारता, सहिष्णुता, उपरामता की प्यार भरी मीठी खुशबू आती है। उनके दर्शन मात्र से मनमन्दिर में पवित्रता, मधुरता और सरसता की ज्योति अङ्गड़ाई लेने लगती है। ईर्ष्या, द्वेष, वाद-विवाद, निन्दा, चुगली, काम, क्रोध, उत्तेजना, वासना और सांसारिक कामना रूप असद्वृत्तियों का अन्धकार भागता हुआ अनुभव होता है। कञ्चन कामिनी के त्यागी मुनिराज प्रकाश स्तम्भ की भाँति मानवी जगत को सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान और सम्यक् चारित्र के दिव्य प्रकाश से प्रकाशमान बना डालते हैं। हमारे महामान्य परमश्रद्धेय श्री स्वामी रंगलाल जी महाराज ऐसे ही एक युगस्रष्टा महापुरुष थे जो प्रकाश स्तम्भ की तरह दुनिया को ज्ञान का प्रकाश प्रदान कर रहे थे।

पवित्रात्मा क्षमामूर्ति श्रद्धास्पद श्री रंगलाल जी महाराज मारवाड़ प्रान्त के विख्याति प्राप्त एक महापुरुष थे। मस्तक पर साधुता का अपूर्व तेज अठखेलियाँ कर रहा था, आँखों में तेजस्विता, ओजस्विता का एक निराला नूर था। पाट पर बैठे ऐसे सुशोभित होते थे जैसे धर्म का देवता साकार होकर स्वयं ही विराजमान हो गया हो। ऐसे स्वनामधन्य पूज्य चरण मुनिराज का पदार्पण पपिलाद गाँव के निवासियों के लिए एक वरदान का रूप ले रहा था। गाँव के तथा अन्य गाँवों से दर्शनार्थ आए सैकड़ों लोगों का बहुत बड़ा समुदाय पूज्य मुनिराज के जयकारों से पपिलाद गाँव के कण-कण को गुंजा रहा था। अन्त में, सभी श्रद्धालु लोग अपने-अपने स्थान पर बैठ गए। तदनन्तर पूज्य मुनिराज ने अपने धर्म प्रवचन की कलमपहारिणी गंगा का प्रवाह प्रवाहित करना आरम्भ किया। कोयल जैसी मीठी आवाज निकलने की देर थी कि सन्नाटा छा गया। प्रवचन का प्रधान विषय क्षमा भगवती के स्वरूप का विवेचन था। विवेचन क्या था? क्षमा भगवती की महिमा को मानो मूर्त्तरूप देकर जनता जनार्दन के सन्मुख खड़ा कर दिया था। प्रवचन की भाषा इतनी सरल, सरस और मधुर थी कि बच्चा भी उससे अनजाना नहीं रहा। सभी लोग मस्ती में झूम रहे थे। व्याख्यान के अन्त में, उपस्थित श्रद्धालु जनता ने विश्ववन्द्य श्रमण भगवान महावीर स्वामी तथा क्षमामूर्ति श्री रंगलाल जी महाराज के जयकारों के द्वारा अपनी-अपनी श्रद्धा अभिव्यक्त की।

होकर उसने आवाज दी—

बेटा ! उठो, गुरुदेव के चरणों में वन्दन हो गया है। इतना लम्बा वन्दन नहीं किया करते। दूसरे लोग भी गुरुचरणों के स्पर्श की आकांक्षा लिए खड़े हैं। तुम्हारा वन्दन गुरुमहाराज ने स्वीकार कर लिया है। गुरुचरणों से अब अपना मस्तक उठा लो।

अपनी जननी की आवाज सुनकर चरितनायक एकदम चौंके, निद्राभंग हो जाने से जैसे व्यक्ति हड़बड़ा कर उठता है, ऐसी ही स्थिति में चरितनायक उठे। गुरुदेव के चरणों के मंगल-स्पर्श के कारण प्रकट हुए आनन्दाश्रुओं से

परिप्लावितनयनों को अपने हाथों से साफ करते हुए चरितनायक अपनी जननी से विनीतता-पूर्वक निवेदन करने लगे—

जननि ! गुरुदेव के चरणों का मङ्गलमय, पावन स्पर्श पाकर आज मुझे जो आनन्द सम्प्राप्त हुआ है, अलौकिक शान्ति अधिगत हुई है, उसे मैं शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकता, मुझे तो अपने आप का भी भान नहीं रहा, इन चरणों का स्पर्श छोड़ने को मन बिलकुल नहीं मानता था, परन्तु तुम्हारी आवाज ने मेरी समाधि भंग कर डाली। मातः ! बहुत दिनों से मैं सच्चे गुरु की तलाश में था, इनके पावन चरणों का स्पर्श पाकर जो अलौकिक शान्ति सम्प्राप्त हुई है उसने मुझे इनमें सच्चे गुरुत्व के दर्शन करवा दिए हैं। अब इन चरणों से जुदा होने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता अब तो इन चरणों में ही जीवन का समर्पण कर दिया है माता जी ! आप घर को वापिस जाएँ माडू इन चरणों को छोड़कर वापिस घर नहीं जाएगा।

माता यमुनादेवी चरितनायक की बात सुनकर अवाक् सी रह गई, पुत्र हाथों से निकलता देखकर मातासुलभ ममता सिहर उठी, मोहजन्य अश्रुओं से दोनों नयन परिप्लावित हो गए, अन्त में अपने लाड़ले, चरितनायक को अपनी छाती से लगा कर प्यार से समझाने लगीं—बेटा ! अभी तू बच्चा है, तुझे धर्म कर्म का क्या पता है ? पहले धर्म-शास्त्रों का अभ्यास कर जब युवक हो जाएगा और धर्म के मर्म को समझ लेगा, तब जैसा अवसर होगा देखा जायगा, चल, उठ, समझदार बच्चे अधिक जिद नहीं किया करते, मेरे लाड़ले ! अभी तो तेरे पिता के वियोग के जख्म भी नहीं भरे, तू मुझ से जुदा होने की बातें क्यों करता है ? मुझे तू जीवित नहीं रहने देगा ? इतना कह कर माता यमुनादेवी का दिल भर आया और चरितनायक को बांह से पकड़कर जब ये उठाने लगीं तो चरितनायक अपनी माता के चरण पकड़ कर कहने लगे—

मां ! आज तुझे क्या हो गया तू ही तो संसार की अनित्यता ओर अशरणता की प्रतिदिन कहानियाँ सुनाया करती थी, संसार झूठा है, मिथ्या है, निस्सार है, उसमें फँसना मूर्खता है यह समझाती थकती नहीं थी, आज झूठा संसार सच्चा कैसे हो गया ? संसार में फँसने की मूर्खता को छोड़ने की बात करने लगा हूँ तो संसार में फँसने को बुद्धिमत्ता कैसे समझने लग गई है ? युवक होने की बात कहती है, कल शाम को तू ने स्वयं समझाया था कि जीवन का कोई भरोसा नहीं है। कितना सुन्दर दोहा सुना रही थी—

नवद्वारे का पिञ्जरा, तामें पंछी पौन।
रहने को अचरज है, गये अचंभा कौन ?

दूसरी बात, जब से पूज्य पिताजी का देहान्त हुआ है, वे परलोकवासी बने हैं तब से ही मेरा मन घर में नहीं लग रहा है, दुनिया की मोह-ममता से उपराम हो गया है। यदि सच पूछो, तो मेरा मानस इतना उदासीन हो चुका है कि मैं घर में एक सैकिण्ड के लिए भी रहने को तैयार नहीं हूँ। मैं तो सुयोग्य मार्गदर्शक की तलाश में था, जन्म जन्मान्तर के किसी शुभ कर्म का प्रताप ही समझता हूँ कि आज केवल मार्गदर्शक ही नहीं, प्रत्युत सच्चे गुरुदेव का नेतृत्व सम्प्राप्त हो गया है, आज की यह घड़ी मेरे जीवन की एक ऐतिहासिक घड़ी है, जिस ने मेरी चिरन्तन मनोकामना पूर्ण करके मेरे जीवन की दिशा ही बदल दी है। अम्बे ! एक बार सुनले, चाहे हजार बार सुनले, अब मैंने गुरुदेव के पावन चरणों में ही रहना है, घर तो बिल्कुल जाना ही नहीं है।

हमारे सहृदय पाठक जानते ही हैं कि माता यमुनादेवी स्वयं भी संसार की मोहमाया से उपराम हो चुकी थीं, शीघ्रातिशीघ्र जैन-साध्वी बन जाना

चाहती थीं, परन्तु अपने लाड़ले माडूसिंह को किन्हीं सुयोग्य और सुदृढ अध्यात्म-हाथों में सौंपकर ही ये संयमसाधना के महामार्ग पर चलना चाहती थीं। माता यमुनादेवी ने जब से महामहिम परमश्रद्धेय श्री स्वामी रंगलालजी महाराज के दर्शन किए तब से ही इनकी अन्तरात्मा आवाज दे रही थी कि श्रद्धेय महाराज श्री के नेतृत्व में माडूसिंह का भविष्य समुज्ज्वल बन सकता है, इन की देखरेख में यह त्याग वैराग्य तथा संयमसाधना के क्षेत्र में पूर्णतया समुन्नत हो सकता है, परिपूतचरण गुरुमहाराज अध्यात्म प्रकाश के दिव्य भण्डार है, इस भण्डार की शरण में आनेवाला कभी कोरा नहीं रह सकता अन्तर्जगत अवश्य ज्योतिमान होगा। प्रसन्नता की बात है के माडूसिंह को स्वतः ही इस ज्ञान भण्डार से अनुराग हो गया है। जिन सुयोग्य अध्यात्म हाथों में मैं अपने बच्चे को सौंपना चाहती थी, बच्चे के सौभाग्य से उसका सुयोग सम्प्राप्त हो गया है अब मुझे माडू के भविष्य की चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। इस चिन्तना के कारण माता यमुनादेवी हृदय से अत्यधिक प्रसन्न थी और चाहती थी कि शीघ्रातिशीघ्र माडूसिंह को इन गुरुचरणों में समर्पित कर दिया जाय। तथापि माता आखिर माता है, उसके कण-कण से ममत्त्व का वर्षण हुआ करता है। बच्चे के साथ कहीं बलात्कार न हो जाए, इस दृष्टि को आगे रखकर अपने प्रिय पुत्र की आन्तरिक स्थिति स्पष्टरूप से जानना चाहती थी, अतएव वह प्रत्यक्षरूप से अपने पुत्रके सन्तचरणों में स्थायीरूप से रहने के प्रस्ताव का विरोध करती हुई पुनः कहने लगी—

मेरे लाड़ले ! जिस दिन से तेरे पूज्य पिता का देहान्त हुआ है, उस दिन से मेरा जीवन तो तेरे सहारे पर ही है, तेरे बड़े भाई तो अलग ही रहते हैं, तेरे बिना इस जगत में मेरा कौन है ? देख नहीं रहा। मेरे शरीर की क्या दुर्दशा हो रही है ? कर्मों ने तो पहले ही बुरी तरह से जीवनलता को मुरझा दिया है, अब तो दिन ही पूरे करने हैं, पता नहीं कितने दिनों की जिन्दगी है ? मेरी इच्छा है यह इज्जत और मान से कट जाए, परन्तु यह सब कुछ तेरे आश्रय से ही सम्पन्न हो सकता है।

बेटा ! आज तेरी दशा देखकर मैं आश्चर्य-चकित रह गई, आज तो तू इतना कठोर हो गया है कि क्या कहूँ ? तेरा जीवन बड़ा मधुर, सरस और कोमल था, उसमें कठोरता का तो चिन्ह भी नहीं था, पता नहीं तुझे कितनी बार डांटा, गालियाँ दीं और अनेकों बार तेरी पिटाई भी की, परन्तु तूने मेरे सामने कभी जबान नहीं खोली, आज तो ऐसे-ऐसे तड़ाक-तड़ाक जवाब दे रहा है जैसे मैं तेरी कुछ लगती ही नहीं हूँ।

बच्चा ! आज तेरे पिताजी होते, तो क्या फिर भी ऐसी बातें बनाता,

तू मेरी जननी है, जननी सदा अपनी सन्तान का हित सोचती है, मैं तो आज तक यही सुनता रहा हूँ और समझता चला आ रहा हूँ कि माता के हाथों सन्तति का कभी अहित नहीं होता। बोल क्या तू मेरे भविष्य को समुज्ज्वल नहीं देखना चाहती ? तुझे मेरे हाल पर कोई तरस नहीं आता ? या तूने मेरा भविष्य बिगाड़ने का निर्णय ही कर लिया है ? मुझे समझाने से पहले जननि ! तू अपने को समझा। क्यों उलटे बांस बरेली भेजने की बात सोच रही है ?

माँ ! आवेश में आने वाली भी क्या बात है ? मैं कोई पाप के मार्ग पर जाने लगा हूँ ? चोरी करने या डाका डालने चला हूँ ? या कोई और भ्रष्टाचार अपनाने लगा हूँ। मांस मैं नहीं खाता, शराब मैं नहीं पीता, अण्डे देखना भी मेरे लिए पाप है। सिगरेट को आज तक हाथ नहीं लगाया। मैंने ऐसा

क्या जुल्म कर दिया जिसके कारण आज तू इस तरह बौखलाहट में आ रही है ? केवल सन्त-चरणों का मुझे प्यार अवश्य हो गया है। जिन सन्त-चरणों की महिमा को तू सदा गीत गाती है और जिनकी कल्याणकारिता तथा लोकोपकारिता को बिना किसी संकोच के स्वीकार करती है, आज यदि तेरा ही बच्चा उन पावन चरणों का पुजारी बनने जा रहा है, उन मंगलमय चरणों का आश्रय लेकर अपने जीवन का कल्याण करने की बात कहता है, और आजीवन ब्रह्मचारी रहकर तथा त्याग-वैराग्य के महापथ पर चलकर परमपिता परमात्मा के स्वरूप को उपलब्ध करने के लिए आगे बढ़ रहा है तो तेरे मानस में घबराहट क्यों आती है ? माँ ! जरा शान्ति और धीरता से काम ले, तू तो स्वयं समझदार है, मैं तुझे कुछ कहता क्या अच्छा लगता हूँ। जिस जोश के पीछे सात्विकता, पवित्रता और परोपकारिता न हो वह वरदान न बनकर अभिशाप बन जाता है। अतः आवेश की भाषा बोलना तुझे शोभा नहीं देता।

दूसरी बात, बिना हानि-लाभ का विचार किए मेरे मार्ग में बाधाक बन जाना मातृ जीवन के लिए उचित नहीं है। यदि आवेश की भाषा से ही तुझे प्यार हो गया है और तूने यह निर्णय कर लिया है कि सन्त-चरणों में रहने की आज्ञा नहीं देनी है तो मेरी बात भी सुन ले। इन चरणों की (गुरुचरणों का स्पर्श करके) सौगन्ध खाकर मैं भी आज प्रतिज्ञा करता हूँ कि जब तक तू अपने मुख से सन्त-चरणों में रहने की मुझे आज्ञा नहीं देती और खुशी के साथ इन चरणों में मुझे समर्पित नहीं करती तब तक मैं भी अन्न-जल ग्रहण न करने का नियम लेता हूँ। इतना कहकर चरितनायक ध्यानस्थ-मुद्रा में वहीं विराजमान हो गए।

चरितनायक का दृढ़तापूर्ण वक्तव्य सुनकर माता यमुनादेवी की आँखें खुल गई। अपने प्रिय पुत्र का सन्त-चरणों का सच्चा प्यार तथा मोहमाया के बन्धनों से उन्मुक्त होने का दृढ़ निश्चय देखकर माताजी का कण-कण पुलकित हो उठा। अपने पुत्र में धर्म के प्रति तथा गुरुचरणों के प्रति जो सच्ची निष्ठा वे देखना चाहती थीं उसका साक्षात् दर्शन करके वे आनन्द विभोर हो गई। अन्त में, उन्होंने सहर्ष अपने प्रिय पुत्र को गुरुचरणों में समर्पित कर दिया तथा साथ में मैं बिना किसी दबाव के अपने पुत्र को दीक्षित होने की सहर्ष आज्ञा देती हूँ। इस भाषा का एक आज्ञा पत्र भी लिखकर दे दिया। इस सम्बन्ध में पीछे पृष्ठ ८२ पर भी संसूचित किया जा चुका है।

दीक्षा की पूर्व भूमिका

कहा जा चुका है कि चरितनायक को दीक्षित करने का आज्ञा पत्र देते

"— प्रतीपं क्रमणं, प्रतिक्रमणम् । अयमर्थः—शुभयोगेभ्योऽशुभयोगान्तरं क्रान्तस्य शुभेषु एवं क्रमणात् प्रतीपं क्रमणम् ।"

—शुभयोगों—मन, वचन और काया के प्रशस्त व्यापारों से अशुभयोगों—मन, वचन और काया के अप्रशस्त व्यापारों में गए हुए अपने आपको पुनः शुभयोगों में लौटा लाना, अर्थात् धर्मध्यान को छोड़कर अधर्म ध्यान में व्यासक्त अपने मानस को पुनः धर्मध्यान में स्थिर करना प्रतिक्रमण कहलाता है।

प्रतिक्रमण शब्द में प्रति उपसर्ग है और क्रमु (क्रम्) धातु है। प्रति का अर्थ है—प्रतिकूल और क्रमुधातु का अर्थ पदनिक्षेप होता है दोनों को मिलाकर अर्थ सम्पन्न होता है—जिन कदमों से बाहिर गया है उन कदमों से लौट आए। भाव यह है कि जो साधक किसी प्रमाद के कारण सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र रूप स्वस्थान से हटकर मिथ्यात्व, अज्ञान एवं असंयम रूप पर—स्थान में चला गया है उसका पुनः स्वस्थान में लौट आना

---

[1] गुरुमहाराज की आज्ञा बलवती होती है।

प्रतिक्रमण कहा जाता है। यदि प्रतिक्रमण के अभिप्राय को संक्षेप में कहें तो पाप क्षेत्र से वापिस आत्मशुद्धि के क्षेत्र में लौट आने को प्रतिक्रमण कहते हैं।

आचार्य श्री भद्रबाहु स्वामी ने आवश्यकनिर्युक्ति में साधक के लिए चार विषयों का प्रतिक्रमण बतलाया है। प्रतिक्रमण के वे चार प्रकार इस तरह से समझने चाहिये—

(१) हिंसा और असत्य आदि जिन पापकर्मों का साधु तथा श्रावक के लिए प्रतिषेध किया गया है यदि भ्रान्तिवश कभी उनका आसेवन कर लिया जाता है तो साधु और श्रावक को उनका प्रतिक्रमण करना चाहिये।

(२) शास्त्रस्वाध्याय, प्रतिलेखना और सामायिक आदि जिन सत्कार्यों के करने का शास्त्र में विधान किया गया है, उनके न करने पर भी प्रतिक्रमण किया जाता है। कर्तव्य कार्य को न करना भी पाप माना गया है अतः उसका प्रतिक्रमण करना आवश्यक होता है।

(३) शास्त्र-प्रतिपादित, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और जीव रूप अमूर्त तत्त्वों की सत्यता के विषय में सन्देह लाना, उन पर श्रद्धा न रखना, इस तरह अमूर्त्त पदार्थों पर अश्रद्धा उत्पन्न होने पर प्रतिक्रमण किया जाता है। यह प्रतिक्रमण मानसिक शुद्धि का जनक माना गया है।

(४) आगम-विरुद्ध विचारों का प्रतिपादन करने पर तथा हिंसा असत्य आदि के विचारों का समर्थन करने पर भी प्रतिक्रमण किया जाता है। मन के दोष की भाँति वचनगत दोष भी स्वीकार किया गया है अतः यह वचन शुद्धि का प्रतिक्रमण समझना चाहिये।

यदि स्थूल दृष्टि से प्रतिक्रमण का व्याख्यान करें तो प्रतिक्रमण उस शास्त्र का नाम है जो साधु और श्रावक के द्वारा प्रतिदिन नियमित रूप से आत्मशुद्धि के लिए प्रातः और सायं पढ़ा जाता है। इसीलिये इस शास्त्र को आवश्यक सूत्र भी कहते हैं। यह प्रतिदिन साधु और श्रावक द्वारा क्रमशः दिन और रात्रि के अन्त में अवश्य पठनीय होता है, इसीकारण यह आवश्यक सूत्र कहलाता है। इस आवश्यक सूत्र के—१—सामायिक—जिसका उद्देश्य समभाव की प्राप्ति हो, २—चतुर्विंशतिस्तव—भगवान आदिनाथ से लेकर चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर की स्तुति, ३—वन्दन—गुरुजनों को नमस्कार, ४—प्रतिक्रमण—संयमसाधना में लगे दोषों की आलोचना, ५—कायोत्सर्ग—शरीर के ममत्त्व का परित्याग करने के उद्देश्य से जिनमुद्रा

हमारे चरितनायक अब युवक हो गए थे। युवावस्था में पदार्पण करने के कारण उनका शारीरिक सौन्दर्य और वैभव कुछ निराला ही दृष्टिगोचर होने लगा था। ज्योत्स्नामयी आकर्षक गौर वर्ण, स्वस्थ एवं निरोग सुडौल शरीर, शक्तिशाली शारीरिक गठन, तेजोमय प्यार भरा स्मितमुख, प्रभावशाली विराट ललाट, हिरण जैसे सुन्दर विशाल नयन, सभी दर्शकों के लिए आकर्षण और अनुराग का केन्द्र बन रहे थे। चरितनायक जिधर से गुजर जाते थे, लोगों का ध्यान अपनी ओर बरबस आकृष्ट कर लेते थे। युवक जनों की स्वस्थता और सुन्दरता की प्रतियोगिता में बाजी मारनेवाले माडूसिंह कुछ ही दिनों में त्याग-वैराग्य की कठोर और सात्विक संयमसाधना के अमर भण्डार जैन-साधुओं की पंक्ति में खड़ा हो जाएगा, सांसारिक सुखों के प्रलोभनों से सर्वथा अछूता रहकर नंगे सिर नंगे पांव पैदल यात्रा किया करेगा, कञ्चन-कामिनी से प्राप्त होने वाले वैषयिक आनन्द की छाया से बिल्कुल दूर रहकर एक दिन घर-घर भिक्षार्थ भ्रमण करता हुआ जीवन-यात्रा सम्पन्न करेगा, और इतना आकर्षक सौन्दर्य, स्वास्थ्य तथा व्यक्तित्व प्राप्त करके भी यह भक्तराज ध्रुव की तरह तप, संयम की कठोर साधना में जुट जाएगा, यह सोचकर सभी नर-नारी आश्चर्यचकित हो रहे थे। चरितनायक के दीक्षा

से द्वेष रखने वाले कुछ लोग चरितनायक को भाग्यहीन कहने में भी सकुचाते नहीं थे। उनका विचार था कि देवदुर्लभ नरतन का अपार सौन्दर्य, स्वास्थ्य तथा व्यक्तित्व प्राप्त करके भी मारूसिंह भिक्षु बनने जा रहा है। पर-लोक किसने देखा है? घर के स्वर्ग को छोड़कर परलोक के स्वर्ग के लालच में फँसकर सोने जैसे शरीर को बर्बाद कर लेना कहाँ की बुद्धिमत्ता है? सचमुच मारू पागल हो गया है। साधु-सन्तों के चक्कर में फँसकर अपना भविष्य बिगाड़ रहा है। यदि आज इसके पिता चौधरी तेजाराम जी जीवित होते तो इसकी धूमधाम से शादी करते। इसका विवाह रचाते, खुशियों के बाजे बजाकर इसका घर आबाद करते। माड़ की मां तो बिल्कुल ही पागल निकली जो इसे साधुओं को सौंपकर स्वयं साध्वी बन गई। इस तरह धर्मविद्वेषी लोग अपने-अपने विचारानुसार चरितनायक की आलोचना भी करते दिखाई दे रहे थे। परन्तु चरितनायक पर इस आलोचना का कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा था, वे जानते थे कि जिसको पीलिया रोग हो जाता है। जैसे उसे संसार की श्वेत वस्तुएँ भी पीली ही दिखाई देती हैं। ऐसे ही मेरे आलोचकों को भी मोह-माया का पीलिया रोग हो रहा है। इसीलिए ये मोह-माया के वातावरण को सर्वोत्तम और सुखप्रद मान रहे हैं, अन्यथा धर्म के पावन और कल्याणकारी महामार्ग की कभी ये लोग आलोचना करने का दुस्साहस न करते। यदि धर्म का महापथ प्रशस्त न होता तो हमारे पूर्वज इसका आश्रयण ही क्यों करते? बड़े-बड़े बुद्धिमान नरेश तथा राजकुमार सोने के सिंहासन

---

[1] संसार के प्राणियों की रुचि भिन्न-भिन्न होती है।

को लात मारकर संयम साधना द्वारा जीवन व्यतीत करते हुए वनों में निवास क्यों करते ? वस्तुतः संयम साधना के साधकों को पागल कहने वाले ये स्वय पागल हैं। दूसरी वात, जो लोग आलोचना करते हैं वे अन्तर्मुखी होकर अपने जीवन को ही देख लें कि वे वासना भरे जीवन से कितने सुखी हैं ? इन लोगों की तो क्या वात है ? दुनिया भर का ऐश्वर्य अधिगत करने वाले चक्रवर्ती राजाओं को भी महलों में शान्ति नहीं मिली। वे भी अन्त में इसी निर्णय पर पहुँचे—

"भोगा न भुक्ताः, वयमेव भुक्ताः"

—भोगों का उपभोग नहीं हुआ, किन्तु भोगों ने हम को ही भोग लिया।

कहा जा चुका है कि चरितनायक के दीक्षित हो जाने की चर्चा सर्वत्र फैलती जा रही थी। दीक्षा की चर्चा का चरितनायक के वड़े भाइयों तक भी पहुँचना स्वाभाविक था। पहले तो ये खामोश थे, परन्तु जव पपिलाद गाँव के घर-घर में दीक्षा की वातें होने लगीं और लोग नाना प्रकार की वोलियाँ वोलने लगे तो उनके हृदयों में भी अपने छोटे भाई माड़ूसिंह का मोह अंगड़ाई लेने लगा। धीरे-धीरे वे भी सामने आ गये और प्रयत्न करने लगे कि हमारा प्यारा भाई हमसे जुदा न होवे। साधु न वने और अपने घर में ही रहकर दुनिया के विषभोगों का आनन्द लूटे। पहले उन्होंने स्वयं माड़ूसिंह को समझाने का प्रयास किया। भरजाइयों ने भी प्यार के गीत गा-गाकर इनको अपने पथ से हटाना चाहा। परन्तु जव चरितनायक ने भाई या भरजाई की कोई वात नहीं सुनी तो भाइयों ने अपने निकट दूर के सव रिश्तेदार इकट्ठे किये। उनसे चरितनायक से वहुत कुछ कहलवाया। जव चरितनायक ने रिश्तेदारों की भी कोई पेश नहीं जाने दी तव सवने पपिलाद गाँव के मुखिया लोगों को एकत्रित किया और उनको साथ लेकर वे क्षमामूर्ति श्रद्धेय गुरुदेव श्री रंगलाल जी महाराज के चरणों में उपस्थित हुए। करवद्ध होकर उनके पावन चरणों में विनम्र प्रार्थना करते हुए निवेदन किया—

श्रद्धेय महाराज ! आप श्री के चरणों में एक प्रार्थना लेकर पपिलाद गाँव के निवासी आए हैं। प्रार्थना भी कोई लम्बी-चौड़ी नहीं है। वस यही कि आप माड़ूसिंह को दीक्षित करने की कृपा न करें। क्योंकि अभी यह वच्चा है, इसको धर्म-कर्म का क्या पता है ? संयम-साधना का मार्ग तो वड़ा टेढ़ा और कठोर है। वड़े-वड़े व्यक्ति भी इसकी कठिनाई से कम्पित हो जाते हैं फिर माड़ूसिंह तो अभी सर्वथा अवोध ही है। दूसरी वात, जवानी को संभालना वच्चों का खेल नहीं है। पहले इसे दुनिया देख लेने दें, वाद में जैसे

नहीं थे। उनका विचार था कि देवदुर्लभ नरतन का अपार सौन्दर्य, स्वास्थ्य तथा व्यक्तित्व प्राप्त करके भी माडूसिंह भिक्षु बनने जा रहा है। पर-लोक किसने देखा है? घर के स्वर्ग को छोड़कर परलोक के स्वर्ग के लालच में फंसकर सोने जैसे शरीर को बर्बाद कर लेना कहाँ की बुद्धिमत्ता है? सचमुच माडू पागल हो गया है। साधु-सन्तों के चक्कर में फंसकर अपना भविष्य बिगाड़ रहा है। यदि आज इसके पिता चौधरी तेजाराम जी जीवित होते तो इसकी धूमधाम से शादी करते। इसका विवाह रचाते, खुशियों के बाजे बजाकर इसका घर आबाद करते। माडू की माँ तो बिल्कुल ही पागल निकली जो इसे साधुओं को सौंपकर स्वयं साध्वी बन गई। इस तरह धर्मविद्वेषी लोग अपने-अपने विचारानुसार चरितनायक की आलोचना भी करते दिखाई दे रहे थे। परन्तु चरितनायक पर इस आलोचना का कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा था, वे जानते थे कि जिसको पीलिया रोग हो जाता है। जैसे उसे संसार की श्वेत वस्तुएँ भी पीली ही दिखाई देती हैं। ऐसे ही मेरे आलोचकों को भी मोह-माया का पीलिया रोग हो रहा है। इसीलिए ये मोह-माया के वातावरण को सर्वोत्तम और सुखप्रद मान रहे हैं, अन्यथा धर्म के पावन और कल्याणकारी महामार्ग की कभी ये लोग आलोचना करने का दुस्साहस न करते। यदि धर्म का महापथ प्रशस्त न होता तो हमारे पूर्वज इसका आश्रयण ही क्यों करते? बड़े-बड़े बुद्धिमान नरेश तथा राजकुमार सोने के सिंहासन

---

[1] संसार के प्राणियों की रुचि भिन्न-भिन्न होती है।

को लात मारकर संयम साधना द्वारा जीवन व्यतीत करते हुए वनों में निवास क्यों करते ? वस्तुतः संयम साधना के साधकों को पागल कहने वाले ये स्वयं पागल हैं। दूसरी बात, जो लोग आलोचना करते हैं वे अन्तर्मुखी होकर अपने जीवन को ही देख लें कि वे वासना भरे जीवन से कितने सुखी हैं ? इन लोगों की तो क्या बात है ? दुनिया भर का ऐश्वर्य अधिगत करने वाले चक्रवर्ती राजाओं को भी महलों में शान्ति नहीं मिली। वे भी अन्त में इसी निर्णय पर पहुँचे—

"भोगा न भुक्ताः, वयमेव भुक्ताः"

—भोगों का उपभोग नहीं हुआ, किन्तु भोगों ने हम को ही भोग लिया।

कहा जा चुका है कि चरितनायक के दीक्षित हो जाने की चर्चा सर्वत्र फैलती जा रही थी। दीक्षा की चर्चा का चरितनायक के बड़े भाइयों तक भी पहुँचना स्वाभाविक था। पहले तो ये खामोश थे, परन्तु जब पपिलाद गाँव के घर-घर में दीक्षा की बातें होने लगीं और लोग नाना प्रकार की बोलियाँ बोलने लगे तो उनके हृदयों में भी अपने छोटे भाई माडूसिंह का मोह अंगड़ाई लेने लगा। धीरे-धीरे वे भी सामने आ गये और प्रयत्न करने लगे कि हमारा प्यारा भाई हमसे जुदा न होवे। साधु न बने और अपने घर में ही रहकर दुनिया के विषभोगों का आनन्द लूटे। पहले उन्होंने स्वयं माडूसिंह को समझाने का प्रयास किया। भरजाइयों ने भी प्यार के गीत गा-गाकर इनके अपने पथ से हटाना चाहा। परन्तु जब चरितनायक ने भाई या भरजाई की कोई बात नहीं सुनी तो भाइयों ने अपने निकट दूर के सब रिश्तेदार इकट्ठे किये। उनसे चरितनायक से बहुत कुछ कहलवाया। जब चरितनायक ने रिश्तेदारों की भी कोई पेश नहीं जाने दी तब सबने पपिलाद गांव के मुखिया लोगों को एकत्रित किया और उनको साथ लेकर वे क्षमामूर्ति श्रद्धेय गुरुदेव श्री रंगलाल जी महाराज के चरणों में उपस्थित हुए। करबद्ध होकर उनके पावन चरणों में विनम्र प्रार्थना करते हुए निवेदन किया—

श्रद्धेय महाराज ! आप श्री के चरणों में एक प्रार्थना लेकर पपिलाद गाँव के निवासी आए हैं। प्रार्थना भी कोई लम्बी-चौड़ी नहीं है। बस यही कि आप माडूसिंह को दीक्षित करने की कृपा न करें। क्योंकि अभी यह बच्चा है, इसको धर्म-कर्म का क्या पता है ? संयम-साधना का मार्ग तो बड़ा टेढ़ा और कठोर है। बड़े-बड़े व्यक्ति भी इसकी कठिनाई से कम्पित हो जाते हैं फिर माडूसिंह तो अभी सर्वथा अबोध ही है। दूसरी बात, जवानी को संभालना बच्चों का खेल नहीं है। पहले इसे दुनिया देख लेने दें, बाद में जैसे

अवगत कराएं। यदि यह आपकी बात समझ लेता है, और आपसे सहमत हो जाता है तो बड़े शौक के साथ इसे अपने साथ घर ले जा सकते हैं। परन्तु यदि यह अपनी बात आपको समझा देता है और आपकी तसल्ली करा देता है तो आप इसके सत्कार्य में सहयोगी बनने की उदारता दिखलाएँ।

श्रद्धेय महाराज श्री की तर्क संगत और शान्तिपूर्ण बात सुनकर आगन्तुक सज्जन बड़े सन्तुष्ट हुए। अन्त में महाराज श्री से आज्ञा लेकर जहाँ चरितनायक बैठे अपना धर्माभ्यास कर रहे थे वहाँ वे पहुँचे, उनके साथ प्रेम से वार्तालाप करते हुए वे उन्हें समझाने लगे, कहने को उन्होंने बहुत कुछ कहा सुना। ऊँच-नीच कहकर चरितनायक पर दबाव भी डाला, परन्तु हमारे चरितनायक का वैराग्य श्मशानिया वैराग्य नहीं था। जो लोगों की बातों में आकर समाप्त हो जाता। श्मशानिया वैराग्य का अर्थ है —श्मशान में होने वाला वैराग्य। देखा गया है कि जब कोई आदमी श्मशान में पहुँच जाता है। वहाँ धाँय-धाँय करती हुई जलती चिताओं को देखता है तो उसके हृदय में एक विरक्ति सी अङ्गड़ाई लेने लगती है। उसे सारा संसार अनित्य और नाशवान अनुभव होने लगता है, माता, पिता, भाई, बहिन, स्त्री-पुत्र, मित्र-यार आदि का ममत्व भी सारहीन और दुःखान्त ही प्रतीत होता है, अधिक

चरितनायक श्री का सौभाग्य ही समझिए या क्षमामूर्ति श्री स्वामी रंगलाल जी महाराज का पुण्य प्रताप कहिए कि दीक्षा जैसे परमपावन और आध्यात्मिक कार्य के विरोध में सर उठाने वाले सभी प्रतिद्वन्द्वी शान्त हो गये और सभी ने चरितनायक के त्याग-वैराग्य के आगे अपना मस्तक प्रणत कर दिया। अधिक क्या कहें, पपिलाद गांव का क्या बच्चा, क्या वृद्ध, क्या युवक, क्या युवती, क्या अपना और क्या बेगाना सभी लोगों की रसनाओं पर यही स्वर नाचने लगे थे कि चौधरी तेज का लाड़ला और माता यमुनादेवी की आंखों का तारा माडूसिंह धन्य है जो उठती जवानी में भरे हुए घरबार और परिवार के मोह को तोड़कर सन्त शिरोमणि क्षमामूर्ति श्री स्वामी रंगलाल जी महाराज के चरणों में भगवती जैन दीक्षा अंगीकार करने जा रहा है। सच्चा त्याग और सच्चा वैराग्य इसी का नाम है।

दीक्षा की मङ्गलमयी घड़ी—

कहा जा चुका है कि हमारे मान्य चरितनायक श्री माडूसिंह जी साधु-प्रतिक्रमण सीख चुके हैं और दीक्षा के निमित्त पपिलाद गाँव के निवासियों तथा इनके बड़े भाइयों ने इनको जो कुछ कहना, सुनना था। कह सुन लिया घर में रखने के लिए जो ममतापूर्वक समझाना था, समझा लिया, तदनन्तर सबके सब दीक्षा के सत्कार्य में बाधक न बनकर साधक हो गये थे। इस तरह दीक्षा ग्रहण करने के लिए जो पूर्व भूमिका तैयार होनी अपेक्षित होती है। वह सब तैयार हो चुकी थी। इसीलिए एक दिन चरितनायक ने अवसर देखकर अपने परमश्रद्धेय गुरुदेव क्षमामूर्ति श्री स्वामी रंगलाल जी महाराज के दिव्य चरणों में विनीततापूर्वक निवेदन करते हुए कहा—

श्रद्धेय गुरुदेव ! दीक्षा लेने से पूर्व दीक्षार्थी को जो करणीय कार्य होते हैं, वे सब सम्पन्न हो चुके हैं। साधु प्रतिक्रमण स्मरण करना अत्यावश्यक

होता है। वह मैंने याद कर लिया है, संरक्षकों से आज्ञापत्र प्राप्त करना जरूरी होता है। आज्ञापत्र भी आप श्री प्राप्त कर चुके हैं। इस तरह दीक्षा के सब विधिविधान पूरे हो गए हैं। आपकी दृष्टि से कोई समस्या असमाहित नहीं रही है। अब फिर मेरे दीक्षा कार्य में क्यों विलम्ब किया जा रहा है ? आप श्री तो सदा यही फरमाया करते हैं—

"असंखयं जीवियं, मा पमायए"

—यह जीवन असंस्कृत है, आयु टूट जाने पर आयु को जोड़ने वाली संसार में कोई शक्ति नहीं है। इसलिए विवेकशील जीव को प्रमाद नहीं करना चाहिये।

मेरे आराध्यदेव ! आप तो स्वयं ही सब कुछ जानते और समझते हैं। समय को खोना, जीवन की अनमोल घड़ियों में प्रमाद में लगा देना और संयम-साधना जैसे पावन प्रकाश से अपने को वञ्चित रखकर प्रकाशमान बनाना, कितनी बड़ी नादानी है ? अज्ञानता है ? अदूरदर्शिता है ? यह आप श्री से बिल्कुल अनजाना नहीं है। फिर मेरे जीवन-कल्याण की अपेक्षा क्यों की जा रही है ? मुझे दीक्षित करने और साधु बनाने में विलम्ब क्यों चल रहा है ? जीवन में जो क्षण धर्म ध्यान में, आत्मचिन्तन में, प्रभुभक्ति में और संयम साधना में व्यतीत हो मैं तो उन्हीं को सार्थक, सफल और कृतकृत्य मानता हूँ। आप श्री भी स्वयं व्याख्यान में सदा यही फरमाया करते हैं—

जा जा वच्चइ रमणी, न सा पडिनियत्तइ।
अहम्मं कुणमाणस्स, अफला जंति राईओ ॥
जाजा वच्चइ रमणी, न सा पडिनियत्तइ।
धम्मं च कुणमाणस्स, सफला जंति राईओ ॥

—जो दिनरात व्यतीत हो जाते हैं, वे कभी वापिस नहीं आते, परन्तु जो व्यक्ति अधर्म करता है उसके दिनरात असफल चले जाते हैं।

जो दिन रात गुजर रहे हैं उनको कभी वापिस नहीं लोटाया जा सकता, परन्तु जो व्यक्ति धर्म का आचरण करता है। उसके दिन और रात सफल हो जाते हैं।

वन्दनीय गुरुदेव ! मेरे तो रोम-रोम से यही स्वर निकल रहा है कि मैं जल्दी से जल्दी साधु-जीवन अङ्गीकार करके अपने जीवन का कल्याण करूँ ? आजकल तो मुझे एक दिन भी व्यतीत करना कठिन अनुभव हो

हुए कहा—

मान्य पण्डित जी ! यह बच्चा जो आपके सामने बैठा हुआ है, गुरु चरणों में साधु बनना चाहता है। अतः आप दीक्षा का कोई सुन्दर सा मुहूर्त्त निकालने की कृपा करें। इसी उद्देश्य से आपको यह कष्ट दिया गया है।

प्रधानजी की बात ज्योतिषी जी ने मुसकराते हुए कहा—सेठजी ! ऐसे शुभ कार्य में कष्ट वाली क्या बात है ? यह तो बहुत बड़ी प्रसन्नता की बात है। यह बच्चा उठती जवानी में साधु बनने जा रहा है। मोह को तोड़ना कोई बच्चों का खेल नहीं है। इस क्षेत्र में साधारण मनुष्य की क्या बात करें, बड़े-बड़े ज्ञानी, ध्यानी सन्तजन भी पिछड़ जाते हैं। मोह ने बड़े-बड़े राजे-महाराजाओं को भी पछाड़ दिया है। मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान राम के पूज्य पिता महाराजा दशरथ कितने विचारक और दूरदर्शी महापुरुष थे परन्तु तुलसी रामायण कहती है कि राम के वनवासी वन जाने पर उन्होंने

केवल-राम के मोह के कारण अपनी जीवनलीला समाप्त करदी। मोह को जीतना बहुत बड़ी बहादुरी है। कोई शूरवीर और धीर व्यक्ति मोह त्याग का महापथ अपना सकता है सेठ साहिब ! यह बालक बड़ा भाग्यशाली है, इसके मस्तक पर एक अपूर्व तेज अठखेलियाँ करता दिखाई दे रहा है। फिर इसे गुरुदेव भी बड़े तेजस्वी, महापुरुष सम्प्राप्त हुए हैं। सोने में सुहागे वाली बात का ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत हो रहा है। मेरे सन्मुख तो शिष्य और गुरु दोनों ही बधाई के पात्र हैं। शिष्य को ऐसे पवित्रात्मा गुरुदेव के प्राप्त होने की तथा गुरुदेव को ऐसे होनहार शिष्य को प्राप्त करने की बधाई देता हूँ। यह कहकर आदरणीय पण्डित जी ने अपना पञ्चाङ्ग खोला। शुभ मास, तिथि, दिन और समय देखना आरम्भ किया, परमश्रद्धेय श्री स्वामी रंगलाल जी महाराज भी मुहूर्त्त-शास्त्र के अच्छे खासे जानकार थे, अतः पण्डित जी ने श्रद्धेय गुरुदेव के साथ परामर्श किया अन्त में, दोनों ने सर्वसम्मति से वि० सं० १९६०, वैशाख शुक्ला तृतीया का शुभ दिन दीक्षा का मुहूर्त्त सर्वोत्तम सर्वप्रधान और प्रत्येक दृष्टि से प्रशस्त बतलाया। दीक्षा की तिथि हो जाने पर चरितनायक का कण-कण आनन्दविभोर हो उठा। प्रधानजी भी बड़े प्रसन्न हुए। अन्त में प्रधानजी ने ज्योतिषी जी को सम्मान के साथ विदा किया।

जैन साहित्य में वैशाख शुक्ला तृतीया का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान माना जाता है। इसे अक्षयतृतीया भी कहते हैं। अक्षयतृतीया का सीधा सम्बन्ध युगादिपुरुष भगवान ऋषभदेव से है, भगवान जब दीक्षित हुए थे तब उस समय के लोग साधुओं को आहार-पानी देने की विधि नहीं जानते थे इसीलिए भगवान ऋषभदेव को आहार-पानी प्राप्त नहीं हो सका था, इस तरह बिना आहार के भगवान को एक वर्ष हो गया। वैशाख शुक्ला तृतीया के पुण्य दिन ठीक एक वर्ष के बाद हस्तिनापुर के राजकुमार श्रेयांस के हाथों उन्होंने ईख का रस प्राप्त किया और उसी से उन्होंने वर्षीतप का पारणा किया। वर्षीतप के पारणा का कारण होने से वैशाख शुक्ला तृतीया सदा के लिए संस्मरणीय समादरणीय बन गई और इसीलिये इसे अक्षयतृतीया के नाम से पुकारा जाने लगा। इस तृतीया को अक्षयतृतीया कहने के पीछे और भी कई एक रहस्यमयी बातें हैं। प्रथम तो भगवान ऋषभदेव के पाणिपात्र[1] में

---

[1] तीर्थंकर भगवान काष्ठ आदि किसी अन्य पात्र का उपयोग नहीं करते फलतः उनके पात्र उनके हाथ ही होते हैं। आहार का सेवन भी हाथों से ही किया जाता है। इसीलिये हाथ पाणिपात्र कहे गए हैं।

अक्षयतृतीया की ऐतिहासिकता से हमारे चरित्रनायक श्री माडूसिंह जी अच्छी तरह से परिचित थे, इसी कारण अक्षयतृतीया को अपनी दीक्षातिथि के रूप में देखकर उनको हार्दिक प्रसन्नता हुई इसके अतिरिक्त जिस किसी व्यक्ति ने भी दीक्षा का मुहूर्त्त अक्षयतृतीया सुना उसी ने ही इस मुहूर्त्त का हार्दिक अभिवन्दन एवं अभिनन्दन किया। दीक्षा जिस स्थान पर की जानी है ? उसका निश्चित हो जाना भी अत्यावश्यक था। अतएव वहाँ पर उपस्थित प्रधानजी ने विनम्र निवेदन किया कि गुरुदेव ! यह सौभाग्य हमें मिलना चाहिए, हमारा श्री संघ दीक्षा महोत्सव का सब दायित्व उठाने की पूर्णतया क्षमता रखता है। आपकी दया से हमारे श्री संघ में धर्म-ध्यान का बड़ा उत्साह है। अतः आप श्री माडूसिंह जी की दीक्षा का महोत्सव हमारे यहाँ ही होने की स्वीकृति प्रदान करने का अनुग्रह करें। प्रधानजी की विनीततापूर्ण प्रार्थना सुनकर महाराज श्री फरमाने लगे—

श्रावक जी ! दीक्षामहोत्सव कहाँ पर करना है ? यह सोचना हमारा काम नहीं है यह तो आप गृहस्थों को सोचना है। हमने तो दीक्षार्थी को दीक्षा का पाठ पढ़ाना है जहाँ पर आप लोग व्यवस्था कर देगें वहीं पर यह सत्कार्य सम्पन्न कर दिया जाएगा। परन्तु एक बात का ध्यान रखना, बाहिर किसी को दीक्षा की सूचना नहीं देनी, किसी भी प्रकार का कोई आडम्बर नहीं करना। बिल्कुल सादगी से काम करना है।

श्रद्धेय महाराज श्री की स्वीकृति पाकर प्रधान जी खुशी के मारे फूले नहीं समाए। ये प्रधान जी "शेरसिंह जी की रीयां" इस नाम वाले गाँव के रहने वाले थे और इस गाँव में जो स्थानकवासी जैन श्रावक संघ था उसके

प्रधान थे। "शेरसिंह जी की रीयां" नाम का गांव ब्यावर (राजस्थान) के निकट पड़ता है। यहाँ पर जैन धर्म को मानने वालों की अच्छी खासी संख्या थी, आर्थिक दृष्टि से भी जैन लोग अच्छे सम्पन्न थे। धर्म-प्रभावना के कामों में बढ़-चढ़ कर भाग लेते थे। संघ के प्रधान जी ने जब अपने गाँव वालों को यह शुभ सूचना दी कि चिरञ्जीव माडूसिंह जी की दीक्षा वैशाख शुक्ला तृतीया को अपने गाँव में हो रही है तो क्या पूछते हो। सर्वत्र खुशी की लहर दौड़ गई। सभी ने इस दीक्षा का हार्दिक स्वागत किया और दीक्षा-महोत्सव को अधिकाधिक समारोह के साथ सम्पन्न करने का सबने बुद्धि-शुद्ध प्रस्ताव पारित करना चाहा, परन्तु प्रधान जी ने सबको कह दिया कि पूज्य गुरुदेव की आज्ञा बिल्कुल सादगी की है। उनका फरमान है कि कोई आडम्बर नहीं करना। दीक्षार्थी को केवल दीक्षा का पाठ ही पढ़ाना है। अत: बाहिर से किसी को बुलाना नहीं है।

महान सन्त, क्षमामूर्ति श्रद्धेय श्री रंगलाल जी महाराज आदरणीय श्री माडूसिंह जी को वैशाख शुक्ला तृतीया के पावन दिन "शेरसिंह जी की रीयां" नामक गाँव में भगवती जैन दीक्षा प्रदान कर रहे हैं यह शुभ समाचार राजस्थान प्रान्त में सर्वत्र फैल गया। पपिलाद गाँव वालों को भी दीक्षा-महोत्सव के समाचार मिले। दीक्षा के शुभ समाचार पाकर पपिलाद गाँव के निवासियों को जहाँ अपार हर्ष हुआ वहाँ अत्यधिक खेद भी हुआ। दीक्षा जैसे विशुद्ध धार्मिक सत्कार्य को सुनकर प्रसन्न होना तो स्वाभाविक ही था परन्तु खेद इस बात का हुआ कि दीक्षार्थी की दीक्षा उसकी जन्मभूमि पपिलाद गाँव में क्यों नहीं की जा रही? यहाँ पर क्या न्यूनता है? हमारे यहाँ पर भी दीक्षामहोत्सव की सब व्यवस्था हो सकती है। अन्त में, चरितनायक के बड़े भाई तथा गाँव के अन्य प्रमुख व्यक्ति सब एक शिष्टमण्डल के रूप में इकट्ठे होकर जहाँ पर क्षमामूर्ति श्री स्वामी रंगलाल जी महाराज विराजमान थे वहाँ पर उपस्थित हुए। सन्त-चरणों में वन्दन करने के अनन्तर उन्होंने पूज्य गुरुदेव के चरणों में विनीत अभ्यर्थना करते हुए निवेदन किया—

श्रद्धेय गुरुदेव! हमारे प्रिय माडूसिंह वैशाख शुक्ला तृतीया के शुभ दिन भागवती दीक्षा अंगीकार कर रहे है, यह जानकर हमें हार्दिक आनन्द और सन्तोष हुआ। परन्तु यह बात जानकर बड़ा खेद और आश्चर्य हुआ कि दीक्षा दीक्षार्थी की जन्मभूमि में न करके किसी और स्थान पर की जा रही है। इसी खेद को प्रकट करने के लिए हम लोग आपश्री की सेवा में उपस्थित हुए हैं और सानुरोध सविनय यह प्रार्थना भी (खड़े होकर) करते हैं कि

"करेमि[1] भंते ! समाइयं, सव्वं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि, जावज्जीवं, तिविहं तिविहेणं, मणेणं वायाए काएणं, न करेमि न कारवेमि करंतैपि अन्नं न समणुजाणामि, तस्स भंते ! पडिक्कमामि, निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ।"

यह दीक्षा पाठ पढ़ा करके चरितनायक को दीक्षित कर लिया, जैन साधु बना लिया । जिस समय हमारे चरितनायक को दीक्षित किया गया था उस समय इनकी आयु लगभग १४ वर्ष की थी । आयु अवश्य छोटी थी परन्तु शारीरिक गठन (बनावट रचना अंगों का कसाव) और गौरवर्ण की प्रौढ़ता के कारण ये युवक ही प्रतीत हो रहे थे । शुभ नाम कर्म के उदय से इनकी शरीर सम्पदा बड़ी सुन्दर और सर्वप्रिय थी । चरितनायक के शारीरिक गठन और त्याग-वैराग्य-प्रधान साधु जीवन ने सभी व्यक्तियों को आकृष्ट कर लिया था । जनता-जनार्दन में श्रद्धा ठाठें मार रही थी । यही कारण था कि उस समय प्रत्येक व्यक्ति ने यथाशक्ति धर्म की प्रभावना भी की । धर्म की प्रभावना का अर्थ है—दीक्षामहोत्सव के उपलक्ष्य में धर्माराधन का कोई न कोई व्रत अंगीकार करना और असद्वृत्तियों का परित्याग करके उनसे किनारा करना । धर्म प्रभावना-निमित्त किसी सज्जन ने जीवन भर के लिए ब्रह्मचर्य व्रत के परिपालन की प्रतिज्ञा ग्रहण की और किसी ने आजीवन कच्ची सब्जी न खाने का नियम कराया । इस प्रकार जिसकी जैसी शक्ति थी उसने उसके अनुसार धर्म-मर्यादा अंगीकार करते हुए नवदीक्षित मुनिराज के त्याग वैराग्य का हार्दिक अभिनन्दन किया ।

माडूसिंह से छगनलाल

व्यक्ति को बुलाने या पुकारने का साधन नाम कहलाता है । नाम की

---

[1] हे भगवन् ! मैं सामायिक (रागद्वेष का अभाव, या ज्ञान दर्शन चारित्र का लाभ) व्रत ग्रहण करता हूँ, सावद्य=पाप वाले व्यापारों का त्याग करता हूँ । जीवन पर्यन्त मन, वचन और शरीर इन तीन योगों से पाप कर्म न स्वयं करूँगा, न दूसरों से कराऊँगा, और न स्वयं पाप कर्म करनेवाले दूसरे व्यक्तियों का समर्थन करूँगा । भगवन् ! पूर्वकृत पाप से निवृत्त होता हूँ, स्वयं अपने हृदय में उस पाप को बुरा समझता हूँ, आपकी साक्षी से उसकी गर्हा और आत्मसाक्षी से निंदा करता हूँ, अर्थात् अपनी और आपकी साक्षी से अपने दोषों का वर्णन करता हूँ पाप करने वाले आत्मा की जो अतीत अवस्था है, उसका पूर्ण रूप से त्याग करता हूँ

रात को अन्धकार से डरकर चिल्लाने लगता हो, चूहे की आवाज से कम्पित हो जाने वाला हो, किसी ने जरा डराया, धमकाया, तत्काल हथियार डाल देने वाला हो, मुसीवत और संकट का नाम सुन कर ही जिसको पसीना छूटने लगता हों, ऐसा व्यक्ति महावीर कैसे हो सकता है ? तथापि ऐसे व्यक्ति का यदि महावीर यह नामकरण कर दिया जाए तो यह नाम गुणशून्य नाम माना जाता है। इन आँखों ने एक व्यक्ति का देखा, जिसका नाम तो भीमसेन था, किन्तु शारीरिक दृष्टि से वह इतना अधिक दुर्वल था कि क्या कहा जाए ? उसका शरीर सूखा हुआ था, अनेकों वीमारियों ने उसको घेर रक्खा था, जव चलता था तो सारा शरीर लड़खड़ाता था, ऐसे स्वास्थ्यहीन और वलविहीन व्यक्ति का 'भीमसेन' यह नाम भी दूसरे विकल्प के अन्तर्गत ही समझना चाहिये।

कुछ व्यक्ति ऐसे भी देखने में आते हैं, जिनका नाम विल्कुल साधारण और सम्मान-शून्य होता है किन्तु आचार-विचार की समुज्ज्वलता की दृष्टि से उनमें असाधारणता होती है। जनता-जनार्दन की आँखें उन्हें महान आदर और श्रद्धा से देखती हैं। जैसे, एक व्यक्ति का नाम चूहामल था। सेठ चूहामल वड़े पुञ्जीपति व्यक्ति हैं, अपने नगर के लब्धप्रतिष्ठ व्यापारी हैं वे लम्वी-चौड़ी इनकी जायदाद थी। आचार विचार की दृष्टि से समाज में इनकी प्रतिष्ठा थी, वार्तालाप में वड़े कुशल, विचक्षण, हाजिर जवाव, दीन दुःखियों के प्रतिपालक वेसहारों के सहारे, और राज्य कर्मचारियों में पूरा जोर रखते थे. वे प्रभुभक्त भी थे, अष्टमी, पक्खी को पोषध किया करते थे, बिना सामायिक किए अन्नजल ग्रहण नहीं करते थे, साधुमुनिराजों का दर्शन करना उनका प्रवचन सुनना, उनकी प्रत्येक-दृष्टि से स रसंभाल करना उनकी जीवनचर्या थी, परन्तु ऐसे सम्माननीय और आचरणसम्पन्न व्यक्ति का नाम था चूहामल। सुनकर हर व्यक्ति को हँसी छूट पड़ती थी। ऐसा साधारण नाम तीसरे विकल्प में आता है। हमारे मान्य चरितनायक श्री माडूसिंह जी का "माडू" यह नाम भी तीसरे विकल्प में ही परिगणित किया जाता है। केवल नामजगत में 'माडू विलकुल साधारण नाम समझा गया है। राम, कृष्ण, महावीर, वुद्ध और नानक आदि नामों की भांति इसमें कर्णप्रियता या कोई आध्यात्मिक ऐतिहासिकता नहीं है, जैसे राम, कृष्ण आदि नामों को सुनकर मानवहृदय में आदर और श्रद्धा अङ्गड़ाई लेने लगती है, वैसी स्थिति माडू इस नाम की नहीं है। परन्तु आचार-विचारों की गुणसम्पदा की दृष्टि से माडूसिंह महान आदरणीय और समादरणीय रहे हैं। पाठक भली-भांति जानते ही हैं कि राजस्थान प्रसिद्धगांव "शेरसिंह जी की रीयां" में, वि०

मधुर और प्यार भरा सरस इनका व्यवहार था। इसलिए ये सबको बड़े प्यारे लगते थे। जो भी इनको देखता, इनकी प्यार भरी बातें सुनता, वह बरबस इनकी ओर आकृष्ट हो जाता था। उसे ऐसा अनुभव हो रहा था कि मैं इनको देखता ही चला जाऊँ। इनसे वार्तालाप ही करता रहूँ, परिणाम-स्वरूप सबने इनको 'छगन' के रूप से निहारा और इसी नाम से पुकारा। परमश्रद्धेय श्री स्वामी रंगलाल जी महाराज की 'छगन' इस नाम की स्थापना में अपनी स्वतन्त्र दृष्टि चल रही थी। ये विचार कर रहे थे माडू जब आचार-विचार की दृष्टि से इतना असाधारण प्रमाणिक, सात्विक, आदरास्पद और समुज्ज्वल है, तो नाम की दृष्टि से यह साधारण क्यों रहे ? जैसे त्याग-वैराग्य की विशिष्ट गुण सम्पदा से यह सम्पन्न है। वैसे नाम की अपेक्षा से भी इसमें विशिष्टता और सर्वप्रियता आ जानी चाहिए। दूसरी बात, "पुत्ता य सीसा य, समं विभत्ता"[1] इस मान्यता के अनुसार पूज्य गुरुदेव चरितनायक को अपना प्रिय पुत्र ही समझते थे, ये सबसे छोटे थे। गुरुदेव की दृष्टि में नन्हें मुन्हें थे। अतएव उनको ये सबसे अधिक लाड़ले थे। यही कारण है कि इन्होंने अपने प्रिय शिष्य का 'छगन' यह नामकरण किया और इनको मुनि 'छगनलाल' इसी नाम से बुलाना आरम्भ कर दिया। गुरुदेव के अलावा अन्य जनता भी इनको इसी नाम से स्मरण करने लगी। आज भी ये यत्र, तत्र, सर्वत्र इसी नाम से प्रख्याति पा रहे हैं। अग्रिम प्रकरण में, हम भी इनको इसी नाम से स्मरण करेंगे।

जैनसाधु की विशिष्टता

साधु शब्द का अभिप्राय है—**सम्यग्दर्शनादि योगैरपवर्गं साधयतीति साधुः।** अथवा **साध्नोति स्व-पर-कार्याणीति साधुः।** अर्थात् सम्यग्दर्शन (विश्वास) आदि द्वारा जो मोक्ष की साधना करता है अथवा जो अपने और दूसरों के आत्मिक कार्यों को सिद्ध करता है उसे साधु कहते हैं। मानवी जगत में साधु भी अनेक प्रकार के होते हैं। वैदिक परम्परा और बौद्ध परम्परा में भी साधु उपलब्ध होते हैं। इन परम्पराओं के साधुओं के क्रियाकाण्ड का जब अध्ययन और चिन्तन करते हैं तो यह बिना किसी झिझक के स्वीकार करना होता है कि जैन साधु की तपःसाधना और इसका रहन-सहन कठोर, मुश्किल और समुच्च है इतना किसी अन्य साधु का नहीं। जै अहिंसा, सत्य आदि व्रतों की जो पालना करता है उसमें किसी भी

---

[1] पुत्र और शिष्य दोनों समान ही समझे जाते हैं।

मधुर और प्यार भरा सरस इनका व्यवहार था। इसलिए ये सबको बड़े प्यारे लगते थे। जो भी इनको देखता, इनकी प्यार भरी बातें सुनता, वह बरबस इनकी ओर आकृष्ट हो जाता था। उसे ऐसा अनुभव हो रहा था कि मैं इनको देखता ही चला जाऊँ। इनसे वार्तालाप ही करता रहूँ, परिणाम-स्वरूप सबने इनको 'छगन' के रूप से निहारा और इसी नाम से पुकारा। परमश्रद्धेय श्री स्वामी रंगलाल जी महाराज की 'छगन' इस नाम की स्थापना में अपनी स्वतन्त्र दृष्टि चल रही थी। ये विचार कर रहे थे माडू जब आचार-विचार की दृष्टि से इतना असाधारण प्रमाणिक, सात्विक, आदरास्पद और समुज्ज्वल है, तो नाम की दृष्टि से यह साधारण क्यों रहे ? जैसे त्याग-वैराग्य की विशिष्ट गुण सम्पदा से यह सम्पन्न है। वैसे नाम की अपेक्षा से भी इसमें विशिष्टता और सर्वप्रियता आ जानी चाहिए। दूसरी बात, "पुत्ता य सीसा य, समं विभत्ता"[1] इस मान्यता के अनुसार पूज्य गुरुदेव चरितनायक को अपना प्रिय पुत्र ही समझते थे, ये सबसे छोटे थे। गुरुदेव की दृष्टि में नन्हें मुन्हें थे। अतएव उनको ये सबसे अधिक लाड़ले थे। यही कारण है कि इन्होंने अपने प्रिय शिष्य का 'छगन' यह नामकरण किया और इनको मुनि 'छगनलाल' इसी नाम से बुलाना आरम्भ कर दिया। गुरुदेव के अलावा अन्य जनता भी इनको इसी नाम से स्मरण करने लगी। आज भी ये यत्र, तत्र, सर्वत्र इसी नाम से प्रख्याति पा रहे हैं। अग्रिम प्रकरण में, हम भी इनको इसी नाम से स्मरण करेंगे।

जैनसाधु की विशिष्टता

साधु शब्द का अभिप्राय है—**सम्यग्दर्शनादि योगैरपवर्ग साधयतीति साधुः**। अथवा **साध्नोति स्व-पर-कार्याणीति साधुः**। अर्थात् सम्यग्दर्शन (विश्वास) आदि द्वारा जो मोक्ष की साधना करता है अथवा जो अपने और दूसरों के आत्मिक कार्यों को सिद्ध करता है उसे साधु कहते हैं। मानवी जगत में साधु भी अनेक प्रकार के होते हैं। वैदिक परम्परा और बौद्ध परम्परा में भी साधु उपलब्ध होते हैं। इन परम्पराओं के साधुओं के क्रियाकाण्ड का जब अध्ययन और चिन्तन करते हैं तो यह बिना किसी झिझक के स्वीकार करना होता है कि जैन साधु की तपःसाधना और इसका रहन-सहन जितना कठोर, मुश्किल और समुच्च है इतना किसी अन्य साधु का नहीं। जैनसाधु अहिंसा, सत्य आदि व्रतों की जो पालना करता है उसमें किसी भी प्रकार की

---

[1] पुत्र और शिष्य दोनों समान ही समझे जाते हैं।

परिचय देते हैं, नाई से हजामत नहीं बनवाते, मुखवस्त्रिका (मुख पर बाँधा जाने वाला छोटा सा कपड़ा) का मुख पर सदा प्रयोग करते हैं और रजोहरण (रज-मिट्टी को हरण-साफ करने वाला ऊन का बना जैन साधु का एक उपकरण) को सदा अपने पास रखते हैं। जैसे ब्राह्मण का जनेऊ, सिक्ख का केश आदि बाह्य चिन्ह होते हैं। वैसे मुखवस्त्रिका और रजोहरण ये दोनों उपकरण भी जैन साधु के बाह्य चिन्ह होते हैं।

ऊपर की पंक्तियों में जैन साधु के नियमोपनियम का संक्षेप से परिचय कराया गया है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जैन साधु की साधना अन्य साधुओं की साधना से बहुत ऊँची और कठिन होती है। जैन साधु बनने का अर्थ है—अपनी कामनाओं के महावृक्ष को अपने हाथों से धराशायी कर देना। जैनेतर साधु रुपये रखते हैं, बड़ी-बड़ी जायदाद के मालिक हैं, रेल, मोटर आदि सभी प्रकार का उपयोग करते हैं, कच्ची सब्जी या कच्चा पानी का सेवन उनके यहाँ बिना किसी संकोच के होता है। कई जैनेतर साधु तो बच्चों के माता-पिता भी हैं। भाव यह है कि जैन धर्म के सन्त का त्याग-वैराग्य कुछ निराला ही होता है। जैनेतर साधु की साधना उसके समकक्ष कैसे हो सकती है? कहाँ सोना, कहाँ लोहा। दोनों का अपना-अपना महत्व अवश्य है, परन्तु स्वर्ण के मूल्य के आगे लोहे का मूल्य नगण्य ही होता है। जैन साधु की साधना स्वर्ण-सम और अन्य साधुओं की साधना लोहे के समान यदि कहें तो कोई अतिशयोक्ति प्रतीत नहीं होती।

जैनाचार्यों ने जैन साधुओं के लिए पाँच महाव्रतों का विधान किया है। वे पाँच महाव्रत कौन से हैं? यह भी समझ लेना आवश्यक है। पाँच महाव्रतों का संक्षिप्त सार इस प्रकार है—

(१) **अहिंसा महाव्रत**—दूसरों को पीड़ा पहुँचाना हिंसा है। हिंसा का परित्याग करना अहिंसा है। मन, वचन और शरीर से किसी भी प्राणी की न स्वयं हिंसा करना, न दूसरों से करवाना तथा न हिंसा करने वालों का अनुमोदन (समर्थन) करना अहिंसा महाव्रत कहलाता है। अहिंसा-महाव्रत में छोटी-बड़ी सभी हिंसाएँ परित्याज्य होती हैं। दीन-दुःखी जीवों की स्वयं रक्षा करना, दूसरों से रक्षा करवाना एवं जीवों की रक्षा करने वाले व्यक्तियों का समर्थन विशेष रूप से संग्राह्य होता है। अहिंसा महाव्रत में परदया जीवरक्षा तथा दूसरों के साथ की जाने वाली सहानुभूति के दीपक सदा जगमगाते रहते हैं।

(३) **अचौर्य्य-महाव्रत**—मालिक की आज्ञा के बिना, सचित्त, अचित्त, छोटी या बड़ी किसी भी वस्तु का परिग्रहण करना चोरी है, चोरी का परित्याग कर देना, मालिक की आज्ञा के बिना किसी भी वस्तु का ग्रहण न करना अचौर्य्य है। मन, वचन और शरीर से न स्वयं चोरी करना, न किसी दूसरे से चोरी करवाना और न ही चोरी करने वाले किसी व्यक्ति का समर्थन करना अचौर्य-महाव्रत माना गया है। इस महाव्रत में सूक्ष्म या स्थूल चोरी के लिए भी कोई अवकाश नहीं है। चोरी करने के लिए जितने भी रूप संसार में उपलब्ध हो सकते हैं, उन सबका परित्याग करना तथा मालिक से आज्ञा लेकर वस्तु का संग्रहण करना दूसरों को ऐसी प्रेरणा प्रदान करना तथा जो चौर्य्य कर्म से दूर रहते हैं उनका मन, वचन काया से समर्थन करना अचौर्य-महाव्रत की अपनी वास्तविक रूपरेखा होती है।

(४) **ब्रह्मचर्य-महाव्रत**—मैथुवासना से दूर रहना, सदाचार की पावन भावनाओं से सदा भावित रहना ब्रह्मचर्य है। मन, वचन और शरीर से मैथुन, व्यभिचार का सेवन न करना, न दूसरों से करवाना है और न ही मैथुन का सेवन करने वाले व्यक्ति का समर्थन करना ब्रह्मचर्य महाव्रत होता है। इस महाव्रत की पवित्र ज्योति से सदा ज्योतिर्मान रहने वाला व्यक्ति अपने से वयोवद्ध नारी को माता के समान, बराबर की आयु वाली देवी को बहिन के तुल्य और अपने से स्वल्प आयु वाली बालिका को पुत्री के सदृश मानता है। दिवाकर के ज्योति के निकट जैसे अन्धकार कभी नहीं आने पाता वैसे ब्रह्मचर्य-महाव्रत-सूर्य के सन्मुख काम-विकारों का अन्धकार कभी अवस्थित नहीं रह सकता। ब्रह्मचर्य महाव्रत का परिपालक व्यक्ति स्वयं

ब्रह्मचर्य का पालन करता है, दूसरों से करवाता है और जो लोग ब्रह्मचर्य के आलोक से आलोकित रहते हैं उनकी महिमा के सदा गीत गाता रहता है। भगवान महावीर ने सत्य की भाँति ब्रह्मचर्य को भी भगवतस्वरूप बतला कर उसकी उपादेयता, हितकारिता तथा कल्याणकारिता को यत्र, तत्र, सर्वत्र उद्घोषित करने का अनुग्रह किया है।

(५) **अपरिग्रह महाव्रत**—जगती के सचित्त, अचित्त, छोटे, बड़े पदार्थों से आसक्ति भाव रखना परिग्रह है। आसक्ति-भाव के परित्याग कर देने का नाम अपरिग्रह है। मन, वचन और शरीर से परिग्रह न स्वयं रखना, न किसी को रखने देना और न ही परिग्रह रखने वाले का समर्थन करना अपरिग्रह होता है। इस महाव्रत की छाया तले जीवन व्यतीत करने वाला व्यक्ति रुपया, पैसा, सोना, चाँदी, मकान, दुकान आदि किसी भी पदार्थ से अपना सम्बन्ध नहीं रखता अधिक क्या एक नए पैसे के टिकिट को भी अपने पास नहीं रख सकता। यह जरजमीन का सर्वथा त्यागी होता है, अनासक्तिभाव के पावन और मङ्गलमय उपवन में प्रतिक्षण विहरण करना उसके जीवन की दिनचर्या होती है।

अहिंसा आदि महाव्रतों की परिपालना करना जैन साधु के लिए परमावश्यक होता है। जैन साधु मन, वचन और काया से अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की पावन ज्योति से सदा ज्योतित रहते हैं, हिंसा, असत्य, चौर्य्य, मैथुन और परिग्रह की दलदल से अपने को सदा दूर रखते हैं। इससे यह स्पष्ट ही जाना जा सकता है कि जैन साधु का आध्यात्मिक जीवन त्याग, वैराग्य, तप, संयम तथा सहिष्णुता का इतना कठोर और व्यवस्थित जीवन है कि आज उसकी समानता करने वाला विश्व में जैनेतर परम्परा का कोई भी दूसरा साधु उपलब्ध नहीं होता। साधनागत इसी कठोरता के कारण आज जैन साधु बहुत थोड़ी संख्या में दृष्टिगोचर होते हैं। जैसे जैनेतर साधु लाखों की संख्या में उपलब्ध होते हैं। वैसी स्थिति जैन साधुओं की नहीं है। मुश्किल से समूचे भारत में जैन साधु चार और पाँच हजार के लगभग मिलेंगे। प्रश्न हो सकता है कि जैन साधु इतनी स्वल्प संख्या में क्यों उपलब्ध होते हैं? उत्तर स्पष्ट है कि जैन साधु की संयमसाधना ही इतनी अधिक व्यवस्थित और कठोर है कि जिससे भयभीत होकर लोग इससे दूर ही रहते है, सिंहहृदय कुछ विरले ही व्यक्ति होते हैं जो संयमसाधना की इस कठोरता को अपनाने का साहस करते हैं।

हमारे महामान्य चरितनायक श्री छगनलालजी महाराज जैन साधुओं के

सम्पर्क में आने से पहले भी साधु-जीवन की महानता से भलीभाँति परिचित थे। पपिलाद गाँव में होने वाले सत्संगों में कभी-कभी जैन तथा जैनेतर व्याख्याता लोग साधु-जीवन की महानता सुनाया करते थे। बहुत बार इन्होंने निम्नोक्त बातें सुन रक्खी थीं—

निम्ममो निरहंकारो, निस्संगो चत्तगारवो।
समो य सव्व भूएसु, तवेसु थावरेसु य॥
लाभालाभे सुहे दुक्खे, जीविए मरणे तहा।
समो निंदापसंसासु, समो माणावमाणओ॥
अणिस्सिओ इहे लोए, परलोए अणिस्सिए।
वासीचंदणकप्पो अ, असणे अणसणे तहा॥

—उत्तराध्ययन अ० १६/८६, ६०, ६१

—साधु-जीवन ममतारहित, निरहंकार, निःसंग, नम्र और प्राणिमात्र पर समभाव वाला होना चाहिए। लाभ हो या हानि, सुख हो या दुःख, जीवन हो या मरण, निन्दा हो या प्रशंसा, मान हो या अपमान साधु को सर्वत्र समभावपूर्वक रहना है। सच्चा साधु न इस लोक में आसक्ति रखता है और न परलोक में, यदि कोई विरोधी उसको तेज कुल्हाड़े से काटता है या कोई भक्तजन चन्दन का लेप करता है तो सच्चा साधु दोनों पर एक जैसा भाव रखता है। भला वह साधु ही क्या जो न भूख पर नियंत्रण रखता है और न भोजन पर ? वस्तुतः साधुता का आदर्श रागद्वेष की लहरों से सुरक्षित रहने में ही जीवित रह सकता है।

"जीवियास मरण-भय-विप्पमुक्का"[1]

—साधु जीने की आशा और मरने के भय से विप्रमुक्त होते हैं—

यथा चित्तं तथा वाचो, यथा वाचस्तथा क्रिया।
चित्ते वाचि क्रियायां च, साधूनामेकरूपता॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार

—साधुओं का जैसा मन होता है, वैसा ही वे वचन बोलते हैं और वचन के अनुसार ही उनकी क्रिया होती है। इस तरह साधुओं के मन, वचन और क्रिया में एकरूपता होती है।

---

[1] देखो—औपपातिक सूत्र समवसरण अधिकार।

युगान्ते प्रचलेद् मेरुः, कल्पान्ते सप्तसागराः ।
साधवः प्रतिपन्नार्थाद्, न चलन्ति कदाचन ।।

—चाणक्य १३/१६

—युग के अन्त में मेरु और कल्प के अन्त में सातों समुद्र चले जाते हैं किन्तु सन्तपुरुष स्वीकृत-सिद्धान्त से कभी विचलित नहीं होते ।

तप्यते लोकतापेन, साधवः प्रायशो जनाः ।
परमाराधनं हृद्धि, पुरुषस्याखिलात्मनः ।।

—श्रीमद्भागवत ८-७/७४

—साधु-जन प्रायः संसार के ताप से संतप्त-खिन्न रहते हैं, उनके लिए यही विश्वपावन भगवान की उत्कृष्ट आराधना है ।

या निशा सर्वभूतानां, तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि, सा निशा पश्यतो मुनेः ।।

—श्रीमद्भगवद् गीता २/६९

—जो आत्मविषयक बुद्धि संसारी जीवों के लिए रात है, उसमें संयमी साधु जागता है, आत्मसाक्षात्कार करता है, शब्दादि विषयों में लगी हुई जिस बुद्धि में संसारी जीव जागते हैं, सावधान रहते हैं, वह आत्मार्थी मुनि के लिए रात है ।

साधवो हृदयं मह्यं, साधूनां हृदयं त्वहम् ।
मदन्यत्ते न जानन्ति, नाहं तेभ्यो मनागपि ।।

—श्रीमद्भागवद् ९-४/६८

—भगवान कहते है कि साधु मेरे हृदय में है और मैं उनका हृदय हूँ, वे मेरे सिवाय किसी और को नहीं जानते, और मैं उनके सिवा किसी को नहीं जानता ।

पूजा मान बड़ाइयाँ, आदर माँगे मन ।
राम गहे सब परिहरे, सोही साधुजन ।।

—दादूवाणी

गांठ दाम बाँधे नहिं, नहिं नारी से नेह ।
कहे कबीर वा साधु की, हम चरणन की खेह ।।

कहीं से देखो वहीं से वह सुखों की वर्षा करती हुई दृष्टिगोचर होती है। अधिक क्या कहें जो व्यक्ति साधुता की दिव्य और भव्य भावना से सदा भावित रहता है, उसे जो विलक्षण आनन्दानुभूति होती है उसे तो स्वर्गलोक का इन्द्र भी अधिगत नहीं कर सकता, सम्भव है इसीलिए प्रशमरति-प्रकरण में कहा गया है—

नैवास्ति राज-राजस्य यत्सुखं, नैव देवराजस्य।
तत्सुखमिहैव साधोर्लोक व्यापार-रहितस्य ॥

—राजाधिराज बनने या देवराज बनने में भी वह सुख नहीं है, इसी जगत में जो सुख लोकव्यापार से रहित साधु को प्राप्त होता है।

शास्त्रीय-ज्ञान के दिव्य मोती

ज्ञान का अर्थ है—**ज्ञायतेऽनेति ज्ञानम्**। अर्थात्—जिसके द्वारा जीव वस्तु तत्व को जानने का व्यापार करता है उसको ज्ञान कहते है। ज्ञान, बोध, जानकारी आदि सभी शब्द पर्यायवाचक माने जाते हैं। जीवन-जगत में ज्ञान का अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है। यह जीवन के आन्तरिक अन्धकार का नाश करता है व्यक्ति में अपने हित अहित तथा हानि-लाभ को समझने की विशिष्ट कला ज्ञान के माध्यम से ही अधिगत होती है। ज्ञान की महिमा अनुपम है। ज्ञान महिमा को लेकर भारत के मनीषी महापुरुषों ने बहुत कुछ लिखा है। उदाहरणार्थ कुछ उद्धरण प्रस्तुत करता हूँ—

जहा सुई ससुत्ता, पडिया वि न विणस्सइ।
एवं जीवे ससुत्ते, संसारे न विणस्सइ ॥

—उत्तराध्ययन अ० २६/५६

—जैसे धागा पिरोई हुई सुई गिर जाने पर नष्ट नहीं होती वैसे ही ज्ञान रूप सूत्र में पिरोई हुई आत्मा संसार में नष्ट-भ्रष्ट नहीं होती।

"पढमं नाणं तओ दया"

—दशवैकालिक अ० ४/१०

—पहले ज्ञान होता है और उसके अनन्तर दया की जाती है।

"नाणेण विना न हुंति चरण-गुणा"

—उत्तरा० अ० २८/३

—ज्ञान के विना चारित्र-संयम का पालन नहीं हो सकता।

"णाणं पयासगं"

—आवश्यकनिर्युक्ति १०३

—ज्ञान प्रकाशक है प्रकाश करने वाला है।

"णाणं णरस्स सारो"

—दर्शनपाहुड ३१

—ज्ञान मनुष्य जीवन का सार होता है।

"ज्ञानमेव शक्तिः"

—सुभाषितरत्नखण्डमञ्जूषा

—ज्ञान ही सच्ची शक्ति है।

"ज्ञानं जगल्लोचनम्"

—सूक्त मुक्तावली

—ज्ञान दुनिया की आँख है।

"सुयं तइयं चक्खू"

—बृहत्कल्पभाष्य १/२

—ज्ञान तीसरा नेत्र है।

"ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिः"

—शुक्लयजुर्वेद १३/४८

—ब्रह्म-अर्थात् ज्ञान का प्रकाश सूर्य के समान है।

"नास्ति ज्ञानात् परं सुखम्"

—चाणक्यनीति

—ज्ञान से बढ़कर कोई सुख नहीं है।

दानेन पाणिर्न तु कङ्कणेन, स्नानेन शुद्धिर्न तु चन्दनेन।
मानेन तृप्तिर्न तु भोजनेन, ज्ञानेनमुक्तिर्न तु मण्डनेन॥

—चाणक्यनीति १७/१२

—जैसे हाथ की शोभा दान देने से है कंकण पहनने से नहीं, शरीर की शुद्धि स्नान से है चन्दन के लेप से नहीं, मन की तृप्ति सम्मान से है, भोजन से नहीं। उसी प्रकार मुक्ति ज्ञान से मिलती है, बाह्य शृंगार से नहीं।

नहि ज्ञानेन सदृशं, पवित्रमिह विद्यते ।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः, कालेनात्मनि विन्दति ।।

—श्रीमद्भगवद् गीता अ०/३८

—इस संसार में जीवन को पवित्र वनाने वाले ज्ञान से बढ़कर अन्य कोई साधन नहीं है ।

अपि चेदसि पापेभ्यः, सर्वेभ्यः पापकृत्तमः ।
सर्वंज्ञानप्लवेनैव, वृजिनं संतरिष्यति ।।

—श्रीमद्भगवद् गीता अ० ४/३६

—यदि तू अन्य पापियों से भी अधिक पाप करने वाला है तो भी तू ज्ञानरूप नौका द्वारा निःसन्देह सम्पूर्ण पाप समुद्र से भली-भाँति तर जाएगा ।

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन !
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि, भस्मसात् कुरुते तथा ।।

—श्रीमद्भगवद् गीता अ० ४/३७

—हे अर्जुन ! जैसे प्रज्वलित अग्नि इन्धनों को भस्ममय वना देती है वैसे ज्ञानरूप अग्नि सम्पूर्ण कर्मों को भस्मसात् कर डालती है ।

जैनदर्शन **"उपयोगो लक्षणम्"**[1] यह कह कर ज्ञान को आत्मा का विशिष्ट गुण मानता है । जैसे प्रकाश सूर्य का गुण होता है वैसे ज्ञान आत्मा का गुण स्वीकार किया गया है । संसार की कोई शक्ति ज्ञान को आत्मा से पृथक् नहीं कर सकती, ये दोनों सदा नित्य सम्वन्ध से सम्वन्धित रहते हैं । इसके अलावा, ज्ञान मोक्ष प्राप्ति का सोपान है, मानव का सुलक्षण है जिस विनय को धर्म का मूल साधु जीवन का प्राण कहा जाता है उस विनय का यह दाता है, ज्ञान-हीन मनुष्य नेत्र-विहीन मनुष्य के तुल्य होता है, सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन और सम्यक् चारित्र रूप रत्नत्रय में इसका स्थान सर्वप्रथम है । चोर इसका हरण नहीं कर सकता, राजा भाई उसे वांटने का आग्रह नहीं कर सकते, ना हीं यह वोझरूप है, व्यय करने पर इसमें सदा वृद्धि ही होती है, अतः विद्या=ज्ञान का धन सव धनों में शिरोमणि है ।[2] धर्म, अधर्म, शुभ, अशुभ, हेय = उपादेय का विवेक भी मनुष्य को ज्ञान के वल पर ही हुआ करता है ।

---

[1] उपयोग=ज्ञान जीव का लक्षण=स्वरूप होता है ।

—तत्वार्थ

[2] न चोरहार्यं न च राज्यहार्यं, न भ्रातृभाज्यं न च भारः ।
व्यये कृते वर्धते एव नित्यं, विद्याधनं सर्व धनप्रधानम् ।

परम-श्रद्धेय महामुनि श्री स्वामी रंगलाल जी महाराज ज्ञान की उक्त उपादेयता और उपयोगिता को भली-भाँति समझते थे और इसके साथ-साथ यह भी अनुभव कर रहे थे कि नवदीक्षित मुनि छगनलाल एक परिश्रमी, विनयवान, गुरुभक्त युवक है। सामुद्रिकशास्त्र के अनुसार इसके शारीरिक चिन्ह अभिव्यञ्जित कर रहे हैं कि यह सन्त बड़ा होना होनहार है, आचार-विचार की समुज्ज्वलता की दृष्टि से सर्वत्र सम्मान प्राप्त करेगा, विद्या क्षेत्र में भी अच्छी उन्नति एवं प्रगति करेगा, व्याख्यान-कला की विलक्षणता के कारण विरोधी भी इसके सन्मुख नतमस्तक हो जाएगा इस तरह इसका व्यक्तित्व अध्यात्म जगत में एक दिन दिवाकर की भाँति प्रकाशमान होने वाला दिखाई दे रहा है। इसलिए इसको पढ़ाना लिखाना आवश्यक है। मुनि छगनलाल त्याग-वैराग्य-प्रधान आचार-विचार की सम्पदा से जैसे सम्पन्न है वैसे इसे यदि शास्त्रीय ज्ञान के दिव्य मोतियों से मालामाल बना दिया जाए तो सोने में सुहागेवाली बात चरितार्थ हो सकती है। इसके अतिरिक्त, शास्त्रीय मान्यता के अनुसार विद्यार्थी जीवन में जिन-जिन विशेपताओं का होना आवश्यक होता है उन-उन का मुनि छगनलाल जी में पूर्णतया अस्तित्व उपलब्ध हो रहा है।

शास्त्रकार कहते हैं कि १—विद्यार्थी विनयवान हो, अभिमान से रहित हो दूसरों का आदर करने वाला हो २—दूध, माखन आदि विगयों (विकारोत्पादक खाद्य पदार्थों) में आसक्ति रखने वाला न हो, ३—शान्तिप्रिय हो जोश, आवेश की प्रकृति वाला न हो तथा ४—सरल हो, छल-कपट से दूर रहने वाला हो, ये सभी बातें मुनि छगनलाल जी में मिल ही रही हैं। मैं प्रतिदिन देखता हूँ कि गुरुजनों और वृद्धजनों के प्रति इसके हृदय में पूर्ण आदर भाव है, अपने से बड़े दीक्षित सन्तों को तथा गुरुओं को देखते ही खड़ा हो जाता है आसन छोड़कर, करबद्ध और नतमस्तक होकर, उनका स्वागत करता है, उनकी ओर से इसको जो आदेश मिलता है तत्काल उसकी परिपालना करता है, गुरुसेवा को प्रभु सेवा मानकर चल रहा है। खाने-पीने का भी इसको कोई शौक नहीं है कुछ साधुओं को चटपटी और मिर्च मसालेदार वस्तुओं को ग्रहण करने की बड़ी रुचि होती है परन्तु यह चटपटे पदार्थों से सदा दूर भागता है। दूध, दही आदि विगय पदार्थों का भी दैनिक प्रयोग नहीं करता। यदि उनका कभी प्रयोग भी करता है तो वह भी बहुत कम मात्रा में, इसे रूखा सूखा जो भी भोजन दे दिया जाता है यह उसमें ही सन्तुष्ट रहता है। रसना-लोलुपता का तो इसमें चिन्ह भी नहीं है। सहिष्णुता भी

इसमें पर्याप्त मात्रा में दिखाई दे रही है। इसको कभी व्याकुल, खिन्न, उद्विग्न या उदासीन नहीं देखा, यह सदा प्रसन्न, प्रमुदित, मस्त और शान्त रहता है। साधु-जीवन के कठिन प्रसंग उपस्थित होने पर भी यह कभी हतोत्साह नहीं होता। यदि किसी समय इसे फटकार या डाँट भी दिया जाए तव आवेश में नहीं आता प्रत्युत मुसकराता ही रहता है। युवावस्था होने पर भी इसका स्वभाव वृद्धों जैसा गम्भीर और सहिष्णु है। इस गुणसम्पदा का भण्डार होने पर भी इसमें एक और वहुत बड़ी विशेषता दृष्टिगोचर हो रही है, वह है—सरलता। यह प्रकृति से पूर्णतया सरल है। छल, कपट, फरेव, वक्रवृत्ति और धोखा देना तो यह जानता ही नहीं है, इसके जो कुछ अन्दर है, वही इसके वाहिर है कहना कुछ और करना कुछ, ऐसी कोई बात इसमें दिखाई नहीं देती। सजावट और वनावट से भी यह सदा दूर रहता है, यदि कोई इससे भूल हो जाती है तो उसे कभी छुपाता नहीं है, ज्यों की त्यों वह कह देता है। विल्कुल वच्चों जैसी सरलता दृष्टिगोचर हो रही है। इस तरह शास्त्रोक्त सभी छात्र-गुण छगन मुनि में उपलब्ध हो रहे हैं, फिर क्यों न इसको अधिकाधिक पढ़ाया जाए ?

हमारे मान्य चरितनायक श्री छगनलाल जी महाराज वडे प्रतिभाशाली और मेधावी महापुरुष थे, इन की स्मरणशक्ति इतनी विलक्षण और कुशाग्र थी कि वीसियों श्लोक प्रतिदिन स्मरण कर लेते थे, इनकी वौद्धिक क्षमता को देखकर ऐसा लगता था कि औत्पातिकी बुद्धि इनके जीवन में साकार रूप धारण कर रही थी, जैन शास्त्रों की मान्यता के अनुसार बुद्धि—१—औत्पातकी, २—वैनयिकी, ३—कर्मजा और ४—पारिणामिकी इन भेदों से चार प्रकार की होती है। विना कहे सुने और विना सोचे हुए पदार्थों को सहसा ग्रहण करके कार्य को सिद्ध करने वाली बुद्धि औत्पातिकी बुद्धि कहलाती है। सन्तजनों, गुरुजनों और वृद्धजनों की विनीतता, सेवा-शुश्रुषा और भक्ति से उपलब्ध होने वाली बुद्धि वैनयिकी वुद्धि मानी जाती है। कर्म अर्थात् सतत-निरन्तर के अभ्यास और विचार-चिन्तन से विस्तार को प्राप्त होने वाली बुद्धि कर्मजा कही जाती है। अति दीर्घकाल तक पूर्वापर पदार्थों को देखने आदि से उत्पन्न होने वाला आत्मा का जो परिणाम (अवस्था) है उस से प्रकट होनेवाली जो वुद्धि है, उसे पारिणामिकी बुद्धि कहते हैं। श्री नन्दीसूत्र में इन बुद्धियों की अर्थ विचारणा सुन्दर-सुन्दर उदाहरणों के साथ वड़े विस्तार से उपन्यस्त की गई है। हमारे आदरणीय चरितनायक श्री छगनलाल जी महाराज की वौद्धिक शक्ति इतनी अधिक विलक्षण थी कि देखने वाला आश्चर्यचकित हुए विना नहीं रहता था, ये अपने अध्यापक से जिस

पाठ को ये सुनते, पढ़ते तत्काल उसे याद कर लेते थे और अपने पाठ्यविषय में ऐसी-ऐसी तर्क-संगत तथा शास्त्रानुमोदित आशंकाएँ उठाया करते थे कि कई वार तो अध्यापक को भी मौन साधना पड़ता था, अध्यापक महानुभाव इनकी स्मरण-शक्ति तथा तर्कणाशक्ति की प्रकर्षता देखकर अत्यधिक विस्मित थे और वरवस उनके मुख से यही आवाज निकला करती थी कि मुनि छगनलाल जी वडे बुद्धिशाली और तार्किक हैं, इनके जीवन में औत्पातिकी बुद्धि साकार होकर नृत्य करती सी दृष्टिगोचर हो रही है।

जैनशास्त्रों का विश्वास है कि जैन साधु को अधिक से अधिक लोक-भापाओं का परिज्ञान प्राप्त करना चाहिये। कारण स्पष्ट है, जैन सन्त का एक घुमक्कड़ जीवन है, इसे अपना अधिक समय यत्र, तत्र, सर्वत्र परिभ्रमण करते हुए आत्मोत्थान और जनकल्याण के लिए लगाना होता है। केवल वर्पाकाल के सावन, भाद्रपद, आश्विन और कार्तिक इन चार महीनों में ही एक स्थान पर ठहर कर अहिंसा-सत्य का अमृत घर-घर बाँटना होता है, इसके अतिरिक्त मार्गशीप, पौप, माघ, फाल्गुण, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ और आपाढ़ इन आठ महीनों में विना किसी कारण के सर्वत्र विहरण करना पड़ता है, सम्यग्ज्ञान, दर्शन तथा चारित्रकी पावन ज्योति का सर्वत्र प्रसार करना होता है इससे स्पष्टतया जाना जा सकता है कि जैन साधु के लिए ठहरने की अपेक्षा भ्रमण करने का अधिक अवसर प्राप्त होता है, अतः यदि यह सभी प्रान्तीय भापाओं का जानकार होगा, तभी वहाँ की भापा के द्वारा जनता-जनार्दन की अधिकाधिक सेवा कर सकेगा, धर्म का पावन अमृत वितरित करके जन-गण का मार्गदर्शन करता हुआ उसका उत्थान एवं कल्याण करने में सफल हो सकेगा। कौन नहीं जानता कि यदि कोई साधु किसी अँग्रेज को धर्म के गम्भीर तत्व से अवगत कराना चाहता है तो उसका अंग्रेजी भापा का जानकार होना परमावश्यक है, अंग्रेजी भापा से अनभिज्ञ साधु आंग्ल-भापा-भापी-व्यक्ति का मार्गदर्शन कर भी कैसे सकता है ? अत. देश, प्रदेश तथा विदेश में अहिंसा, सत्य का कल्याणकारी प्रकाश प्रस्तारित करने की कामना रखने वाले साधक वर्ग को देश-विदेश की भापाओं की जानकारी होनी ही चाहिए। इस सत्य को हमारे चरितनायक के परम समादरणीय गुरुदेव श्री स्वामी रंगलाल जी महाराज खूब समझते थे इसीलिए उन्होंने अपने प्रिय शिष्य श्री छगनलाल जी महाराज को संस्कृत-प्राकृत के अलावा, हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी, आदि लोक भापाओं का यथेष्ट अध्ययन कराया। हमारे चरितनायक जी ने लोकभापाओं का परिज्ञान प्राप्त करने

के लिए पूर्णतल्लीनता से काम लिया। यही कारण है कि जिस किसी को इनके पावन चरणों में बैठने का अवसर मिला है, वह, अच्छी तरह जानता है कि महाराज श्री जी संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं के पढ़ने लिखने और बोलने में इतने अधिक दक्ष और अभ्यस्त होगए थे कि ये सभी भाषाएँ मातृभाषा की भाँति इन की रसना पर अपना स्थान बना रही थी।

हमारे वन्दनीय चरितनायक श्री छगनलाल जी महाराज ने अपना विद्याभ्यास जैनशास्त्रों तक ही सीमित नहीं रक्खा। प्रत्युत जैनशास्त्रों के साथ-साथ इन्होंने वैदिक परम्परा के भगवद्गीता, भागवत और पुराण आदि ग्रन्थों का भी परिशीलन करना आरम्भ कर दिया। साम्प्रदायिकता की भावना से ऊपर उठकर जो साधक समन्वय के महापथ पर चलना चाहता हो उसे अपनी दृष्टि उदार और विशाल बनाकर ही चलना होता है। ऐसा व्यक्ति जैन, बौद्ध और वैदिक इन सभी धर्म परम्पराओं के ग्रन्थों, शास्त्रों को आदर और समादर की आँखों से देखता है। घृणा, द्वेष, नफरत उसे किसी से नहीं होती। जीवन निर्माण, जीवनोत्थान तथा जीवन कल्याण का वस्तुतत्त्व जहाँ कहीं से भी उसे सम्प्राप्त होता है वहीं पर उसका वह हार्दिक स्वागत करता है। जीवनाङ्गी बनाकर उससे अपने भविष्य को समुज्ज्वल बनाने का बुद्धिशुद्ध प्रयास करता है। वह यह भी खूब समझता है कि आत्मसाधना के मार्ग भले ही पृथक्-पृथक् हों, परन्तु ध्येय और लक्ष्य तो सबका एक ही होता है। समस्त अध्यात्म साधनाओं का उद्देश्य परमात्मपद की प्राप्ति ही है, दुःख का नाश करना और शान्ति का लाभ उठाना ही सभी का लक्ष्य होता है। समन्वयप्रिय व्यक्तियों का यह भी अटल विश्वास होता है कि कुछ एक सैद्धान्तिक मान्यताओं में भिन्नता होने पर भी आचार-विचार की समुज्ज्वलता की दृष्टि से सभी धर्मशास्त्रों में एकता और समता पाई जाती है। सभी परम्परा के धर्मशास्त्र हिंसा, झूठ, चौर्य्य, वासना और लोभ आदि दुर्गुणों के आसेवन को दुःखान्त और हानिकारक बतलाते हैं। काम, क्रोध आदि दूषित वृत्तियों का किसी धर्मशास्त्र ने समर्थन या अनुमोदन नहीं किया। इसीलिए विवेकशील व्यक्ति पूर्ण औदार्य्य के साथ अपने और पराए सभी धर्म-ग्रन्थों का खुशी के साथ परिशीलन करते हैं। हमारे मान्य चरितनायक श्री छगनलाल जी महाराज तो आरम्भ से ही बड़े उदार, सभी धर्मों की परम्पराओं, मर्यादाओं के जिज्ञासु और जीवन-निर्माण की सत्सामग्री के श्रद्धालु महापुरुष रहे हैं। अतएव इन्होंने जहाँ जैन परम्परा के आगमों, ग्रन्थों और शास्त्रों का परिशीलन किया, वहाँ इन्होंने वैदिक और बौद्ध परम्पराओं के ग्रन्थों का भी

अध्ययन किया। इसके अतिरिक्त, हमारे चरितनायक के विद्याभ्यास के पीछे किसी से शास्त्रार्थ या वाद-विवाद करने की भावना नहीं थी, ये तो जैन तथा जैनेतर धर्मशास्त्र और न्यायशास्त्र के ज्ञानप्रकाश में तत्त्वनिर्माण करने की ही भावना रख रहे थे।

हमारे चरितनायक श्री छगनलाल जी महाराज में एक और विशेषता अवस्थित थी, जो आमतौर पर अन्य साधु-मुनिराजों में कम दिखाई देती है। इनकी सेवा में जिस परम्परा का जिज्ञासु उपस्थित होता था ये उसी परम्परा के मान्य शास्त्रों द्वारा उसका समाधान किया करते थे। जिज्ञासु की अपनी बौद्धिक पृष्ठ-भूमि में प्रश्न का समाधान मिल जाने पर उसका सन्तुष्ट और तृप्त होना स्वाभाविक ही था। इनके चरणों में आने वाला जिज्ञासु यह अनुभव करने लगता था कि भले ही ये महापुरुष जैनपरम्परा को मानने वाले हैं तथापि मैंने इन चरणों में बैठकर कुछ पाया है। ज्ञान प्रकाश अधिगत करने के साथ-साथ मुझे यहाँ से अपूर्व शान्ति सम्प्राप्त हुई है। इस तरह हमारे चरितनायक शास्त्रीय ज्ञान के दिव्य मोतियों को खुले दिल से बाँटा करते थे। बिना किसी साम्प्रदायिकता के सभी जिज्ञासुओं की जिज्ञासा को शान्त करके उन्हें हार्दिक सन्तोष प्रदान किया करते थे। परिणाम स्वरूप चरितनायक श्री का व्यक्तित्व सर्वप्रिय बन गया था। जैन-जैनेतर शास्त्रों के लगातार के अध्ययन तथा आगन्तुक लोगों के साथ शास्त्रीय ज्ञान चर्चा होते रहने से जैनजगत तथा जैनेतर जगत इनको एक सुलझे हुए विद्वान और विचारक के रूप में देखने लगा था। धीरे-धीरे सर्वत्र ये चलते-फिरते एक महाविद्यालय कहे जाने लगे थे।

हमारे मान्य चरितनायक केवल विद्या के क्षेत्र में ही आगे नहीं बढ़ रहे थे किन्तु साथ-साथ व्याख्यान क्षेत्र में भी प्रगति करते जा रहे थे। इनके व्याख्यान में एक विशिष्ट प्रकार का आकर्षण सम्प्राप्त होता था। शास्त्रीय रहस्यों की गुत्थियाँ ऐसे निराले ढंग से सुलझाते थे कि बच्चा भी उसे हृदयंगम कर लेता था। वक्तृत्वकला भी पिछले किसी जन्म-जन्मान्तर के सौभाग्य से हस्तगत हुआ करती है। प्रत्येक व्यक्ति को इसका सौभाग्य उपलब्ध नहीं होने पाता। व्याख्यान-कला के मर्मज्ञ लोगों की आस्था है कि वक्ता में साहस, निर्भीकता, अनुभव तथा शास्त्रीय ज्ञान का आधिक्य होना परम आवश्यक है। इनमें भी साहस और निर्भयता की सर्वाधिक जरूरत होती है। मनोवैज्ञानिक का एक नियम है वक्ता के मन में यदि साहस हो, भीत-वृत्ति न हो तथा साथ में सर्वतोमुखी प्रतिभा का सुयोग हो तो साधारण पढ़ा लिखा

व्यक्ति भी जनता को मन्त्र-मुग्ध बना डालता है। अपने लच्छेदार वक्तव्य द्वारा उस पर छा जाता है। उसके पास जो स्वल्प ज्ञान होता है, साहस के अतिरेक के कारण उसे भी वह इतने सुन्दर ढंग से प्रतिपादित करता है कि श्रोतागण को वह व्याख्यान वाचस्पति के रूप में दिखाई देता है। यदि साथ में समय-सूचकता और संगीत की पुट हो फिर तो कहना ही क्या है? ऐसा व्याख्याता समय बांध देता है। इसके विपरीत, यदि वक्ता अपने और दूसरों के धर्म-ग्रन्थों के गूढ़ रहस्यों, मन्तव्यों और विश्वासों से पूर्णतया परिचित भी हो। उच्च कोटि का जाना-माना लब्धप्रतिष्ठ विद्वान भी हो, बहुत ऊँची उड़ान लगाने वाला और अपने प्रतिपाद्य विषय की बहुत गहराई में पहुँच जाने वाला भी हो किन्तु यदि उसमें साहस नहीं, आत्मबल नहीं, निर्भीकता का अभाव हो तो वह व्याख्यान क्षेत्र में पिछड़ जाता है, असफल रहता है, ऐसा भीत-वृत्ति का व्याख्याता लोगों की भीड़ देखकर घबरा उठता है। उसका कलेजा वायु से कम्पित वृक्ष-पत्र की तरह काँपने लगता है। अधिक क्या, अपना कथनीय प्रसंग भी वह भूल बैठता है। हाँ, यदि वक्ता निर्भीक साहसी, समय सूचक, मधुर गायक और विद्वान अपनी और दूसरी धर्म-परम्पराओं का विशिष्ट ज्ञाता भी हो फिर तो वह व्याख्यान-सभा का शृंगार हो जाता है तथा वहाँ पर सोने में सुहागे वाली बात चरितार्थ होती दिखाई देती है। सौभाग्य से हमारे आदरास्पद चरितनायक श्री छगनलाल जी महाराज जहाँ जैन, जैनेतर धर्मग्रन्थों के अच्छे सुलझे हुए, गम्भीर विद्वान थे। वहाँ ये आत्मबल, साहस, निर्भीकता, समय सूचकता, कण्ठगत निराले माधुर्य के अपूर्व निधि भी थे। आत्मबल और शास्त्रीय गम्भीर पाण्डित्य इन दोनों का इनमें पूर्णतया संगम दृष्टिगोचर हो रहा था। इनकी वाणी में गम्भीर वैदुष्य, निराला ओज था, मधुरता, निर्भीकता, सरलता, सरसता और जन्मजात आकर्षकता थी। यही कारण है कि श्रोताजन इनकी कल्याण-कारिणी और कल्मषहारिणी, पावनी वाणी का अमृत-पान करते हुए आनन्द-विभोर हो उठते थे।

हमारे चरितनायक श्री जी जहाँ जाने-माने विद्वान थे और एक सर्वप्रिय समादरणीय व्याख्याता थे वहाँ ये एक सिद्धहस्त लेखक भी थे, लेखन कला इनकी इतनी अनूठी और आकर्षक थी कि कुछ कहते नहीं बनता। जब ये किसी शास्त्रीय पाठ या संगीत आदि को कागज पर लिखने लगते तो इनके लिखे अक्षर बड़े सुन्दर, आकर्षक और हार में पिरोए मोती जैसे दिखाई देते थे। स्थानकवासी जैन समाज का प्राचीन इतिहास देखने से मालूम होता है

कि मुद्रणकला के प्रसार से पहले जैन सन्तों को लिखने का बड़ा शौक एवं अभ्यास रहा है। भगवती सूत्र जैसे विशालकाय महाशास्त्र भी हाथों से लिखे जाते थे जो बहुत सुन्दर और साफ सुथरे होते थे। उनमें मानो लेखन कला की आत्मा के साक्षात् दर्शन उपलब्ध हो जाते थे। इन आँखों ने (इन पंक्तियों के लेखक ने) स्वयं देखा है। लगभग ३५ वर्ष पूर्व जैनधर्म दिवाकर, साहित्यरत्न, जैनागमरत्नाकर, श्री वर्धमान-स्थानक-वासी-जैन-श्रमण-संघ के आचार्य सम्राट परम श्रद्धेय गुरुदेव पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज के बाबा गुरु महामहिम वंदनीय गणावच्छेदक श्री स्वामी जयरामजी महाराज वयोवृद्ध अवस्था में भी सारा दिन शास्त्र लिखते रहते थे। लिखाई भी इतनी साफ सुथरी और मनोरम होती थी कि देख-देखकर जी नहीं भरता था। इन्होंने अपने जीवन में भगवती सूत्र जैसे विशालकाय अनेकों जैनागमों की प्रतिलिपियाँ की थीं। आज भी जिस समय उन लिखित शास्त्रों को देखते हैं तो प्राचीन युग की लेखन कला साकार होकर सन्मुख खड़ी दिखाई देने लगती है और प्रेस की छपाई भूल जाती है। यह सत्य है कि आज मुद्रणकला ने लेखन कला को बहुत हानि पहुँचाई है, उसका मूल्य घटा दिया है। या यूँ कहे, प्रेस ने लेखन कला का जीवनान्त सा कर दिया है। तथापि लेखन-कला की ऐतिहासिक और अपने युग की उपयोगिता को कैसे झुठलाया जा सकता है।

हमारे वन्दनीय चरितनायक श्री जहाँ संस्कृत, प्राकृत और हिन्दी आदि अनेक विध भाषाओं के मार्मिक विद्वान थे। वहाँ ये ज्योतिष विद्या तथा स्वर विद्या के भी अद्वितीय जानकार थे। विद्या के नाना रूपों में ज्योतिष विद्या का भी अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है। ज्योतिष एक स्वतन्त्र विद्या है। साहित्य-जगत में इसकी अपनी एक मौलिक उपयोगिता एवं उपादेयता है। जिस मनुष्य को इस विद्या की अच्छी जानकारी है, पूर्ण बोध है, पर्याप्त ज्ञान है, वह मानव-जीवन की अच्छी-बुरी भावी घटनाओं को जान सकता है और स्पष्टता के साथ उनकी अभिव्यक्ति भी कर सकता है। इन आँखों ने ऐसे-ऐसे ज्योतिर्विद्=ज्योतिषी देखे हैं कि जो जन्मपत्रिका हाथ में लेकर और उसका परिशीलन करके ऐसी-ऐसी बातें बताते हैं जो सर्वथा सत्य और अनुभूत होती है। सुनने वाला आश्चर्य-चकित रह जाता है। अतः ज्योतिर्विद्या की सत्यता उपयोगिता और लोकोपकारिता में दो मत नहीं हो सकते। हाँ, इस सत्य से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि आज ज्योतिष-विद्या काफी बदनाम हो रही है, जनमानस में ज्योतिष-शास्त्र के सम्बन्ध में

अश्रद्धा चल रही है, लोगों का ज्योतिष पर विश्वास नहीं रहा। लोग इसे गपोड़ा समझने लगे हैं, परन्तु यदि गम्भीरता और दीर्घदर्शिता से विचार करें तो विना किसी झिझक के कहा जा सकता है कि आज ज्योतिप-शास्त्र को लेकर जनमानस में जो अश्रद्धा या आलोचना दृष्टिगोचर हो रही है। इसका कारण ज्योतिप नहीं। प्रत्युत ज्योतिप-शास्त्र का अपूर्ण बोध है। ज्योतिष-शास्त्र की पूरी जानकारी न होने के कारण ही ज्योतिष विद्या वदनाम हो रही है। कौन नहीं जानता, हीरा लाख का होने पर भी किसी ग्वाले के हाथ में आ जाने पर अपना मूल्य ही खो बैठता है और एक पाषाण-खण्ड का रूप धारण कर लेता है। हीरक का यह अपमान जैसी उसके स्वरूप की अज्ञता के कारण ही होता है, वैसे आज ज्योतिर्विद्या जो तिरस्कृत हो रही है उसका मूल कारण भी उसके स्वरूप की जानकारी का अभाव ही समझना चाहिये। आज लोग ज्योतिप-शास्त्र का क, ख, ग, घ पढ़ करके वाजारु ज्योतिषी वन बैठते हैं और पैसा बटोरना ही उनका ध्येय हो गया है। वे लोग ज्योतिप-विद्या का दुरुपयोग करते हैं और जनमानस में उसके लिए अरुचि और अश्रद्धा का कारण वनते हैं किन्तु ऐसे वाजारू लोगों की भूलों से ज्योतिप-शास्त्र के महत्त्व की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

भारतीय साहित्य में ज्योतिप के दो रूप उपलब्ध होते हैं। एक का नाम गणित ज्योतिप और दूसरा फलित ज्योतिप कहा जाता है। गणित-ज्योतिप में आकाश में विद्यमान सूर्य और चन्द्र आदि नवग्रहों तथा अश्विनी, भरणी आदि २७ नक्षत्रों की गति, परिमाण और दूरी आदि का निश्चय किया जाता है। जबकि, ग्रह, नक्षत्र आदि का शुभ और अशुभ फल वतलाने वाला-शास्त्र फलित-शास्त्र कहलाता है। हमारे श्रद्धेय चरितनायक श्री छगनलाल जी महाराज गणित और फलित दोनों प्रकार के ज्योतिप-शास्त्रों का पर्याप्त वोध रखते थे। प्रश्न हो सकता है कि जैनसाधु को जव गृहस्थ-वर्ग के सांसारिक झंझटों से सम्वन्ध नहीं रखना और किसी भी झगड़े में नहीं पड़ना है तो फिर उसे ज्योतिप शास्त्र पढ़ने की क्या आवश्यकता है? उत्तर में निवेदन है कि विद्या कोई बुरी नहीं होती, समय पर उसका लाभ भी उठाया जा सकता है। अन्तर केवल इतना ही होता है कि सांसारिक जीवन को प्रधानता देने वाला व्यक्ति उस विद्या का मोह-मायावर्धक सांसारिक कार्यों में उपयोग करता है। जबकि आध्यात्मिक जीवन को सर्वेसर्वा मानकर चलने वाला व्यक्ति उसका उपयोग धार्मिक कार्यों में किया करता है। जैसे—दीक्षा का मुहूर्त है, वार्षिक तिथिपत्र का निर्माण करना है। ये सव कार्य

ज्योतिप शास्त्र का सम्यग् वोध होने पर ही सम्पन्न हो सकते हैं। अतः जैन-साधु के लिए ज्योतिप शास्त्र का अध्ययन, चिन्तन, मनन या परिशीलन करना शास्त्रविरुद्ध है, या हानिकारक है, ऐसा नहीं माना जा सकता।

ऊपर की पंक्तियों में मान्य चरितनायक श्री छगनलाल जी महाराज के विद्याभ्यास को लेकर कुछ चिन्तन प्रस्तुत किया गया है, वताया गया है कि श्रद्धेय चरितनायक श्री ने जैन तथा जैनेतर शास्त्रों का अध्ययन किया, सूक्ष्म दृष्टि से उनका चिन्तन किया, तथा समन्वय प्रधान मनन करके विभिन्न परम्पराओं के शास्त्रीय तथ्यों में जहाँ कहीं भी समता और एकता उपलब्ध होती है। उदारता के साथ उसको समझने का प्रयास किया, अन्त में एक सुलझे हुए विद्वान एवं विचारक के रूप में ये जनता जनार्दन के सम्मुख उपस्थित हुए। इसके अतिरिक्त यह भी संसूचित किया गया कि व्याख्यान के क्षेत्र में भी इन्होंने वहुत प्रगति की और धीरे-धीरे ये सर्वप्रिय बन गए जैन, अजैन सभी इनको विना किसी संकोच के आदरास्पद मानने लगे। चरितनायक श्री के इस साफल्य के पीछे जहाँ इनका प्रतिभा-प्रकर्ष, परिश्रम और साहस काम कर रहा है, वहाँ परम श्रद्धेय गुरुदेव श्री स्वामी रंगलाल जी महाराज के पावन चरणों के प्रति इनके हृदय में जो श्रद्धा, भक्ति और विनय थी, उसका ही सर्वाधिक प्रभाव समझना चाहिये। क्योंकि गुरु चरणों में शिष्य की जो विनीतता होती है, वही उसे ऊपर उठाती है, और उसे प्रत्येक वाञ्छनीय कार्य में सफलता प्रदान करती है। विनय की महिमा के क्या कहने ? विनय का अर्थ है—नम्रता, निरभिमानता, गुरुजनों के प्रति सर्वथा भक्ति, अपने से बड़ों के प्रति आदर की भावना। नीति वाक्यामृत-कार विनय शब्द की अर्थ-विचारणा करते हुए लिखते हैं—

"व्रत-विद्या-वयोऽधिकेषु नीचैराचरणं विनयः"

—व्रत, विद्या, एवं आयु में जो वड़े हैं उनके सामने नम्रता का आचार और व्यवहार करना विनय है।

विनय स्वयं स्वतन्त्र एक धर्म है इसकी महिमा महान है। विनय धर्म की महिमा गाता हुआ भारतीय साहित्य विनय भगवती के चरणों में कितनी सुन्दरता से श्रद्धासुमन समर्पित कर रहा है—

मूलाओ खंधप्पभवो दुमस्स, खंधाओ पच्छा समुवेंति साहा।
साहप्पसाहा विरुहंति पत्ता, तओ से पुप्फं च फलं रसो य॥

— सुविनीत व्यक्ति के १५ लक्षण होते हैं :—१—नम्रवृत्ति वाला हो, २—चपलता रहित हो, ३—शठता रहित हो ४—कुतूहल-रहित हो, ५—किसी का अपमान करने वाला न हो, ६—जिसका क्रोध अधिक समय तक न टिकता हो, ७—जो मित्रता निभाने वाला हो, ८—जो विद्या प्राप्त करके अभिमान करने वाला न हो, ९—अपने से त्रुटि हो जाने पर हित शिक्षा देने वाले आचार्यादि का तिरस्कार करने वाले न हो, १०—मित्रों के प्रति क्रोध करने वाला न हो, ११ अप्रिय मित्र की भी पीठ पीछे प्रशंसा करता हो, १२—किसी प्रकार का कलह न करता हो, १३—बुद्धिमान हो, १४—कुलीन हो, और १५— आँख की शर्म रखने वाला तथा स्थिर वृत्ति वाला हो ।

पूज्य गुरु चरणों का वियोग—

कहा जा चुका है कि वैशाख शुक्ला अक्षयतृतीया के पवित्र दिन हमारे चरितनायक श्री छगनलालजी महाराज दीक्षा अङ्गीकार कर चुके हैं । दीक्षा के अनन्तर गुरु और शिष्य दोनों ही अपने को धन्य मान रहे थे । शिष्य तो क्षमामूर्ति महामुनि श्री स्वामी रगलालजी महाराज जैसे जगतारक महापुरुष को पूज्य गुरुदेव के रूप में पाकर आनन्दविभोर हो रहे थे तथा श्रद्धेय गुरु महाराज चरितनायक जैसे सुयोग्य, विनीत, सुशील और होनहार युवक को अपने शिष्य के रूप में देखकर समुज्ज्वल भविष्य की कल्पना करते नहीं थक रहे थे । सोने की अंगूठी में हीरक का सम्बन्ध होकर जैसे अंगूठी और हीरक दोनों ही सुशोभित हो उठते हैं, वैसे क्षमा की सजीव प्रतिमा, स्वनामधन्य पूज्य श्री रंगलालजी महाराज के पावन चरणों का सान्निध्य पाकर चरित-नायक श्री छगनलालजी महाराज ये दोनों महापुरुष एक दूसरे की प्रतिष्ठा और शोभा को चार चाँद लगा रहे थे ।

चरितनायक के दीक्षा का सब कार्य सानन्द और निर्विघ्न सम्पन्न हो जाने के पश्चात् अपनी शिष्यमण्डली सहित महामुनि श्रद्धेय श्री रंगलालजी महाराज ने नवदीक्षित नवयुवा, श्रमणरत्न श्री छगनलालजी महाराज को अपने साथ लेकर रीवां शेरसिंह गाँव से विहार कर दिया । धर्म का पावन ध्वज लहराता हुआ मुनिमण्डल धीरे-धीरे राजस्थान के रूपनगढ़ नामक गांव में जा विराजमान हुआ । चातुर्मास-काल निकट ही था, परिणामस्वरूप विक्रम सम्वत् १९६० का चातुर्मास रूपनगढ़ में स्वीकृत कर लिया गया । चौमास के मध्य में मुनिमण्डल ने अहिंसा, सत्य का अमृत घर-घर बांटा, सम्यग् ज्ञान की पावन ज्योति सर्वत्र जगाई, सोए हुए मानव-हृदयों में नवचेतना तथा

भव्य स्फूर्ति का पवित्र संचार करके जनता-जनार्दन की ऐतिहासिक धर्म-सेवा की ! रूपनगढ़ के निवासियों ने भी बड़े उत्साह, उल्लास एवं श्रद्धान के साथ मुनिराजों की सेवा-शुश्रूषा की, अन्तर्जगत् के अपने अज्ञानान्धकार को दूर करके वहाँ पर जप, तप, त्याग, वैराग्य के दिव्य दीप जगाने का बुद्धिशुद्ध प्रयास किया। धर्मध्यान का खूब लाभ उठाया, किसी ने—१—जुआ[1], २—माँस, ३—मदिरा, ४—वेश्या, ५—शिकार, ६—चोरी, और ७—पर-नारी-गमन, इन सात कुव्यसनों का परित्याग किया, किसी ने २५ बोल, २६ द्वार, नवतत्त्व आदि थोकडे सीखे ! किसी ने सामायिक का विधि विधान समझा और किसी ने श्रावक-प्रतिक्रमण का शिक्षण प्राप्त करके अपने सोए भाग्य जगाए, पूज्य मुनिमण्डल भी बिना किसी उदासीनता या संकोच के सभी श्रद्धालुओं को शास्त्रीय ज्ञान के दिव्य मोतियों से मालामाल बना रहे थे। इस तरह धर्म की कल्याणकारिणी गंगा प्रवाहित करते हुए श्रद्धेय मुनि-मण्डल ने चौमासा काल समाप्त करके वहाँ से बड़े समारोह के साथ विहार कर दिया।

हमारे मनीषी पाठक जानते ही हैं कि जैन साधुओं की मर्यादा के अनुसार वर्ष भर आठ महीने यत्र-तत्र धर्म-प्रचार करना होता है, सावन, भाद्रपद, आश्विन और कार्तिक ये चार महीने एक स्थान पर विराजमान रहकर यथाशक्ति जनजीवन के अन्तर्जगत को सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन और सम्यक् चारित्र की पावन ज्योति से ज्योतिर्मान बनाना होता है। सावन आदि चार महीनों को वर्षावास, चातुर्मास या चौमास के नाम से पुकारा जाता है, इसकी समाप्ति कार्तिक पूर्णिमा के अनन्तर होती है। चौमास के पश्चात् बिना किसी कारण के साधुओं और साध्वियों को ठहरना उनकी धर्ममर्यादा के प्रतिकूल माना गया है। परिणामस्वरूप साधुमर्यादा के परिपालन के लिए सदा जागरूक एवं सतर्क रहने वाले मुनिराज और महासतियाँ अनुकूल परिस्थितियों के रहते चौमास स्थान से अवश्य प्रस्थान कर देते हैं। यही कारण है कि रूपनगढ़-निवासियों की ओर से ठहरने की जोरदार विनति होने पर भी हमारे चरितनायक के परमश्रद्धेय गुरुदेव श्री स्वामी रंगलालजी महाराज ने भी अपनी साधु-मर्यादा को ध्यान में रखते हुए चातुर्मास के बाद रूपनगढ़ से विहार फरमा दिया।

---

[1] द्यूतं च मांसं च सुरा च वेश्या, हिंसा च चौर्य्यं परदारसेवा।
एतानि सप्त व्यसनानि लोके, घोरातिघोरे नरके नयन्ति॥

परीक्षा की पहली घड़ी—

व्यवहार-जगत में देखा जाता है कि कार्तिक-मास के अनन्तर शैत्य का श्रीगणेश हो जाता है, परन्तु पौष और माघ में तो शैत्य अपने यौवन पर होता है, वैसे गर्मी और सर्दी तो सभी मैदानी प्रान्तों में पड़ती है, तथापि मरुस्थलीय प्रान्त में तो गर्मी और सर्दी दोनों ही बहुत जोरदार होती है, क्योंकि वहाँ पर रेत की अत्यधिकता पाई जाती है, गर्मी में रेता तपता भी अधिक है और सर्दी में यह ठण्डा भी बहुत ज्यादा होता है। पौष-माघ के दिनों में तो मरुस्थल की भूमि बरफ के समान ठण्डी हो जाती है और जेठ-आषाढ़ में उसकी स्थिति अग्नि के गोले जैसी बन जाती है। भाव यह है कि ग्रीष्म और शीत ये दोनों ऋतुएँ जब अपने यौवन पर होती हैं तो इनमें मरुस्थल के प्रदेश में रेत पर नंगे पाँव चलना बच्चों का खेल नहीं है, कष्टों और विपत्तियों को मानों स्वयं निमंत्रित करना होता है।

कहा जा चुका है कि चातुर्मास कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा के अनन्तर समाप्त हो जाता है। चौमास के अनन्तर परमादरणीय श्री स्वामी रंगलाल जी महाराज ने अपनी शिष्यमण्डली सहित विहार कर दिया। ग्रामानुग्राम विहार करते हुए महाराज श्री जनता को धर्म का मंगलमय पाठ पढ़ा रहे थे। धीरे-धीरे पौष का महीना आ गया। जिस समय की बात कर रहे हैं उस दिन आकाश का मौसम भी बड़ा शीत था, बर्फानी हवा चल रही थी, रेता शैत्याधिक्य के कारण बरफ को भी मात कर रहा था। हमारे चरितनायक श्री छगनलाल जी महाराज के साधुजीवन में इस शैत्याधिक्य का यह प्रथम अवसर था, पहला ही अनुभव था समय की मात समझिए, कि गुरुदेव ने विहार भी सूर्योदय के साथ ही कर दिया। रेता बहुत ही अधिक ठण्डा था, चरितनायक श्री ने ठण्डे रेते पर जब अपने पाँव रक्खे तो इनके पाँव रेते की ठण्डक को सहन नहीं कर सके, एकदम सुन्न से हो गए। इनको ऐसा अनुभव होने लगा कि मानों मेरे पाँवों में जीवन ही नहीं रहा, यह देख चरितनायक घबरा गए, धैर्य और साहस ने इनका साथ छोड़ दिया और हृदय ने आगे चलने से इन्कार कर दिया परिणामस्वरूप वे वहीं पर रुक गए। चरितनायक के पूज्य गुरुदेव स्वयं भी शैत्याधिक्य अनुभव कर रहे थे, इसलिए इन्हें अपने नवदीक्षित शिष्य का विशेष ध्यान था कहीं शैत्य की अधिकता नवदीक्षित मुनि को परेशान न करदे, इस विचार से ये समय-समय पर चरित-नायक पर दृष्टिपात करते रहते थे। जब अपने शिष्य को इन्होंने आकुल-व्याकुल अवस्था में खड़े देखा तो चरितनायक के म्लानमुख को देखते ही

सारी स्थिति समझ गए और तत्काल वे इनके निकट आए, स्नेहभरी दृष्टि से निहारते हुए चरितनायक से फरमाने लगे—

वत्स ! शैत्य की आज अधिकता है रेता भी बहुत ठण्डा हो रहा है, साधु-जीवन में शीत-परीषह के कठिन प्रसंग आ ही जाया करते हैं, परन्तु घबराया नहीं करते । भगवान महावीर स्वामी ने बड़ा सुन्दर उद्बोधन देते हुए फरमाया है—

चरन्तं विरयं लूहं, सीयं फुसइ एगया ।
नाइवेलं मुणी गच्छे, सोच्चाणं जिणसासणं ॥
न मे निवारणं अत्थि, छवित्ताणं न विज्जइ ।
अहं तु अग्गिं सेवामि, इइ भिक्खू न चिंतए ॥

—उत्तराध्ययन सूत्र अ० २/६-७

—विरक्त और अनासक्त अथवा स्निग्ध भोजनादि के अभाव में रूक्ष-शरीर होकर विचरण करते हुए मुनि को शीतकाल में शीत का कष्ट होता ही है, फिर भी आत्मजयी मुनि जिन शासन=वीतराग भगवान की शिक्षाओं को समझ कर अपनी यथोचित मर्यादाओं का या स्वाध्याय आदि के प्राप्त काल का उल्लंघन न करे ।

शीत लगने पर मुनि ऐसा न सोचे कि—"मेरे पास शीत निवारण के योग्य मकान आदि का कोई अच्छा साधन नहीं है । शरीर को ठण्ड से बचाने के लिए छवित्राण=कम्बल आदि वस्त्र भी नहीं हैं, तो मैं क्यों न अग्नि का सेवन करलूं ?

वत्स ! सहनशीलता साधुजीवन का शृंगार एवं आभूषण होता है । आज से ही नहीं, अनादिकाल से साधुजीवन कष्टों और प्रतिकूल परिस्थितियों से खेलता आया है । यदि इतिहास को देखते हैं तो अपने पूर्वजों ने सिर पर अंगीठी रखवा कर भी सहिष्णुता को अपने हाथ से नहीं जाने दिया । हम भी उन्हीं के वंशज हैं हमें अपनी प्राचीन प्रतिष्ठा को सर्वथा सुरक्षित रखना है, उसे किसी भी मूल्य पर कलंकित नहीं होने देना । फिर तुम शेर सन्त हो, साहस और शौर्य की साकार मूर्ति हो समझ नहीं पा रहा आज उदासीन और अधीर क्यों हो गए ? मन को संभालो ।

क्षमा-मूर्ति श्री स्वामी रंगलाल जी महाराज ने सान्त्वना प्रदान करने के साथ-साथ चरितनायक के कन्धे पर पड़ा आसन अपने हाथ से उठाया और

उसे रेते पर डालकर चरितनायक को आज्ञा प्रदान की कि अभी तुम इस आसन पर अपने पाँव रक्खो जब पाँवों की स्थिति ठीक हो जाएगी तब आगे चलेंगे।

पूज्य गुरुदेव का सान्त्वनापूर्ण आदेश पाकर चरितनायक अपने श्रद्धेय गुरुदेव से निवेदन करने लगे कि वन्दनीय आराध्यदेव देव ! आप श्री नीचे खड़े हैं, और मैं आसन पर खड़ा हो जाऊँ ? यह कैसे हो सकता है ? यह तो निरी अशिष्टता है, विनय धर्म की अवहेलना है और शिष्य की कुशिष्यता है सबसे पहले आप आसन पर पधारने की कृपा करें। अपने प्रिय शिष्य की विनीततापूर्ण अभ्यर्थना सुनकर श्रद्धास्पद गुरुदेव तत्काल आसन पर विराजमान हो गए। गुरुमहाराज के आसन पर पधार जाने पर भी चरितनायक भूमि पर ही खड़े रहना चाहते थे गुरुदेव के बराबर होने की उनकी बिल्कुल भावना नहीं थी परन्तु "गुरोराज्ञा[1] बलीयसी" के कारण इन्होंने अपने पाँव आसन पर रख लिए। आसन पर खड़ा हो जाने से शैत्य का प्रकोप कुछ शान्त हुआ, परन्तु चरितनायक को इस घटना के संघटित हो जाने के कारण बहुत अधिक ग्लानि अनुभव होने लगी, ये विचार करने लगे—

'छगनलाल ! आज तेरे को क्या हो गया ? इतनी अधिक दुर्बलता तो तूने कभी नहीं दिखलाई, फिर दूसरे मुनिराज भी तो इसी शीत पथ पर चल रहे हैं, उनकी गति में विराम का कोई चिन्ह दृष्टिगोचर नहीं हुआ, इसके अतिरिक्त, पूज्य गुरुदेव इतने वयोवृद्ध होने पर भी चल रहे हैं, इनकी आयु और तेरी आयु का तो बहुत बड़ा अन्तर है। ये तो वार्धक्य से पूर्णतया आक्रान्त हो रहे हैं और इधर तू सर्वथा युवक है। जब बुढ़ापा शैत्याधिक्य से खेदखिन्न नहीं हो पाया तो जवानी ही इससे आकुल-व्याकुल क्यों हो रही है ? एक जैसी ऋतु है, एक समान धरती है, एक जैसी बरफानी हवा चल रही है और सब मुनिवरों के पास एक जैसी ही साधन सामग्री है फिर क्या कारण है जो तेरे पाँव अन्य मुनियों की भाँति शैत्याधिक्य की उपेक्षा करके आगे नहीं बढ़ सके। यह विचार करते हुए चरितनायक का मस्तक लज्जा के मारे उदासीन हो गया, अन्त में, क्षमा माँगते हुए इन्होंने गुरुचरणों में सविनय प्रार्थना की—

महामान्य गुरुमहाराज ! आज न जाने क्यों मेरा मन दुर्बल हो गया, स्वप्न में भी कभी यह सोचा नहीं था कि साहस और शौर्य इतना अधिक

---

[1] गुरुमहाराज की आज्ञा सर्वोपरि है।

लड़खड़ा जाएगा। मैं तो अपने आपको बड़ा मजबूत मानता था किन्तु आज तो बिल्कुल ही ढेरी हो गया। शेर भी गीदड़ बन जाते हैं यह उक्ति आज जीवन में साकार हो गई है। इस दुर्बलता का मुझे हार्दिक विक्षोभ है, इसके लिए मैं हृदय से लज्जित भी हूँ। आप तो कृपालु और दयालु हैं अतः इस चरण सेवक को क्षमा करें, भविष्य में ऐसी भूल नहीं होगी यह मैं आपको (चरणों का स्पर्श करके) विश्वास दिलाता हूँ।

चरितनायक श्री की विनीततापूर्ण अभ्यर्थना सुनकर कृपालुता के सागर महामुनि श्री रंगलाल जी महाराज अपने प्रिय शिष्य को पुचकारते हुए फरमाने लगे—वत्स ! उदासीन या लज्जित होने वाली क्या बात है ? तुम अभी बच्चे हो, अतः बौखलाहट का हो जाना कोई आश्चर्यजनक घटना नहीं है। दूसरी बात मरुस्थल के रेतीले मैदानों की शीतऋतु का प्रकोप तुम्हारे नंगे पाँवों ने पहली बार अनुभव किया है अनभ्यास होने के कारण घबरा जाना भी कोई अस्वाभाविक बात नहीं है। वस्तुतः संयम साधना के कंटीले और कंकरीले महापथ पर चलना कोई बच्चों का खेल नहीं है बड़े-बड़े धीर और वीर व्यक्ति भी कभी-कभी इसकी कठोरता से अपना अन्तःस्वास्थ्य बिगाड़ बैठते हैं। आज के युग की क्या बात है ? प्राचीन युग में भी ऐसा हो जाता था। इतिहास बतलाता है कि विश्ववन्द्य भगवान महावीर के समय में भी संयम की कठोरता साधक के मेरु जैसे सुदृढ़ और परिपक्व मानस को कम्पित कर डालती थी। कौन नहीं जानता, ज्ञाता धर्मकथाङ्ग सूत्रीय महामुनि मेघ-कुमार साधुजीवन की पहली रात में घबरा गए थे, साधुता का परित्याग करने के लिए तैयार हो गए थे। अन्त में पतितपावन मंगलमूर्ति भगवान महावीर ने जब हाथी के पूर्वभव में खरगोश की रक्षा के निमित्त सहन किए गए कष्ट का परिचय कराया तब जातिस्मरण का पुण्य प्रकाश उपलब्ध होने पर उनका दुर्बल मानस संयम साधना के लिए सुस्थिर हुआ था। अतः वत्स ! हताश या निराश होने की कोई आवश्यकता नहीं। ऐसे उतार-चढ़ाव तो जीवन में अनेकों बार आते रहते हैं। परन्तु वही जीवन भाग्यशाली और तरणहार समझा जाता है जो अपनी भूल को भूल के रूप में स्वीकार करके उसका सदा के लिए परित्याग कर देता है। तुमने अपनी दुर्बलता को दुर्बलता के रूप में समझा और उससे सदा के लिए पिण्ड छुड़ाने का निर्णय कर लिया, यह बहुत अच्छी और तुम्हारे भविष्य को समुज्ज्वल बनाने वाली बात है। तुम्हारी इस सूझ-बूझ के लिए तुम्हें साधुवाद देता हूँ।

वन्दनीय गुरुदेव का आशीर्वाद मिल जाने पर चरितनायक श्री छगनलाल

जी महाराज को हार्दिक सन्तोप हुआ और भविष्य में उन्होंने सरदी या गरमी के निमित्त किसी भी प्रकार की दुर्वलता व्यक्त करने का कोई अवसर नहीं आने दिया।

चाय का परित्याग—

मान्य चरितनायक श्री छगनलाल जी महाराज ने अपने परमश्रद्धेय पूज्य श्री रंगलाल जी महाराज के साथ वि० सं० १९६१ का चातुर्मास कुचामन नामक नगर में और १९६२ का चातुर्मास पालनपुर में किया। पालनपुर का चातुर्मास समाप्त करने के अनन्तर इन्होंने वहाँ से विहार किया और स्थान-स्थान अहिंसा, सत्य की कल्मपहारिणी गंगा प्रवाहित करते हुए ये भारत की प्रख्यात नगरी वम्वई में जा विराजमान हुए। वम्वई भारतवर्ष का वहुत वड़ा शहर है। जनसंख्या की दृष्टि से भारत के अन्य नगरों में इसका सर्वोपरि स्थान है, व्यापार की अपेक्षा भी यह सव नगरों से वढ़ा-चढ़ा है। धार्मिकता को लेकर भी यह नगर किसी से पीछे नहीं है। जैन, वैदिक आदि सभी परम्परा के लोग इस नगर में निवास करते हैं। सभी परम्पराओं के वड़े-वडे विशाल धर्मस्थान दृष्टिगोचर होते हैं। जैनधर्म के अनुयायी लोग भी इस नगर में काफी समृद्ध और उत्साही हैं। वम्वई के जैनश्रावक संघ को जव पता चला कि पूज्य मुनि मण्डल इधर पधार रहा है तो उसने उसका भाव-भरा हार्दिक स्वागत किया। मुनिमण्डल के पधारने से श्रावक संघ में नवजीवन सा आ गया, सर्वत्र आध्यात्मिक चहल-पहल दिखाई देने लगी। त्याग, वैराग्य ओर आचार-विचार की समुज्ज्वल ज्योति का प्रसार होता देखकर जन-जीवन को हार्दिक सन्तोप एवं हर्प हुआ।

वम्वई में जहाँ व्यवसाय सम्वन्धी अनेकों विशेपताऍं दृष्टिगोचर होती हैं, सामाजिक आचार-विचार को लेकर जहाँ अच्छाखासा वातावरण सम्प्राप्त होता है, वहाँ उस नगरी में एक दोप भी देखने में आता है। वह दोप है—चाय का अत्यधिक सेवन। चाय नाम का एक पौधा होता है, जिसकी पत्तियों का काढ़ा दूध, मीठा डालकर पिया जाता है। वम्वई के जलवायु का प्रभाव कहिए, या वहाँ के व्यस्त और दौड़धूप वाले जीवन का अनिवार्य अंग समझिए, या दुःखी व्यक्तियों के कथनानुसार, चिन्ताओं को समाप्त करने तथा क्लान्ति दूर करने का इसे साधन मान लीजिए, अथवा देखादेखी लोक प्रवृत्ति का अनुकरण कह दीजिए। चाय का प्रयोग वम्वई में वहुत जोर-शोर से देखने में आता है। क्या वाल, क्या वृद्ध, क्या युवक, क्या युवती इस तरह सव व्यक्तियों के जीवन को चाय की देवी ने पूर्णतया आक्रान्त कर रक्खा है। चाय की इस

व्यापकता का प्रभाव भिक्षाशील साधु-मुनिराजों पर भी पड़ता है। हमारे चरितनायक श्री छगनलाल जी महाराज भी चाय के प्रभाव से अछूते नहीं रहे, इनके जीवन में भी एक बार ऐसा प्रसंग आया। एक दिन ये आहार के लिए गए, चाय की प्रार्थना होने पर इन्होंने भी चाय ग्रहण कर ली। आहार ले जाकर जब चरितनायक ने पूज्य गुरुदेव के सन्मुख रक्खा तो चाय को देखकर उन्होंने फरमाया—

मुनि छगन ! चाय एक नशीला पदार्थ है। नशीली वस्तु का सेवन करना प्रमाद है। प्रमाद का सेवन साधु-जीवन के लिए सर्वथा निषिद्ध है। इसके अलावा, स्वास्थ्य-शास्त्र की दृष्टि से भी चाय अहितकर है। इससे स्वास्थ्य की हानि ही होती है, स्वास्थ्य लाभ के साथ इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। अतः इसका आसेवन नहीं करना चाहिए।

हमारे चरितनायक श्री छगनलाल जी महाराज आजकल के अविनीत युवक साधुओं की भाँति मनचले और स्वच्छन्दाचारी नहीं थे। प्रायः देखा गया है कि आज किसी युवक साधु को उसके गुरु महाराज कोई बात कह दें, किसी वस्तु का सेवन करने से इन्कार कर दें तो वह मुँह मोटा बना लेता है, और गुरु महाराज की बात को गलत प्रमाणित करने के लिए इधर-उधर की लच्छेदार अनेकों युक्तियाँ देता है, उनकी झड़ी लगा देता है, और अपनी बात को गुरु महाराज की बात से ऊपर रखने की पूरी कोशिश करता है। नतमस्तक होकर गुरुमहाराज के आदेश को मानना तो उसे अपना बड़ा भारी अपमान अनुभव होने लगता है, परन्तु हमारे आदरणीय चरितनायक ने गुरु महाराज की बात सुनकर कोई ननुनच नहीं की। बम्बई के जलवायु में रहते हुए चाय का सेवन करना स्वास्थ्यवर्धक है। इस प्रकार की कोई भावना व्यक्त नहीं की इन्होंने तत्काल गुरु महाराज की आज्ञा को भगवान की आज्ञा मानकर अपना मस्तक प्रणत कर दिया और चाय त्याग का जीवन भर के लिए नियम ले लिया। यह नियम इन्होंने अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक निभाया। यदि ये कभी बीमार भी हो गए और डाक्टर ने इन्हें चायपान करने की प्रेरणा भी दी तथापि इन्होंने कभी चाय का सेवन नहीं किया। वह नियम ही क्या है जो प्रतिकूल परिस्थितियों में डांवाडोल हो जाए और अपना स्वरूप ही खो बैठे।

श्रद्धेय चरितनायक ने चाय-परित्याग का नियम कितनी दृढ़ता से निभाया ? इस सत्य को इनके एक जीवन प्रसंग मे निवेदन करता हूँ। एक बार चरितनायक भटिण्डा में विराजमान थे। सर्दी का मौसम था। इनको

प्रतिश्याय=नजला हो गया। अनेकविध उपचार करने पर भी जब नजला ठीक न हुआ तब इनके एक परम श्रद्धालु सज्जन ने इनसे विनम्रता के साथ निवेदन किया कि-गुरुदेव ! नजले के लिए चाय का सेवन बड़ा लाभप्रद होता है। अतः आप चाय का सेवन अवश्य करने की कृपा करें। अपने श्रद्धालु भक्त की बात सुनकर स्मित मुख से श्रद्धेय चरितनायक फरमाने लगे—

श्रावक जी ! क्या चाय का सेवन करने वाले व्यक्ति को कभी नजला नहीं होता ? चाय का सेवन नजले को समाप्त कर देता है। यह धारणा सर्वथा सत्य नहीं है। कभी समय था, समुद्र तट के निवासी ही वहाँ की जल और वायु के आधार पर चाय का सेवन किया करते थे। परन्तु आज तो इसका सर्वत्र ही प्रयोग होने लग गया है। गाँव हो या शहर, घर हो या क्लब, उत्सव हो या सहभोज, गरीब हो या अमीर, प्रायः सर्वत्र ही चाय देवी की पूजः दृष्टिगोचर हो रही है। चाय किसी दृष्टि से लाभप्रद हो सकती है, किन्तु अधिकतया इससे हानियाँ ही होती हैं। मेरे विचार में आज अधिक जनता जो शारीरिक रोगों से आक्रान्त हो रही है, रोगों ने जो सर्वत्र सर उठा रखे हैं, इसके अन्य कारण भी हो सकते हैं, परन्तु चाय का सेवन मुझे सर्वाधिक कारण दिखाई दे रहा है। इसी चाय के प्रताप ने आज अमृत तुल्य दूध पदार्थ भी दुर्लभ बना दिया है। लोग दूध का यथेच्छ सेवन किया करते थे, बीमारी निकट नहीं आती थी, सब स्वस्थ रहते थे, मनोबल को नवजीवन मिलता था। जब शरीर ही स्वस्थ नहीं तो मानव का मनोबल कैसे स्वस्थ और सुदृढ़ हो सकता है ? आत्मबल या मनोबल के अभाव में सदाचार की भावनाएँ कैसे पनप सकती हैं। विश्वास रक्खो, जब तक सदाचार की पावन भावनाओं को जीवन प्राप्त नहीं होता तब तक सुख शान्ति की कल्पना करना रेत में तेल ढूंढ़ने के वृथा-प्रयास के अतिरिक्त और कुछ नहीं।

पूज्य चरितनायक की सारगर्भित बात सुनकर श्रद्धालु श्रावक मौन हो गए और इनकी दृढ़ता देखकर वे इनके पुनीत चरणों में नतमस्तक हो गये। अन्त में उन्होंने श्रद्धा पूरित हृदय से निवेदन करते हुए विनति की—

गुरुदेव ! आप क्षमता-सम्पन्न पुराने युग के साधु मुनिराज हैं, रुग्णावस्था में भी आप चाय से बच सकते हैं परन्तु आजकल के लोगों के द्वारा चाय से बचना बड़ा मुश्किल हो गया है। नग्न सत्य तो है कि आज जनता जनार्दन को चाय के व्यसन ने बहुत बुरी तरह से घेर रक्खा है, एक दिन में अनेकों बार चाय पान किया जाता है। बहुतों को तो जब तक प्रातःकालीन चाय न मिले

तव तक उनसे विस्तर से उठना ही मुश्किल है। इसीलिए इस चाय को अँग्रेजी भापा में Bed Tea कहा जाता है। और तो और ऐसे मनुष्य भी हैं जो चाय का सेवन किए विना शौच से भी निवृत्त नहीं हो सकते। महाराज ! आप धन्य है जो चाय की वीमारी से सर्वथा उन्मुक्त हो रहे हैं।

कहा जा चुका है कि चरितनायक श्री छगनलाल जी महाराज अपने पूज्य गुरुदेव श्री स्वामी रंगलाल जी महाराज के साथ वम्बई में धर्म का पावन ध्वज लहरा रहे थे। सन्तमर्यादा के अनुसार कुछ समय वम्बई ठहर कर अन्त में इन्होंने वहाँ से विहार कर दिया, ये वापिस महाराष्ट्र में पधार गए, कुछ समय महाराष्ट्र की धरती पर धर्मोपदेश की अमृतवर्षा की तदनन्तर ये मारवाड़ पहुँच गए। वि० सं० १९६३ से लेकर सम्वत् १९७२ के चातुर्मास क्रमशः १—हरमाड़ा, २—अजमेर, ३—पाली, ४—धनेरिया, ५—रावडीयास, ६—कसवावड़ु, ७—जोधपुर, ८—कुचेरा, ९—वलाडा और १०—व्यावर इन क्षेत्रों में हुए। समय का प्रकोप समझिए कि व्यावर के चातुर्मास में परम श्रद्धेय श्री स्वामी रंगलाल जी महाराज अस्वस्थ होगए। इसी अस्वस्थता के कारण श्रद्धेय महाराज जी को सम्वत् १९७३ का चातुर्मास भी व्यावार में ही करना पड़ा। इस चातुर्मास में महाराज श्री का स्वास्थ्य काफी खराव रहा। चातुर्मास के अन्तिम मास में सुयोग्य वैद्य का उपचार होने से वीमारी पर कावू पा लिया गया और धीरे-धीरे इनका स्वास्थ्य सुधरने लगा। धर्म के प्रताप से एक दिन महाराज श्री विलकुल स्वस्थ हो गए। चातुर्मास समाप्त हो चुका था अतः घुमक्कड़ सन्त जीवन एक स्थान पर विना कारण कैसे रुक सकता था ? "वहता पानी निर्मला, ठहरा गन्दला होय" की उक्ति के अनुसार परमपूज्य श्री रंगलाल जी महाराज ने व्यावर से प्रस्थान कर दिया। यत्र-तत्र और सर्वत्र धर्म-प्रचार करते हुए जनता जनार्दन का सोया भाग्य जागने लगे।

क्षमा की पराकाष्ठा

परमश्रद्धेय श्री स्वामी रंगलाल जी महाराज अपनी साधु मर्यादा के अनुसार विहरण करते हुए एक वार एक गाँव में पधारे। गाँव के लोग जैन-साधु के आचार-विचार से प्रायः अनजाने ही थे। जैन-साधुओं का आना-जाना उस गाँव में विशेष न होने से उनका जैन-साधुओं के विधि-विधान से अपरिचित रहना अस्वाभाविक नहीं था। इसी अनजाने गाँव में श्रद्धेय श्री रंगलाल जी महाराज विराजमान हो गए। भोजन का समय हो जाने पर स्वयं ही अकेले गोचरी के लिए चल पड़े। गोचरी जैनजगत का एक पारि-

भाषिक शब्द है। जैनसाधु की भिक्षा को गोचरी शब्द से व्यवहृत्त किया जाता है। गोचरी का शाब्दिक अर्थ है—जिस भिक्षा में गौ की वृत्ति का आचरण किया जाए। सहृदय पाठक जानते ही हैं कि गाय जब किसी पौधे को मुँह मारती है, खाने लगती है तो वह उसको ऊपर के भाग से ही ग्रहण करती है। गधा जैसे पौधे को जड़ से उखाड़ कर खाता है वैसा पौधे को जड़ से उखाड़ना गौ का स्वभाव नहीं होता। जैसे गौ पौधे की जड़ को हानि न पहुँचाती हुई ऊपर-ऊपर से ही उसे ग्रहण करती है, वैसे भिक्षा ग्रहण करते समय जैनसाधु भी दाता से उतना ही पदार्थ ग्रहण करने का प्रयास करता है, जिससे देय पदार्थ का मूल स्वरूप समाप्त न हो। दाता के पास जितनी वस्तु है, वह सारी ही अपने पात्र में डलवालेनी, बालबच्चों तथा परिवार के अन्य व्यक्तियों के लिए पीछे कुछ भी न बचने देना। ऐसा कार्य जैनसाधु नहीं करने पाता, अतः वह वहाँ से उतना ही पदार्थ ग्रहण करता है, जिससे उसका उपभोग परिवार के लोग भी सुविधापूर्वक कर सकें, और उसकी अपनी समस्या भी समाहित हो सके। अधिक क्या, भले ही जैनसाधु की भोजन की अपनी समस्या समाहित न होने पाये, परन्तु उसे दाता तथा उसके पारिवारिक व्यक्तियों की समस्यापूर्ति का ध्यान तो रखना ही होता है, दाता को जिससे कष्टानुभूति हो ऐसा कार्य करना तो उसके लिए सर्वथा निषिद्ध है। इसीलिए जैनसाधुओं की भिक्षा को शास्त्रीय भाषा में गोचरी कहा जाता है। जो साधु दाता या उसके परिवार का कुछ भी ध्यान न रखकर दाता से सब कुछ अपने पात्र में डलवा लेता है। ऐसे साधु की भिक्षा गोचरी न कहलाकर गधा-चरी कही जाती है। मैं कह रहा था कि हमारे मान्य चरितनायक के पूज्य गुरुदेव श्री स्वामी रंगलाल जी महाराज गोचरी के लिए गाँव में चल पड़े। एक गली में प्रविष्ट हो गये। उस गली में एक देवी अपने मकान के बाहिर देहली पर बैठी थी। यह देवी जैनधर्म के साधुओं के आचार-विचार का साधारण सा ज्ञान रखती थी। अपने पीहर में उसने जैनसाधुओं को अनेक बार देखा था तथा इनके प्रवचनों का भी श्रवण किया था। अतः वह जैनसाधुओं के भिक्षा सम्बन्धी विधिविधान से परिचित और इनके त्याग-वैराग्य से प्रभावित भी थी। परिणाम-स्वरूप साधु-दर्शन होते ही वह मुनिवर के स्वागतार्थ खड़ी हो गई। मुनिराज के सन्निकट आने पर उसने विनीत भाव से उन्हें वन्दन किया और आहार-पानी ग्रहण करने की सानुरोध विनती की। श्रद्धापूर्ण हृदय से दिया गया निमन्त्रण पाकर मुनिराज श्री रंगलाल जी महाराज उस देवी के घर प्रविष्ट हुए और भिक्षा ग्रहण करने के लिए उन्होंने अपना भिक्षापात्र उस देवी के सामने रख दिया। समय की बात समझिए

कि वह देवी सन्तों के भिक्षा पात्र में भोजन डालने ही वाली थी कि तत्काल उसके पतिदेव बाहिर से आ गए, वह जैनसाधुओं से तथा इनके आचार-विचार से सर्वथा अपरिचित थे, अतः पर-पुरुष को घर में देखते ही क्रोध से तमतमा उठे, उन्होंने "आव देखा न ताव" पूरे जोर के साथ पूज्य मुनिराज के कन्धे पर लट्ठ दे मारा तथा अपनी धर्मपत्नी को भी बुरी तरह लताड़ा। उसकी कठोर ताड़ना, भर्त्सना की, उसे बुरा-भला कहा।

हमारे सहृदय पाठक जानते ही हैं कि परमपूज्य श्री स्वामी रंगलाल जी महाराज तितिक्षा, क्षमा के सागर थे। इनके जीवन-नद में उपशम, शान्ति और समता का प्रवाह ठाठें मार रहा था। श्री कल्पसूत्र का "**उवसमसारं[1] सामण्णं**" का यह महान्स्वर इनके रोम-रोम में गूंज रहा था। ये साधुजीवन के इस आदर्श को खूब समझते थे—

अरि मित्र महल मसान, कंचन कांच निंदा कण।
अरघावतारण असिप्रहारण में सदा समता धारण॥

—शत्रु हो या मित्र, महल हो या श्मशान, स्वर्ण हो या कांच, सन्त-जीवन सबको समान भाव से देखता है। इनकी कोई स्तुति करे या निन्दा, पूजा करे या तलवार के प्रहार से ताड़ना, ऐसी स्थिति में भी ये सदा सम-दर्शी रहते हैं, समता को अपनाते हुए विषमता और द्वेष को अपने निकट नहीं आने देते।

इतिहास के पृष्ठ पढ़ने वाले जानते ही हैं कि साधु जीवन सदा दुःखों, संकटों, विपत्तियों, मुसीबतों और परिषहों से जूझता रहा है। इसने भयंकर से भयंकर घड़ियाँ देखी हैं तथापि इसने अपना अन्तः स्वास्थ्य बिगड़ने नहीं दिया, संकटपूर्ण प्रत्येक परिस्थिति को इसने मस्ती तथा शान्ति से सहन किया है। सूर्य जैसे उदय और अस्त के अनुकूल तथा प्रतिकूल समय में एक रस रहता है, वैसे साधु जीवन सुख और दुःख के प्रशस्त एवं अप्रशस्त वातावरण में सदा झूमता रहा है। भगवान आदिनाथ को १२ महीनों तक अन्न-जल न मिलने से क्षुधा का परिषह सहन करना पड़ा, भगवान पार्श्वनाथ को कमठ के जीव मेघमाली ने वर्षा की झड़ी लगा कर बहुत परेशान किया, भगवान महावीर को कानों में कील ठुकवाने, संगमदेव ने उनको लगातार ६ महीने लोमहर्षक कष्ट पहुँचाए, चण्डकौशिक विषधर के उन्होंने डंक भी

---

१ उपशम=शान्ति ही साधु जीवन का सार होता है।

खाए। कहाँ तक निवेदन किया जाए? कहने का भाव यह है कि साधु-जीवन आज से ही नहीं सदा से संकटों से खेलता रहा है। इस परम सत्य से हमारे परमाराध्य श्री स्वामी रंगलाल जी महाराज अनजाने नहीं थे, यही कारण है कि ग्रामीण युवक का जोरदार लट्ठ खाकर भी ये सर्वथा शान्त रहे, जरा भी बौखलाहट में नहीं आए। इस जाट का लट्ठ लगते ही इनकी अन्तरात्मा में भगवान पार्श्वनाथ का वह दृश्य साकार हो उठा था जब कमठ का जीव मेघमाली देव लगातार पानी बरसा बरसा इनको ध्यान से भ्रष्ट करने का प्रयास कर रहा था। इसके अलावा भगवान महावीर का साधना-काल इनके अन्तर्चक्षु के सामने साकार होकर नाचने लगा था जिसमें उन्होंने संगमदेव के भयंकराति भयंकर संकट सहन किए थे। इसीलिए भयंकर चोट खा लेने पर भी श्रद्धास्पद श्री स्वामी रंगलाल जी महाराज ने समदर्शिता से ही काम लिया और अधीरता या शिथिलता को इन्होंने अपने निकट भी नहीं आने दिया। जैसे कुछ हुआ ही नहीं, ऐसे वृत्ति अपनाते हुए ये चुपचाप जाट के घर से बाहर निकले और धीरे-धीरे अपने निवास स्थान पर पधार गए। मनोबल चाहे परिपूर्ण था परन्तु औदारिक शरीर होने के कारण महाराज श्री के कन्धे में जोर का दर्द होने लगा। दर्द की भयंकरता से जब महाराज श्री जब कुछ उदासीन से दिखाई देने लगे तो हमारे चरित-नायक ने विनम्रतापूर्ण स्वर में निवेदन किया—

पूज्य गुरुदेव! आज क्या बात है? आप उदासीन से दिखाई दे रहे हैं? आपका स्वास्थ्य ठीक है?

चरितनायक की बात सुनकर गुरुदेव फरमाने लगे कि छगनलाल मेरे कन्धे पर चोट आ गई है, अतः दर्द हो रहा है?

चोट आजाने की दुःखद बात सुनकर समस्त शिष्यमण्डल घबरा गया। चरितनायक विह्वलतापूर्ण स्वर में फिर कहने लगे–गुरुदेव! चोट कैसे आगई? कहीं गिर पड़े या कोई अन्य दुर्घटना हो गई? चरितनायक की बात सुनकर गुरुमहाराज फरमाने लगे–वत्स! कोई खास बात नहीं है, जब असातावेद-नीय कर्म का उदय होता है तो ऐसे-ऐसे कटु प्रसंग आ ही जाया करते हैं। चरितनायक तथा इनके अन्य गुरुभाई चोट का मूल कारण जानना चाहते थे परन्तु जब गुरुदेव की ओर इन सबकी इच्छा के अनुसार उत्तर नहीं मिला तो

तो ये कभी व्यक्त ही नहीं होने देते, ऐसा लगता है कि हड्डी को जरूर क्षति पहुंची है। जिस समय यह वार्तालाप हो रहा था वहाँ एक श्रावक बैठा था वह मुनिमण्डल का अभिप्रायः समझ कर उसी समय वहाँ से उठा और थोड़ी देर में गाँव के एक पहलवान को ले आया, पहलवान ने आते ही महाराज श्री का कन्धा देखा तो देखते ही वह बोला कि इनकी तो हड्डी टूट गई है कन्धे में जोरदार चोट लगी है। इसीलिए हड्डी के टुकड़े हो गए हैं। पहलवान की बात सुनकर चरितनायक को हार्दिक दुःख हुआ और इस बात का आश्चर्य भी कि आग्रह पूर्वक पूछे जाने पर भी गुरुदेव ने हड्डी टूटने का कारण नहीं बताया। अन्त में इन्होंने पहलवान के कथनानुसार हड्डी का उपचार चालू कर दिया। धर्म के प्रताप से हड्डी धीरे-धीरे ठीक होने लग गई। तदनन्तर मुनिमण्डल का वहाँ से विहार हो गया। ग्रामानुग्राम विहरण करता हुआ मुनिमण्डल एक नगर में पधार गया। नगर के श्रीसंघ ने पूज्य मुनिमण्डल का भाव भरा स्वागत किया। प्रतिदिन धर्म-प्रचार होने लगा श्रद्धालु जनता पूज्य मुनिराजों के प्रवचनों का जीभर कर लाभ उठाने लगी। एक दिन की बात है कि गुरुदेव पूज्य श्री रंगलाल जी महाराज किसी भक्तजन को दर्शन देने जा रहे थे, भक्तिवश नगर के अनेकों जाने माने प्रतिष्ठित सज्जन भी महाराज श्री के साथ-साथ जा रहे थे। संयोगवश जिस ग्रामीण युवक ने महाराज श्री के कन्धे पर लट्ठ से प्रहार किया था वह भी वहाँ पर आ पहुँचा। करबद्ध हुए अनेक नगर सेठों के साथ जा रहे मुनिवर को देखकर आश्चर्य चकित रह गया। वह विचार करने लगा—जिसको लट्ठ से मैंने प्रताड़ित किया था, यह तो कोई प्रतिष्ठित और ऊँचा सन्त दिखाई देता है इसके तो नगर के बड़े-बड़े सेठ पुजारी और सेवक हैं। इतना विचार आते ही लज्जा के मारे वह पानी-पानी हो गया। आज उसको पता चला कि जिस व्यक्ति को तू चलता-फिरता एक बदमाश भिखारी समझा था यह तो लब्धप्रतिष्ठ, त्यागी, वैरागी और पहुंचा हुआ उच्चकोटि का एक महान साधु है। और संसार के विशाल वैभव को ठोकर मारकर जैन सन्त बनने वाला पवित्रात्मा एक महात्मा है। अपनी नीचता पर दृष्टिपात करती हुई उसकी अन्तरात्मा पश्चात्ताप और ग्लानि से विह्वल हो उठी। और उसकी अन्तर्चेतना मुनिराज से क्षमा मांग कर अपना पाप धोने के लिए तिलमिलाने लगी। अन्त में, वह तत्काल महामहिम, गुरुदेव पूज्य श्री रंगलाल जी महाराज के चरणों में गिर पड़ा, और पश्चात्ताप के आंसुओं से उसने गुरुदेव के चरणकमलों को आर्द्र बना डाला। पूछने पर उसने पश्चात्तपूर्वक अपने घर में सघटित सारी घटना कह सुनाई और क्षमा मांगते हुए निवेदन किया—

सन्त जी महाराज ! मुझे क्षमा करो मैं बड़ा पापी और आपका गुनाहगार हूँ। मैं सोचता हूँ जब मेरा हाथ उठा था वह वहीं टूट क्यों न गया ? महाराज ! बड़े-बड़े सेठ तो आपके पावन चरणों का स्पर्श करने को तरसते हैं और मैं एक ऐसा पामर अधम, पापात्मा, नीच व्यक्ति हूँ जिसने आपके कन्धे पर लट्ठ दे मारा। इस पाप का भुगतान मैं कहाँ करूँगा ? मुझे तो भगवान् ! नरक में भी जगह नहीं मिलेगी (रोता हुआ और चरण कमलों का स्पर्श करता हुआ) आप दयालु हैं, कृपालु हैं, बख्शनहार महापुरुष हैं, मुझ पापी को माफ करदो।

पाठक जानते ही हैं कि हमारे महामहिम मुनिराज श्री स्वामी रंगलाल जी महाराज के हृदय में तो रोष या जोश का चिन्ह भी नहीं था, इन्होंने तो इस घटना को भी अपनी जिह्वा पर आने नहीं दिया, शिष्यमण्डल के सानुरोध सविनय पूछने पर भी हड्डी टूटने का कारण नहीं बताया, फिर यहाँ क्रोध का क्या काम हो सकता है ? इनके मस्तक पर तो क्षमा और समता अठखेलियाँ कर रही थीं। इसके अलावा, इनकी यह भी हार्दिक भावना थी कि इस दुर्घटना की किसी को जानकारी ही न हो किन्तु यह तो संयोगवश स्वतः ही सामने आ गई। अतएव शान्ति और समता की वर्षा करते हुए मुनिराज फरमाने लगे—

वत्स ! हमारे मन में तुम्हारे लिये जरा भी क्रोध या वैर-विरोध नहीं है। सन्त जीवन में तो ऐसे-ऐसे प्रसंग आते ही रहते हैं। भगवान ने २२ परिषह (प्रतिकूलता) बतलाए हैं। उनमें एक वधपरिषह भी होता है। भगवान महावीर स्वामी उत्तराध्ययन सूत्र में फरमाते हैं—

हओ न संजले भिक्खू, मणं पि न पओसए।
तितिक्खं परमं नच्चा, भिक्खु धम्मं विचिन्तए॥
समणं सजयं दंतं, हणेज्जा कोई कत्थई।
नत्थि जीवस्स नासुत्ति, एवं पेहेज्ज संजए॥

—उत्तराध्ययन सू० अ० २/२६-२७

—मारे-पीटे जाने पर भी भिक्षु क्रोध न करे, और तो क्या, दुर्भावना से मन को भी दूषित न करे, तितिक्षा-क्षमा को साधना का श्रेष्ठ अंग जान कर मुनि धर्म का चिन्तन करे।

संयमी और दान्त-इन्द्रियजयी श्रमण को यदि कोई कहीं मारे-पीटे तो उसे यह चिन्तन करना चाहिये कि आत्मा का नाश नहीं होता है।

अपनी बात को चालू रखते हुए परमश्रद्धेय श्री स्वामी रंगलाल जी महाराज पुनः फरमाने लगे कि हम तो वध-परिषह को अपनी साधना या दृढ़ता की परीक्षा की घड़ी मानते हैं। क्षमा या सहिष्णुता का सन्देश देने वाला सन्त यदि क्रोध या आवेश का प्रसंग उपस्थित होने पर क्षमा की आराधना नहीं करता, और सहनशीलता की छाया को छोड़कर वौखलाहट में आ जाता है तो समझो उसके जीवन में केवल कथनी ही कथनी है करणी से बहुत दूर बैठा है। मैं ऐसे क्रोधशील सन्त को अपनी परीक्षा में अनुत्तीर्ण मानता हूँ। दूसरी बात, तुम्हें हमारे साधुजीवन की मर्यादा का बिल्कुल ज्ञान नहीं था, हम जैन साधु जीवन भर पैदल यात्रा करते हैं कच्ची सब्जी का स्पर्श तलक नहीं करते रुपया पैसा कोई अपने पास नहीं रखते जर-जोरू जमीन के सर्वथा त्यागी होते हैं भिक्षा के द्वारा जीवन का निर्वाह करते हैं भिक्षा भी उसी से लेते हैं जो खुशी से देना चाहे। किसी के गले पड़कर भोजन ग्रहण करना हमारे साधु जीवन की मर्यादा नहीं है। तुम इस मर्यादा से अनजाने थे—इसलिये तुम्हें हमारे सम्बन्ध में भ्रान्ति हो गई और उसी भ्रान्ति के कारण तुमने ऐसा कार्य कर दिया। विश्वास रक्खो हम जैन साधु किसी का अनिष्ट या अहित नहीं सोचा करते। हम तो सदा यही भावना भाया करते हैं—

सुखी रहें सब जीव जगत के कोई कभी न घबरावे,
वैर पाप अभिमान छोड़ जग नित्य नए मंगल गावे।
घर-घर चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत दुष्कर हो जावे,
ज्ञान चरित्र उन्नत कर अपना, मनुजजन्म फल सब पावै।

"सर्वे भवन्तु सुखिनः" के महामंत्र का जाप करना तथा इसे जीवनाङ्गी बनाना ही हमारी साधना, चिन्तना और विचारणा का ध्येय होती है अतः तुम निश्चिन्त रहो। हमारी ओर से तुम्हें पूर्णतया क्षमा है। हाँ, एक बात अवश्य कहना चाहेंगे कि आज तुम्हें सन्त समागम से कुछ लाभ अवश्य उठाना चाहिये। यदि तुम मांसाहार अण्डाहार और मदिरापान करते हो तो आज से उसका परित्याग करो, प्रभुभक्ति, भगवान का जाप, साधु सन्तों की सेवा, सत्संग आदि सत्प्रवृत्तियों के द्वारा तुम्हें अपने जीवन का कल्याण करना चाहिये।

पूज्य मुनिराज श्रीजीमहाराज का सान्त्वनापूर्ण वक्तव्य सुनकर ग्रामीण युवक का हृदय बड़ा प्रभावित हुआ। अपने हत्यारे के प्रति भी सन्त जीवन

में इतना प्यार और उसकी इतनी हितचिन्तना यह ख्याल आते ही वह गदगद् हो गया। अन्त में गुरु महाराज के चरणों का स्पर्श करके उसने प्रतिज्ञा करते हुए कहा कि मैं भविष्य में मांसाहार अन्डाहार और मदिरा सेवन का सदा के लिए परित्याग करता हूँ और मैं आपको यह भी विश्वास दिलाता हूँ कि साधु-सन्तों की सेवा, उनका उपदेश श्रवण करता हुआ अपनी जीवन-यात्रा सम्पन्न करूँगा।

परमश्रद्धेय श्री रंगलालजी महाराज के साथ जो नगर के प्रमुख व्यक्ति थे, वे यह दृश्य देखकर दाँतों तले अंगुलियाँ लेने लगे, सभी अवाक् रह गए, महाराज श्री की अनुपम सहिष्णुता तथा क्षमाशीलता ने सबकी आँखें खोल दीं। सबने करबद्ध होकर विनम्र निवेदन किया कि गुरुदेव! आप धन्य हैं, आप ने तो क्षमा की आदर्शता को साकार बना के दिखा दिया है। "अहिंसा के आगे हिंसा नतमस्तक हो जाती है अहिंसा का महाप्रकाश प्रकाशमान होने पर जन्मजात वैरी भी आपसी वैरविरोध को समाप्त कर देते हैं," यह सत्य आपके जीवन में व्यवहार का रूप धारण कर रहा है। भगवान महावीर की—"शान्ति से क्रोध जीत जाता है"[1] यह वाणी आपके जीवन की सम्पत्ति बन गई है। अन्त में समस्त श्रद्धालु जनता ने श्री स्वामी रंगलाल जी महाराज के जयकारों के साथ आकाश को गुंजा दिया।

पूज्य गुरुचरणों का वियोग—

मान्य चरितनायक के पूज्य गुरुदेव श्री रंगलाल जी महाराज विहरण करते हुए 'रीयां शेरसिंह' नामक गाँव में पधारे। इस गांव के लोग बड़े आस्थावान और निष्ठावान थे। धर्मध्यान की ओर सबका झुकाव था। प्रातःकाल और सायंकाल लोग महाराज श्री के कल्याणकर दर्शन करते उनकी कल्मषहारिणी धर्म-वाणी का लाभ उठाते। इस तरह सर्वत्र धर्म का बड़ा सुन्दर वातावरण बन गया था। चौमास-काल निकट था अतः गाँव निवासियों के विशेष आग्रह तथा अत्यधिक भक्तिभाव देखकर महाराज श्री ने वि० सं० १९७८ का चातुर्मास इसी गाँव में करने का निर्णय कर दिया।

---

[1] उवसमेण हणे कोहं, माणं मद्दवया जिणे।
माय चज्जव भावेण लोहं संतोसओ जिणे॥

—दशवैकालिक अ० ८/३९

उपशम=शान्ति से क्रोध, मार्दव=नम्रता से मान, सरलता से माया=कपटभाव और सन्तोष से लोभ जीता जाता है।

विद्वान और व्याख्याता मुनिवरों का चातुर्मास पाकर गाँव का कण-कण पुलकित हो रहा था। सबने धार्मिक उल्लास तथा उत्साह इतना अधिक दिखाया कि स्वयं मुनिमण्डल भी अश-अश कर उठा। इस तरह खूब आनन्द मंगल के साथ चौमास का पहला श्रावण-मास समाप्त हो गया।

चातुर्मास का द्वितीय भाद्रमास चल रहा था, कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि थी, रात का समय था। सम्मानास्पद पूज्य श्री रंगलाल जी महाराज धर्म-ध्यान के चिन्तन में आनन्दविभोर हो रहे थे। अचानक इनके अन्तःकरण में एक स्फुरणा जाग उठी कि आज आमरण अनशन (संथारा) अङ्गीकार कर लिया जाए। इस अनुभूति के होते ही इन्होंने तत्काल समाधि-मरण की दृष्टि को आगे रखकर संथारा-व्रत ग्रहण कर लिया। संथारा जैन-जगत का एक पारिभाषिक शब्द है। जीवन के अन्तकाल में किया जाने वाला आमरण अनशन संथारा कहलाता है। संथारा ग्रहण करने का अर्थ है—मृत्यु से जरा भी भयभीत न होना, उसका स्वागत करने के लिए अपने को सर्वथा तैयार कर लेना। संथारा करने के पीछे मुख्य उद्देश्य समाधिपूर्वक मरने का ही रहा करता है। क्योंकि जो व्यक्ति संथारा करता है जीवन की अन्तिम घड़ी की सोत्साह और धर्म ध्यानपूर्वक प्रतीक्षा करता है वह मरने से जरा भी भयभीत नहीं होता। पूर्णशान्ति के साथ अपने प्राणों का व्युत्सर्ग करता है। धर्मध्यान-पूर्वक पूर्ण शान्त भाव से प्राणों को छोड़ना ही समाधिमरण माना गया है। इसके अतिरिक्त एक बात और समझ लेनी चाहिए कि संथारा ग्रहण करने का हर किसी व्यक्ति को अधिकार नहीं है। जिस व्यक्ति को अपने अन्तकाल का बोध हो जाता है और वह यह जान लेता है कि अब मेरे जीवन की अन्तिम घड़ी निकट आ गई है वही व्यक्ति आमरण अनशन व्रत को धारण कर सकता है या जिस व्यक्ति के जीवन का मृत्युकाल किसी अनुभवी या विशिष्ट ज्ञानी को मालूम हो जाय तो वह ज्ञानी पुरुष भी उस मरणासन्न व्यक्ति को संथारा करवाने के योग्य हो सकता है। भाव यह है कि किसी अनजाने व्यक्ति को न तो स्वयं संथारा करने का अधिकार है और नाही किसी दूसरे को कराने का। यदि कोई अनजाना व्यक्ति दुःखों से निराश होकर संथारा ग्रहण कर ले, अर्थात् जीवन की अपेक्षा मृत्यु को अधिक महत्व देने लगे तो ऐसे व्यक्ति का यह संथारा कई बार आत्महत्या का रूप धारण कर लेता है जो कि सर्वथा अवांछनीय है और दुर्गति का देने वाला समझना चाहिए।

क्षमामूर्ति श्री स्वामी रंगलाल जी महाराज बहुत ऊँचे उठे हुए महापुरुष

थे, परिणामस्वरूप इन्हें अपनी अन्तिम घड़ी का आभास हो गया था और इसीलिए इन्होंने बिना किसी से कुछ कहे सुने संथारा या आमरण-अनशन अङ्गीकार कर लिया। हमारे चरितनायक श्री छगनलाल जी महाराज को जब पता चला कि महामहिम पूज्य गुरुदेव श्री जीवनलाल का अन्तिम समय आ गया है और इन्होने आमरण अनशन भी ग्रहण कर लिया है तब इनका आकुल व्याकुल और खेद-खिन्न हो जाना स्वाभाविक ही था। पूज्य गुरु महाराज का वियोग किसको असह्य नहीं होता ? साधारण मनुष्य की तो बात ही क्या है यहाँ तो बड़े-बड़े ज्ञानी, ध्यानी और योगी पुरुष भी बौखला उठते हैं। इतिहास का कौन विद्यार्थी नहीं जानता कि जब पावापुरी नगरी में कार्तिक अमावश्या की काली रात को विश्ववन्द्य, मङ्गलमूर्ति श्रमण भगवान महावीर स्वामी का निर्वाण हो गया था, पार्थिव शरीर को छोड़कर भगवान मुक्तिधाम में जा विराजे थे तो उस समय उनके प्रधान शिष्य चौदह हजार साधुओं के नायक तथा चार ज्ञान के धारक होने पर भी महामान्य इन्द्रभूति जी गौतम बच्चों की भाँति फूट-फूट कर रोने लगे थे। जब इतने बड़े तपस्वी तेजस्वी और वर्चस्वी महापुरुषों की यह दशा हो सकती है तो अपने जैसे साधारण व्यक्तियों का तो कहना ही क्या है ? सांसारिक जीवन में हम सब प्रत्यक्ष देखते हैं कि जन्मदाता पिता का विरह पुत्र को दिङ्मूढ़ और पागल जैसा बना देता है, तब जन्म-मरण के बन्धन तोड़नेवाले तथा अन्तर्जगत का ज्ञान के आलोक से आलोकित करनेवाले धर्मपिता की पावन छत्र-छाया जब सर से उठती हुई दृष्टिगोचर हो तो कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो गुरुवियोगजन्य अन्तर्वेदना से सिहर न उठे ? परमपूज्य गुरुदेव के संथारे की बात जानकर हमारे चरितनायक की आंखों आगे अन्धकार छा गया। ये विह्वल हो उठे। रह-रह के इनके हृदय से यही आवाजें उठ रही थीं कि क्या ये ज्ञान के दिवाकर सदा के लिए अस्त हो जाएँगे ? क्या मेरे धर्मपिता का पावन वरद हाथ अब मेरे सर से उठ जायेगा ? क्या अब हम सचमुच अनाथ हो जायेंगे ? चरितनायक अपने आप को सँभाल नहीं सके परन्तु समय की गति के आगे किसका वश चलता है ? कालचक्र की गति आज तक न कोई रोक सका है ? और ना ही इसके रुक जाने की कभी संभावना की जा सकती है। व्यवहार जगत में हम प्रतिदिन देखते हैं जिसका उदय होता है, समय आने पर उसका अस्त भी होता है, जो जन्मता है वह एक दिन मरता भी है, जीवन की अनित्यता को संस्कृत के एक विद्वान आचार्य ने कितनी सुन्दरता से अभिव्यक्त किया है—

जन्मिनां प्रकृतिर्मृत्युः, विकृतिर्जीवितं पुनः ।
ततः स्वभावसिद्धार्थे, को विषादः विवेकिनाम् ॥

—जन्म धारण करने वाले व्यक्तियों की मृत्यु प्रकृति है, अर्थात् जन्म लेने वालों का मर जाना प्राकृतिक है, स्वाभाविक है, स्वभावसिद्ध है। इसके विपरीत, जीवन विकृति है, कृत्रिम है, सदा न रहने वाला है। अतः स्वभाव-सिद्ध घटना के संघटित हो जाने पर विवेकशील और बुद्धिमान लोग विषाद नहीं करते, दुःखी नहीं होते।

जैनागमों का परिशीलन करने से तो जीवन की अनित्यता सूर्य की भाँति साकार होकर सामने खड़ी दिखाई देती है। उदाहरणार्थ एक दो उद्धरण निवेदन करता हूँ—

माणुस्सं च अणिच्चं वाहिजरा-मरण-वेयणा-पउरं"

—औपपातिक सूत्र ३४

—मनुष्य का शरीर अनित्य है, क्षणभंगुर है तथा व्याधि-रोग, जरा-बुढ़ापा, मरण-मृत्यु और वेदना से परिपूर्ण है।

डहरा वुड्ढाय पासह, गब्भत्था वि चयन्ति माणवा ।
सेणे जह वट्टयं हरे, एवं आउखयम्मि तुट्टइ ॥

—सूत्र० श्रु० १, अ० २ उ० १, गा० २

—जगत् की ओर दृष्टिपात करो, बालक और वृद्ध सभी मृत्यु को प्राप्त होते हैं। कई मनुष्यों का तो गर्भावस्था में ही अवसान हो जाता है। जैसे बाज पक्षी तितर पर झपटा लगा के उनका संहार करता है, ठीक वैसे ही आयुष्य का क्षय होने पर मृत्यु मनुष्य पर चोट लगाती है और उनका प्राण हर लेती है।

जहेह सीहो य मियं गहाय,
मच्चु नरं नेइ हु अन्तकाले ।

—उत्त० अ० १३/२२

—जैसे इस लोक में सिंह मृग को पकड़ कर ले जाता है, उसी प्रकार अन्त समय में मृत्यु मनुष्य को पकड़ कर परलोक में ले जाती है।

राजा हो या रंक, योगी हो या भोगी, सज्जन हो या दुर्जन, ज्ञानी हो या अज्ञानी, पापात्मा हो या धर्मात्मा, धनी हो या निर्धन, निर्बल हो या

बलवान, पठित हो या अपठित, रोगी हो या स्वस्थ, स्त्री हो या पुरुष, मित्र हो या शत्रु सभी को मृत्यु का ग्रास बनना होता है। किसी को ज्वर चढ़ जाए तो डाक्टर ज्वर-नाशक औषधि देकर उसका उपचार कर देता है, शिरोव्यथा को भी योग्य डाक्टर नियंत्रण में ले आता है, अधिक क्या, रोगों में सर्वप्रधान कुष्ठरोग भी जैसे-तैसे काबू में आ जाता है, परन्तु मृत्यु एक ऐसा रोग है, जिसकी कोई औषधि नहीं है। जब यह अपना आक्रमण करती है तो संसार की कोई शक्ति इसे रोक नहीं सकती। श्री कल्पसूत्र की मान्यता के अनुसार पहले देवलोक के अधिनायक शक्रेन्द्र महाराज ने जब भगवान महावीर से केवल अन्तर्मुहूर्त अपनी आयु बढ़ाने की प्रार्थना की थी तब महामहिम भगवान महावीर ने यही फरमाया था कि आयु[1] का संस्कार नहीं हो सकता, आयु जब समाप्त होने पर आ जाए तो इसे बढ़ाया नहीं जा सकता, भाव यह है कि मृत्यु की घड़ी आ जाने पर आकर ही रहता है, इसकी गति में व्यवधान डालने की किसी में क्षमता नहीं है। जब अनन्तबली तीर्थंकर भी मौत को नहीं रोक सकते, तो उसे और कौन रोक सकता है ? संस्कृत के विख्यात नाटककार श्रीभास ने—रज्जुच्छेदे के घटं धारयन्ति ?"[2]—यह कर मृत्यु रानी के वार को रोकने में अपने को सर्वथा असमर्थ उद्घोषित किया है।

हमारे मान्य चरितनायक मृत्यु की अवश्यभाविता को भलीभाँति जानते थे, परन्तु पूज्य गुरुदेव के अनुराग के कारण गुरु चरणों का वियोग इन्हें वज्राहत की भाँति तड़पा रहा था, इनको अपनी कोई भी सुध-बुध नहीं रही। अन्त में दशमी का दिन आ गया, हमारे चरितनायक मौनावलम्बी होकर ये गुरुचरणों में बैठ गए, और क्षमा की जीती जागती मूर्ति गुरुमहाराज के मुखमण्डल को टकटकी लगा कर देखने लगे। परन्तु "होनहार होकर ही रहती है" की मान्यतानुसार चरितनायक के देखते-देखते ही इनके वन्दनीय गुरुदेव श्री स्वामी रंगलालजी महाराज धर्मध्यान में बैठे ही बैठे शाश्वत निद्रा में सदा के लिए विलीन हो गए। पूज्य गुरुदेव को जोर से एक लम्बा श्वास आया और उसके साथ ही इनके प्राण पखेरू उड़ गए। गुरुदेव के दिवंगत हो जाने पर मान्य चरितनायक का हृदय भर आया, इनकी आँखें स्नेहाश्रुओं

---

१ "असंखयं जीवियं मा पमायए" —उत्तराध्ययन० अ० ४/१

२ रस्सी के टूट जाने पर घड़े को धारण करने का सामर्थ्य किस में है ? अर्थात् कूप में जब घड़े की रस्सी टूट जाती है तो घड़ा धड़ाम से कूप में जा गिरता है, उसे बचाने का किसी में सामर्थ्य नहीं है।

से परिप्लावित हो गईं। गुरु महाराज के शरीर से ये लिपट गए। रोते हुए "गुरु महाराज, गुरु महाराज" ये आवाजें मारने लगे। चरितनायक के करुणा-जनक दृश्य को जिस किसी ने देखा, वह अपने पर नियंत्रण नहीं रख सका। उसने भी आँसुओं के द्वारा चरितनायक के प्रति अपनी समवेदना प्रकट की।

"रीया शेरसिंह" नामक गाँव में परमपूज्य श्री रंगलालजी महाराज के स्वर्गवास की खबर बिजली की तरह सर्वत्र फैल गई। प्रत्येक जनमानस महाराज श्री के स्वर्गवास के कारण बड़ा व्यथित और उदासीन हो गया था। गाँव के लोग पूज्य महाराज श्री के निवास-स्थान पर पहुँच गए। महाराज श्री के शव को देखकर जहाँ सबको रोना ही आ रहा था, वहाँ इस बात का महान् आश्चर्य भी हो रहा था कि इनके मस्तक पर साधुता का अपूर्व तेज और ओज अपनी निराली छटा दिखला रहा है। सबको ऐसा ही लग रहा था कि महाराज श्री जी खूब मस्ती से विश्राम कर रहे हैं। अन्त में, स्थानीय श्री संघ ने महाराज श्री के स्वर्गवासी हो जाने की पार्श्ववर्ती नगरों को सूचना भेज दी। महाराज श्री के दिवंगत हो जाने का दुःखद समाचार पाकर बाहर की श्रद्धालु जनता हजारों की संख्या में गाँव में पहुँच गई, महाराज श्री के शव को एक सुन्दर पालकी में रखा गया, भगवान महावीर तथा मुनिराज श्री स्वामी रंगलालजी महाराज के गगनभेदी जयकारों के साथ पालकी उठाली और जलूस के रूप में गाँव के मुख्य मार्गों में से लेजाकर श्मशान में पहुँचादी गई। शवयात्रा का वह दृश्य बड़ा दर्शनीय एवं संस्मरणीय था। जैन-अजैन सब लोगों ने बिना किसी भेदभाव के उसमें भाग लिया। अन्त में, महाराज श्री के शव को चन्दन की चिता पर रखकर अग्निदेव के समर्पण कर दिया। भगवान महावीर, जैन धर्म, श्री स्वामीदासजी महाराज तथा स्वर्गीय श्री स्वामी रंगलालजी महाराज के जयकारों ने आकाश को गुंजा दिया। जयकारे धायं-धायं करके जलती हुई चिता में से निकले, धूम के घोड़ों पर चढ़कर आकाश की ओर बढ़ते हुए मानों स्वर्गलोक में विराजमान अपने इष्टदेव पूज्य श्री रंगलालजी महाराज के पावन चरणों में पहुँचने के लिए अहमहमिकया एक दूसरे से आगे जाने का प्रयास कर रहे थे।

वनराज केसरी के उपसर्ग का हटना

बताया जा चुका है कि शास्त्रविशारद श्री स्वामी रंगलाल जी महाराज स्वर्गधाम में जा विराजे। गुरुदेव के स्वर्गासीन हो जाने के कारण हमारे मान्य चरितनायक श्री छगनलाल जी महाराज का हृदय बड़ा उदासीन रहने

लगा था, गुरुवियोग-जन्य वेदना इनको बड़ी अखर रही थी। परन्तु धीरे-धीरे मन शान्त होने लगा, गुरुमहाराज के उपदेशों, सन्देशों और आदेशों को ही गुरु का प्रतीक मानकर चरितनायक अपनी जीवन-यात्रा सम्पन्न करने लगे। "रीयां शेरसिंह" का चातुर्मास समाप्त करके इन्होंने तपस्वी श्री बख्तावरमल जी महाराज आदि मुनिवरों के साथ वहाँ से विहार कर दिया। एक बार इनके जीवन में ऐसे मार्ग से विहार करने का अवसर आया। जिसमें प्रायः शेर का आवागमन होता ही रहता था। पहले तो उस मार्ग पर कोई जाता ही नहीं था, यदि विवशता से किसी को जाना ही होता था तो उसका हृदय सदा भयभीत और आतंकित बना रहता था। हमारे चरितनायक को भी अन्य कोई मार्ग न होने से लाचार होकर उसी मार्ग से विहार करना पड़ा। इनका मार्गदर्शन एक भील कर रहा था। समय की बात समझिए कि कुछ दूर ही चले थे कि भील ने वनराज केसरी को दूर से आते देखा। शेर की आकृति देखते ही भील घबरा गया और जोर से चिल्लाया—

बावजी ! बावजी ![1] प्राण प्यारे हों तो अभी इस वृक्ष पर चढ़ जाओ, सामने शेर आ रहा है, अपन में से किसी को जीता नहीं छोड़ेगा। वृक्ष पर चढ़ने के अलावा जान बचाने का अन्य कोई मार्ग दिखाई नहीं देता। जल्दी करो।

शेर के आ जाने की वार्ता सुनकर मुनिमण्डल हतोत्साह नहीं हुआ। सभी मुनि शान्त थे। भील की वार्ता का समाधान करते हुए चरितनायक बड़े शान्त भाव से फरमाने लगे—भीलराज ! हम जैन सन्त हैं। जैन सन्तों की मर्यादानुसार हरे वृक्ष का स्पर्श करना भी निषिद्ध है। इस पर चढ़ने का तो प्रश्न ही पैदा नहीं होता।

चरितनायक की बात सुनकर भील पुनः कहने लगा—बावजी ! जीवन से बढ़कर कुछ नहीं होता। यदि जीवन ही गया तो ये नियम कहाँ रहेंगे ? छोड़ो इस वहम को। जल्दी से वृक्ष पर चढ़ जाओ। जीवित रहने पर नियमों की पालना करते रहना। जिद छोड़ो और अपने प्राण बचाओ। मैं तो गृहस्थ हूँ, बालबच्चेदार हूँ। अतः वृक्ष पर चढ़ता हूँ। तुम अपनी जानो। इतना कहकर भील तो तत्काल वृक्ष पर चढ़ गया।

---

[1] मारवाड प्रान्त में पूज्य पुरुषों के लिए "बाव जी" शब्द का प्रयोग किया जाता है।

चरितनायक श्री ने उस भील को समझाते हुए पुनः कहा कि जीवन तो न जाने कितनी बार हाथ आया है। अनादिकाल से हम और तुम इस जीवन को ही अधिगत करते चले आ रहे हैं, परन्तु धर्माराधन, व्रत नियम का पालन करना ही कठिन कार्य होता है। नियम-परिपालना की ऐसी घड़ी तो कभी-कभी हाथ आती है। दूसरी बात, सिंह का उपसर्ग तो हमारे नियम की परीक्षा का काल है। आराम और सुखसुविधा में तो नियम की परिपालना प्रत्येक व्यक्ति ही कर लेता है, परन्तु प्रतिकूल परिस्थितियों में जबकि मृत्यु का सुदर्शन-चक्र में सिर पर मंडरा रहा हो, व्रत का निभाना सच्ची बहादुरी कही जाती है। संकटकाल में अपनी मर्यादा का पालन करने में ही जीवन की कृतकृत्यता और सफलता हुआ करती है। इसके अलावा, मरना तो एक दिन है ही, मृत्यु की घड़ी में आशंका के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। यदि अपने व्रत-नियम की पालना करते हुए मरना पड़े तो यह मरण जीवन के लिए एक वरदान बन जाता है, स्वर्ग और अपवर्ग के द्वार खोल देता है। अतः तुम हमारी चिन्ता न करो। सर्वथा निश्चिन्त रहो। यदि हमें मरना है तो संसार की कोई शक्ति हमें बचा नहीं सकती। हाँ, यदि हमें जीवित रहना है तो हमें कौन मार सकता है? एक शेर तो क्या, लाखों शेर भी हमारा बाल बाँका नहीं कर सकते। चरितनायक के इस वक्तव्य का अवशिष्ट समस्त मुनिवरों ने समर्थन किया। चरितनायक की भाँति अन्य समस्त सन्तों ने भी अपने मन को सर्वथा शान्त रक्खा और किसी ने अपने धैर्य को भंग नहीं होने दिया।

परम श्रद्धेय तपस्वी श्री बख्तावरमल जी महाराज हमारे चरितनायक से वयोवृद्ध थे और दीक्षा में भी बड़े थे। अतः उन्होंने सबको लोगस्स का ध्यान करने का आदेश दिया और स्वयं भी वे शान्त मुद्रा में वीतराग प्रभु के ध्यान में खड़े हो गये। समस्त मुनिमण्डल बिना किसी भय के ध्यानमग्न खड़ा था। किसी के मन में भी मृत्यु-जनित कोई भीति या आशंका नहीं थी, परन्तु भील वृक्ष पर चढ़ा हुआ भी थर-थर काँप रहा था। इतने में शेर भागता हुआ सामने आया और मुनिवरों के निकट से होकर चुपचाप आगे निकल गया। वृक्ष पर चढ़ा भील मुनिराजों का अवर्णनीय साहस देखकर अवाक् रह गया, उसे आज पता चला कि संयम साधना में, भगवान के भजन में समता भाव तथा प्राणिमात्र के प्रति विशुद्ध मैत्रीभाव में कितना विलक्षण और आश्चर्य-जनक बल पाया जाता है? वह तत्काल वृक्ष से नीचे उतरा और मुनिराजों के चरणकमलों में नतमस्तक हो गया और उसने करबद्ध होकर प्रार्थना की—

बाबजी! सुना करता था कि सन्तों के निर्वैरता के सामने बकरी-शेर

अतीत कालीन, वर्तमान काल में होने वाले रोग वर्तमान कालीन और भविष्य में होने वाले रोग अनागत-कालीन रोग कहे जाते हैं। अनागत-कालीन रोग तो केवल सम्भावना-मात्र ही होते हैं, अतः उनसे व्यक्ति का बचना आसान है, केवल असत्प्रवृत्तियों से बचने के लिए सतर्क सावधान और जागरूक रहने की आवश्यकता होती है। विष का यदि सेवन न किया जाए तो उसकी विनाशकता व्यक्ति का क्या बिगाड़ सकती है ? अतीतकालीन रोगों की भी चिन्ता करना व्यर्थ है, भूतकाल तो भूत ही होता है, उसको याद करना अपने आपको दुःखों और चिन्ताओं के भयंकर जाल में उलझाना है। भूतकाल की मर्मज्ञता के भण्डार किसी महापुरुष को तभी तो—"गई वस्तु सोचे नहीं" यह महाप्रकाश प्रसारित करना पड़ा। रही वर्तमानकालिक रोगों की बात, इनसे अवश्य खतरा होता है, ये जीवन के अन्तःस्वास्थ्य को अवश्य बिगाड़ देते हैं। इनसे बचने का उपाय समझ लेना परमावश्यक होता है। इन रोगों का मूल कारण जीव का स्वकृत अशुभ कर्म है अशुभ कर्म के प्रताप से ही जीवन में दुःख-क्लेशों और आपदाओं की वर्षा होती है, जीव के आशा-पोत को निराशा के जाल में निमग्न करने वाला अशुभ कर्म ही है। यह अशुभ कर्म दो प्रकार का होता है—अतीतकालीन और वर्तमान-कालीन। जिन अशुभ कार्यों की सृष्टि पहले की जा चुकी है, वह अतीत कालीन अशुभ कर्म और जिन अशुभ कर्मों की उत्पत्ति वर्तमान काल में चल रही है वे कर्म वर्तमान कालीन अशुभ कर्म कहलाते हैं। वर्तमानकालीन अशुभ कर्म से बचने का महा-मार्ग संयम की आराधना है। संयम की आराधना से नूतन अशुभ कर्मों का आस्रव रोक दिया जाता है। अतीतकालीन अशुभ कर्मों से बचने का सर्वोत्तम उपाय तप बतलाया गया है। तप के द्वारा ही पूर्व संचित कर्मों का विनाश किया जाता है। इस सम्बन्ध में भगवान महावीर ने एक दिन फ़रमाया था—

तपस्या भगवती के चरणों में

आत्मदमन के दो साधन—

पावापुरी की अन्तिम धर्म सभा में भगवान महावीर ने श्री उत्तराध्ययन सूत्र का व्याख्यान फरमाया था, इसके प्रथम अध्ययन की सोलहवीं गाथा में भगवान ने आत्मदमन के साधनों का निर्देश करते हुए प्रतिपादन किया था—

> **वरं मे अप्पा दन्तो, संजमेण तवेण य।**
> **माहि परेहि दम्मन्तो, बंधणेहि वहेहि य॥**

—शिष्य विचार करे—अच्छा है कि मैं स्वयं ही संयम और तप के द्वारा स्वयं पर विजय प्राप्त करूँ। बन्धन और वध के द्वारा दूसरों से मैं दमित=प्रताड़ित किया जाऊँ, यह अच्छा नहीं है।

भगवान महावीर ने आत्मदमन की साधन सामग्री में—संयम और तप को मुख्यरूप से ग्रहण किया है। इन दोनों के परिपालन करने वाला साधक धीरे-धीरे अपनी आत्मवृत्तियों पर नियन्त्रण पा लेता है। संयम शब्द का अर्थ है—इन्द्रियनिग्रह, हिंसा, असत्य, स्तेय, मैथुन और परिग्रह इन पाँच आस्रवों से तीन करण, तीन योग द्वारा निवृत्त होना अर्थात्—मन, वचन और काया से हिंसा आदि दोषों का न स्वयं सेवन करना न किसी दूसरे को इनके आसेवन की प्रेरणा प्रदान करना तथा ना ही इन दोषों का सेवन करने वाले किसी व्यक्ति का समर्थन करना। संयम शब्द की इस अर्थ विचारणा से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि संयम मनुष्य के वर्तमान कालिक जीवन की असत्प्रवृत्तियों का परिमार्जन करता है, वर्तमान काल में हिंसा आदि दोषों के आचरण से जो कर्म-बन्ध होता है, उसे रोकने में सहायक होता है।

रोग-जगत का गंभीरता से परिशीलन करने पर पता चलता है कि इसके तीन प्रकार उपलब्ध होते हैं। जैसे—१. अतीतकालीन, २. वर्तमान कालीन, और ३. अनागतकालीन। अतीत=भूतकाल में होनेवाले रोग

अतीत कालीन, वर्तमान काल में होने वाले रोग वर्तमान कालीन और भविष्य में होने वाले रोग अनागत-कालीन रोग कहे जाते हैं। अनागत-कालीन रोग तो केवल सम्भावना-मात्र ही होते हैं, अतः उनसे व्यक्ति का बचना आसान है, केवल असत्प्रवृत्तियों से बचने के लिए सतर्क सावधान और जागरूक रहने की आवश्यकता होती है। विष का यदि सेवन न किया जाए तो उसकी विनाशकता व्यक्ति का क्या बिगाड़ सकती है ? अतीतकालीन रोगों की भी चिन्ता करना व्यर्थ है, भूतकाल तो भूत ही होता है, उसको याद करना अपने आपको दुःखों और चिन्ताओं के भयंकर जाल में उलझाना है। भूतकाल की मर्मज्ञता के भण्डार किसी महापुरुष को तभी तो—"गई वस्तु सोचे नहीं" यह महाप्रकाश प्रसारित करना पड़ा। रही वर्तमानकालिक रोगों की बात, इनसे अवश्य खतरा होता है, ये जीवन के अन्तःस्वास्थ्य को अवश्य बिगाड़ देते हैं। इनसे बचने का उपाय समझ लेना परमावश्यक होता है। इन रोगों का मूल कारण जीव का स्वकृत अशुभ कर्म है अशुभ कर्म के प्रताप से ही जीवन में दुःख-क्लेशों और आपदाओं की वर्षा होती है, जीव के आशा-पोत को निराशा के जाल में निमग्न करने वाला अशुभ कर्म ही है। यह अशुभ कर्म दो प्रकार का होता है—अतीतकालीन और वर्तमान-कालीन। जिन अशुभ कार्यों की सृष्टि पहले की जा चुकी है, वह अतीत कालीन अशुभ कर्म और जिन अशुभ कर्मों की उत्पत्ति वर्तमान काल में चल रही है वे कर्म वर्तमान कालीन अशुभ कर्म कहलाते हैं। वर्तमानकालीन अशुभ कर्म से बचने का महा-मार्ग संयम की आराधना है। संयम की आराधना से नूतन अशुभ कर्मों का आस्रव रोक दिया जाता है। अतीतकालीन अशुभ कर्मों से बचने का सर्वोत्तम उपाय तप बतलाया गया है। तप के द्वारा ही पूर्व संचित कर्मों का विनाश किया जाता है। इस सम्बन्ध में भगवान महावीर ने एक दिन फरमाया था—

तवेणं भंते जीवे किं जणयइ ?
तवेणं वोदाणं जणयइ। —उत्तरा० अ० २६/२८

—शिष्य ने प्रश्न किया कि भगवन् ! तप से जीव को क्या प्राप्त होता है ? उत्तर में भगवान फरमाते हैं—तप से जीव पूर्व संचित कर्मों का क्षय करके व्यवदान=विशुद्धि को प्राप्त होता है।

तप किसे कहते हैं ?

तप शब्द का शाब्दिक अभिप्राय जान लेना भी आवश्यक है। तप शब्द

तप सन्तापे धातु से बना है इसका अर्थ है—जो तपाता है। इस व्युत्पत्ति के आधार पर अग्नि और सूर्य-किरणें भी ताप पहुँचाने के कारण तप शब्द से व्यवहृत की जा सकती है किन्तु ऐसा नहीं होता, क्योंकि यह शब्द यौगिक =व्युत्पत्तिलभ्य होता हुआ भी अर्थ-विशेष में रूढ़ हो गया है। जैसे पंकज शब्द है। पङ्कात् जायत इति पङ्कः अर्थात् जो पंक=कीचड़ से पैदा हो उसे पंकज कहते हैं। पंकज शब्द की इस व्युत्पत्ति को आधार बनाकर चलें तो कीचड़ से पैदा होने वाले कमल, मेंढक आदि सभी पदार्थों का पंकज शब्द से ग्रहण हो जाना चाहिए किन्तु साहित्यकारों को यह इष्ट नहीं है। क्योंकि पंकज शब्द यौगिक होता हुआ भी आज 'कमल' इस अर्थ में रूढ़ हो गया है। इसी भाँति तप शब्द का "जो तपाता है" यह यौगिक अर्थ भी सर्वत्र ग्राह्य नहीं है। आज तप शब्द एक विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त होने लग गया है। वह विशिष्ट अर्थ है—जिस साधना से पूर्व संचित कर्मों का क्षय हो इसे तप कहते हैं। अथवा—कर्मों को भस्म बनाने के लिए आत्मा को तपाना तप कहलाता है।

जैन तथा अजैन साहित्य में तप

तप एक दिव्य रसायन है जो शरीर और आत्मा के यौगिक भाव को मिटा कर उसको=आत्मा को अपने मूल स्वभाव में स्थापित करता है। ज्ञान, दर्शन और चारित्र की भाँति तप भी मुक्ति का मार्ग है। तप को लेकर जैन साहित्य तथा जैनेतर-साहित्य ने बहुत कुछ लिखा है। उदाहरणार्थ कुछ एक उद्धरण निवेदन करता हूँ—

"तापयति अष्ट प्रकारं कर्म इति तपः"

—आवश्यक मलयगिरि खण्ड २ अ० १

—जो आठ प्रकार के कर्मों को तपाता है उसका नाम तप है।

"तवेण परिसुज्झइ" —उत्तरा० अ० २८/३५

तपस्या से आत्मा पवित्र होती है।

"भवकोडीसंचियं कम्मं तवसा निज्जरिज्जइ"

—उत्तराध्ययन० अ० २०/६

—करोड़ों भावों के संचित कर्म तपस्या से जीर्ण होकर झड़ जाते हैं।

वेदस्योनिषत् सत्यं, सत्योपनिषद् दमः।
दमस्योपनिषद् दानं, दानस्योपनिषत् तपः॥

—महाभारत शान्तिपर्व अ० २५१/११

—वेद का सार सत्य वचन है, सत्य वचन का सार इन्द्रियों का संयम है, संयम का सार दान है और दान का सार तपस्या है।

"तपो हि परमं श्रेयः, संमोहमितरत्सुखम्"

—वाल्मीकि रामायण ७/८४/६

—तप ही परम कल्याणकारी है, तप से भिन्न सुख तो मात्र बुद्धि के सम्मोह को उत्पन्न करने वाला है।

तपसा प्राप्यते सत्त्वं, सत्त्वात् संप्राप्यते मनः।
मनसा प्राप्यते त्वात्मा, ह्यात्मापत्या निवर्तते॥

—मैत्रायणी आरण्यक १४

—तप के द्वारा सत्त्व = ज्ञान प्राप्त होता है, सत्त्व से मन वश में आता है, मन वश में आने से आत्मा की प्राप्ति होती है और आत्मा की प्राप्ति हो जाने पर संसार से छुटकारा मिल जाता है।

"तपसैव महोग्रेण, यद्दुरापं तदाप्यते"

योगवाशिष्ठ ३-६८-१४

—जो दुष्प्राप्य वस्तुएँ हैं वे उग्रतपस्या से ही प्राप्त होती हैं।

यद्दुस्तरं यद्दुरापं, यद् दुर्गं यच्च दुष्करम्।
सर्वं तु तपसा साध्यं, तपोहि दुरतिक्रमम्॥

—मनुस्मृति अ० ११/२३८

—जो दुस्तर है, दुष्प्राप्य है, दुर्गम और दुष्कर है, वह सब तप के द्वारा सिद्ध किया जा सकता है क्योंकि तप दुरतिक्रम है, इसके आगे कठिनता जैसी कोई चीज नहीं है।

"नन्नत्थ निज्जरट्ठयाए तवमहिट्ठेज्जा"

—दशवैकालिक० अ० ६/४

—केवल कर्म-निर्जरा के लिए ही तपस्या करनी चाहिए, इहलोक परलोक व यशःकीर्ति के लिए तप नहीं करना चाहिये।

बलं थामं च पेहाए, सद्धामारोग्गमप्पणो ।
खेत्तं कालं च विन्नाय, तहप्पाणं नियुंजए ॥

—दशवैकालिक० अ० ८/३५

—अपना वल, दृढ़ता, श्रद्धा, आरोग्य, क्षेत्र तथा काल को देखकर आत्मा को तपस्या में लगाना चाहिए ।

तदेवहि तपः कार्य, दुर्ध्यानं यत्र नो भवेत् ।
येन योगा न हीयन्ते, क्षीयन्ते नेन्द्रियाणि च ॥

—वही तप करना चाहिए, जिसमें दुर्ध्यान न हो, योगों में हानि न हो और इन्द्रियाँ क्षीण न हों ।

सउणी जह पंसुगुण्डिया, विहुणिय धंसयइ सियंरयं ।
एवं दविओवहाणवं, कम्मं खवइ तवस्सि माहणे ॥

—सू० श्रु० १, अ० २ उ० १ गा० १५

—जैसे शकुनि नाम का पक्षी अपने शरीर में लगी हुई धुल को पंख फड़फड़ा कर दूर कर देता है वैसे ही जितेन्द्रिय अहिंसक तपस्वी अनशन आदि तप के आराधन से अपने आत्मप्रदेशों पर जमी हुई कर्म रूपी मिट्टी को दूर कर देता है ।

तप के दो मूलभेद

श्री औपपातिक सूत्र में मूल रूप से तप के दो भेद बताए गए हैं । जैसे—वाह्य और २—आभ्यन्तर । वाह्यतप का अधिक सम्बन्ध शरीर से है और आभ्यन्तर तप का सीधा सम्बन्ध आन्तरिक जीवन से होता है । दोनों के ६-६ भेद होने से तप के सव १२ भेद हो जाते हैं । इनमें से वाह्यतप के ६ भेद इस प्रकार हैं—

१. अनशन—आहार के परित्याग कर देने का नाम अनशन है । अनशन में अशन=रोटी चावल आदि खाने योग्य पदार्थ, पान=दूध, पानी आदि पेय पदार्थ, खादिम=वादाम किसमिस आदि मेवे और फल तथा स्वादिम=मुख को स्वादिष्ट बनाने वाले सुपारी, लौंग आदि पदार्थ इन चारों आहारों का या इच्छानुसार तीन आहारों का भी त्याग किया जा सकता है । अनशन दो प्रकार का होता है, जैसे—१—इत्वर और २—यावत्कथित । एक उपवास से लेकर ६ मास या एक वर्ष आदि स्वल्पकालीन तप इत्वर अनशन होता

है और जीवन पर्यन्त जो तप किया जाता है उसे यावत्कथित अनशन कहते हैं। इसे उपवास भी कहते हैं। उप - समीप, वास = निवास करना। क्षमा, निर्लोभता और सरलता आदि आत्मिक गुणों के समीप वास करने का नाम उपवास है।

२. **ऊनोदरी**—भूख से कम खाना, अपने पेट को हल्का रखना ऊनोदरी तप कहलाता है। जैनदृष्टि के अनुसार पुरुष के ३२ नारी के २८ और नपुंसक के २४ ग्रास होते हैं। इनमें से यथाशक्ति कम ग्रास सेवन करना ऊनोदरी तप है। इसके द्रव्य और भाव इन भेदों से दो प्रकार होते हैं। भोजन तथा वस्त्र आदि उपकरणों में कमी करना द्रव्य ऊनोदरी होती है और क्रोध, मान आदि विकारों, जीवन दोषों को कम करते जाना भाव ऊनोदरी तप कहा जाता है।

३. **भिक्षाचरी**—४२ दोष टालकर भिक्षा ग्रहण करके उसके द्वारा जीवन-निर्वाह करना भिक्षाचरी तप होता है। इसका सम्बन्ध विशेष रूप से साधु सन्तों से होता है। यह तप साधु के अहंभाव पर विजय प्राप्त करने का आध्यात्मिक अभ्यास है, अनुष्ठान है।

४. **रसपरित्याग**—रसनेन्द्रिय का निग्रह करना, घृत, दुग्ध और दही आदि स्वादिष्ट तथा रसना को पसन्द लगने वाले पदार्थों का यथाशक्ति परित्याग कर देना रसपरित्याग तप होता है। भोजन न ग्रहण करना आसान है परन्तु रसना की लोलुपता पर नियंत्रण करना बड़ा मुश्किल होता है। राष्ट्रपिता महात्मागान्धी ने तो इस तप को अस्वाद नामक एक महाव्रत के रूप में स्वीकार किया था।

५. **कायक्लेश**—शरीर को साधना, सर्दी-गरमी को अपने शरीर पर सहन करना कायक्लेश तप माना गया है। पद्मासन शीर्षासन और वीरासन आदि आसनों का अभ्यास करना, शरीर के शृंगार का परित्याग करना, केशलुञ्चन करना धूप और शीत की आतापना लेना आदि सभी बातें कायक्लेश तप के अन्तर्गत ही मानी जाती है।

६. **प्रतिसंलीनता**—श्रोत्र आदि इन्द्रियों को अपने विषयों से मोड़ना, शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श में आसक्त न होना, इनको नियंत्रित करना, क्रोध, मान, माया-कपट और लोभ आदि विकारों को उभरने न देना, मन, वाणी तथा शरीर के अप्रशस्त व्यापार को रोकना, स्त्री, पशु और नपुंसक रहित निर्विकार एवं एकान्त स्थान में निवास करना प्रतिसंलीनता तप गया है।

अनशन आदि उपर्युक्त ६ प्रकार बाह्यतप के होते हैं। इनकी संक्षेप में अर्थ विचारणा ऊपर की पंक्तियों में प्रस्तुत की जा चुकी है। तप का दूसरा प्रकार आभ्यन्तर है। बाह्यतप की भाँति आभ्यन्तर तप के भी ६ प्रकार के होते हैं। इनकी नामनिर्देशपूर्वक अर्थ विचारणा इस प्रकार है—

१. **प्रायश्चित्त**— इसका अर्थ है—**प्रायः पापं विजानीयात्, चित्तं तस्य विशोधनम्**। अर्थात्—प्रायः पाप और चित्त शुद्धि का नाम है। किसी भी भूल या स्खलना के हो जाने पर आत्मशुद्धि के लिये किया गया अनुष्ठान पापों की शुद्धि प्रायश्चित्त होता है। आलोचना प्रतिक्रमण, आदि अवान्तर भेद प्रायश्चित्त के माने जाते हैं।

२. **विनय**—निरभिमानता, मधुरता, बड़ों के प्रति आदर की बुद्धि विनय है। गुरुजनों, वृद्धजनों तथा गुणवृद्धों का सम्मान करना, इन के आने पर खड़ा होना, हाथ जोड़ना मस्तक प्रणत करना, उन्हें बैठने को आसन देना, उनकी सेवाशुश्रूषा करना उनके आदेश को आचरण में लाना, उनको प्रत्येक दृष्टि से सन्तुष्ट एवं प्रसन्न रखना आदि सभी बातें विनय के अन्तर्गत समझनी चाहिये। जैनधर्म में विनय तप का बड़ा आदरणीय और महत्वपूर्ण स्थान है। जैनाचार्यों ने "**धम्मस्स विणओ मूलं**" यह कहकर विनय को धर्म का मूल स्वीकार किया है।

३—**वैयावृत्य**—निष्काम और परमार्थ की भावना से गुरुजनों, वृद्धजनों, गुणवृद्धों, नवदीक्षितों तथा तपस्विजन आदि साधकों की सेवा करना, इनको भोजन देना, वस्त्र, पात्र तथा पाट देना, इनके पाँव आदि दबाना, इनके वस्त्रादि का प्रक्षालन करना और संयम की आराधना में यथाशक्ति प्रत्येक सहयोग देना वैयावृत्य तप होता है। अध्यात्मसाधना में वैयावृत्य तप का अपना अनूठा स्थान है। उत्तराध्ययन सूत्र के—**वेयावच्चेणं जीवे तित्थयरनाम गोत्तं निबन्धइ**" ये शब्द वैयावृत्य=सेवा में तीर्थंकर जैसे महान सम्मानित पद को उपलब्ध करवाने की क्षमता को संसूचित कर रहे हैं।[1] सचमुच सेवा महामहिम मङ्गलकारी तप है।

४—**स्वाध्याय**—अध्यात्म शास्त्रों का पठन-पाठन करना स्वाध्याय कहलाता है। स्वाध्याय तप के पाँच अवान्तरभेद होते हैं। जैसे—१—**वाचना**=शिष्य आदि को शास्त्र पढ़ाना, २—**पृच्छना**=शंका या जिज्ञासा होने पर तन्निवृत्यर्थ प्रश्न पूछना, शंका समाधान करना। ३—**परिवर्तना**=पढ़े

---

[1] उत्तराध्ययन सूत्र—अ० २९/४४।

हुए शास्त्र को दुहराना उसकी पुनरावृत्ति करना। ४—**अनुप्रेक्षा**=पढ़े हुए शास्त्र आदि का चिन्तन एवं मनन करना और ५—**धर्मकथा**=धर्म की उपादेयता तथा उपयोगिता का वर्णन करना, धर्म क्या है ? उसे जीवन में कैसे उतारा जा सकता है ? धर्म वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन के भविष्य को कैसे समुज्ज्वल बना सकता है ? आदि सभी दृष्टियों को आगे रखकर धर्म का व्याख्यान करना धर्म कथा-तप स्वीकार किया गया है।

५—**ध्यान**—किसी एक लक्ष्य पर चित्त का एकाग्र करना, एक ही प्रकार के विचारों का निरन्तर चिन्तन करते जाना ध्यान कहलाता है। इसके—१—आर्त्त, २—रौद्र, ३—धर्म और ४—शुक्ल ये चार अवान्तर भेद होते हैं। दुःखी व्यक्ति ही दुःख प्रधान एकाग्रता को आर्त्तध्यान, हिंसक और आततायी व्यक्ति की हिंसा-प्रधान एकाग्रता को रौद्रध्यान, त्याग, वैराग्य के वातावरण में जीवन व्यतीत करने का यतन करने वाले व्यक्ति की अथवा धर्मतत्वों के प्रति आस्था रखने वाले व्यक्ति की धर्म-चिन्तन-प्रधान एकाग्रता को धर्मध्यान तथा मुमुक्षु व्यक्ति की आत्मचिन्तन-प्रधान एकाग्रता को शुक्ल ध्यान कहा गया है। इनमें आदि के दो ध्यान अप्रशस्त, दुर्गतिप्रद तथा अन्त के दो ध्यान प्रशस्त, सुगतिप्रद माने गए हैं।

६—**व्युत्सर्ग**—ममता का परित्याग करना व्युत्सर्ग तप है। इसके द्रव्य और भाव ये दो भेद होते हैं। आहार, शरीर और उपकरण आदि के ममत्व से किनारा करना द्रव्यव्युत्सर्ग तप और काम, क्रोध, मान, कपट और लोभ आदि दोषों को छोड़ना भाव-व्युत्सर्ग तप स्वीकार किया गया है।

ऊपर की पंक्तियों में तप के मूल भेदों तथा उत्तर भेदों का संक्षेप में वर्णन किया गया है। इस वर्णन का परिशीलन करने से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि केवल भोजन के परित्याग कर देने का नाम ही तप नहीं है। प्रत्युत इन्द्रियों का दमन करना, वयोवृद्ध व्यक्तियों का आदर करना, धर्मशास्त्रों का पढ़ना, पढ़ाना, लोगों को धर्मकथा द्वारा जीवन का सत्य समझाना भी तप होता है। वैसे तो तप के अनेकों अर्थ होते हैं परन्तु यदि संक्षेप में तप का अर्थ करना चाहें तो—"**इच्छानिरोहो तवो**" अर्थात्—इच्छाओं, कामनाओं एवं वासनाओं का निरोध करना, उनसे अपना पिण्ड छुड़ाना ही तप होता है। व्यवहार-जगत को देखने से पता चलता है कि इच्छा और कामना ही जीवन-गत दुःखों एवं क्लेशों को जन्म देती है, इच्छा जितने-जितने पांव फैलाती है जीवन में उतने-उतने दुःख बढ़ते चले जाते हैं। सिद्धान्तानुसार, आत्मा

सच्चिदानन्द है। परमपिता परमात्मा के अनन्त ऐश्वर्य का अधिपति है, ऋद्धि-सिद्धियों का पावन स्रोत है तथापि यह जो रंक-तुल्य बना दिखाई देता है। नरकादि दुर्गतियों की दुःख-ज्वालाओं में संदग्ध हो रहा है। यह सब इच्छाओं का ही दुष्परिणाम है। इसीलिए तो उर्दू भाषा के एक कवि को यह कहना पड़ा था —

हम खुदा थे, गर न होता, दिल में कोई मुद्दआ।
आरजुओं ने हमारी हमको बन्दा कर दिया॥

प्रश्न हो सकता है कि इच्छा-डाकिनी के पर कैसे जलाए जाएँ? इसकी भयंकर दुःखप्रद शक्ति को किस तरह से नियन्त्रित एवं कुण्ठित किया जाए? है कोई ऐसा साधन, जिसके आश्रयण से इच्छा-रानी को सदा के लिए समाप्त कर दिया जाए? इस प्रश्न का समाधान सभी दार्शनिकों ने अपने-अपने ढंग से किया है। परन्तु प्रस्तुत में जैनाचार्यों ने जिस पद्धति से इस प्रश्न को करने का अनुग्रह समाहित किया है उसकी चर्चा करने लगे हैं।

जैनाचार्यों ने इच्छानिरोध का सर्वप्रधान और सर्वोत्तम साधन तप बतलाया है। तपो-देवता की चरण-शरण में आ जाने पर इच्छा-डाकिनी निस्तेज पड़ जाती है, और इसका फिर मनुष्य पर वश नहीं चलता, तपस्या के अभिराम उपवन में सानन्द विहरण करने वाला साधक सदा शान्त और आनन्द-विभोर रहता है। मनुष्य तो क्या, देवता भी उसके चरणों में अपने को नत-मस्तक कर देता है। इसीलिए मानव-जगत को सन्देश देते हुए विश्ववन्द्य भगवान महावीर ने एक दिन फरमाया था—

"देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो"[1]

—जिस मनुष्य के हृदय में अहिंसा, संयम और तप रूप धर्म का निवास होता है, उसको देवता भी नमस्कार करते हैं।

इतिहास-वेत्ता जानते ही हैं कि उत्तराध्ययन सूत्र के हरिकेशिबल जी महाराज चाण्डालपुत्र थे, इनके समस्त अङ्गोपाङ्ग बड़े बीभत्स और अस्त-व्यस्त थे, देखने में भी किसी को अच्छे नहीं लगते थे। अधिक क्या, अङ्गो-

---

[1] **धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो।**
देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो॥

—दशवै० अ० १/१

पाङ्ग की विकृति के कारण जन्म देनेवाली माता भी इनसे अनुराग नहीं रख रही थी। परन्तु जब ये तपस्या भगवती के पावन चरणों में आ गए, दिल खोलकर तपस्या की आराधना करने लगे और इच्छा-डाकिनी को इन्होंने अच्छी तरह से नियन्त्रित कर लिया तो एक दिन ये देववन्दनीय हो गए। देवता भी इनके चरणों की सेवा करने लगे, उस युग के पुरोहित-वाद को बुरी तरह से पराजित होना पड़ा। जन्मना जातिवाद को मान्यता देने वाले लोगों को कर्मणा जातिवाद की महत्ता को अङ्गीकार करना पड़ा। तपस्या की महिमा का कहाँ तक वर्णन किया जाए ? वैदिक परम्परा के वेद शास्त्र भी यह कहते नहीं थकते कि तप के बल से ही देवताओं ने मृत्यु को पराजित किया है। श्रमण भगवान महावीर ने तो यहाँ तक फरमा दिया कि शास्त्र वास्तव में वही शास्त्र कहलाने का अधिकारी हो सकता है जिसके श्रवण से अन्तरात्मा में तपश्चर्या, क्षमा और अहिंसा की भावनाएँ परिस्फुटित होती हों। तपस्या, क्षमा और अहिंसा भगवती के चरणों में प्रणत न होने वाला शून्य शास्त्र नहीं होता। उसे तो शास्त्र कहा जा सकता है। मङ्गलमूर्ति भगवान महावीर के अपने शब्द इस प्रकार हैं—

माणुस्सं विग्गहं लद्धुं, सुई धम्मस्स दुल्लहा।
जं सोच्चा पडिवज्जंति, तवं खन्तिमहिंसयं॥

—उत्तराध्ययन० अ० ३/८

—मनुष्य-शरीर प्राप्त होने पर भी धर्म का श्रवण करना दुर्लभ है, जिसे सुनकर जीव तप, क्षमा और अहिंसा को प्राप्त करते हैं।

वैदिक परम्परा में जैसे गङ्गा, यमुना और सरस्वती इन तीन नदियों के संगम को त्रिवेणी कहते हैं और इसे सर्वोत्तम तथा सर्वप्रधान तीर्थ स्वीकार किया गया है तथा इसमें स्नान करने वाला पवित्रात्मा और वैकुण्ठ-धाम का अधिकारी बताया गया है, वैसे जैनदर्शन ने अहिंसा, संयम और तप के संगम को त्रिवेणी कहा है, आत्मोत्थान तथा आत्मकल्याण का इसे सर्वाधिक साधन माना है। जैनदर्शन के मन्तव्यानुसार इस त्रिवेणी में स्नान करने वाला अर्थात् अहिंसा, संयम और तप की कल्मषहारिणी भावनाओं को जीवन में उतारने वाला व्यक्ति धीरे-धीरे निष्कर्मता की पगडण्डियाँ पार करता हुआ एक दिन अजर, अमर, बुद्ध, सर्वदुःखप्रहीण, सिद्ध और परमात्मपद को अधिगत कर लेता है।

हमारे चरितनायक मान्य श्री छगनलाल जी महाराज तप की इस महत्ता,

उपयोगिता, उपादेयता, सर्व-हित-साधकता तथा कल्याण-कारिता को भली-भाँति समझते थे। केवल समझते ही नहीं थे, परन्तु दीक्षा लेने के अनन्तर ही इन्होंने तपोदेवता की आराधना पूरी शक्ति के साथ चालू भी कर दी थी, व्रत, वेला, तेला आदि तप तो इनके जीवन के लिए साधारण सी बात थी। लगातार पन्दरह-पन्दरह व्रतों के थोक भी इन्होंने अनेकों बार किए। पन्दरह-पन्दरह दिनों तक अन्न को निकट न आने देना, मनसा भी उसकी अभिलाषा न करना कोई साधारण बात नहीं है। आज के मनुष्य से एक व्रत रखना भी मुश्किल होता है। इन आँखों ने स्वयं देखा है कि कई तो महापर्व सम्वत्सरी का उपवास करना भी पसन्द नहीं करते। कईओ को सम्वत्सरी का पौषध कर लेने पर रात भी काटनी कठिन हो जाती है और कई महानुभाव तो पौषध को तोड़ने में भी नहीं सकुचाते। सचमुच तपस्या की साधना बड़ी कठोर साधना है। प्रत्येक व्यक्ति के वश की यह बात नहीं है।

निर्विकृतिक-तप—

जैनशास्त्रों में प्रत्याख्यानों के दस प्रकार लिखे हैं। उनमें से एक है—निर्विकृतिक। इसे साधारणतया 'नीवी' कहा जाता है। इस प्रत्याख्यान में केवल छाछ का ग्रहण करना होता है और विशेष रूप से विकार-जनक पदार्थों का परित्याग किया जाता है। मन में विकार पैदा करने वाले दूध, दही, मक्खन, घी, तेल, गुड़ और मधु आदि भोज्य पदार्थ विकृति कहलाते हैं, जिस प्रत्याख्यान में इन विकृतियों को छोड़ा जाए उसे निर्विकृतिक प्रत्याख्यान कहते हैं। श्री आवश्यक सूत्र में निर्विकृतिक तप का विधिविधान इस प्रकार वर्णित किया गया है—

विगइओ पच्चक्खामि, अन्नत्थ-ऽनाभोगेणं सहसागारेणं, लेवालेवेणं, गिहत्थसंसिट्ठेणं, उक्खित्तविवेगेणं, पडुच्चमक्खिएणं, महत्तरागारेणं पारिट्ठावणियागारेणं सव्वसमहिवत्तियागारेणं वोसिरामि।

—मैं विकृतियों का त्याग करता हूँ। इसमें अग्रिम नौ आगार=अपवाद होते हैं। जैसे—१—अनाभोग=प्रत्याख्यान का स्मरण न रहने पर भोजन कर लेना, २—सहसाकार=अचानक जल आदि का ग्रहण कर लेना। ३—लेपालेप घृत, तेल इत्यादि पदार्थों से पहले लिप्त होना लेप है। लिप्त भोजन को पोंछ कर अलिप्त कर देने का नाम अलेप है। अर्थात् घृतादि से पात्र, हाथ आदि लिप्त हो और देने वाला उन्हें पोंछकर निर्विकृतिक तप में ग्रहण करने योग्य पदार्थ देने लगे तो उस पदार्थ का ग्रहण कर लेना।

४—गृहस्थ संसृष्ट+घृत आदि से लिप्त पात्र के द्वारा निर्विकृतिक—योग्य वस्तु को ग्रहण करना। ५—उत्क्षिप्त विवेक—उत्क्षिप्त का अर्थ है—गुड़ आदि का उठाना और विवेक का अर्थ है— उठाने के बाद उसका लगे रहना। निर्विकृतिक तप में गुड़ आदि मीठे पदार्थ अग्राह्य होते हैं, किन्तु निर्विकृतिक तप में ग्राह्य पदार्थ के साथ यदि गुड़ आदि अग्राह्य वस्तुओं का सम्बन्ध से और उन को उस ग्राह्य पदार्थ से अलग कर दिया जाए तो उस ग्राह्य पदार्थ को ग्रहण किया जा सकता है। ऐसा करने से व्रत भंग नहीं होता। ६—प्रतीत्य-म्रक्षित। प्रतीत्य अपूर्ण और म्रक्षित चुपड़े हुए को कहते हैं। अर्थात छाछ में यदि कभी कहीं मक्खन के कण हों तो उसका ग्रहण करने से व्रत भंग नहीं होता। ७—पारिष्ठापनिकागार। यदि कभी भ्रान्तिवश साधु आहार अधिक ले आए ओर उसके परठने-गिराने की स्थिति बन जाए तो परठने योग्य आहार को गुरु की आज्ञा से यदि निर्विकृतिक तप का आराधक व्यक्ति ग्रहण कर ले तो उसका व्रत भंग नहीं होता। ८—महत्तरगार। किसी विशेष कार्य के कारण निर्जरा के ध्यान में रखकर रोगी आदि की सेवा के कारण तथा श्रमणसंघ के किसी अन्य महत्वपूर्ण कार्य के कारण गुरुदेव आदि महत्तर पुरुष की आज्ञा पाकर निश्चित समय से पूर्व ही प्रत्याख्यान का पार लेना। ९—सर्व समाधिप्रत्ययागार। किसी आकस्मिक शूल आदि तीव्र और असह्य रोग की उपशान्ति के लिये औषधि आदि का ग्रहण कर लेना अन्त में साधक कहता है कि निर्विकृतिक तप के इन आगारों को छोड़कर मैं सभी विकृतिजनक पदार्थों का परित्याग करता हूँ।

निर्विकृतिक तप में जो आगार (छूट) बताए गए हैं, इनका अभिप्राय इतना ही है कि यदि अनजाने या किसी असावधानी से निर्विकृतिक तप में ग्राह्य पदार्थ के साथ अग्राह्य पदार्थ का सम्बन्ध हो जाए तो इससे यह तप खण्डित नहीं होता। भावना की निर्विकारता यदि सुरक्षित है तो बाह्य दोष नगण्य होता है।

निर्विकृतिक तप में दिन में केवल एक बार छाछ का प्रयोग करना होता है रात्रि में तो जल भी उसमें अग्राह्य होता है। यह तप एक दिन भी हो सकता है इससे अधिक भी। परन्तु हमारे मान्य चरितनायक श्री छगनलाल जी महाराज ने इस तप की आराधना लगातार ६ महीने की थी। एक सौ ८० दिन लगातार छाछ पर ही रहना, अन्न का सर्वथा परित्याग कर देना तथा मीठे या नमकीन किसी भी पदार्थ का आसेवन न करना बड़े साहस की बात है। त्याग-वैराग्य की समुच्च भूमिका पर जो महापुरुष विराजमान

होता है, वही इतना बड़ा साहस करने को सन्नद्ध हो सकता है। साहसहीन और चारित्र-हीन व्यक्ति में इतना साहस कहाँ ?

आयंबिल-तप

दशविध प्रत्याख्यानों में आयंबिल तप का छठा स्थान है। आयंबिल शब्द प्राकृत-भाषा का शब्द है। संस्कृत-भाषा में इसके १—आचाम्ल, २—आचामाम्ल और ३—आयामाम्ल ये तीन रूप होते हैं। आयंबिल व्रत में दिन में एक बार भोजन करना होता है, यह भोजन भी सर्वथा रूक्ष और नीरस होना चाहिये। घी, दूध, दही, तेल, गुड़, शक्कर, मिष्ठान्न एवं नमक आदि किसी भी प्रकार का स्वादिष्ट भोजन इस व्रत में ग्रहण नहीं किया जाता, चावल, उड़द या सत्तू आदि पदार्थों में से किसी एक भी पदार्थ को पानी में भिगो कर ग्रहण करके रसनेन्द्रिय का नियंत्रण करना आयंबिल तप का मुख्य उद्देश्य रहा हुआ है। इस व्रत में पानी में भिगोकर रूखी रोटी भी खाई जा सकती है। आजकल भुने चने खाकर और प्रासुक पानी पीकर आयंबिल तप की परम्परा देखने में आती है। इससे रसनेन्द्रिय की लोलुपता पर विजय प्राप्त करने की भावना साकार नहीं होने पाती। क्योंकि भुने चने तो स्वयं एक स्वादिष्ट पदार्थों में परिगणित होते हैं, अतः इनसे आयंबिल तप में अस्वाद की भावना को मूर्त्त रूप नहीं दिया जा सकता। आयंबिल व्रत का विधि-विधान शास्त्रीय भाषा में इस प्रकार है—

आयंबिलं पच्चक्खामि तिविहं पि आहारं—असणं, खाइमं साइमं। अन्नत्थऽणाभोगेणं, सहसागारेणं लेवालेवेणं उक्खित्तविवेगेणं, गिहिसंसट्ठेणं पारिट्ठावणियागारेणं महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि।

—मैं आयंबिल तप अंगीकार करता हूँ। फलतः अशन, खादिम, और स्वादिम इन तीनों आहारों का प्रत्याख्यान करता हूँ। इसमें १—अनाभोग, २—सहसाकार, ३—लेपालेप, ४—उत्क्षिप्तविवेक, ५—गृहस्थ संसृष्ट, ६—पारिष्ठापनिकागार, ७—महत्तरागार, ८—सर्वसमाधि प्रत्ययागार, ये आठ आगार होते हैं। इन आगारों-अपवादों को छोड़कर पूर्णतया त्रिविध आहार का परित्याग करता हूँ।

आयंबिल तप रस-लोलुपता को समाप्त करता है। रस-लोलुपता को जीतना साधारण बात नहीं है। वस्तुतः रसनेन्द्रिय का संयम बहुत कठोर संयम होता है। खाने के लिए बैठ जाना, भूख का जोर होने पर भी अपनी मन पसन्द का ग्रहण न करना बहुत ऊँची बात है। हमारे चरितनायक श्री

स्वामी छगनलाल जी महाराज आयंबिल तप के बड़े आराधक एवं परिपालक रहे हैं। जब भी इनको अवसर मिलता ये आयंबिल तप की आराधना अवश्य करते। कई बार तो विहार में भी आयंबिल तप की उपासना चलती थी, इन्होंने अपनी रसना का पूर्णतया दमन कर रक्खा था। स्वाद देखकर खाना स्वादिष्ट वस्तुओं का ग्रहण करना ये साधु-जीवन को दूषित करना मानते थे। जिस दिन इनका आयंबिल व्रत नहीं होता था, उस दिन भी रस-लोलुपता को अपने निकट नहीं आने देते थे। ये एक जितेन्द्रिय महापुरुष थे।

अभिग्रह तप

दशविध प्रत्याख्यानों में नौवां स्थान अभिग्रह तप का है। अभिग्रह एक प्रतिज्ञा-विशेष होता है। उपवास आदि तप के बाद या बिना उपवास आदि के अपने मन में इस बात की प्रतिज्ञा कर लेना कि मैं अमुक बात को मिलने पर आहार ग्रहण करूँगा। यदि अमुक घटना का सुयोग न मिला तो व्रत (वेला दो उपवास), तेला (तीन उपवास) आदि संकल्पित दिनों की अवधितक आहार का उपयोग नहीं करूँगा। इस प्रकार की प्रतिज्ञा को अभिग्रह कहते हैं। शास्त्रीय भाषा में अभिग्रह का विधि-विधान इस प्रकार है—

अभिग्गहं पच्चक्खामि, चउव्विहं आहारं-असणं पाणं, खाइमं, साइमं। अन्नत्थ-ऽणाभोगेणं, सहसागारेणं महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि।

— मैं अभिग्रह तप को धारण करता हूँ। इसमें अशन, पान, खादिम और स्वादिम इन चारों ही आहारों का (निश्चित समय तक) परित्याग करता हूँ। इसमें—१—अनाभोग, २—सहसाकार, ३—महत्तराकार और ४—सर्वसमाधिप्रत्ययाकार इन चारों आगारों को छोड़कर अभिग्रहपूर्ति तक चारों आहारों को छोड़ता हूँ।

अभिग्रह करने वाले व्यक्ति को सर्वप्रथम अभिग्रह में जो बातें धारण करनी हों, उनका मन में निश्चय कर लेना चाहिये। जब तक मन में निश्चय न हो जाए तब तक अभिग्रह के पाठ को नहीं पढ़ना चाहिये। अभिग्रह का पाठ पढ़ने के अनन्तर मन में कोई निश्चय करना शास्त्रीय दृष्टि से सर्वथा अनुचित है। इसके अलावा, अभिग्रह करने वाले साधक को अभिग्रह-पूर्ति से पहले किसी को भी अपना अभिग्रह नहीं बतलाना चाहिये। किसी को अपनी मनोगत बात कहे बिना अकस्मात् यदि अभिग्रह की शर्तें पूर्ण होती दिखाई दें तब अभिग्रह की रूपरेखा सम्पन्न होती है। अतः अभिग्रह जब तक फल न

जाए तब तक वह किसी को नहीं कहना चाहिए। अभिग्रह का उद्देश्य केवल तपस्या को आगे बढ़ाना होता है जैसे भगवान महावीर ने अभिग्रह किया था कि राजकन्या हो, अविवाहित हो, सदाचारिणी हो, बाजार में बिकी हो, निरपराध होने पर भी उसके पांवों में बेड़ियाँ, हाथों में हथकड़ियाँ पड़ी हुई हों, सिर मुंडा हुआ हो, हाथ में छाज हो, न घर में हो और न बाहिर हो, दान देने की भावना से अतिथि की प्रतीक्षा कर रही हो, प्रसन्नमुद्रा हो, आँखों में आंसू हों। ऐसी राजकुमारी यदि मुझे आहार दे तब पारणा करूँगा। भगवान महावीर का यह अभिग्रह पाँच महीने २५ दिनों के अनन्तर पूर्ण हुआ था। हमारे मान्य चरितनायक श्री छगनलालजी महाराज जी यदा-कदा अभिग्रह व्रत की आराधना किया करते थे। आप श्री किसी साधु या श्रावक को कहे विना ही अपने आप मन में कोई अभिग्रह धारण कर लिया करते थे और उसकी किसी को जानकारी भी नहीं होने देते थे। भिक्षा-ग्रहणार्थ जाने पर जब अभिग्रह की भावना पूरी नहीं होती थी तब आप विना भिक्षा लिए वापिस लौट आते थे। इस तरह अन्न-जल के विना ही आप कई-कई दिन व्यतीत कर दिया करते थे। तथापि अभिग्रह के द्वारा तपोभावना से भावित होकर आप सदा आनन्द-मग्न रहते थे। इस तरह जहाँ तक चरितनायक श्री का वश चलता ये अपने जीवन के क्षण तपस्या भगवती की आराधना में ही लगाया करते थे।

हमारे मान्य चरितनायक श्री एक ही सूती चादर में रहते थे इनका यह क्रम लगातार ४० वर्षों तक चलता रहा। सावन मास में दूध और भाद्रपद में दही का प्रयोग सर्वथा छोड़ देते थे। प्रतिदिन दो विगयों का यथा-शक्ति त्याग कर देते, द्रव्य भी कम से कम उपयोग में लाते थे तथा जीवन के अन्तिम क्षण दोनों समय उठ बैठकर प्रतिक्रमण किया करते थे।

स्वाध्याय कायोत्सर्ग—

तप के विविध प्रकार में स्वाध्याय तथा कायोत्सर्ग भी एक तप है। इन दोनों का अभिप्राय पीछे लिखा जा चुका है। हमारे चरितनायक श्री स्वाध्याय और कायोत्सर्ग तप के भी बड़े रसिया थे। दशवैकालिक उत्तराध्ययन आदि शास्त्रों का चिन्तन, मनन करना, साधु सन्तों को उनका वाचन कराना इनकी दिनचर्या का विशिष्ट अंग था। इस चरण-सेवक (लेखक) को पूज्य चरित-नायक श्री के मङ्गलमय दर्शन करनेका अनेकों बार सुअवसर प्राप्त होता रहा है। मैंने जब भी इनको देखा है ये शास्त्र-स्वाध्याय करते, प्रभुनाम का स्मरण करते अर्थात् माला जपते देखा है। चरितनायक श्री कायोत्सर्ग तप की

आराधना भी किया करते थे। घण्टों जिनमुद्रा में बैठकर आत्मचिन्तन करने का प्रयास करते, मौन रहते।

पूज्य चरितनायक के जीवनशास्त्र का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करने पर बिना किसी झिझक के कहा जा सकता है कि तपस्या भगवती की आराधना इनके जीवन की एक विशिष्ट गुणसम्पदा थी। अधिक क्या निवेदन करें, ये दिन में एक बार ही जल का सेवन किया करते थे, ज्येष्ठ आषाढ़ के भयंकर गरम दिनों में कितनी अधिक प्यास लगती है? यह किसी से छुपा नहीं है। पूज्य चरितनायक उन दिनों में भी दूसरी बार पानी का सेवन नहीं करते थे, रात्रि को आहार का सेवन तो जैन साधुओं के लिए सर्वथा निषिद्ध है ही परन्तु ये तो दिन में भी त्याग जैसी स्थिति बनाए रखते थे। फिर प्रतिदिन प्रहर सूर्य चढ़े बिना अन्न-जल का सेवन नहीं करते थे। गरमी के दिनों सूर्य की आतापना लेते, घण्टों जलते फरश पर दोपहर को सूर्य के सामने बैठते, रात्रि को शैत्य का आतापना लेते, पौष माघ की सरदी में रात्रि को सब वस्त्र छोड़कर शैत्य-परीषह को सहन करते। प्रत्येक पक्खी को तेले का प्रायश्चित और प्रतिदिन एक व्रत का प्रायश्चित्त ग्रहण करते जिसको भरती से उतारा करते थे। जैन जगत में व्रत की भरती करने की परम्परा पाई जाती है। वृद्ध परम्परा का विश्वास है कि एक पहर के शास्त्रस्वाध्याय से उपवास की भरती है अर्थात् उपवास जितना फल मिलता है, इसी प्रकार २००० गाथाओं के पाठ से, दशवैकालिक सूत्र को तीन बार पढ़ने से, उत्तराध्ययन सूत्र एक बार पढ़ने से, एक उपवास की भरती है। आचारांग सूत्र पढ़ने से दो उपवासों की, श्री स्थानांग सूत्र के स्वाध्याय से चार व्रतों की, श्री भगवती सूत्र पढ़ने से आठ उपवासों की, लोगस्स या नमोत्थुणं की एक माला करने से एक उपवास की भरती होती है। इस विवरण से हम यह अभिव्यक्त करना चाहते हैं कि पूज्य चरितनायक श्री छगनलालजी महाराज ने अपने जीवन में सदा तपस्या की आराधना की और प्रमाद को कभी अपने निकट नहीं आने दिया। ये सदा तपस्या भगवती की आराधना करते हुए अप्रमत्तभाव से विहरण किया करते थे।

नसवार का परित्याग—

ग्रामीण-जगत का इतिहास के जानकार पाठक जानते ही हैं कि पुराने युग में ग्रामीण लोग आमतौर पर नसवार सूंघा करते थे। विशेष रूप से जाट परिवारों में तो नसवार सूंघने की परम्परा अपने यौवन पर थी। हमारे चरितनायक श्री छगनलालजी महाराज प्रथम तो जाट परिवार से सम्बन्धित

थे, दूसरे इनको एक वार बचपन में नकसीर का रोग हो गया था, किसी वयोवृद्ध व्यक्ति ने नसवार सूंघने को कह दिया था, इसलिए भी इन्होंने नसवार सूंघनी आरम्भ करदी थी। साधु बन जाने के अनन्तर भी नसवार ले लिया करते थे। क्योंकि उस युग के पुराने सन्तों में नसवार सूंघने की परम्परा प्रचलित थी। जिन सन्तों को प्रतिश्याय=नजला सदा रहता है, वे मुनि प्रायः नसवार का सेवन करते ही रहते थे। नसवार सूंघने वाले सन्तों का सम्पर्क हो जाने से पूज्य चरितनायक श्री को भी नसवार की प्राप्ति में कोई कठिनाई नहीं रही। अतः ये यथावसर इसके प्रयोग से अछूते नहीं रह पाते थे। परन्तु एक दिन के दृश्य ने इनके मन को परिवर्तित कर दिया और इन्होंने फिर जीवन भर के लिए नसवार का परित्याग कर दिया।

पूज्य चरितनायक श्री के एक शिष्यरत्न थे—श्रद्धेय श्री गणेशीलालजी महाराज। शिष्य क्या थे, विनयधर्म के साक्षात् भण्डार थे, विनीतता और आज्ञाकारिता ये दो विशेषताएँ तो उनमें मुख्य रूप से उपलब्ध होती थीं। विक्रम सम्वत् १९८९ की बात है। चरितनायक श्री इन्हीं श्री गणेशीलालजी महाराज के साथ अहमदाबाद विराजमान थे। शिष्यरत्न ने देखा कि पूज्य गुरुदेव की नसवार समाप्त हो गई है। दोपहर की गोचरी लाकर रक्खी ही थी कि बिना आहार किए ही ये तत्काल नसवार लेने के लिए चल पड़े। जेठ का महीना, दोपहर का समय, होटल की तन्दूर की भाँति, चिलचिलाती धूप, सूर्य मानो आग बरसा रहा था, जमीन बुरी तरह तप रही थी। पहले तो श्री गणेशीलालजी महाराज जलती धूप में आहार लाए, फिर गुरुभक्ति के कारण उसी समय नसवार लेने चल पड़े। चरितनायक श्री अपने विनीत और सेवाव्रती शिष्यरत्न का यह भक्तिभाव अच्छी तरह देख रहे थे। एकदम इनकी अन्तर्वीणा झंकृत होने लगी—

"गणेशीलाल पहले आहार लाया है अब केवल मेरे लिए इतनी जलती धूप में नसवार लेने गया है, जमीन चूल्हे पर रक्खे तवे की भाँति तप रही है, उष्णता का कितना अधिक परीषह है, यह सब संकट मेरे एक नसवार के व्यसन के कारण ही सहन करना पड़ रहा है। चरितनायक श्री की अन्तरात्मा गम्भीर होने लगी। ये पुनः विचार करने लगे कि क्या तू नसवार को छोड़ नहीं सकता? इसके बिना क्या जीवन-लीला समाप्त होने लगी है? फिर नसवार एक नशीला पदार्थ है, नशीले पदार्थ का सेवन करना शास्त्रीय दृष्टि से प्रमाद माना गया है और प्रमाद का सेवन करना साधु-जीवन के लिए सर्वथा वर्जित है। आज तक मैंने इस सम्बन्ध में सोचा ही नहीं था इस तरह गंभीरता-पूर्वक विचार करते हुए चरितनायक श्री ने अन्त में नसवार का

सदा के लिए परित्याग कर दिया । नसवार ग्रहण न करने का जीवन-भर के लिए प्रण ले लिया। शिष्यरत्न श्री गणेशीलाल जी महाराज जव वापिस आए और उनको पता चला कि गुरुमहाराज ने तो सदा के लिये नसवार का त्याग कर दिया तो महान आश्चर्य हुआ। कारण पूछने पर गुरुमहाराज ने सव स्थिति वतलादी । अपने गुरुदेव की अपने शिष्य के प्रति इतनी समवेदना तथा कृपालुता देखकर श्री गणेशीलाल जी महाराज वड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने विनम्र शब्दों में निवेदन करते हुए कहा—

गुरुदेव ! आप ने ऐसा क्यों विचार कर लिया ? यह चरणसेवक तो आपका अपना ही है। आप की पावन सेवा भगवान की सेवा है, इसमें कष्टानुभूति का क्या काम ? फिर गुरुचरणों की सेवा तो जन्म-जन्मान्तर के किसी शुभ कर्म से ही अधिगत हो सकती है।

अपने विनीत शिष्य की अभ्यर्थना सुनकर चरितनायक श्री फरमाने लगे कि वत्स! मैंने तो ध्यान ही नहीं किया, नसवार का सेवन करना तो व्यसन है, प्रमाद है, साधु के लिए सर्वथा अनाचरणीय है। मेरे किसी व्यसन के कारण मेरे सुविनीत शिष्य को यह महान कष्ट हो, यह मेरे लिए असह्य है। इतनी भयंकर गरमी में तुझे यदि कोई तकलीफ हो जाए, पांवों में छाले पड़ जाएँ, या अन्य कोई शारीरिक व्याधि सर उठाले तो तेरा क्या हाल होगा ? मुझे तो लेने के देने पड़ जाएँगे । अत: इस नसवार की मुझे कोई आवश्यकता नहीं। कितने दयालु थे, चरितनायक श्री छगनलाल जी महाराज, जिनको अपने शरीर के लिए अपने ही शिष्य का कष्ट देखना असह्य हो गया ?

पिता-पुत्र की दीक्षा—

हमारे मान्य चरितनायक श्री छगनलाल जी महाराज ने वि० सं० १९७६ का अपना चातुर्मास अपने चाचा गुरु वन्दनीय मुनिराज श्री स्वामी सूर्यमलजी महाराज के साथ व्यावर नगर में सम्पन्न किया। इसके अनन्तर ये अपने गुरु भाइयों के साथ विहरण करने लगे थे। पूज्य चरितनायक श्री के तीन गुरुभाई थे, मान्य चरितनायक आदि चारों गुरुभाई अहिंसा का पावन ध्वज लहराते हुए एक वार आगरा में पधारे। आगरा भारत-वर्ष के उत्तर प्रदेश का प्रतिष्ठा प्राप्त ऐतिहासिक नगर है। यहाँ पर अवस्थित ताजमहल ने इस की प्रतिष्ठा को सार्वभौमिक वना दिया है। भारत के कोने-कोने से तो जनता उसका निरीक्षण करने आती ही है परन्तु पाश्चात्य लोग भी इस नगर को देखने के लिए विशेषरूप से आते हैं। इसी नगर में जव हमारे आदरणीय चरितनायक श्री पधारे तो आगरा की धर्मप्रिय जनता आनन्दविभोर हो उठी,

पूज्य मुनिवरों का अपूर्व स्वागत किया और उसने अपनी श्रद्धा-भक्ति की वह अभिव्यक्ति की जो आगरा वालों ने अतीत के इतिहास में कभी स्वयं भी नहीं देखी थी। चरितनायक श्री जब अपना वैदूष्यपूर्ण प्रवचन सुनाते तो उसमें इतनी अधिक जनता एकत्रित हो जाती कि वहां तिल गिराने को भी जगह नहीं बचती थी। अधिक क्या, आगरा निवासियों के विलक्षण भक्तिभाव ने पूज्य चरितनायक का मन जीत लिया और इसीलिए वि० सं० १९७७ का चातुर्मास इन्हें आगरा में ही करना पड़ा।

आगरा-नगर का यह चातुर्मास पूज्य चरितनायक श्री के जीवन का पहला स्वतंत्र चातुर्मास था, इस चातुर्मास में यही सर्वेसर्वा थे, इन्हीं के नेतृत्व में सब क्रियाकलाप सम्पन्न होता था। पहले तो पूज्य गुरुदेव की छत्रछाया थी, तदनन्तर श्रद्धेय चाचा गुरु का नेतृत्व चलता रहा परन्तु इन महापुरुषों का सान्निध्य न रहने के कारण आगरा चातुर्मास में स्वयं ही सर्वप्रधान थे। कोई भी विचार इन का ज्ञानप्रकाश अधिगत किए बिना मूर्त्तरूप धारण नहीं कर सकता था। हमारे सहृदय पाठक जानते ही हैं कि आदरणीय चरितनायक बड़े दीर्घदर्शी और समयसूचक थे। इसीलिए इनकी दीर्घदर्शिता और समय-सूचकता के प्रताप से चातुर्मास बिना किसी विघ्न-बाधा के पूर्ण आनन्द मङ्गल के साथ सम्पन्न हो गया। व्यवहार जगत में देखा जाता है कि मनुष्य यदि दीर्घदर्शी हो, सूझबूझ वाला हो, समय पर अड़ना और समय पर पीछे हटना भी जानता हो तो फिर उसका जीवन सदा आनन्द के झूले पर झूलता है। हमारे पूज्य चरितनायक तो दीर्घदर्शिता और विवेकशीलता के पावन भण्डार थे, इनके यहाँ तो मस्तियों का स्थायी वास होना स्वाभाविक ही है।

आगरा का चातुर्मास समाप्त करने के अनन्तर महामान्य चरितनायक श्री ने दिल्ली की ओर प्रस्थान कर दिया। मार्ग में ग्रामानुग्राम विहरण करते हुए तथा अहिंसा-सत्य की पावन ज्योति का प्रसार करते हुए अन्त में दिल्ली पधार गए। दिल्ली नगर का प्राचीन शास्त्रीय नाम इन्द्रप्रस्थ है। यह नगर न केवल प्राचीन काल से राजनैतिक महत्त्व रखता है, परन्तु धर्म-परम्परा की दृष्टि से भी इसका सदा महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। जैन. बौद्ध, वैष्णव, सिक्ख, मुसलमान और ईसाई आदि सभी धर्मपरम्परा के लोग यहाँ उपलब्ध होते हैं। कभी दिल्ली बहुत छोटी थी, शक्तिनगर, जैननगर (वीर कालोनी), रूप नगर, जवाहरनगर और शास्त्रीनगर आदि उपनगरों का यहाँ चिन्ह भी नहीं था, परन्तु आज दिल्ली का क्षेत्र बहुत व्यापक हो गया है। बीसों इसके

उपनगर हो गये हैं। आज दिल्ली स्वतन्त्र भारत की राजधानी है। हजारों, लाखों की संख्या में यहाँ विदेशी लोग रह रहे हैं। आज दिल्ली का विश्व में जो स्थान है, वह अतीत में कभी नहीं था। आज दिल्ली जगती के समस्त राजनैतिक दलों के लिए आकर्षण का केन्द्र बन रही है। इसी दिल्ली नगर में हमारे सम्मानास्पद श्री स्वामी छगनलाल जी महाराज पधार गये। दिल्ली निवासियों ने पूज्य मुनिमण्डल का हार्दिक अभिनन्दन किया। सर्वत्र आध्यात्मिकता पूर्ण चहल-पहल दिखाई देने लगी। दिल्ली-निवासी पूज्य चरितनायक की व्याख्यान-वाणी की प्राञ्जलता से बड़े आकृष्ट और प्रभावित थे। इनका उत्साह तथा श्रद्धातिरेक देखकर ही चरितनायक श्री ने वि० सं० १९७८ का चातुर्मास दिल्ली नगर में स्वीकार कर लिया। चातुर्मासकाल में चरितनायक श्री ने अहिंसा, संयम और तप रूप धर्म त्रिवेणी को प्रवाहित करके जनता जनार्दन पर जो उपकार किये, दिल्ली के इतिहास में वे सदा संस्मरणीय रहेंगे। इस तरह दिल्ली में लगातार चार महीने धर्मामृत की गंगा प्रवाहित करके चरितनायक श्री ने वहाँ से विहार कर दिया और पुनः ये मारवाड़ में पधार गये वहाँ पर जन-जीवन को जीवन का महासत्य समझाते हुए विहरण करने लगे।

सिरसा-निवासी[1] श्री टीकमचन्द्र जी तथा इनके सुपुत्र श्री गणेशीलाल जी ये दोनों महानुभाव चरितनायक श्री स्वामी छगनलाल जी महाराज के पावन चरणों में काफी दिनों से सेवा में रह रहे थे। ये दोनों संसार से बिल्कुल निस्पृह और विरक्त हो चुके थे। मोहमाया के बन्धनों को तोड़कर ये वन्दनीय चरितनायक श्री के चरणों में दीक्षा अङ्गीकार करना चाहते थे। परिणामस्वरूप साधुजीवन की पूर्वभूमिका का अभ्यास किया जा रहा था। दोनों महाराज श्री के साथ पैदल यात्रा किया करते, गोचरी द्वारा जीवन का निर्वाह करते, दशवैकालिक सूत्र पढ़ते तथा २५ बोल आदि थोकड़े सीखते। एक बार पूज्य चरितनायक श्री हरमाड़ा क्षेत्र में पधारे। हरमाड़ा क्षेत्र में जैनों की अच्छी खासी बसतीं थी। वहाँ के अग्रगण्य का नाम श्री अमरचन्द जी था। सुश्रावक सेठ अमरचन्द जी बड़े भावुक, गुणग्राही, धर्मशील, चारित्रप्रिय और गुरुभक्त इन्सान थे। बहुत बड़े व्यापारी होने पर भी इनमें जरा भी अस्मिता-भाव नहीं था, प्रातः सायं प्रतिदिन सामायिक किया करते थे और साधु-मुनिराजों की सेवा-शुश्रूषा एवं भक्ति का पूरा-पूरा ध्यान रखते थे।

---

[1] 'सिरसा' जिला हिसार का सुप्रसिद्ध नगर है, कभी यह जिला हिसार, पंजाब के अन्तर्गत था, परन्तु आजकल यह हरियाणा में है।

इनको श्री टीकमचन्द्र ओर श्री गणेशीलाल जी से वार्तालाप करने पर जब पता चला कि ये दोनों पितापुत्र दीक्षा अङ्गीकार करना चाह रहे हैं, तो इनको हार्दिक प्रसन्नता हुई। सेठ श्री अमरनाथ जी दीक्षा जैसे त्यागवैराग्य प्रधान मांगलिक कार्यों के करने और करवाने में वड़ी रुचि रखते थे। इसीलिए इन्होंने समय देखकर एक दिन पूज्य चरितनायक श्री से विनम्र विनति करते हुए निवेदन किया—

आदरणीय पूज्य गुरुदेव ! आज एक छोटा सा निवेदन लेकर आप श्री के पावन चरणों में उपस्थित हुआ हूँ। मेरी हार्दिक भावना है कि श्री टीकमचन्द्र जी तथा श्री गणेशीलाल जी को आर्हती भागवती दीक्षा का पावन महोत्सव कराने का सौभाग्य हमारे हरमाड़ा क्षेत्र के निवासियों को मिलना चाहिये। उत्साह तथा श्रद्धान की दृष्टि से यह गाँव अन्य किसी से पीछे नहीं है। आप विश्वास रक्खें, दीक्षा महोत्सव का सब कार्य सानन्द और पूर्ण समारोह के साथ सम्पन्न किया जावेगा। केवल आप श्री की स्वीकृति की अपेक्षा है।

सेठ अमरचन्द जी की विनीतता एवं विनम्रतापूर्ण निवेदन सुनकर पूज्य चरितनायक श्री फरमाने लगे—

धर्मप्रिय श्रावक जी ! वैरागियों को दीक्षा देने की भावना तो है ही, आप विचार करलें। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव देखलें। दो दीक्षाएँ हैं। दीक्षा के महोत्सव पर आमतौर पर वाहिर से हजारों श्रद्धालु लोग आ जाते हैं। आपका हरमाड़ा क्षेत्र में इतनी क्षमता रखता है जो यह दीक्षा महोत्सव के अवसर पर वाहिर से आने वाले लोगों को यह संभाल सके। उनके भोजन निवास आदि की व्यवस्था कर सके। यह सव आपको गम्भीरता से विचार कर लेना चाहिये।

पूज्य चरितनायक श्री का युक्तियुक्त उत्तर सुनकर सेठ अमरचन्द जी निवेदन करने लगे—पूज्य गुरुदेव ! आप श्री ने जो कुछ फरमाया है, वह अक्षरशः सत्य है, उसमें रत्ती भर भी मतभेद के लिए कोई स्थान नहीं है। परन्तु मैंने जो कुछ निवेदन किया है, वह भी विना सोचे नहीं कहा। उसके हानि-लाभ पर खूव विचार कर लिया है। आर्थिक और सामाजिक सभी दृष्टियों से हानि लाभ सोच लिया है। भले ही यहाँ पर जैनों की संख्या अधिक नहीं है, तथापि जितने लोग हैं वे सव श्रद्धालु हैं, उत्साही हैं, कार्य करने की इनमें क्षमता है। आप श्री की दयादृष्टि से, आर्थिक दृष्टि से भी यहाँ पर चिन्ता वाली कोई बात नहीं है। हरमाड़ा गाँव वालों में कितना

उत्साह और उल्लास है ? यह आप स्वयं अपनी आँखों से देख लेंगे। जहाँ तक मैं जानता हूँ, वहाँ तक यह बिना किसी संकोच के निवेदन कर सकता हूँ कि आप श्री को हमारे यहाँ पर दीक्षा महोत्सव के सुअवसर पर निराशा का चिन्ह भी दिखाई नहीं देगा। हमें तो इसी बात का अपार हर्ष हो रहा है कि आपने हमारे हरमाड़ा गाँव में दीक्षा महोत्सव सम्पन्न करने की जो स्वीकृति प्रदान की है यह हमारा बहुत बड़ा सौभाग्य है। आप श्री ने हमारी मनोकामना पूर्ण की है। उसके लिए हमारा श्रीसंघ आप श्री का अत्यधिक आभारी है। इतना निवेदन कर देने के अनन्तर सेठ अमरचन्द जी ने पुनः चरितनायक के पावन चरणों में विनीत अभ्यर्थना करके निवेदन किया—

वन्दनीय गुरुदेव ! दीक्षा-महोत्सव की तिथि भी आप श्री निश्चित कर दें, ताकि दीक्षा महोत्सव की तैयारी चालू कर दी जाए और उसकी सूचना प्रान्तीय समस्त जैन समाज को पहुँचा दी जाए।

दीर्घदर्शी और धर्मशील अपने प्रिय श्रावक की विनति सुनकर चरितनायक फरमाने लगे—

श्रावक जी ! वि० सं० १९७९ की वैशाख कृष्णा तिथि चल रही है वैशाख शुक्ला तृतीया तिथि आने वाली है यह तिथि अक्षय तृतीया के नाम से जैन जगत में विख्यात है। आदिम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव ने इसी तिथि को वर्षी तप का पारणा किया था। अतः इसी पुण्य-तिथि के दिन वैरागी टीकमचन्द और रोशनलाल को दीक्षा का पाठ पढ़ा दिया जाए।

पूज्य चरितनायक श्री के विचार का उपस्थित सभी मुनियों तथा श्रावकों ने समर्थन किया। अन्त में दोनों वैरागियों की दीक्षा वैशाखशुक्ला तृतीया के शुभ दिन निश्चित कर दी गई। हरमाड़ा—गाँव वालों को दीक्षा महोत्सव की बात जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई। सभी गाँव निवासी आनन्द विभोर हो उठे। यत्र, तत्र, सर्वत्र आध्यात्मिक चहल-पहल मानों साकार होती हुई दिखाई देने लगी।

हरमाड़ा—गाँव के विचारक लोगों ने दीक्षा-महोत्सव की सफलता को अपने गाँव की प्रतिष्ठा समझते हुए दीक्षा-महोत्सव की व्यवस्था के लिए एक सुदृढ़ समिति बना दी थी अतः दीक्षा-सम्बन्धी सब कार्य इसी समिति के नेतृत्व में किया जाने लगे। सर्वप्रथम समिति ने वैशाख-शुक्ला तृतीया को होने वाले दीक्षा-महोत्सव की राजस्थान के गाँव-गाँव में सूचना प्रसारित करने की व्यवस्था की। तदनन्तर, यात्रियों के निवास स्थान, दीक्षामण्डप और वैरागियों

की शोभायात्रा को अधिक से अधिक सुन्दर प्रभावोत्पादक बनाने का प्रयास चालू किया।

वैशाख शुक्ला तृतीया के शुभ दिन श्री टीकमचन्द जी तथा श्री रोशन लाल जी, महामना, स्वनामधन्य श्री स्वामी छगनलाल जी महाराज के चरणों में दीक्षा अंगीकार कर रहे हैं। यह समाचार विजली की भाँति राजस्थान के गाँव-गाँव में फैल गया। दीक्षामहोत्सव के समाचार सुनकर श्रद्धालु जनता जैसे मेघ-गर्जना सुनकर मोर नाचने लगता है वैसे खुशी से नाचने लगी। धर्मप्रिय जनता के हृदयों में दीक्षामहोत्सव में सम्मिलित होने का इतना अधिक चाव था कि कुछ कहते नहीं बनता। अधिक क्या कहें, लोगों ने वैशाख शुक्ला द्वितीया को ही हरमाडा-गाँव में आना आरम्भ कर दिया। चारों ओर से यात्रियों के समूह हरमाड़ा-गाँव की ओर इतनी अधिक तेजी से बढ़ रहे थे कि सर्वत्र आश्चर्यानुभूति हो रही थी। भले ही हरमाड़ा नगर जनसंख्या की दृष्टि से कोई विशेष महत्व नहीं रख रहा था, ऐतिहासिकता या राजनैतिकता की अपेक्षा से भी वहाँ कोई आकर्षण नहीं था परन्तु दीक्षा-महोत्सव के कारण उस समय तो वह गाँव सबके लिए तीर्थधाम बन गया था। टिड्डी दल की भाँति आ रहे जनसमुदाय ने गाँव का काया-कल्प ही कर दिया। गाँव के बाजारों और गलियों में सर्वत्र स्त्री-पुरुष, युवक-युवतियाँ बालक और बालिकाएँ दिखाई दे रही थीं। मानो गाँव में जनता की बाढ़ सी आ गई थी। इतनी बड़ी जनसंख्या, वह भी धर्म-महोत्सव के उपलक्ष्य में, गाँव वालों ने गाँव के इतिहास में पहली बार ही देखी थी।

"दीक्षा-महोत्सव" की प्रबन्धक-समिति बड़ी दूरदर्शी और प्रतिभा सम्पन्न थी, उसने पहले भी अनेकों दीक्षामहोत्सव देख रक्खे थे। ऐसे प्रसंगों पर बाहिर से आने वाले यात्रियों के उत्साह और उल्लास का उसको अच्छी तरह से पता था, अतः उसने दीक्षामहोत्सव को सफलता के साथ सम्पन्न करने के लिए पूर्णरूपेण तैयारी करली थी। बाहिर से आने वाले स्वधर्मी भाइयों के लिए भोजन और निवास-स्थान का प्रबन्ध बहुत दूरदर्शिता के साथ किया गया था। दीक्षामहोत्सव का सबसे पहला कार्यक्रम दीक्षार्थियों की शोभा-यात्रा थी, उनका पूरी सजधज के साथ जलूस निकालना था। इसीलिए वैशाख शुक्ला के पावन दिन निश्चित समय पर श्री टीकमचन्द और श्री गणेशीलाल जी का एक भव्य जुलूस निकाला गया। दीक्षार्थियों की सवारी निकालने के लिए राजा का हाथी लाया गया था। हाथी पर चान्दी की पालकी में विराजमान दोनों वैरागी कुछ निराली ही शोभा पा रहे थे। प्रथम

तो दोनों दीक्षार्थियों का कृष्ण जैसा सुन्दर वर्ण और स्वस्थ तेजस्वी तथा सुडौल शरीर था फिर उसे बहुमूल्य अनेक बीच आभूषणों से आभूषित कर देने पर तो उनकी रूप छटा कुछ विलक्षण ही अनुभव की जा रही थी। हजारों लोग तो दीक्षार्थी और हाथी की सवारी देखने के उद्देश्य से ही इधर-उधर के गाँवों से आए थे। जो भी दीक्षार्थियों के रूप वैभव को देखता, वह आश्चर्य चकित हुए बिना न रहता। धर्म प्रभावना में रुचि रखने वाले आस्तिक लोग तो दीक्षार्थियों की शोभा यात्रा तथा इनके त्याग-वैराग्य से प्रभावित हो ही रहे थे, परन्तु बड़े-बड़े नास्तिक लोग भी त्यागदेवता के आगे नतमस्तक हुए बिना नहीं रह सके। वे सभी अत्यधिक विस्मित थे कि ये दोनों दीक्षार्थी पिता-पुत्र कितने जितेन्द्रिय और पवित्रात्मा हैं जो परिवार और समाज के मोहबन्धनों को तोड़कर संयम साधना के कंकरीले और कण्टीले महापथ पर चलने लगे हैं। अन्त में, दीक्षार्थियों का जलूस हरमाड़ा गाँव की गलियों और बाजारों को पार करता हुआ जहाँ पर दीक्षामण्डप बना रक्खा था वहाँ पर आ गया।

दीक्षामहोत्सव को सम्पन्न करने के लिए एक बहुत बड़ा मण्डप बनाया गया था, इस मण्डप में हजारों की संख्या में लोग सुविधापूर्वक बैठ सकते थे। पण्डाल की रचना की पद्धति भी अपने ढंग की थी, जो सबके आकर्षण का केन्द्र बन रही थी। उसमें सादगी का विशेष रूप से ध्यान रक्खा गया था, बाह्य सजावट, बनावट, दिखावट या आडम्बर का उसमें कोई स्थान नहीं था। हमारे परम सम्मानास्पद महामुनि श्री स्वामी छगनलाल जी महाराज आडम्बर का सदा विरोध किया करते थे। अतः इन्होंने दीक्षामहोत्सव के प्रबन्धकों को आडम्बर से दूर रहने के लिए विशेष रूप से सावधान कर दिया था। इसीलिए दीक्षामहोत्सव प्रबन्धक समिति ने पूज्य गुरुदेव की आज्ञा का पालन करते हुए दीक्षामण्डप में सादगी का खासतौर से ध्यान रक्खा। भले ही दीक्षा-पण्डाल में सादगी का पूर्णतया ध्यान रक्खा गया था, उसमें तड़क-भड़क नहीं थी, तथापि वहाँ का वातावरण बड़ा ही आकर्षक था, आध्यात्मिकता कुछ निराली ही शोभा दिखला रही थी। एक ऊँचे मंच पर अपने साथी सन्तों के मध्य में विराजमान चरितनायक परमश्रद्धेय श्री स्वामी छगन लाल जी महाराज ऐसे सुशोभित हो रहे थे, जैसे ताराओं के मध्य में चन्द्रमा शोभायमान होता हुआ अपनी तेजस्विता की वर्षा कर रहा होता है। इसके अतिरिक्त यात्रियों के बैठने की बड़ी सुन्दर व्यवस्था होने से यात्री लोग बड़े-शान्त भाव से अपना-अपना स्थान ले रहे थे। पुरुषों के बैठने के लिए अलग स्थान बना रक्खा था और देवियों के बैठने के लिए स्थान की अलग व्यवस्था

थी। हजारों लोगों से भरा हुआ दीक्षा-पण्डाल साक्षात् समवसरण (तीर्थंकर भगवान की धर्म सभा) का पावन दृश्य समुपस्थित कर रहा था।

दीक्षा-पण्डाल जब निकट आया तो दीक्षार्थियों की सवारी वहीं पर खड़ी कर दी गई। दोनों दीक्षार्थी तत्काल हाथी से नीचे उतरे और वहाँ से चल कर सीधे अपने आराध्यदेव गुरुदेव परमपूज्य श्री स्वामी छगनलाल जी महाराज के परिपूत चरणों में हाजिर हुए। श्रद्धा-परिपूरित हृदय के साथ गुरु चरणों पर अपना मस्तक रखा। मस्तक रखकर मानो मन ही मन कह रहे थे कि यही पावन जगतारक चरण हैं, जो हमें संसार-सागर से पार उतारने वाले हैं। गुरुवन्दन करने के अनन्तर दोनों ने करबद्ध होकर गुरुदेव से मंगल पाठ सुना, इसके पश्चात् दीक्षामहोत्सव समिति के प्रबन्धक दोनों दीक्षार्थियों को किसी एकान्त स्थान में ले गए वहाँ पर दोनों दीक्षार्थियों ने अपने-अपने वस्त्राभूषण उतार दिए, नाई से केशों का मुण्डन कराया, जल से स्नान किया। इस तरह आवश्यक सभी कार्य कर लेने के अनन्तर इन्होंने साधुवेष धारण किया, शरीर पर केसर वाली चादर, काँख में रजोहरण, और मुख पर लगी केसर रंजित मुख-वस्त्रिका, दीक्षार्थियों की अध्यात्म शोभा को चार चान्द लगा रही थी।

श्री टीकमचन्द्र जी तथा इनके सुपुत्र श्री गणेशीलाल जी साधुवेष पहन लेने के अनन्तर दीक्षापण्डाल की ओर बढ़े। इनके दीक्षापण्डाल में प्रविष्ट होने की देर थी कि पण्डाल में बैठे हुए हजारों व्यक्तियों ने—

अहिंसा के देवता भगवान महावीर स्वामी की जय हो।
महामहिम श्री स्वामीदास जी महाराज की जय हो।
क्षमामूर्ति पूज्यपाद श्री रंगलाल जी महाराज की जय हो।
पवित्रात्मा गुरुदेव पूज्य श्री छगनलाल जी महाराज की जय हो।

के पावन जयकारे लगाकर आकाश को गुंजाते हुए दीक्षार्थियों का श्रद्धा तथा प्यार भरा स्वागत किया। सभी दर्शक यह सोच कर नतमस्तक हो रहे थे कि ये दोनों पिता-पुत्र अभी एक घण्टा पूर्व देवकुमारों की भाँति वस्त्राभूषणों से विभूषित हो रहे थे और कामदेव भी इनके रूपवैभव को देखकर निस्तेज पड़ रहा था वही पिता-पुत्र अब मुख पर मुखवस्त्रिका धारण किए, बगल में रजोहरण और हाथ में भिक्षा-झोली लिए हुए सन्तों के रूप में उपस्थित हो रहे हैं। कितना त्यागप्रधान विलक्षण परिवर्तन है? शरीर पर साधु वेष भी इतना अधिक मनोहर और आकर्षक जच रहा है कि मानों वर्षों के साधु बने

हुए हों। दोनों दीक्षार्थी साधक साक्षात् साधुता के प्रतीक दृष्टिगोचर हो रहे थे। मस्तक पर ब्रह्मचर्य का अपूर्व तेज अठखेलियाँ कर रहा था आँखें आध्यात्मिक नूर की पावन वर्षा कर रही थीं। अधिक क्या, मुनियुगल के रूप में त्याग और वैराग्य साकार होकर जनता जनार्दन को दर्शन दे रहे थे। मुनियुगल को निहारते ही हजारों आँखें झुक गयीं, हजारों मस्तक प्रणत हुए हजारों हाथों ने एक दूसरे के निकट आकर करबद्धता अङ्गीकार की, हजारों मुखों ने—जय हो, धन्य हो, इन मङ्गल ध्वनियों के द्वारा अपने आप को पावन बनाया इस तरह दीक्षामण्डप में अवस्थित लोग दोनों दीक्षार्थियों का हार्दिक अभिनन्दन एवं अभिवन्दन करने लगे थे।

दीक्षा-महोत्सव-समिति के सदस्यों ने दीक्षार्थियों को दीक्षामण्डप में प्रविष्ट कराने के लिए जनता को इधर-उधर हटाकर मार्ग बनाया, उस मार्ग द्वारा मानव समुदाय के मध्य में से होते हुए दोनों दीक्षार्थी अपने परमश्रद्धेय चरितनायक पूज्य श्री छगनलाल जी महाराज के पावन चरणों में समुपस्थित हुए। वन्दन, नमस्कार तथा दीक्षापाठ पढ़ने से पूर्व के समस्त इच्छाकारेण आदि पाठ पढ़ लेने के अनन्तर स्थानीय संघाधिपति की आज्ञा से पूज्य चरितनायक श्री ने दोनों दीक्षार्थियों को समुच्च स्वर से "करेमि भन्ते !" का मंगलमय पाठ पढ़ाते हुए दीक्षित किया। दीक्षार्थियों को दीक्षा-पाठ पढ़ाने के अनन्तर जब गुरुदेव चरितनायक ने जब उनकी चोटी ली तो वह दृश्य बड़ा प्रभावोत्पादक था। जैन परम्परा की मान्यता के अनुसार दीक्षार्थी को दीक्षा पाठ पढ़ाने के बाद उसकी चोटी के केश दीक्षापाठ पढ़ाने वाले मुनिराज या कोई अन्य मुनिवर हाथों से उखाड़ते हैं, ऐसी परम्परा पूर्ण होने के पश्चात् ही दीक्षार्थी मुनिसंघ में समाविष्ट समा जाता है इससे पहले नहीं। इसी प्राचीन परम्परा के अनुसार जब पूज्य चरितनायक श्री दीक्षित मुनियों की चोटी के बाल महामन्त्र नवकार के समुच्च उद्घोष के साथ ग्रहण कर रहे थे, तो जनता नवदीक्षित मुनियों की सहिष्णुता देखकर आश्चर्य-चकित थी तथा समस्त जनता ने—

"जैनधर्म की जय हो, भगवान महावीर स्वामी की जय हो, गुरुदेव श्री छगनलाल जी महाराज की जय हो"

आदि जयकारे लगाकर वातावरण इतना अधिक आध्यात्मिकतापूर्ण बना दिया था कि कुछ कहते नहीं बनता।

महामहिम चरितनायक श्री स्वामी छगनलाल जी महाराज ने दीक्षा सम्बन्धी समस्त कार्य सम्पन्न कर देने के अनन्तर हरमाड़ा गाँव से विहार कर

दिया। अपनी शिष्यमण्डली सहित ग्रामानुग्राम विहार करते हुए जन-मानस को आत्मोत्थान और आत्मकल्याण की पावन ज्योति से ज्योतित बनाने लगे। पूज्य चरितनायक श्री जब किशनगढ़ पधारे, तो वहाँ का उत्साह तथा धार्मिक उल्लास देखकर आपने वि० सं० १९७९ का चातुर्मास किशनगढ़ फरमा दिया चातुर्मास सानन्द सम्पन्न किया। इस चौमास के पश्चात् १९८० का चातुर्मास पाली और १९८१ का चातुर्मास उदयपुर के निकट शाहपुरा में किया। उदयपुर राज्य में एक जाने माने न्यायाधीश (जज) थे। इनका नाम था—श्री सरदारमल जी छाजेड। वैसे ये जैनकुल में उत्पन्न हुए थे, परन्तु जैन-सन्तों की संगति न रहने से, इनकी जैनधर्मगत आस्था दुर्बल हो गई, आर्य-समाज का वातावरण अधिक मिलता रहा, फलतः ये आर्यसमाजी बन गए। उदयपुर के प्रान्त में पूज्य चरितनायक श्री का चातुर्मास हो जाने के कारण जज साहिब को भी इनसे मिलने का अवसर मिला, विचारों का खूब आदान-प्रदान हुआ। अन्त में, पूज्य चरितनायक श्री के प्रभावशाली और तर्कसंगत उपदेशों के श्रवण से इनकी आँखें खुल गयीं, फिर क्या था ? इन्होंने गुरुदेव से सम्यक्त्व धारण किया, और जैनधर्म में दीक्षित होकर पूज्य चरितनायक श्री के चरणों में अपने प्यार भरे श्रद्धासुमन समर्पित किए।

अजमेर का महा-सम्मेलन

स्थानकवासी समाज का अतीत और वर्तमान—

श्री स्थानकवासी[1] जैन समाज के पूर्व इतिहास का जब दीर्घदर्शिता, गम्भीरता तथा सूक्ष्म दृष्टि से परिशीलन करते हैं तो यह पता चलता है कि विश्ववंद्य, मंगलमूर्ति, अहिंसा सत्य के अग्रदूत भगवान महावीर के युग में स्थानकवासी समाज का ओज, तेज, वर्चस्व और प्रभाव दिवाकर की भांति जगती में सर्वत्र प्रकाशमान हो रहा था। सर्वत्र इसकी धाक थी, परन्तु समय का प्रकोप समझिए कि भगवान महावीर का निर्वाण हो जाने के अनन्तर इस का प्रभाव धीरे-धीरे घटने लगा उसमें स्वल्पता और न्यूनता आने लगी, परिणामस्वरूप इसका संगठन छिन्न-भिन्न हो गया। भगवान महावीर के निर्वाण के लगभग ६०६ वर्षों के अनन्तर इस समाज से दिगम्बर परम्परा का और ६२० वर्षों के पश्चात् श्वेताम्बर मूर्तिपूजक परम्परा का आविर्भाव हुआ तथा लगभग २ सौ वर्ष हो चुके हैं इसी समाज में से तेरहपन्थ परम्परा का प्रादुर्भाव हो गया, समय के प्रकोप को इससे भी शान्ति नहीं हुई। आगे चल कर स्थानकवासी परम्परा स्वयं ही छिन्न-भिन्न हो गई। सभी प्रान्तों में यह अलग-अलग दलों में विभक्त होगई इस का रहा-सहा सम्मान भी निस्तेज पड़ गया। सम्प्रदायवाद की दुर्भावनाओं ने इस समाज को बुरी तरह आक्रान्त कर लिया। सबसे बड़ा आश्चर्य और खेद इस बात का था कि संसार को अहिंसा, सत्य का परम पावन उपदेश देने वाले, सन्तजन, प्रेम, स्नेह, ऐक्य, संगठन तथा आपसी प्यार का अमृत घर-घर बांटने वाला साधुसमाज भी संकीर्णता, आपसी वैरविरोध तथा ईर्ष्याद्वेष की कुत्सितवृत्तियों की दलदल में

---

[1] 'स्थानकवासी' शब्द का क्या अभिप्राय है ? यह जानने की इच्छा रखने वाले महानुभावों को परमाराध्य गुरुदेव जैनधर्म दिवाकर साहित्यरत्न जैनागमरत्नाकर श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ के आचार्य सम्राट पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज के द्वारा विनिर्मित "स्थानकवासी" नामक पुस्तिका का अवलोकन करना चाहिए।

बुरी तरह फंस गया। और "संघे शक्तिः कलौ युगे"[1] के महासत्य को बिल्कुल भूल गया। मानवीजगत को वीतरागता के महासत्य का परम पावन सन्देश देने वाला जब सन्त-वर्ग ही राग-द्वेष के भयंकर जाल में उलझ गया था तब किसी और को क्या उपालम्भ दिया जा सकता था। सन्तजनों की तो इतनी अधिक चिन्ताजनक स्थिति हो गई थी कि क्या कहा जाए ? एक ही परम्परा को मानने वाले साधु आपस में मिलकर बैठना भी पसन्द नहीं कर रहे थे। एक दूसरे के सन्मुख आने पर एक दूसरा मुख दूसरी ओर फेर लेता था, एक दूसरा एक दूसरे को भेषधारी, शिथिलाचारी कहने से भी नहीं सकुचाता था, गृहस्थों की साधुओं से भी गई-गुजरी दशा थी। अपने सिंघाड़े के सन्त को परमात्मा तुल्य मान कर उसकी पूजा की जाती थी। दूसरे सिंघाड़े के मुनिवर को वन्दन तो क्या, घृणापूर्ण दृष्टि से देखा जाता था उसे बुरा-भला भी कहा जाता था इस तरह साम्प्रदायिकता का विष सर्वत्र अपना दुष्प्रभाव दिखला रहा था। बड़ी चिन्ताजनक स्थिति थी उस युग की।

स्थानकवासी समाज का सौभाग्य समझिए कि इसमें ऐक्य की भावना अंगड़ाई लेने लगी। जन-मानस संकीर्णताजन्य दुष्परिणाम अनुभव करने लगा था, अतएव अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फरन्स के गंभीर विचारक नेताओं ने अपनी समाज की दयनीय दशा को सुधारने का भीष्म व्रत अंगीकार किया। ये समाज हित चिन्तक लोग स्थानकवासी जैन समाज की समस्त सम्प्रदायों और असम्प्रदायों को एक रूप देना चाहते थे। इनकी पूर्ण निष्ठा थी कि संगठित होने पर ही स्थानकवासी समाज के भविष्य को समुज्ज्वल बनाया जा सकता है। व्यवस्थित योजना बना लेने के अनन्तर जैन कान्फरन्स ने समाचार पत्रों, उत्सवों, भाषणों तथा ऐक्य प्रधान विचारों के आदान-प्रदान से जनता जनार्दन में संगठन की भावना को जागत करना आरम्भ कर दिया। जन-मानस तो आपसी फूट तथा सामाजिक वैर-विरोध से पहले ही खेद खिन्न था, फलतः एकता की भावना के प्रसार का समाज के प्रत्येक व्यक्ति ने स्वागत किया, अन्त में विक्रम सम्वत् १९८९, में चैत्र कृष्णा दशमी के दिन अखिल भारतीय स्थानकवासी जैन मुनिराजों का अजमेर नगर में एक वृहत् सम्मेलन बुला लिया गया। इस आयोजन को सफल बनाने के लिये जैन कान्फेरन्स के शिष्ट-मण्डल भारत के कोने-कोने में घूमे, अधिक से अधिक मुनिराजों से उन्होंने सम्पर्क स्थापित किया। जैन

---

[1] कलियुग में संगठन ही एक परम शक्ति है।

भावनाएँ मचल रही थीं। वस्तुतः संघहित की विराट भावना लेकर ही समस्त मुनिमण्डल ने अजमेर नगर में पदार्पण किया था। मुनिवर भी एक दो नहीं, सैकड़ों की संख्या में थे और छब्बीस सम्प्रदायों के प्रमुख मुनिराज थे। सबके हृदयों में जिन शासन की बिखरी शक्ति को केन्द्रित करने की बलवती तड़प थी। सम्मेलन का कार्यक्रम चालू करने से पहले सर्वप्रथम निम्नोक्त पद्यों के द्वारा शतावधानी श्री रतनचन्द जी महाराज तथा पूज्यपाद श्री नानचन्द्र जी महाराज ने मङ्गलाचरण किया गया—

लक्ष्य मेरुगिरेः समुन्नततरं, गम्भीरमब्धेर्मनो,
वाणी प्रेमसुधा-झरी, हितकरी, दृष्टिदिगन्तं गता।
येषां कष्टसहं शरीरमनघं, श्रेयोविधौ तत्परा—
स्ते सन्तो हि विभूषयन्तु समितिं, गत्वाजमेरं पुरम्॥[1]

इस मङ्गलाचरण के अनन्तर साधुसम्मेलन की कार्यवाही विधिवत् चालू की गई। सर्वप्रथम सर्वसम्मति से जो प्रस्ताव पारित किया गया उसमें समस्त स्थानकवासी जैनसाधुओं के आपसी सम्बन्धों को आदर्श, प्रेमवर्धक तथा मधुर बनाने पर बल दिया गया था। इस प्रस्ताव में इस बात पर जोर दिया गया था। स्थानकवासी मुनि किसी भी प्रान्त का हो, गच्छका हो तथा किसी भी मान्यता का आश्रयण करके चलने वाला हो, परन्तु उसे अन्य सभी मान्यताओं का आदर करना है। यदि वह आदर करने की स्थिति में न भी हो, परन्तु उसे दूसरे किसी गच्छ की मान्यता का अनादर या अपमान नहीं करना है। इस प्रस्ताव को पारित करने का सर्वाधिक लाभ यह हुआ कि मुनिराजों का आपसी संकोच जाता रहा। वे एक दूसरे के निकट आ गये, बिना किसी झिझक के परस्पर विचार-विमर्ष करने लगे, एक दूसरे को एक दूसरे में अपनापन अनुभव होने लगा।

---

[1] जिनका लक्ष्य सुमेरुपर्वत से भी उन्नत है जिनका मन सागर से भी अधिक गम्भीर है, प्रेमामृतमयी स्रोत बहाने वाली जिनकी वाणी सबके हित-कारिणी हैं, जिनकी दीर्घ विचार दृष्टि दिगन्त तक पहुँच गई है, जिनका शरीर आज नाना कष्ट परीषह सहकर पवित्र हो गया है और जो अपने पराए का श्रेय—कल्याण करने में प्रतिपल तत्पर रहते हैं। ऐसे सन्तपुरुष

थी। अधिक क्या, इस सम्मेलन ने प्राचीन युग में हुए वल्लभी और मथुरा नगरी के महासम्मेलनों की याद को ताजा कर दिया था।

अजमेर में महासम्मेलन क्या हुआ, मानो उसके जीवन की दिशा ही परिवर्तित कर दी। नगर के घर-घर में, गली-गली में सर्वत्र हर्ष, उल्लास, उत्साह, आध्यात्मिकता-जन्य जागरण साकार होकर नाचता हुआ दिखाई दे रहा था। अजमेर-निवासियों ने आज तक इतनी बड़ी संख्या में साधु-मुनि-राजों के दर्शन पहले कभी नहीं किये थे। इसीलिए सभी मुनिवरों के एक साथ मङ्गल दर्शन करके अपने आपको धन्य मानने लगे थे। परिपूतात्मा महामुनियों के पावन दर्शनार्थ बाहिर की जनता भी इतनी अधिक संख्या में अजमेर नगर में आ चुकी थी कि कुछ कहते नहीं बनता। अजमेर नगर का शायद ही ऐसा कोई मुहल्ला या बाजार बचा होगा जहाँ बाहिर के दर्शनार्थी लोग न ठहरे हों जिधर देखो उधर ही लोग दिखाई दे रहे थे। जैन कान्फरेंस के विचारक लोगों का विश्वास था कि गुजरात, सौराष्ट्र, कच्छ, काठियावाड़, बम्बई, मद्रास, बैंगलोर, मैसूर, महाराष्ट्र, खानदेश, नागपुर, रायपुर-सी० पी० कलकत्ता, बंगाल, आसाम, उत्तर प्रदेश, दिल्ली, पंजाब आदि सभी प्रान्तों से लगभग ४०-५० हजार लोग अजमेर सम्मेलन की शोभा बढ़ा रहे थे। सबके मन में एकता और संगठन की पावन भावनाएँ हिलोरें ले रही थीं। सबके हृदयों में एक ही आकांक्षा थी कि वल्लभी और मथुरा नगरी के अतीतकालीन सम्मेलनों में जैसे जैनागमों के पाठों को व्यवस्थित रूप दिया गया था। एक-रूपता प्रदान की गई थी वैसे वर्षों से चले आ रहे साम्प्रदायिक संघर्ष एवं कटुता को समाप्त करके साधु समाज की बिखरी समस्त कड़ियों को व्यवस्थित रूप से एक सूत्र में आबद्ध कर दिया जाए।

भारत के समस्त स्थानकवासी मुनिराजों का अजमेर नगर में किया जाने वाला उक्त सम्मेलन वि० सं० १९८९ चैत्रकृष्णा दशमी के पवित्र दिन चालू हो रहा था। इसलिए, भारत का प्रत्येक स्थानकवासी इस तिथि का बड़ी व्यग्रता से प्रतीक्षा कर रहा था। बहुत लम्बी प्रतीक्षा के बाद अन्त में चैत्र-कृष्णा दशमी का दिन आ ही गया। अजमेर नगर में ममैयों का एक नौहरा है, उसमें एक विशाल वटवृक्ष है। मुनिराजों ने इसी वटवृक्ष के नीचे बैठकर विचार-चर्चा करने का निर्णय किया। परिणामस्वरूप वटवृक्ष की शीतल, सुखद, सघन एवं सविस्तृत छाया तले अखिल भारतवर्षीय स्थानकवासी जैन श्रमण-संघ के प्रतिनिधि मुनिराजों ने अपने आसन जमा लिये। सबके मन-मस्तिष्क में जिन शासन की संघ एवं समाज की उन्नति एवं प्रगति की

भावनाएँ मचल रही थीं। वस्तुतः संघहित की विराट भावना लेकर ही समस्त मुनिमण्डल ने अजमेर नगर में पदार्पण किया था। मुनिवर भी एक दो नहीं, सैकड़ों की संख्या में थे और छब्बीस सम्प्रदायों के प्रमुख मुनिराज थे। सबके हृदयों में जिन शासन की बिखरी शक्ति को केन्द्रित करने की बलवती तड़प थी। सम्मेलन का कार्यक्रम चालू करने से पहले सर्वप्रथम निम्नोक्त पद्यों के द्वारा शतावधानी श्री रतनचन्द जी महाराज तथा पूज्यपाद श्री नानचन्द्र जी महाराज ने मङ्गलाचरण किया गया—

लक्ष्यं मेरुगिरेः समुन्नततरं, गम्भीरमब्धेर्मनो,
वाणी प्रेमसुधा-झरी, हितकरी, दृष्टिदिगन्तं गता।
येषां कष्टसहं शरीरमनघं, श्रेयोविधौ तत्परा—
स्ते सन्तो हि विभूषयन्तु समितिं, गत्वाजमेरं पुरम् ॥[1]

इस मङ्गलाचरण के अनन्तर साधुसम्मेलन की कार्यवाही विधिवत् चालू की गई। सर्वप्रथम सर्वसम्मति से जो प्रस्ताव पारित किया गया उसमें समस्त स्थानकवासी जैनसाधुओं के आपसी सम्बन्धों को आदर्श, प्रेमवर्धक तथा मधुर बनाने पर बल दिया गया था। इस प्रस्ताव में इस बात पर जोर दिया गया था। स्थानकवासी मुनि किसी भी प्रान्त का हो, गच्छका हो तथा किसी भी मान्यता का आश्रयण करके चलने वाला हो, परन्तु उसे अन्य सभी मान्यताओं का आदर करना है। यदि वह आदर करने की स्थिति में न भी हो, परन्तु उसे दूसरे किसी गच्छ की मान्यता का अनादर या अपमान नहीं करना है। इस प्रस्ताव को पारित करने का सर्वाधिक लाभ यह हुआ कि मुनिराजों का आपसी संकोच जाता रहा। वे एक दूसरे के निकट आ गये, बिना किसी झिझक के परस्पर विचार-विमर्ष करने लगे, एक दूसरे को एक दूसरे में अपनापन अनुभव होने लगा।

---

[1] जिनका लक्ष्य सुमेरुपर्वत से भी उन्नत है जिनका मन सागर से भी अधिक गम्भीर है, प्रेमामृतमयी स्रोत बहाने वाली जिनकी वाणी सबके हितकारिणी हैं, जिनकी दीर्घ विचार दृष्टि दिगन्त तक पहुँच गई है, जिनका शरीर आज नाना कष्ट परीषह सहकर पवित्र हो गया है और जो अपने पराए का श्रेय—कल्याण करने में प्रतिपल तत्पर रहते हैं। ऐसे सन्तपुरुष अजमेर (अजय, अमर) नगर में पधार कर समिति (साधु सम्मेलन) को शोभा को बढ़ाएँ।

अजमेर सम्मेलन में अनेक प्रकार नियमोपनियम बनाये गये। प्रस्तुत में केवल एक-दो की चर्चा की जाएगी। अजमेर सम्मेलन से पहले मुनिराजों के प्रतिक्रमण में 'लोगस्स' के पढ़ने में एकता नहीं थी। कोई चौमासी, पक्खी और सम्वत्सरी को दो-दो प्रतिक्रमण करते थे और कोई सम्वत्सरी के दिन चालीस लोगस्स का ध्यान किया करते थे जबकि कुछ सम्प्रदाय वाले उपरोक्त पर्वों पर केवल चार लोगस्स का ही ध्यान करते थे। परन्तु अजमेर सम्मेलन में यह निर्णय किया गया कि जितने मुनिवर और जितनी महासतियाँ हैं, इन सबको एक ही पक्खी और एक ही सम्वत्सरी मनानी चाहिये। इसमें देवसी और रायसी को चार लोगस्स, पक्खी को आठ लोगस्स, चौमासी पक्खी को बारह लोगस्स और महापर्व सम्वत्सरी को २० लोगस्स के कायोत्सर्ग करने होंगे।

जब कभी लौंद (मलमास) आता है और दो श्रावण अथवा दो भाद्रपद आते तो सम्वत्सरी कलह, वाद-विवाद और लोकहास का विषय बन जाता है। किसी को दूसरे श्रावण में सम्वत्सरी करने का पक्ष था और कि प्रथम भाद्रपद में या किसी को द्वितीय भाद्रपद में। इस तरह समाज में पक्षपातपूर्ण आग्रह से आपसी वैर-विरोध मतभेद और अनैक्य का वातावरण जाग उठता था। परन्तु अजमेर-सम्मेलन में लम्बी विचार-चर्चा के बाद निर्णय हुआ कि दो श्रावण होने पर दूसरे श्रावण में सम्वत्सरी करनी तथा दो भाद्रपद होने पर पहले भाद्रपद में सम्वत्सरी पर्व मनाया जाए।

अजमेर-सम्मेलन बड़ा प्रेरणाप्रद और सन्तोपजनक रहा, यह सन्त-सम्मेलन लगभग १५०० वर्षों के बाद हुआ था। इसमें स्थानकवासी समाज को संगठित करने का पूरा-पूरा प्रयास किया गया। यह सत्य है कि पूर्ण रूपेणतु संगठन साकार रूप धारण नहीं कर सका, तथापि भावी संगठन की पूर्ण भूमिका अवश्य तैयार हो गई। इसी पूर्णभूमिका के प्रताप से आगे चलकर सादड़ी के महासम्मेलन में एक आंशिक एकता पूर्णता के रूप में परिवर्तित हो गई। वस्तुतः सादड़ी-सम्मेलन की सफलता एवं श्रमणसंघ के निर्माण का मूलाधार अजमेर सम्मेलन ही था। इस अजमेर सम्मेलन में श्री जैनकान्फरम की प्रार्थना पर हमारे महामान्य चरितनायक श्री स्वामी छगनलाल जी महाराज भी पधारे थे। हमारे चरितनायक श्री साधु समाज में एक ख्याति-प्राप्त महापुरुष थे और महामहिम श्री स्वामीदास जी महाराज के सम्प्रदाय में अग्र मुनिवर माने जाते थे। इसीलिए ये भी अजमेर सम्मेलन में सादर नि

किये गये थे । हमारे मान्य चरितनायक भी ऐक्यप्रिय महापुरुष थे । समाज की बिखरी हुई कड़ियों को जोड़ने में यथाशक्ति इन्होंने पूरा-पूरा प्रयत्न किया । महापर्व सम्वत्सरी के विवाद को निपटाने के लिए श्रद्धेय चरितनायक ने जो सहयोग दिया । वह कभी भूला नहीं जा सकता, सम्वत्सरी के निर्णय को सम्पन्न करने के लिए हमारे चरितनायक श्री ने स्वयं लगभग ७० मुनिराजों के स्वीकारात्मक हस्ताक्षर कराए । सम्वत्सरी सम्बन्धी लिखित निर्णय अनेक वर्षों तक इनके पास धरोहर रूप से सुरक्षित रक्खा रहा अन्त में इन्होंने उसे जैन कान्फरन्स को सौंप दिया । ●

आध्यात्मिक साधना के चमत्कार

ब्रह्मचर्य का अर्थ पीछे पृष्ठ१ से २१ तक पर लिखा जा चुका है। यह ब्रह्मचर्य आध्यात्मिक शक्तियों का एक पावनस्रोत है, आधार है, अखूट भण्डार है आश्चर्य-जनक चमत्कारों का अपूर्व भण्डार है, विलक्षण ऋद्धि-सिद्धियों का निराला खजाना है। ब्रह्मचर्य की चमत्कार प्रधान घटनाओं से विश्व का समस्त साहित्य भरा पड़ा है। केवल भारत में ही नहीं, भारत से बाहर पाश्चात्य देशों में भी ब्रह्मचर्य के तेज की विस्मयजनक घटनाएँ यत्र, तत्र, सर्वत्र पढ़ने सुनने और देखने में आती हैं। भारतीय साहित्य का तो कहना ही क्या है ? यह तो ब्रह्मचर्य की महत्ता और आश्चर्य-कारिता के गीत गाता थकता ही नहीं है।

कौन नहीं जानता कि भगवती सीता ने धधकता अग्नि का कुण्ड जलमय बना दिया था। सीता स्वल्पवयस्का थी, बड़ी उम्र की नहीं थी तथापि वयोवृद्ध लोग उसे माता के रूप में निहारते थे। सीता को जग माता के समुच्च सिंहासन पर विराजमान करवाने का श्रेय यदि किसी को है तो वह ब्रह्मचर्य को ही है। अग्नि को जलमय बनाने की ब्रह्मचर्य-गतक्षमता को हिन्दी कवि कितनी सुन्दरता से अभिव्यक्त कर रहा है—

क्या नहीं तुमने सुना सीता कहानी बन गई,
शील की ताकत के आगे आग पानी बन गई।

शील के चमत्कारों के क्या कहने ? धर्मवीर सेठ सुदर्शन की शूली को स्वर्ण-सिंहासन बनाने वाली यही शक्ति थी। जो वध-भूमि श्मशान बन रही थी, जहाँ मुर्दों की हड्डियों को खींचते हुए कुत्तों ने महाभारत का दृश्य पैदा कर दिया था और जहाँ मृत्यु साकार होकर भ्रमण करती हुई सी दिखाई देती थी उस वधभूमि पर भी स्वर्गीय दृश्य उपस्थित कर देना, ब्रह्मचर्य की विलक्षण शक्ति का ही चमत्कार था। ब्रह्मचर्य ने ही महासती सुभद्रा से कच्चे धागे से लोहे की छलनी को बंधवा कर कुएँ से पानी निकलवाया था और किसी भी सैनिक शक्ति से न खुलने वाले चम्पा नगरी के दरवाजों को पानी के छींटों से खुलवा दिया था। ब्रह्मचर्य की शक्ति की

महिमा कहाँ तक कहते चले जाएँ वह अपरम्पार है। अतीनकालीन इतिहास जहाँ ब्रह्मचर्य के निराले चमत्कारों की आश्चर्यपूर्ण घटनाओं से ओत-प्रोत हो रहा है। वहाँ आधुनिक इतिहास भी ब्रह्मचर्य-महादेव की महाशक्तियों के आगे नतमस्तक हो रहा दिखाई दे रहा है। आज के इतिहास में भी ऐसे-ऐसे उदाहरण सम्प्राप्त हो रहे हैं, जिनसे ब्रह्मचर्य की शक्ति के चमत्कारों को भलीभाँति जाना व समझा जा सकता है। किसी और जीवन की क्या बात करें, हमारे महामान्य चरितनायक श्रद्धेय श्री स्वामी छगनलाल जी महाराज का जीवन दर्शन ही आपके सामने है। इनके जीवन दर्शन ने अपूर्व चमत्कार दिखलाए हैं जिन्हें देख व सुनकर मनुष्य आश्चर्य-चकित हुए बिना नहीं रह सकता। श्रद्धेय-चरितनायक श्री के अध्यात्म साधना की चमत्कारपूर्ण घटनाएँ तो अनेकानेक हैं, परन्तु विस्तारभय से समस्त चमत्कार-पूर्ण घटनाओं का उल्लेख न कर जानकारी के लिए केवल कुछ एक घटनाओं का उल्लेख करने लगा हूँ—

[१]

वचनसिद्धि के चमत्कार—हिन्दुस्थान और पाकिस्तान के विभाजन के समय जो भीषण नर-संहार हुआ उसे कौन नहीं जानता? पाकिस्तान में मुसलमानों ने हिन्दू सिक्खों के रक्त से होली खेली और हिन्दूस्थान में हिन्दू सिक्खों ने मिलकर मुसलमानों का सफाया किया। प्रतिशोध की भावना ने इन्सान को शैतान बना दिया था, मनुष्य विजातीय मनुष्य के खून का इतना अधिक प्यासा हो गया था कि पशुता और दानवता भी काँप उठी थी, भारत के इतिहास में सम्भव है इतने भयंकर मनुष्यता घातक दिन कभी न आए हों। निन्दनीय और गर्हणीय ये दिन कभी भुलाए नहीं जा सकते।

पाकिस्तान का विभाजन वि० स० २००४ में हुआ था। यह समय साम्प्रदायिक विद्वेष, उपद्रवों, दंगों, मारकाट और लूट का ही दुःखद समय था। पंजाब और बंगाल के प्रान्त तो विशेष रूप से हिन्दु-मुस्लिम दंगों के केन्द्र बन रहे थे। छोटे से छोटे गाँव से लेकर बड़े से बड़े नगर नृशंस हत्याओं, अग्निकाण्डों और लूटमार की लपेट में आ चुके थे। सर्वत्र भय और आतंक छाया हुआ था। इन दिनों हमारे आराध्य चरितनायक महामना श्रद्धेय श्री छगनलाल जी महाराज माछीवाड़ा में विराजमान थे। माछीवाड़ा लुधियाना जिले के अन्तर्गत एक अच्छा खासा कसबा है। जैनधर्म दिवाकर, साहित्यरत्न, जैनागमरत्नाकर आचार्य सम्राट पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज की पवित्र जन्मभूमि राहों से लगभग दस माइल की दूरी पर अवस्थित है। वि० सं०

२००४ में इस गाँव में हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों की अधिक सख्या थी। अन्य सभी धर्मों के लोग भी यहाँ पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होते हैं। स्थानकवासी जैनपरम्परा के लोगों के भी माछीवाड़ा में ३० के लगभग घर हैं। जैनसमाज ने पोस्ट आफिस के बिल्कुल सामने एक विशाल जैन स्थानक (जैनधर्म स्थान) बना रक्खा है। इसी जैन स्थानक में हमारे महामान्य चरितनायक श्री विराजमान हो रहे थे।

माछीवाड़े के जैनस्थानक के पास मुसलमानों की काफी आबादी है। जिन दिनों हिन्दू-मुस्लिम दंगे चल रहे थे, उन दिनों माछीवाड़े के आसपास के गाँवों में रहने वाले मुसलमान भी माछीवाड़े में आ चुके थे। इसीलिए जैनस्थानक के नजदीक मुसलमान बहुत बड़ी संख्या में बैठे थे। मुसलमानों ने जैनस्थानक को आग लगाने की विशेष रूप से योजना बनाली थी। एक दिन तो ऐसा आ गया कि मुसलमानों ने जैनस्थानक को जलाने के लिए मशालें तैयार करलीं। मशाल का अर्थ है- लम्बी गोल लकड़ी के सिरे या लोहे की सलाख पर कपड़ा लपेट कर बनायी हुयी मोटी बत्ती जिसे तेल से तर कर व्याह-बरात आदि में जलाया जाता है। अथवा लम्बे बाँस के सिरे पर चिलम जैसा भाजन बाँधकर उसमें बड़े में और मिट्टी का तेल डालकर जलाना। माछीवाड़े के घर-घर में यह चर्चा फैल गई कि आज मुसलमान जैनस्थानक को आग लगाएंगे। जैनस्थानक को आग लगाने के दुःखद समाचार सुनकर जैनसमाज का उद्विग्न होना स्वाभाविक था। इस पर भी अधिक चिन्ता इस बात की थी कि जैनस्थानक में महामहिम चरितनायक श्री छगनलाल जी महाराज विराजमान हैं। क्या युवक, क्या युवती, क्या बालक, क्या बालिका, क्या वृद्ध और क्या वृद्धा सबकी आँखों आगे अन्धेरा छा गया।

जैनसमाज के मुखिया लोग तत्काल जैनस्थानक में पहुँचे और श्रद्धेय चरितनायक के पावन चरणों में वन्दन करने के अनन्तर विनीत प्रार्थना करते हुए उन्होंने निवेदन किया—

गुरुदेव ! नगर का वातावरण बड़ा दूषित हो गया है, किसी भी समय हिन्दू-मुस्लिम दंगा हो सकता है। मुसलमानों की संख्या अधिक है, इसीलिए हिन्दू जनता बुरी तरह भयाक्रान्त हो रही है, इसके अतिरिक्त यह अफवाह भी जोर पकड़ती जा रही है कि जैनस्थानक को आज आग लगा देने की योजना बनाली गई है। सम्भव है इसीलिए मुसलमान लोग जैनस्थानक के पास अधिक से अधिक संख्या में एकत्रित हो रहे हैं तथा मशालें तैयार कर रहे हैं। ऐसे संकट-काल में आप श्री का यहाँ विराजमान रहना खतरे से

खाली नहीं है। आप तो यहां ऐसे विराजमान हो रहे हैं जैसे कोई बात ही न हो। आज हमारा यह शिष्टमण्डल यही निवेदन करने के लिए आया है कि आप श्री जैनस्थानक को छोड़दें, किसी अन्य स्थान पर पधार जावें। यदि यहां पर मुसलमानों ने आक्रमण कर दिया तो हम कहीं भी किसी को मुँह दिखाने के योग्य नहीं रहेंगे।

अपने श्रद्धालु श्रावकों की सानुरोध प्रार्थना सुनकर निर्भीकता के सागर श्रद्धेय चरितनायक श्री फरमाने लगे—

बन्धुओ ! आप लोग मंगलमूर्ति भगवान महावीर के अनुयायी हैं, महावीर की सन्तति होकर आज कायर क्यों बन रहे हो ? होसला रक्खो ! मुसलमानों की क्या शक्ति है जो जैनस्थानक को क्षति पहुंचादें। शासनदेव का प्रताप चाहिए। यहां कोई खतरा नहीं हो सकता। हजारों तो क्या लाखों मुसलमान भी इकट्ठे हो जाए, और हाथों में मशालें लेकर फिरते रहें तथापि जैनस्थानक का बाल भी बाँका नहीं होगा आप निश्चिन्त रहें। हम जैनस्थानक में ही रहेंगे, जैन स्थानक छोड़कर किसी दूसरे स्थान में नहीं जायेंगे।

आगन्तुक शिष्टमन्डल चरितनायक श्री की निर्भीकता तथा आत्मविश्वास को देखकर आश्चर्यचकित था। तथापि उसने पुनः विनीतता भरे स्वर में गुरु चरणों में प्रार्थना करते हुए कहा—

गुरु महाराज ! आप श्री जहाँ विराजमान है वहाँ पर क्या क्षति हो सकती है ? यह सत्य है, परन्तु हमारा मन नहीं मानता कि ऐसी संकटमय स्थिति में आप यहाँ पर ठहरें। आप मालिक हैं तथापि आपसे एक प्रार्थना अवश्य करेंगे कि जैन स्थानक के दरवाजे खुले नहीं रहने चाहिए। कम से कम हमारी इतनी ही विनति स्वीकार करने की कृपा करें, और स्थानक के दरवाजे खुले न रक्खें, ताकि कोई गैर व्यक्ति अन्दर प्रवेश न कर सके।

शिष्टमण्डल की यह विनति सुनकर मान्य चरितनायक श्री तत्काल आगन्तुक लोगों को सान्त्वना प्रदान करते हुए फरमाने लगे—भोले श्रावको ! मन को ढेरी क्यों कर रहे हो। तुम्हें एक बार कह दिया कि चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं। धर्मध्यान में मन लगाओ। धर्म-देवता की छत्र-छाया तले संकट की छाया भी निकट नहीं आ सकती। तुम विश्वास रक्खो मुसलमान लाख मशालें ले आऐं किन्तु जैन स्थानक को कोई मशाल छू भी नहीं पाएगी। यह अन्धेरी अपने आप समाप्त हो जायगी। जैनस्थानक के दरवाजे खुले रहेंगे, इनको बन्द नहीं किया जायगा।

माछीवाड़ा जैन समाज के प्रधान सेठ नौरातारामजी जैन प्रोपराइटर लाला नौराताराम बालकिशनदास जैन आढ़ती माछीवाड़ा, सुनाया करते थे कि शास्त्र-विशारद श्रद्धेय श्री छगनलालजी महाराज की दृढ़ता और निराला साहस देखकर हम सब हैरान थे और इस बात से आज भी हम हैरान हैं कि जो कुछ महाराज श्री ने फरमाया था वही कुछ हुआ। चाहें हजारों की संख्या में मुसलमान जैन स्थानक के पास इकट्ठे हो गए थे परन्तु एक भी मुसलमान जैनस्थानक के अन्दर प्रवेश नहीं कर पाया, उनकी जाज्वल्यमान मशालें सदा के लिए बुझ गई। इधर महाराज श्री सायंकालीन प्रतिक्रमण करने बैठ गए उधर मुसलमानों की भीड़ धीरे-धीरे बिखरने लगी। पुलिस के सिपाहियों के आ जाने पर तो नगर में सर्वत्र शान्ति की लहर ही दौड़ गई। उस समय माछीवाड़े के सभी जैन अजैन यही कहते सुनाई दे रहे थे कि श्रद्धेय श्री छगन-लाल जी महाराज बड़े चमत्कारी महापुरुष हैं, इनकी वचनसिद्धि विलक्षण है जो कुछ इन्होंने कहा था, अक्षरशः वही सत्य प्रमाणित हुआ।

[२]

श्री धनपतराय जी जैन सुपुत्र श्री हरगोपालजी जैन माछीवाड़ा, जौलौजी [Zoology] के प्रोफेसर हैं। ये बड़े सुलझे हुए धार्मिक और विचारक व्यक्ति हैं। परन्तु अशुभ कर्मों का प्रकोप समझिए, कभी-कभी ये दिमागी खराबी (पागलपन) से आक्रान्त हो जाते है। एक बार दिमागी खराबी के कारण ये अचानक घर से भाग गए। घरवालों को जब पता चला कि धनपतराय अचानक कहीं भाग गया हैं तो सबका चिन्तित होना स्वाभाविक ही था। चिन्तित होने का विशेष कारण यह था कि माछीवाड़े के पास रोपड वाली नहर है। यह नहर खूनी मानी जाती है। प्रतिवर्ष इसमें अनेकों जीवनों का अन्त होता है। पागलपन के कारण श्री धनपतराय जी कहीं नहर में न कूद पड़ें, और आत्महत्या न करलें, इस कारण घर वालों को विशेष चिन्ता हो गई थी। घर वालों ने नहर पर पता कर लिया। आस-पास के स्थानों पर धनपतराय जी को ढूंढ़ लिया, किन्तु इनका कहीं पर भी सुराख नहीं मिला। सौभाग्य समझिए कि जिन दिनों की यह घटना वर्णित की जा रही है उन दिनों हमारे परम श्रद्धास्पद चरितनायक श्री स्वामी छगनलाल जी महाराज अपनी शिष्य मण्डली सहित माछीवाड़े में ही विराजमान थे। प्रोफेसर साहिब के पूज्य पिता बापू हरगोपाल जी तत्काल श्रद्धेय चरितनायक श्री जी महाराज के चरणों में उपस्थित हुए और दुःखी हृदय के साथ धनपतरायजी के भाग जाने की बात महाराज श्री के चरणों में निवेदन की तथा साथ में विनीत प्रार्थना करते हुए निवेदन किया—

बाबूजी ! जीवन संघर्षों का नाम है। आप जैसा दूरदर्शी और गम्भीर व्यक्ति भी यदि उदासीन या निराश हो जाएगा, तो दूसरे लोगों की क्या स्थिति होगी ? धनपतराय जी की चिन्ता न करो वह ठीक-ठाक है। जल्दी ही मिल जाएगा। मेरा ख्याल है आपको रोपड़ जाने की जरूरत नहीं है। रोपड़ तो वह गया ही नहीं है। धनपतराय इस समय होशियारपुर है। वहाँ पर आपको जाते ही मिल जाएगा।

पूज्य चरितनायक ने अपना अभिप्राय अभिव्यक्त करने के अनन्तर बाबू हरगोपाल जी को मंगलपाठ सुना दिया। मंगल पाठ सुनने के पश्चात् बाबू हरगोपाल जी ने रोपड़ जाने का विचार छोड़ दिया और ये वहीं से सीधे होशियारपुर चले गए। होशियारपुर पहुँचे और बस के अड्डे पर उतरे ही थे कि सामने अपने पुत्र धनपतराय जी को खड़े देखकर आश्चर्यचकित रह गए। परम श्रद्धेय पूज्य चरितनायक श्री की वचनसिद्धि का चमत्कार इनकी आँखों के सामने साकार होकर खड़ा हो गया।

[३]

प्रोफेसर धनपतराय जी जैन एक दिन स्वयं सुना रहे थे कि चम्बास्टेट में जब मैं प्रोफेसर था, तो उस समय वहाँ मकान की बड़ी तकलीफ थी। स्वयं अनेकों प्रयत्न किए, अपने साथियों को कहा उन्होंने भी जी भरकर कोशिश करली परन्तु रहने के लिए कोई अनुकूल मकान नहीं मिल सका, मकान न मिलने का मन पर बोझ था। छुट्टियाँ होने पर जब मैं घर माछीवाड़ा आया तो मुझे पता चला कि परम आदरणीय वन्दनीय, पूज्यपाद

श्री स्वामी छगनलाल जी महाराज यहीं पर विराजमान हैं। गुरु महाराज के मंगलमय, पावन दर्शन सर्वप्रथम करने चाहिये, यह सोचकर मैं सबसे पहले जैनस्थानक में गया। परम श्रद्धेय गुरुदेव श्री छगनलाल जी महाराज के पवित्र चरणों पर अपना मस्तक रक्खा। मन को परम आनन्द सम्प्राप्त हुआ। तदनन्तर उनसे वार्तालाप करने लगा, वार्तालाप के मध्य में प्रसंग चलने पर मैंने चम्बा में मकान न मिलने की अपनी कठिनाई वतलाई, और करबद्ध होकर प्रार्थना की—

गुरुदेव ! मकान न मिलने से मैं वड़ा दुःखी हो गया हूँ। यदि सरकारी नौकरी न होती तो मैं कभी का चम्बा छोड़ देता, समझ में नहीं आ रहा, क्या किया जाए ? कृपालो ! इस सेवक पर कृपा करो, ताकि मकान की समस्या हल हो जाए। जब तक यह समस्या हल नहीं होती, मन का बोझ हलका नहीं हो सकता।

क्षमा और दया की सजीवमूर्ति, श्रद्धेय चरितनायक श्री छगनलालजी महाराज मेरी दुःखपूर्ण कहानी सुनकर मुस्कराकर फरमाने लगे—

प्रोफेसर ! क्यों घबराता है ? जरा सी बात से दिल छोड़ बैठा है ? मन में शान्ति रख। चम्बा पहुँचते ही तेरी समस्या हल हो जायगी, मकान के कारण तुझे निराश नहीं होना पड़ेगा।

श्री धनपतरायजी अपनी बात आगे सरकाते हुए पुनः कहने लगे कि मैंने गुरुदेव के चरणों का स्पर्श करते हुए कहा—

महाराज ! इन चरणों के प्रताप से काम बन जाए तो सम्भव है, अन्यथा मेरी निराशा तो अपनी चरमसीमा तक पहुँच चुकी है। पूज्य गुरुदेव ने मुझे फिर सान्त्वना दी और दृढ़ता से फरमा दिया कि तेरा काम हो जाएगा। चिन्ता न कर।

कॉलिज की छुट्टियाँ समाप्त हो जाने पर जब श्री धनपतरायजी चम्बा पहुँचे तो अभी वस स्टैण्ड पर ही थे कि इनके एक परिचित सज्जन इनसे मिले और इनको देखते ही कहने लगे—

प्रोफेसर साहिब ! कहाँ चले गये थे। मैंने तुम्हें काफी टटोला। आज तो आपको मुझे कुछ खिलाना चाहिए। आपकी समस्या हल हो गई है। श्री अमरसिंह जी के मकान में दो कमरे खाली पड़े हैं। अमरसिंह जी का मकान बिल्कुल महल के सामने है। कमरों की चाबियाँ मेरे पास हैं। आपके निर्वाह के लिए वड़ा अच्छा मकान है।

माछीवाड़े के धर्मप्रिय सुश्रावक लाला नारौतारामजी जैन को पंजाब के सभी जैन लोग जानते हैं। ये माछीवाड़ा जैन समाज के मुखिया श्रावक थे। जैन सिद्धान्तों के मर्म रसिया, ज्ञानवान, श्रद्धालु, गुरुभक्त तथा प्रतिदिन श्रावक-प्रतिक्रमण करने वाले व्यक्ति थे। सेठजी के श्री रूपचन्द, श्री बालकिशन, श्री पार्श्वकुमार और श्री विजयकुमार ये चार लड़के हैं। कर्मों का प्रकोप समझिए कि पार्श्वकुमार बचपन से ही उद्दण्ड, उच्छृङ्खल, अविनीत, चोर और मूर्खप्रकृति का बालक रहा है। घर से चोरी, भाग जाना, घर के साजो-सामान को चुरा लेना इसका स्वभाव बन गया है। बड़े-बड़े साधु सन्तों ने इसे समझाया परन्तु इस पर किसी सन्त की बात का कोई असर नहीं हुआ। घर वालों ने इसे सही रास्ते पर लाने के लिए पुलिस से पकड़ाया, जेलखाने में बन्द करवाया, तथापि इसने अपनी बुरी आदत नहीं छोड़ी, इतने ऊंचे खानदान में और नगर के जाने-माने समृद्ध परिवार में जन्म लेकर भी पार्श्वकुमार की यह दुर्दशा देखकर भक्तराज महाराजा भर्तृहरि के स्वर में स्वर मिलाकर यही कहना पड़ता है—

"कर्मणां गहना गतिः"

—कर्मों की गति बड़ी गहन है। इसका पार पाना बड़ा मुश्किल है। यहाँ बड़े-बड़े ऋषि मुनि भी हार खा जाते हैं।

पार्श्वकुमार जब पहले-पहल अपने घर से भागा, तो इसकी माता लाजवन्ती की मातृ-ममता तड़प उठी, शोकातुर होकर इसने अपना बुरा हाल बना लिया। खाना-पीना सब भूल गई, सिवाय रोने के और कोई काम ही नहीं रहा। माता लाजवन्ती जी की शोक-पूर्ण दशा ने घर वालों सबको दुःखी कर दिया। जिन दिनों की यह घटना बताई जा रही है, उन दिनों माछीवाड़ा में हमारे महामान्य चरितनायक श्री छगनलालजी महाराज विराजमान थे। पार्श्वकुमार के पिता ला० नारौतारामजी अपनी धर्मपत्नी लाजवन्ती से

बोले—कब तक रोती रहेगी ? जैनस्थानक में गुरुदेव श्री स्वामी छगनलालजी महाराज विराजमान हैं, ये पहुँचे हुए महापुरुष हैं। उनके चरणों में जाकर अर्ज कर, पार्श्वकुमार कहाँ गया है ? वे सब बता देंगे। इतनी बात सुनने की देर थी कि माता लाजवन्ती तत्काल उठी और सीधी जैनस्थानक में जाकर श्रद्धा के केन्द्र श्री छगनलालजी महाराज के चरणों में बैठकर रोने लग गई। श्रद्धेय माता लाजवन्ती से भलीभाँति परिचित थे। पार्श्वकुमार के भाग जाने के कारण यह प्रातःकाल से रो रही है, यह कहानी भी सुन चुके थे, जब उसका रोना बन्द नहीं हुआ तो श्रद्धेय महाराज जी फरमाने लगे—

भोली बाई ! क्या कर रही है ? यहाँ की मुख्य श्राविका होकर बच्चों की भाँति रोना तुझे शोभा देता है ? समझदारी से काम ले। महाराज श्री की बात को बीच में काटकर माता लाजवन्ती रोती हुई कहने लगी—मुझे यह बताओ मेरा पारस कब आएगा ? माता जी की करुणाजनक स्थिति देखकर करुणा-हृदय महाराज श्री पुनः फरमाने लगे—चिन्ता न कर, आर्तध्यान छोड़ तेरा लाड़ला पारस चार दिनों तक अपने आप तेरे पास आ जाएगा। सामायिक किया कर धर्म ध्यान सब संकट काट देता है।

श्रद्धेय महाराज श्री की सान्त्वनापूर्ण वार्ता सुनकर माता लाजवन्ती कुछ शान्त हुई, धीरे-धीरे उसकी आँखों के आँसू सूखने लगे। लाला नौराताराम जी सुनाया करते थे कि श्रद्धेय श्री छगनलाल जी महाराज ने जो आश्वासन दिया था अक्षरशः वह सत्य प्रमाणित हुआ। पार्श्वकुमार चौथे दिन अपने आप ही घर वापिस आ गया।

[५]

सेठ सोमनाथ जी जैन माछीवाड़ा जैन समाज के एक जाने-माने श्रावक हैं। आजकल ये एस० एस० जैनसभा माछीवाड़ा के जनरल सैक्रेट्री हैं। हम लोग (इन पंक्तियों के लेखक) राहों में जैनधर्म दिवाकर, साहित्यरत्न, जैनागम रत्नाकर, आचार्य सम्राट परमश्रद्धेय गुरुदेव पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज की पुण्यतिथि (स्वर्गवास तिथि) मनाने के बाद माछीवाड़ा आए तो उस समय रात्रि को सेठ सोमनाथ जी ने अपने जीवन की एक घटना सुनाई। ये कहने लगे—

मैंने तथा मेरे दोस्त श्री देसराज जी आढ़ती ने जगाधरी में किसी व्यापारी से पैसे लेने थे। हम दोनों ने एक दिन जगाधरी जाने का प्रोग्राम बनाया। इन दिनों हमारे माछीवाड़ा में परमप्रतापी, त्यागी, वैरागी, स्वनाम

श्रद्धेय महाराज श्री का यह आदेश उक्त दोनों सज्जनों ने शिरोधार्य किया, तथा महाराज श्री से मङ्गलपाठ सुना। तदनन्तर ये दोनों साथी जगाधरी पहुँचे। जिस व्यापारी से पैसे लेने थे, उससे वार्तालाप हुआ। वार्तालाप से पता चला कि इस समय यह पैसे देने की स्थिति में नहीं है। भले ही इन्हें अड़ोसी-पड़ोसी लोगों ने बहुत भड़काया और समझाया कि इस पर दावा कर दो। बिना दावा किये यह काबू में नहीं आएगा। जिस किसी ने इससे पैसे लिए हैं, उसने इस पर सख्ती करके ही लिए हैं। अतः आप लोगों को भी सख्ती से काम लेना चाहिए। परन्तु सेठ सोमनाथ जी श्रद्धेय चरितनायक श्री के आदेश को भूले नहीं थे। इसलिए इन्होंने अड़ौसी-पड़ौसियों की बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया। प्रत्युत श्रद्धेय महाराज श्री के कथनानुसार व्यापारी के साथ इतना अधिक प्रेमपूर्वक व्यवहार किया। व्यापारी इन लोगों की सज्जनता देखकर बड़ा प्रभावित हुआ और उसने निर्णय किया

कि ये लोग बड़ी दूर से आए हैं। सख्ती का इनके जीवन में नामोनिशान भी नहीं है। अतः इनको निराश करके नहीं लौटाना चाहिए। जैसे-तैसे इनका काम तो होना ही चाहिए। अन्त में व्यापारी ने सेठ सोमनाथ और श्री देसराज जी आढ़ती का पैसा-पैसा चुका दिया।

सेठ सोमनाथ जी सुनाया करते हैं कि श्री स्वामी छगनलाल जी महाराज एक चमत्कारी महापुरुष थे। वचनसिद्धि के अमर भण्डार थे। इनकी वाणी कभी निष्फल नहीं जाया करती थी।

[६]

परम श्रद्धेय चरितनायक श्री स्वामी छगनलाल जी महाराज माछीवाड़ा में विराजमान थे। चातुर्मास काल था, एक दिन बलाचौर के निवासी सेठ धर्मचन्द जी जैन अपने किसी दोस्त को साथ लेकर पूज्य चरितनायक श्री के पावन चरणों में हाजिर हुए। सेठ धर्मचन्द्र जी बलाचौर जैन समाज के मुखिया श्रावक हैं और जैन जगत में अच्छे खासे ज्योतिषी माने जाते हैं। सन्तों के परम भक्त, धर्मप्रिय, उत्साही और मिलनसार व्यक्ति हैं। २० वर्ष पहले ये कभी पूज्य चरितनायक श्री की सेवा में आए थे। २० वर्षों का काफी लम्बा समय होता है। इतने लम्बे काल में व्यक्ति के नाम आदि का स्मरण रहना प्रायः कठिन ही होता है। परन्तु हमारे चरितनायक श्री तो विलक्षण-स्मरण शक्ति के धनी महापुरुष थे। श्री धर्मचन्द जी ने श्रद्धेय महाराज श्री के चरणों में अपना मस्तक रक्खा ही था कि महाराज श्री तत्काल फरमाने लगे—

क्या सेठ धर्मचन्द हैं ?

"हाँ गुरुदेव ! आपके चरणसेवक धर्मचन्द बलाचौर वाला ही है। इतना कहकर सेठ धर्मचन्द जी पूज्य चरितनायक श्री के चरणों में बैठ गए। परन्तु इनका चेहरा उदास और व्याकुल सा दिखाई दे रहा था। किसी भयंकर चिन्ता ने जैसे इनको घेर रक्खा हो। ऐसी स्थिति इनकी हो रही थी। धर्मचन्द जी की उदासीनता और उद्विग्नता देखकर पूज्य महाराज श्री पुनः फरमाने लगे—

सेठ धर्मचन्द, क्या बात है, आज तो बड़े उदासीन दिखाई दे रहे हो ? सब आनन्द मंगल तो हैं ? इतने वर्षों के बाद आए, फिर भी उदास हो रहे हो ?

महाराज श्री की बात सुनकर ,श्री धर्मचन्द्र जी ने गम्भीर होते हुए कहा—

गुरुदेव ! जब व्यक्ति बीमार पड़ता है तब उसे डाक्टर याद आता है और तभी वह डाक्टर के पास जाता है। आप श्री जगती के धर्म-वैद्य हैं। लोगों की जन्म मरण की बीमारियों का इलाज करते हैं। गुरु महाराज ! एक भयंकर रोग से आक्रान्त हो जाने के कारण आप श्री की सेवा में हाजिर हुआ हूँ। मेरे साथ (अपने साथी की ओर संकेत करके) ये जो सज्जन हैं ये मेरे परम मित्र हैं, जीवन के निकटतम साथी हैं। इनके निकट के सम्बन्धी को सरकार ने फांसी की सजा दे दी है। सारे परिवार का निर्वाह उसी व्यक्ति पर आधारित है उसके छोटे-छोटे बच्चे हैं, जवान पत्नी है यदि उसको फांसी हो गई तो सारे का सारा परिवार तबाह हो जाएगा। इसी कारण सारा परिवार, रिश्तेदार, सगे सम्बन्धी सभी परेशान हो रहे हैं। किसी का कोई वश नहीं चल रहा। फांसी की सजा से छुड़वाने के लिए सभी प्रयत्न कर लिए गए हैं, प्रभावशाली उच्चस्तर के लोगों से सिफारिशें कराई गई हैं, हाई-कोर्ट से लेकर सुप्रीम कोर्ट तक के द्वार खटखटाए जा चुके हैं किन्तु कहीं सफलता प्राप्त नही हुई। अन्त में राष्ट्रपति से भी रहम की अपील की गई, उन्होंने भी अपील को ठुकरा दिया है। फांसी मिलने का दिन निकट आ रहा है। अतः सब की आँखों के आगे अन्धेरा छाया हुआ है। बच्चे रोते देखे नहीं जाते, घरवाली को गशियाँ पड़ रही हैं। ये सज्जन मेरे पास आकर रोने लगे तो मैंने सोचा-मेरे वश की बात तो है नहीं केवल एक पूज्य गुरुदेव हैं जो मंझधार में आई नौका को किनारे पर लगा सकते हैं (चरणों का स्पर्श करते हुए) आप श्री के चरणों में आए हैं हमारी लाज रक्खो, कोई ऐसा आशीर्वाद देने की कृपालुता करें जिससे उस बेचारे गरीब की जिन्दगी बच जाए और उजड़ रहा एक परिवार बच जाए।

•

सेठ धर्मचन्द जी की दुःखभरी कहानी सुनकर कृपालुता के सागर पूज्य चरितनायक श्री कुछ क्षण तो मौन ही रहे, समाधि जैसी गम्भीरता में ही विराजमान रहे, अन्त में मौन भंग करते हुए फरमाने लगे—

धर्मचन्द सेठ ! तुम तो धर्म के चन्द्र हो चन्द्र की ज्योत्स्ना की अवस्थिति में अन्धकार नहीं टिका करता। धैर्य्य रक्खो और अपने साथी को समझाओ कि सारा परिवार भगवान के भजन में जुट जाए भगवान के भजन पर भरोसा रक्खे क्योंकि भगवान के नाम में बड़ी शक्ति है। बड़ा से बड़ा प्रयत्न करने पर भी जो कार्य सिद्ध नहीं होता वह प्रभुस्मरण की शक्ति से अनायास ही सिद्ध हो जाता है। ईश-स्मरण से प्रतिकूल परिस्थितियाँ सर झुका देती हैं। और अनुकूलता देवी करबद्ध होकर सन्मुख आ खड़ी होती है।

पूज्य चरितनायक के श्री के मुख से उक्त शब्द निकलने की देर थी कि सेठ धर्मचन्द जी आनन्दविभोर हो उठे, इन्होंने तत्काल अपने साथी से कहा— भाई साहिब ! अपना आना सफल हो गया है पूज्य गुरुदेव ने अपना वरदहस्त अपने सर पर रख दिया है अव आप को विल्कुल निश्चिन्त रहना चाहिए, क्योंकि अव संसार की कोई भी शक्ति आपके सम्बन्धी को फांसी की सजा नहीं दे सकती, कोई न कोई ऐसी वात वन जाएगी जिससे वे फांसी की सजा से उन्मुक्त हो जाऐंगे। हमारे गुरुमहाराज साधारण सन्त नहीं हैं, बड़े पहुँचे हुए योगी हैं महापुरुप हैं। इनके पास वचन सिद्धि की जो महान शक्ति है, उसके निराले चमत्कार इस शरीर ने कई बार देखे हैं।

सेठ धर्मचन्द जी जिस व्यक्ति को अपने साथ लाए थे वह जन्म से जाट था, गाँव में ही प्रायः रहा करता था उसने पहले कभी जैन-साधुओं के दर्शन नहीं किए थे, आज उसका जैन साधु दर्शन का प्रथम अवसर था। इसलिए जैन साधु के आचार-विचार से सर्वथा अपरिचित था तथा सन्तों की चमत्कार प्रधान प्रवृत्तियों की भी उसको कोई जानकारी नहीं थी इसलिए वह मन ही मन सोच रहा था कि फांसी की सजा कैसे छूट सकती है ? हाईकोर्ट से लेकर सुप्रीम कोर्ट तक की अदालतों ने जिस को वहाल रक्खा है, माफ नहीं किया तथा राष्ट्रपति ने भी जिसकी रहम की अपील नहीं सुनी, उस सजा से छुटकारा कौन दिला सकता है ? मेरी समझ में तो उसे बचाने वाला कोई नहीं। तथापि वह मौन ही रहा, और श्री धर्मचन्द जी की हाँ में हाँ मिलाता रहा। अन्त में श्री धर्मचन्द जी ने पूज्य चरितनायक श्री से मंगल पाठ सुना, और ये अपने साथी के साथ अपने घर चले गए।

हमारे सहृदय पाठक विस्मित होंगे कि कुछ ही दिनों के वाद भारत-सरकार की ओर से यह घोषणा प्रसारित की गई कि गान्धी-जन्म-शताब्दी के उपलक्ष्य में फांसी वाले कैदियों को प्राणदण्ड की सजा से उन्मुक्त किया जाता है। इस घोषणा को सुनकर सेठ धर्मचन्द जी तथा इनके साथी आश्चर्य चकित रह गए। उस समय इनकी हृदयवीणा से—

"महामहिम श्री छगनलाल जी महाराज की जय हो" यही स्वर निकल रहे थे।

[७]

लकीर का विलक्षण प्रभाव

महामान्य चरितनायक श्री छगनलाल जी महाराज अपनी शिष्य मण्डली सहित जनता-जनार्दन को अहिंसा, संयम और तप का पावन अमृत पान कराते हुए ग्रामानुग्राम विचरण कर रहे थे। प्रायः देखा गया है कि घुमक्कड़ सन्तों

भील की विचित्र बात सुनकर चरितनायक श्री पुनः फरमाने लगे कि भीलराज ! हम लोग जैन साधु होते हैं। जैन साधु अपने पास कोई सोना, चांदी, रुपया, पैसा नहीं रखते हैं, जर-जोरू जमीन के ये त्यागी होते हैं। कौड़ी तलक रखना, उनके लिए निषिद्ध है। जीवन भर पैदल सफर करते हैं कोई सवारी नहीं करते। जैन साधु अपने पास केवल लकड़ी के पात्र, जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक कपड़े और पढ़ने के लिए कुछ पुस्तकें रखते हैं। अतः आप विश्वास करो आपके मतलब की हमारे पास कोई वस्तु नहीं है।

चरितनायक श्री का जवाब सुनकर भील ने आवेगपूर्ण भाषा में कहा हम नहीं जानते कि आप साधु हैं या गृहस्थ ? कन्धों पर जो ये मोटे-मोटे गट्ठड़ उठा रखे हैं इनको हमारे हवाले करो, और शरीर पर जो कपड़े पहन रखे हैं इनको भी उतार दो, केवल धोती को छोड़कर सब कुछ यहाँ पर रख दो। नहीं तो मरने को तैयार हो जाओ।

पूज्य चरितनायक श्री ने भीलों को ऊँचनीच बहुत समझाया, परन्तु समय की बात समझिए कि उन्होंने सन्तों की कोई बात नहीं सुनी। अन्त में द्रव्य क्षेत्र काल, भाव देखकर सन्तों ने अपना सारा भण्डोपकरण भूमि पर रख दिया, केवल एक अधोवस्त्र (चोल पत्रक) को छोड़कर पहने वस्त्र

भी उतार कर वहीं पर रख दिये। समस्त सन्तों का समस्त उपकरण एक स्थान पर इकट्ठा हो जाने से वहाँ पर एक ढेर सा लग गया। मुनिराज जव वहाँ से चलने लगे तो पूज्य चरितनायक ने ढेर के चारों ओर अपनी लाठी से एक लकीर खींच दी। लकीर खींचने के साथ ही चरितनायक श्री वहाँ से चल पड़े। मुनिमण्डल के प्रस्थित हो जाने पर भीलों ने कपड़ों को उठाने का प्रयत्न किया, परन्तु लकीर के पास आते ही भीलों को डर लगने लगा, उसके अन्दर प्रवेश करने की किसी की हिम्मत नहीं पड़ी। जैसे रामायण के दशरथ पुत्र लक्ष्मण के द्वारा भगवती सीता के चारों ओर खींची लकीर के अन्दर लंकेश रावण प्रवेश नहीं कर पाया था, जव वह उस रेखा के मध्य में प्रविष्ट होने का साहस करता तो उस रेखा से उसे भय लगता, और रेखा के मध्य में से धधकती ज्वालाएँ निकलतीं उसे दिखाई देतीं, जिसके कारण भयभीत होकर वह पीछे ही रह जाता। वैसे ही चरितनायक श्री छगनलाल जी महाराज के द्वारा खींची रेखा का भी कुछ ऐसा विलक्षण एवं निराला प्रभाव था कि लाख कोशिश करने पर भी भील लोग उसमें प्रविष्ट नहीं हो सके। लकीर की ऐसी करामात देखकर भील लोग डर गए, अन्त में चरितनायक श्री के चरणों में नतमस्तक हो गए, इनसे क्षमा माँगी, भविष्य में साधु सन्तों को परेशान न करने की प्रतिज्ञा की। भीलों के क्षमा माँगने पर पूज्य चरितनायक श्री ने उन्हें क्षमा कर दिया, उन्हें धर्म का उपदेश दिया, चौर्य्य जैसे नीच कर्म से विरत रहने की उन्हें पवित्र प्रेरणा प्रदान की। अन्त में, समस्त मुनिवरों ने अपना-अपना उपकरण ग्रहण कर लिया।

[७]

सिरसा की वात है। श्रद्धेय चरितनायक श्री छगनलाल जी महाराज एक वार आहार ग्रहण करने के लिए जैन स्थानक से चले। भ्रमण करते हुए एक घर में प्रविष्ट हो गए। जिस घर में आदरणीय चरितनायक श्री ने प्रवेश किया था उस घर की आर्थिक दशा वड़ी चिन्तनीय थी, घर में आटा तलक भी नहीं था, अनेकों दिन विना भोजन के ही गुजर जाते थे। अधिक क्या, निर्धनता साकार होकर मानो विराजमान हो रही थी। परिणामस्वरूप उस समय भी रसोई में कोई खाद्य वस्तु नहीं थी, चूल्हा विलकुल ठण्डा पड़ा था। घर की मालकिन पूज्य चरितनायक श्री के दर्शन करते ही आनन्द विभोर हो उठी परन्तु जव उसे रसोई का ध्यान आया तो वहाँ के अभाव को देखकर उदासीन हो गई। विचार करने लगी कि ये वे जगतारक मुनिराज हैं, जिनकी

क्यों क्या बात है जैनस्थानक में आना ही छोड़ दिया, आज बहुत दिनों बाद दिखाई दिए ?

पूज्य गुरुदेव की बात सुनकर उस श्रावक ने वंदना करने के अनन्तर उत्तर दिया कि गुरुदेव ! मन परेशान रहता है, न दिन को चैन है और न रात्रि को नींद आती है। सुना है कि सरकार सोने का व्यापार बन्द कर रही है। हमारा धन्धा सोने का है, यदि सरकार ने सोने का लेन-देन बन्द कर दिया तो सारा काम ठप्प हो जायगा, लम्बा चौड़ा परिवार है, बहुत बडा खर्च है, यदि आय ही रुक गई तो परिवार की गुजर कैसे होगी ? यही चिन्ता दिन रात खाए जा रही है। आप श्री के भटिण्डा पधारने का मुझे पता चल गया था आपके श्री चरणों में उपस्थित होने की भी बड़ी भावना हो रही थी परन्तु व्यापार की इस चिन्ता ने सब कुछ गुड़-गोबर कर दिया।

पूज्य-चरितनायक श्री अपने प्रिय श्रावक की बात सुनकर मुस्कराते हुए फरमाने लगे कि भोले श्रावक ! क्यों घबराता है ? कभी व्यापार भी बन्द हुआ करता है ? रत्ती भर भी चिन्ता न कर, तेरे व्यापार को कोई क्षति नहीं पहुँच सकती, मुझे तो तेरा व्यापार चार गुना बढ़ता दिखाई दे रहा है।

पूज्य गुरुदेव का आशीर्वाद सुनकर सोने के व्यापारी को हार्दिक शान्ति अनुभव होने लगी। उसने गुरु चरणों का स्पर्श करते हुए निवेदन किया कि जब आपकी मेरे ऊपर दया दृष्टि है तब मुझे चिन्ता कैसे सता सकती है।

पूज्य चरितनायक श्री के आशीर्वाद का कुछ ऐसा निराला प्रभाव रहा है कि सोने का व्यापार नियन्त्रित हो जाने पर भी सोने का व्यापार दिन-प्रतिदिन फलता फूलता ही चला गया। पूज्य चरितनायक श्री ने जो भविष्य-वाणी की थी, वह अक्षरशः सत्य प्रमाणित हुई। सचमुच उसका स्वर्ण-व्यापार चार गुना बढ़ गया।

[१०]

रामामण्डी की बात है। आदरणीय सन्त-प्रवर श्री छगनलाल जी महाराज श्रीजी के प्रिय शिष्य पण्डितरत्न मुनि श्री रोशनलाल जी शास्त्री एक भक्त से पूछने लगे कि श्रावक जी ! आपको दमे की बीमारी थी, अब उसका क्या हाल है ? इस प्रश्न का समाधान करता हुआ वह श्रावक कहने लगा—

गुरु महाराज ! चातुर्मास समाप्त हो जाने पर जिस दिन कृपालुता के

देवि ! एक बार यदि पानी और निकलवा दिया जाए तो फिर लड़की ठीक हो जायगी। चिन्ता न कर, लड़की के जीवन को कोई खतरा नहीं है। अभी तो इसने जीवन के बहुत दृश्य देखने हैं।

पूज्य चरित्रनायक श्री जी महाराज के निर्देशानुसार लड़की के पेट का पानी निकलवा दिया गया तो लड़की का दुःख सदा के लिए मिट गया उसके पेट में फिर कभी पानी पैदा नहीं हुआ और वह अनेकों वर्ष जीवित रही।

[१२]

रोड़ी निवासी परम-गुरुभक्त श्री दीवानचन्द्र जी जैन सुनाया करते हैं कि एक बार मैं महामना ! धर्मदेव परमश्रद्धेय गुरुदेव श्री छगनलाल जी महाराज के दर्शनार्थ रामामण्डी गया। मैं पूज्य गुरुदेव के पावन चरणों में बैठा ही था कि मेरे पूज्य पिता जी से परिचित एक सज्जन मुझ से बोले कि दीवानचन्द्र ! तुम्हारे पिता काफी दिनों से अस्वस्थ चल रहे थे अब उनका क्या हाल है ? प्रश्नकर्ता सज्जन के प्रश्न का समाधान करते हुए मैंने कहा—

पूज्य पिता जी बहुत अस्वस्थ रहते हैं, बहुत इलाज कराया, अच्छे से अच्छे डाक्टर को दिखाया, सुयोग्य वैद्य से भी इनका निरीक्षण कराया और उनका उपचार भी किया परन्तु कोई फायदा नहीं हुआ।

पास में विराजमान धर्मपिता पूज्य श्री छगनलाल जी महाराज मेरी बात सुनकर फरमाने लगे कि ऐसी क्या बीमारी है ? गुरुदेव का प्रश्न का उत्तर देते हुए मैंने अर्ज की—

गुरुदेव ! मेरे पिता को बहुत दिनों से साधारण सा ज्वर रहता है, अनेकों उपचार होने पर भी कोई लाभ नहीं हो पा रहा। हमारी भावना थी कि इन्हें किसी अच्छे हॉस्पिटल में दाखिल करा दिया जाए, किन्तु पिताजी हॉस्पिटल में जाना नहीं चाहते। पिताजी की बीमारी के कारण मन बड़ा परेशान रहता है। क्या किया जाए कुछ वश नहीं चलता।

पूज्य गुरुदेव मेरी बात सुनकर फरमाने लगे कि यदि देशी इलाज एक बार फिर किया जाए तो तुम्हारे पिताजी का स्वास्थ्य सुधर सकता है।

सेठ दीवानचन्द जी ने अपनी बात सुनाते हुए पुनः कहा कि पूज्य गुरुदेव का संकेत पाकर पिताजी का देशी इलाज कराने का निर्णय कर लिया। और घर आते ही देशी दुशाँदा तैयार करके पिता जी को पिलाया यह दुशांदा पहले बहुत बार दिया जा चुका था इससे कोई लाभ होता न देखकर उसे एक

महाराज श्री—आप किस जाति से सम्बन्धित हैं ?

व्यक्ति—गरीबनवाज ! मैं ब्राह्मण हूँ ।

महाराज श्री—कुछ पढ़े लिखे हैं ?

व्यक्ति—पिछले वर्ष बी० ए० की परीक्षा पास की थी ।

महाराज श्री—आप इतने पढ़े लिखे हैं, सुशिक्षित हैं तथापि आपकी यह शोचनीय दशा क्यों हो रही है ?

व्यक्ति—स्वामी जी ! कोई नौकरी मिल जाए इसके लिए अनेकों प्रयास किए, राज्य कर्मचारियों से निवेदन किये, नगर के प्रमुख व्यक्तियों के सम्मुख अपनी दुःखभरी कहानियाँ सुनाई, परन्तु कहीं सफलता प्राप्त नहीं हुई । "तुलसीदास गरीब की, कोई न पूछे बात" यह सत्य सर्वथा यथार्थ दृष्टिगोचर हुआ, अधिक क्या निवेदन करूँ ? तीन दिन हो गये हैं अब देवता के दर्शन भी नहीं किए, तीन दिनों की भूख से परेशान हो रहा हूँ । आज

आपके मंगलमय दर्शन करके कुछ अलौकिक सी शान्ति अनुभव कर रहा हूँ। अन्तरात्मा आवाज दे रही है कि कल्पवृक्ष की छाया तले आ गया हूँ, अतः अब कष्टों का परिहार अवश्य होगा।

महाराज श्री—[कुछ क्षण मौन रह कर] क्या सचमुच तीन दिनों से अन्न देवता के दर्शन नहीं हुए ?

व्यक्ति—आप परम-सन्त हैं। जगतारक महापुरुष हैं। मेरे लिए तो साक्षात् कल्पवृक्ष हैं, आपके सामने कैसे झूठ बोल सकता हूँ ? तीन दिन हो गए हैं अन्न ग्रहण किए हुए, यह सवा सोलह आने यथार्थ बात है।

पूज्य चरितनायक श्री छगनलाल जी महाराज का हृदय करुणा से पसीज उठा। इन्होंने तत्काल पास में खड़े भाइयों से संकेत किया कि ब्राह्मण देवता का कुछ ध्यान करना चाहिये। संकेत होने की देर थी कि वे भाई उस ब्राह्मण को साथ ले गए और भोजनादि से उसके अशान्त हृदय को शान्ति प्रदान की।

जैनस्थानक में पहुँच जाने के अनन्तर पूज्य चरितनायक श्री ने कुछ सद्गृहस्थों को बुलाया और उन्हें प्रेरणा प्रदान करते हुए फरमाया—

आप लोग अपने बच्चों को ट्यूशन से पढ़ाने के लिए किसी न किसी अध्यापक का प्रबन्ध तो करते ही हैं, मेरी भावना है कि यदि एक गरीब ब्राह्मण से यह सेवा ले ली जाए तो उसके जीवन का निर्वाह सानन्द सम्पन्न हो सकता है। मेरा अनुमान है कि पण्डित जी आपके बच्चों को पूर्ण तन्मयता प्रामाणिकता तथा लग्न से पढ़ायेंगे। आप लोगों के इस सहयोग से उसकी आजीविका की समस्या समाहित हो जाएगी।

पूज्य गुरुदेव की भावना भक्त जनों के लिए आदेशस्वरूपा थी, उसको साकार बनाने में किसको मतभेद हो सकता था ? सब ने सहर्ष स्वीकृति दे दी और उक्त ब्राह्मण से अपने बच्चों को पढ़ाना आरम्भ करा दिया। जो ब्राह्मण आजीविका की व्यवस्था न होने के कारण सारा दिन आकुल-व्याकुल रहता था अब आजीविका मिल जाने से सानन्द जीवन व्यतीत करने लगा, और इसे गुरु कृपा समझकर पूज्य चरितनायक श्री के चरण कमलों का परम श्रद्धालु हो गया।

परम श्रद्धेय पूज्य श्री छगनलाल जी महाराज एक चारित्र-चूड़ामणि और प्रतापी महापुरुष थे। जैसे लोहा पारस का सान्निध्य पाकर स्वर्ण बन

[१४]

पूज्य चारित्रनायक श्री आहार लेने के लिए एक बार किसी घर में दाखिल हुए तो क्या देखते हैं कि घर की मालकिन बड़ी उदास, निराश, तथा व्याकुल सी हो रही है, ऐसी दशा में देखकर उससे फरमाने लगे—

देवि ! क्या बात है, बड़ी व्याकुल और घबराई सी दिखाई दे रही है ?

पूज्य गुरुदेव की सान्त्वनापूर्ण वाणी सुनकर गृहस्वामिनी ने करबद्ध हो वन्दन किया, तदनन्तर वह विनम्र निवेदन करने लगी—

गुरुदेव ! क्या अर्ज करूं ? मैं तो बड़े संकट में उलझ गई, (अपने पति की ओर संकेत करके) ये बहुत दिनों से बीमार पड़े हैं, जिस किसी ने जो इलाज बतलाया, वह इलाज करके भी देख लिया नगर का तथा बाहिर का कोई डाक्टर या वैद्य नहीं छोड़ा परन्तु इनको कोई लाभ नहीं हुआ। वही बात बन रही है—

"मर्ज बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की"

गुरुमहाराज ! अब तो डाक्टरों ने भी जवाब दे दिया है। क्या करूँ ? किधर को जाऊँ ? कुछ समझ में नहीं आ रहा। आर्थिक स्थिति जैसी है वह आप जानते ही हैं, जब कमानेवाला ही खाट पर पड़ा है, तो पैसा आएगा कहाँ से कैसे ? महाराज ! चारों ओर निराशा ही निराशा है आशा की कोई किरण दिखाई नहीं दे रही। अब तो केवल आपका ही सहारा है।

गृहस्वामिनी की निराशापूर्ण यह बात सुनकर कृपालुता के सागर पूज्य गुरुदेव मुसकराते हुए फरमाने लगे कि हमारे श्रावक का कुछ नहीं बिगड़ सकता, धर्मध्यान किया कर, किसी बात की चिन्ता मत कर सब ठीक हो जायगा।

हमारे सहृदय पाठक यह जानकर विस्मित होंगे कि जैसे स्विच के दबाने से बिजली प्रकाश बिखेरने लगती है और अन्धकार को भगा देती है वैसे ही पूज्य चरितनायक श्री छगनलाल जी महाराज के मुख से " किसी बात की चिन्ता मत कर, सब ठीक हो जायगा" यह वाक्य निकलने की देर थी कि घर का मालिक ठीक होना आरम्भ हो गया, जिस रोगी को डाक्टरों ने जवाब दे दिया था और जिसका शरीर सर्वथा निढाल हो रहा था हिलना-चलना भी जिसे असम्भव दिखाई दे रहा था कुछ ही दिनों में उसका स्वास्थ्य इतना अधिक सुधर गया कि वह स्वतः उठने बैठने लग गया, इसके अलावा उसकी आर्थिक स्थिति भी सुधरने लगी, निराशा के बादल आशा में बदल गए।

[१५]

एक श्रावक के घर में लड़कियाँ ही लड़कियाँ थीं, लड़का कोई नहीं था। वैसे लड़के पैदा तो अनेक हुए, परन्तु पैदा होने के साथ ही वे मृत्यु का ग्रास बन जाते थे। पुत्र के अभाव का श्रावक के मन पर बहुत बड़ा बोझ रहता था। एक दिन वह पूज्य चरितनायक श्री छगनलाल जी महाराज के चरणों में हाजिर हुआ उस समय वह बहुत ही ज्यादा उदासीन और आकुल-व्याकुल था। पूज्य चरितनायक श्री उसकी उदासीनता और व्याकुलता का मूल कारण जानते थे। आज अपने श्रावक को अत्यधिक उदास और उद्विग्न देखकर फरमाने लगे—

भोले श्रावक ! इतना उदासीन होने की क्या आवश्यकता है ? अभी तो तुम्हारी अवस्था बहुत बड़ी नहीं हुई, ऐसे दिल छोड़ दिया है जैसे तुम बूढ़े गए हो। मन को शान्त रक्खो। धर्म के प्रताप से अन्तराय कर्म टूटने वाला है।

जीवन का सन्ध्याकाल

लुधियाना जिले के अन्तर्गत खन्ना एक कसबा है। यह लुधियाना से कुछ ही माइल की दूरी पर अवस्थित है। किसी युग में खन्ने में जैन धर्म का कोई अनुयायी नहीं था। आजकल खन्ने में जैन समाज के जितने घर दिखाई देते हैं ये सब या तो आस-पास के गांव से आए हुए हैं, या फिर जैन सन्तों के आचार-विचार तथा प्रवचनादि से प्रभावित होकर जैन धर्म में नए दीक्षित हुए हैं। पुराने श्रावकों में ला० डोगरमल सन्तोप कुमार जैन आढ़ती, ला० लक्ष्मणदास जैन आदि के नाम विशेपरूप से उल्लेखनीय है। कुछ समय से ला० प्यारेलाल जी जैन, तथा ला० पन्नालाल जी जैन माछीवाड़ा से आकर खन्ना में रहने लग गए हैं। ला० साधुराम जी ला० हंसराज जी हलवाई, ला० बलवन्तराय जी ला० भगवानदास जी ला० प्यारेलाल जी के लड़के हैं। ला० योगेन्द्रपाल जी श्री ऋपभदेव जी ये ला० पन्नालाल जी के लड़के हैं। माछीवाड़ा के इन घरों के आ जाने से खन्ना में जैन समाज ने अपना एक स्थायी रूप बना लिया है। अब तो ऐस० ऐस० जैन सभा, खन्ना का काफी विशाल रूप हो गया है। ला० ओम प्रकाश जी अग्रवाल भट्टेवाले तथा ला० प्रेमसागर जैन आदि परिवारों के सम्मिलित हो जाने के कारण पंजाब की जैन समाजों में खन्ना जैन समाज का भी अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान माना जाता है।

वैसे तो खन्ना क्षेत्र पर जैन धर्म दिवाकर साहित्यरत्न, जैनागमरत्नाकर आचार्य सम्राट पूज्य श्री आतमाराम जी महाराज आदि महापुरुपों की बड़ी कृपा रही है। आचार्य सम्राट श्री इस क्षेत्र को समय-समय पर सींचते रहे हैं। परन्तु खन्ना-क्षेत्र के निर्माण एवं उत्थान में विशेपरूप से दो मुनिराजों का नाम अवश्य उल्लेखनीय मानता हूँ। सर्वप्रथम-पंजाब के जाने-माने कविरत्न श्री अमरमुनि जी महाराज और दूसरे मनोहर व्याख्यानी पण्डित रत्न श्री मनोहर मुनि जी "कुमुद"। श्रद्धेय कविरत्न श्री अमरमुनि जी महाराज पण्डितरत्न गणावच्छेदक श्री स्वामी रामस्वरूप जी महाराज के सुशिष्य थे। इन्होंने खन्ना क्षेत्र के बनाने में और इसे जगाने में बड़ा जोर

लगाया। खन्ना की जनता में सर्वप्रथम जैन साधुओं के प्रति व्यापकरूप से प्रेम, श्रद्धान और अनुराग पैदा करनेवाले स्वनामधन्य श्री अमरमुनि जी महाराज (पंजाबी) ही थे। खन्ना में जो जैन स्थानक दृष्टिगोचर हो रहा है, यह सब श्री अमरमुनि जी महाराज जी के पुरुषार्थ का ही सत्परिणाम है।

मान्यवर श्रीमनोहर मुनिजी मेरे छोटे गुरुभाई हैं। जैन धर्मदिवाकर आचार्य सम्राट परमश्रद्धेय गुरुदेव पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज के शिष्य-रत्न हैं। ये पढ़े लिखे और पंजाब के एक जाने-माने व्याख्याता सन्त हैं। व्याख्याता होने के साथ-साथ ये एक अच्छे लेखक, कवि और विचारक भी हैं। कुमुद इनका उपनाम है। कुमुद जी ने भी खन्ना क्षेत्र में काफी समय लगाया है। "आचार्य श्री आत्माराम जैन शिक्षा-निकेतन खन्ना" का निर्माण आपके ही सुलझे हुए और चिन्तनशील मस्तिष्क की सूझबूझ है। खन्ना की पढ़ी-लिखी जनता को जैन साधु के निकट लाने, उसके हृदय में जैनधर्म की आस्था पैदा करने का श्रेय हमारे मान्य कुमुद जी को ही है।

खन्ना-क्षेत्र के निर्माण में जहाँ उक्त दोनों मुनिराजों का विशेष रूप से योगदान रहा है वहाँ हमारे सम्माननीय चरितनायक श्री छगनलाल जी महाराज का पवित्र योगदान भी सदा के लिए संस्मरणीय रहेगा। अपनी शारीरिक परिस्थितियों के कारण आपको खन्ना क्षेत्र में कई चातुर्मास करने पड़े। पूज्य चरितनायक के जीवन के सन्ध्याकाल में इनको श्वासरोग और मधुमेह[1] की बीमारी ने आक्रान्त कर लिया था। महाराज श्री के इलाज आदि की सेवा का सौभाग्य खन्ना श्री संघ को प्राप्त हुआ था।

मान्य चरितनायक श्री अंग्रेजी इलाज की अपेक्षा आयुर्वेदिक इलाज में अधिक विश्वास रखते थे, इसीलिए खन्ना वालों ने चरितनायक श्री का आयुर्वेदिक इलाज कराना आरम्भ किया। आयुर्वेदिक इलाज से स्वास्थ्य लाभ नहीं हुआ तब विवशता से अंग्रेजी इलाज भी करवाया गया। लुधियाना के डाक्टर श्री तरसेमलाल जी जैन ने बड़ी श्रद्धा दिखलाई, लुधियाना के अन्य अनेकों डाक्टरों से परामर्श करके इन्होंने अन्त में यहीं निर्णय किया कि महाराज श्री को विश्राम करना चाहिये। विहार नहीं करना चाहिए। सीढ़ी चढ़ना और उतरना भी बन्द कर देना चाहिये। चरितनायक श्री एक घुमक्कड़ महामुनि रहे हैं, एक स्थान पर ठहरना इनको कतई पसन्द नहीं था परन्तु शारीरिक अस्वस्थता ने शेर को पिंजरे में डाल दिया। श्रद्धेय चरितनायक

---

[1] पेशाव के साथ शकर आने का रोग, शर्कराप्रमेह।

श्री के लघुशिष्य का नाम श्री रोशनलाल जी है। इनकी दीक्षा वि० सं० २०१७ आषाढ़ शुक्ला तृतीया (२७ जून, १९६०) के शुभ दिन सिरसा में हुई थी। जीवन के अन्तिमकाल तक ये श्रद्धेय चरित्तनायक श्री की सेवा में ही रहे। सेवा-भावना भी इनकी बड़ी विलक्षण है। गुरुमहाराज के सुखदु:ख का ये सदा ध्यान रखते थे, यथाशक्य उन्हें कोई कष्ट नहीं होने देते थे और जो समय शेष रहता उसमें संस्कृत भाषा का अध्ययन करते, गुरुमहाराज की कृपादृष्टि से इन्होंने विशारद परीक्षा पास कर ली। इस तरह वि०सं० २०२६ और २०२७ के चातुर्मास खन्ना में ही व्यतीत हो गए।

परमश्रद्धेय चरित्तनायक श्री छगनलाल जी महाराज का स्वास्थ्य जीर्ण होता जा रहा था, चलने-फिरने में भी कुछ कठिनता अनुभव की जाने लगी थी, एक आँख की ज्योति भी मन्द हो गई है, इस तरह स्वास्थ्य की स्थिति अच्छी नहीं थी। पाठक जानते ही हैं कि हमारे चरित्तनायक का प्रभाव सार्वजनिक था, परिणामस्वरूप इनके चरणों में लोग बहुत आते थे। खन्ना वाले तो प्रतिदिन इनकी सेवा में हाजिर होते ही थे परन्तु खन्ना से बाहिर की जनता भी दर्शनार्थ बहुत आया करती थी सारा दिन ही लोग आते-जाते रहते थे। और सब यही चाहते थे कि मंगल पाठ महाराज श्री के पावन मुख से ही श्रवण किया जाए। इधर डाक्टर लोगों का विशेष रूप से आग्रह था कि महाराज श्री सर्वदा विश्राम करें और किसी से भी वार्तालाप न करें। परन्तु कृपालुता के सागर चरित्तनायक श्री आगन्तुक जनता को निराश नहीं करना चाहते थे, अतः वे डाक्टरों के रोकने पर भी श्रद्धालु लोगों को मंगल पाठ स्वयं ही सुनाया करते थे। अनेकों बार मंगल पाठ सुनाने के कारण चरित्तनायक श्री अधिकतया व्यस्त ही रहते थे, इनकी इस व्यस्तता को देखकर एक श्रद्धालु व्यक्ति ने इनकी पुनीत सेवा में विनम्र प्रार्थना करते हुए निवेदन किया कि गुरुदेव ! बार-बार मंगल पाठ सुनाने से आपको कष्टानुभूति होती है, अतः मंगल पाठ सुनाना ही बन्द करदें। श्रद्धालु भक्त की विनय सुनकर श्रद्धेय चरित्तनायक श्री ने मधुर-मुस्कान में फरमाया—

मंगल पाठ प्रभु-भक्ति स्वरूप ही है उसका जितना भी अधिक उच्चारण हो जाए उतना ही श्रेयस्कर और लाभप्रद है। मंगल पाठ सुनाने के व्याज से प्रभु-नामोच्चारण का अवसर प्राप्त हो जाता है जिससे रसनापावन होती है फिर इसमें आलस्य क्यों किया जाए ?

मान्य चरित्तनायक श्री का प्रभु-भक्ति प्रधान उत्तर सुनकर श्रद्धालु भक्त नत-मस्तक होगया और उसका कण-कण पुलकित हो उठा।

पूज्य चरितनायक श्री छगनलालजी महाराज अपना अन्तकाल अवगत कर चुके थे । इस सम्बन्ध में अनेकों संकेत मिलते हैं । पूज्य चरितनायक श्री खन्ना से विहार करना चाहते थे इसलिए एक दिन खन्ना के जाने माने सेठ श्री प्रेमसागरजी जैन पूज्य चरितनायक श्री के पाव पकड़ कर बैठ गए और कहने लगे कि—"गुरुदेव ! जब तक आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं हो जाता, तब तक मैं आपको खन्ना से जाने नहीं दूंगा ।" अपने प्रिय श्रावक की भक्तिभाव पूर्ण विनति सुनकर पूज्य चरितनायक श्री फरमाने लगे कि—"मुझे तो अब जाना ही है ।" पहले कभी इनसे जब खन्ना विराजमान रहने की विनति की जाती थी तो ये—'विहार करना है" यह फरमाया करते थे । अब कि बार इनकी रसना से "मुझे अब जाना ही है" यह वाक्य निकला था । इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि पूज्य चरितनायक श्री को अपने स्वर्गवास का आभास हो गया था ।

जिस दिन पूज्य चरितनायक श्री स्वर्गवासी बने थे, उसी दिन की बात है कि आप श्री प्रातःकाल शौच के लिए बाहिर पधारे, कुछ देर एक वृक्ष के नीचे विराजमान हो गए, वायु बड़ी अनुकूल थी, वातावरण बड़ा सात्विक था। जब वहाँ से आप श्री आने लगे तो पास में बैठे भाई लक्खीराम ने अर्ज करते हुए निवेदन किया कि गुरुदेव ! आज कितनी सुन्दर ठण्डी हवा चल रही है अभी और यहां पर विराजो। श्री लक्खीरामजी की यह विनति सुनकर पूज्य चरितनायक श्री कहने लगे—

"लक्खीशाह ! क्या करेंगे यहाँ बैठकर, आज तो मुझे जाना ही है।"

लक्खीराम यह बात सुनकर झुँझलाया और कहने लगा कि गुरुदेव ! आप ऐसी बातें क्यों किया करते हैं ? परन्तु लक्खीराम भोला क्या जाने कि यह भविष्यवाणी है और पूज्य गुरुदेव अपने अन्तकाल की अपने प्रिय श्रावक को सूचना दे रहे हैं ?

पूज्य चरितनायक श्री स्वामी छगनलालजी महाराज ने स्वर्गवासी बनने से पन्द्रह दिन पहले ही अपना भोजन कम कर दिया था, औपधि का सेवन करने से भी इन्कार कर दिया था और विशेप रूप से अपने शिष्य मुनि श्री रोशनलालजी को यह आज्ञा प्रदान करदी थी कि मेरे लिए केवल एक ही द्रव्य लाना है। एक द्रव्य का ही मैं उपयोग करने की भावना रखता हूँ। भले ही मुनि श्री रोशनलालजी पूज्य गुरुदेव की इस आज्ञा के पीछे जो संकेत था उससे अवगत न कर सके हों परन्तु वस्तुतः चरितनायक श्री अपने जीवन की अन्तवेला से परिचित हो चुके थे और धीरे-धीरे उसकी तैयारी कर रहे थे।

श्रद्धेय चरितनायक श्री ने सब दर्शनार्थी सज्जनों को जब मङ्गलपाठ सुना दिया तब वे सबके सब चले गए। सबके प्रस्थान कर जाने पर मान्य चरितनायक श्री ने आहार-ग्रहण किया। दर्शनार्थ आए रोपड़ के भाइयों से वार्तालाप किया, तदनन्तर प्रतिदिन की भाँति वे अपने जाप में बैठ गए। अढ़ाई बजे मुनि श्री रोशनलालजी पानी लेकर आए और जल सेवन की प्रार्थना की, परन्तु जाप समाप्त न होने के कारण इन्होंने जल के सेवन न करने का संकेत कर दिया। तत्पश्चात् तीन बजे जल का आसेवन किया और श्रद्धेय चरितनायक श्री जैनस्थानक की बरसाती में पधार गए, समय की बात समझिए कि ऊपर जाती बार चरितनायक सीढ़ियों का द्वार बन्द कर गए। अभी चरितनायक श्री आध घण्टा भी ऊपर बरसाती में नहीं बैठ पाए थे कि इनकी तबीयत मचलने लगी। तत्काल इन्होंने मुनि श्री रोशनलाल जी को बुलाया और कहा कि मेरा स्वास्थ्य अधिक खराब होता जा रहा है,

का किसी डाक्टर का उपचार किया किया जाए तो ठीक है। गुरुदेव की आज्ञा सुनकर मुनि श्री रोशनलाल जी बाहर हुए और डाक्टर बुलाने को परन्तु सीढ़ी के दरवाजे बन्द थे इन्होंने अपने गुरुदेव के पावन चरणों में विनय निवेदन किया

गुरुदेव ! सीढ़ी के दरवाजे तो बन्द पड़े हैं, मैं तो कूदने चाहिए, इनको खोले बिना आप को तो डाक्टर किस तरह मिलेगा ?

अपने शिष्य की बात सुनकर पूज्य चरितनायक श्री फरमाने लगे कि मेरा शरीर निढाल हो रहा है, डाक्टर और दवाई की मुझको आवश्यकता नहीं है।

श्रद्धेय चरितनायक श्री की शरीरावस्था दुर्बल वा नाजुक जानकर मुनि श्री रोशनलाल जी बाहर चल गये। आते ही अनिष्ट मानो साकार होकर सम्मुख खड़ा दृष्टिगोचर होने लगा। जिस समय यह बात हो रही थी उस समय रामामण्डी के श्री पारसचन्द्र जी पास खड़े थे, इन्होंने तत्काल मुनि श्री रोशनलाल जी से विनति की कि आप डाक्टर को बुलाएं मैं सीढ़ी के द्वार खोलता हूँ। इधर मुनि श्री रोशनलाल जी डाक्टर को लेने गये उधर श्री पारसचन्द्र जी ने दीवार पर चढ़कर सीढ़ी के दरवाजे खोल दिए। इतने में डाक्टर साहिब आ गये। डाक्टर ने आते ही सर्वात्मा के साथ पूज्य चरितनायक श्री का निरीक्षण किया, स्थिति काफी गम्भीर हो चुकी थी। रुग्णता-जन्य दुर्बलता अपनी सीमा पार कर चुकी थी। तथापि "जब तक सांस तब तक आस" के सिद्धान्तानुसार डाक्टर साहिब ने अपना प्रयास चालू किया और चरितनायक श्री को एक इन्जैक्शन दिया। समय की बात समझिए कि इन्जैक्शन का परिणाम हितकर नहीं हुआ। इन्जैक्शन लगते ही श्रद्धेय चरितनायक श्री बेहोश हो गये। बेहोशी भी इतनी भयंकर कि क्या कहें ? डाक्टर साहिब तथा श्रद्धालु जन इस प्रतीक्षा में थे कि श्रद्धास्पद चरितनायक श्री होश में आ जाएं परन्तु उस समय चरितनायक श्री जोरदार एक जंभाई लेने के साथ ही ये पार्थिव शरीर को छोड़कर स्वर्गधाम में जा विराजे।

साढ़े चार बजे का समय था, सूर्यदेव धीरे-धीरे अस्ताचल की ओर बढ़ रहे थे, सूर्यदेव अभी अस्ताचल की गोद में पहुँच भी नहीं पाये थे किन्तु त्याग-वैराग्य के पुण्य दिवाकर शास्त्र विशारद श्री छगनलाल जी महाराज स्वर्गरूप अस्ताचल की गोद में विराजमान हो गये। श्रद्धेय चरितनायक श्री जी महाराज स्वर्गस्थ हो जाने पर इनके प्रिय और विनीत शिष्य श्री रोशनलाल जी को ऐसा धक्का लगा, जिसे ये संभाल नहीं सके। भगवान महावीर का निर्वाण

होने पर वैसे श्री गौतम स्वामी जी महाराज रुदन करने लगे थे वैसी ही स्थिति इनकी हो गई थी। अन्य भक्त-जनों का भी आकुल-व्याकुल हो जाना स्वाभाविक ही था। अधिक क्या, सभी मानस शोकाकुल थे, सभी की आँखें शोक-जनित आँसू बहा रही थीं। अन्तर्वेदना निराशा तथा उदासीनता अपना नग्न नृत्य करने लगी थी।

अन्तिम-यात्रा

अहिंसा, सत्य की प्रतिमूर्ति, महामहिम श्रद्धेय श्री छगनलाल जी महाराज के स्वर्गवासी हो जाने का दु:खद समाचार बिजली की भाँति खन्ने की गलियों, बाजारों एवं घरों में सर्वत्र फैल गया, आकाशवाणी (रेडियो) द्वारा महामुनि श्री छगनलाल जी महाराज के देहावसान को शोकपूर्ण समाचार जब सर्वत्र प्रसारित करवा दिया गया तब तो समस्त जैन जगत में ही शोक की लहर दौड़ गई। जिस किसी ने इस मनहूस खबर को सुना उसी को हार्दिक एवं मार्मिक वेदना हुई। परमपूज्य श्रद्धेय चरितनायक श्री जी महाराज की अन्तिम झाँकी के दर्शन करने तथा इनकी शवयात्रा में सम्मिलित होने के लिए हजारों की संख्या में जन-समुदाय खन्ना में टिड्डीदल की भाँति आने लगा। भले ही खन्ना का जन समाज बहुत बड़ा समाज नहीं है तथापि खन्ना की जैन-जनता में उत्साह बड़ा था। खन्ना के दूरदर्शी और कर्मठ कार्यकर्ताओं की निष्काम और श्रद्धापूर्ण सेवाओं ने कमाल कर दिया। बाहिर से आने वाले लोगों की भोजन व्यवस्था सर्वथा प्रशंसनीय थी तथा यात्रियों को ठहराने का प्रबन्ध भी बड़ा सुन्दर था। किसी को भी किसी प्रकार की शिकायत करने का कोई अवसर नहीं था।

"आचार्य श्री आत्माराम जैन शिक्षा निकेतन" नामक शिक्षणालय खन्ना जैन समाज की जानी-मानी एक शिक्षण संस्था है। इस विद्यामन्दिर के विशाल प्राङ्गण में श्रद्धेय चरितनायक श्री का शव एक ऊँचे पाट पर रक्खा हुआ था। भले ही शरीर निष्प्राण था, किन्तु चेहरे पर मुस्कराहट थी, ब्रह्मचर्य का निराला तेज मस्तक पर मानो अठखेलियाँ कर रहा था। श्रद्धालु जनता सजल नेत्रों के साथ मौनावलम्बी होकर चरणों में नतमस्तक हो रही थी और वन्दनीय चरितनायक श्री की त्याग-वैराग्यप्रधान अध्यात्म साधना के प्रति अपने श्रद्धासुमन समर्पित करती जा रही थी। कुछ सज्जन चँवर डुला रहे थे। शव के पास में रक्खे हुए विशाल भाजन में चन्दन खोया, घी तथा अन्य सुगन्धित पदार्थों का प्रक्षेप भी किया जा रहा था। शव यात्रा के लिए खन्ना जैन समाज ने एक बहुत सुन्दर विमान तैयार की थी। शव यात्रा को चालू करने से पहले

खन्ना वालों ने खन्ना नगर के बाहिर इनका एक स्मारक (समाधि) भी बना दिया था। इसी स्मारक के निकट जब श्रद्धास्पद चरितनायक श्री की शव-यात्रा का जलूस पहुँच गया तब वायुयान (हवाई जहाज) के द्वारा आकाश से पालकी पर रंग-बिरंगे सुनहरी कागजों के फूलों की वर्षा की तथा साथ में वायुयान द्वारा पम्फलेट भी फैंके गये, जिनमें श्रद्धेय चरितनायक श्री जी महाराज का जीवन-परिचय अंकित किया गया था। उस समय दर्शकों को ऐसा अनुभव होने लगा था कि स्वर्ग के देवता भी मानो श्रद्धेय चरितनायक श्री की प्राप्त हुई संयम साधनागत शानदार सफलता की प्रसन्नता को पुष्पों की वृष्टि करके अभिव्यक्त कर रहे हैं। अन्त में, चरितनायक श्री का भव्य विमान (पालकी) निश्चित स्थान पर पहुँच गया, और जिस स्थान पर दाह संस्कार करना था उस स्थान पर यह विमान रख दिया गया। दाह संस्कार के लिए खन्ना वालों ने उस जगह एक ऊँचा चबूतरा बना रक्खा था। वह इतना ऊँचा था कि उस पर स्थापित विमान दूर-दूर से सुविधापूर्वक देखा जा सकता था। चबूतरे के ऊपर चन्दन की चिता बनी हुई थी। जो दर्शकों को अच्छी तरह दिखाई दे रही थी।

समय की बात है कि जो हाथ कभी गुरुचरणों का स्पर्श करके अपने भाग्य की सराहना करते थकते नहीं थे आज वही हाथ अपने आराध्यदेव, पूज्य गुरुदेव छगनलाल जी महाराज के पार्थिव शरीर का दाह संस्कार करने के लिए तैयार हो रहे थे। कई कार्य अनिच्छा होने पर भी करने होते हैं फिर दाहसंस्कार जैसा कार्य तो ऐसा कार्य है जिसके किए बिना निर्वाह हो ही नहीं सकता। इसीलिए निश्चित समय पर खन्ना जैनसमाज के प्रधान ने पालकी का अग्निसंस्कार कर दिया। आग लगाने की देर थी कि ताम्बें जैसी लाल ज्वालाएं भड़क उठी और देखते ही देखते उन ज्वालाओं ने पूज्य चरित-नायक श्री के पार्थिव शरीर को अपना भोजन बना लिया। अन्त में, सब जनता वापिस हो गई, दाहसंस्कार करने के अनन्तर जब जनता वापिस आ रही थी तो उसे ऐसा अनुभव हो रहा था कि वह स्वयं अपने हाथों से अपने जीवन धन को अग्नि को समर्पित करके आ रही है। परिणामस्वरूप सभी व्यक्ति अत्यधिक उदासीन और खेद खिन्न थे।

श्मशान से बाहिर आनेवाले सभी लोगों ने जैनस्थानक में विराजमान मुनिराज श्री रोशनलाल जी के दर्शन किए उनसे मंगलपाठ सुना तथा दानवीर सेठ हंसराज जी जैन हलवाई (माछीवाड़ा वाले) के आतिथ्य को स्वीकार करते हुए ये सब लोग अपने-अपने नगरों को वापिस चले गए। केवल पाँच

दाहसंस्कार के अगले दिन खन्ना का जैन समाज दाह संस्कार के स्थान पर पहुँचा, सबने मिलकर अस्थियां (फूल) चुनी उनको एक कलश में डाल लिया। फूल चुनने के बाद सभी उपस्थित जनता ने परम आदरणीय वन्दनीय श्रद्धेय श्री स्वामी छगनलाल जी महाराज की पुण्यतिथि की स्मृति को सदा कायम रखने के लिए एक प्रतिज्ञा ग्रहण करते हुए कहा कि हमारे हृदयसम्राट महामुनि श्री छगनलाल जी महाराज चैत्र शुक्ला द्वितीया को हमसे पृथक हुए हैं अतः पूज्य गुरुदेव की पुण्य स्मृति में प्रत्येक महीने की शुक्ला द्वितीया के दिन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया करेंगे। इस तरह सब व्यक्तियों ने अपने आपको प्रतिज्ञा से आबद्ध करके अस्थि-कलश को सर उठाया तथा उसे जैन स्थानक में पहुँचा दिया। अस्थि-कलश सुरक्षित स्थान पर रख देने के अनन्तर जैन सभा खन्ना के सदस्यों ने एक जनरल मीटिंग की, उसमें निम्नोक्त प्रस्ताव पास किए—

१—पूज्यपाद श्रद्धेय श्री छगनलाल जी महाराज का जहां दाहसंस्कार किया गया है, वहां पर एक भव्य स्मारक (समाधि) का निर्माण किया जाए।

२—दाहसंस्कार के निकट की भूमि खरीदकर वहां पर "श्री छगनलाल जैन वाटिका" की रचना की जाए।

३—प्रतिवर्ष चैत्र शुक्ला तृतीया को महामहिम श्री स्वामी छगनलाल जी

महाराज का पुण्यतिथि-महोत्सव मनाकर श्रद्धेय महाराज श्री ने जैनसमाज पर जो उपकार किए हैं उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट की जाए और उनके पावन चरणों में श्रद्धासुमन समर्पित किए जाएं।

इन प्रस्तावों को क्रियान्वित करने के लिए एक उपसमिति (सब कमेटी) का गठन किया गया। शुभस्य शीघ्रम् के सिद्धान्तानुसार खन्ना निवासी सेठ प्रेमसागर जी जैन ने लगभग ३० हजार रुपये खर्च करके "श्री छगनलालजी जैन वाटिका" बनाने के लिए एक जमीन खरीद ली है। इसके अतिरिक्त ला० हंसराज जी जैन प्रधान एस० एस० जैन सभा खन्ना और गुरुभक्त सेठ प्रेमसागरजी जैन के पुरुषार्थ से एक भव्य स्मारक भी बना दिया गया है। इसी भव्य स्मारक पर प्रतिवर्ष चैत्रशुक्ला द्वितीया को गरीबों के लिए लंगर लगाया जाता है और साथ में पुण्यतिथि महोत्सव मनाकर वन्दनीय चरित-नायक श्रद्धेय श्री स्वामी श्री छगनलाल जी महाराज के चरणों में श्रद्धान्ज-लियाँ समर्पित की जाती हैं। इसके अतिरिक्त खन्ना का जैनसमाज पूज्य चरितनायक श्री की पुण्यस्मृति में औषधालय तथा वाचनालय आदि अन्य समाज सेवी संस्थाएँ खोलने का विचार कर रहा है।

[महामहिम श्री छगनलाल जी म० की गुरु परम्परा एवं गृहि जीवन की वंशावली अगले पृष्ठ पर देखिए]

गुरु—परम्परा

पूज्य चरितनायक श्री की प्रस्तुत गुर्वावली में महामहिम पूज्य चरितनायक श्री की गुरु परम्परा तथा इनकी शिष्य मण्डली का विवरण उपन्यस्त करना प्रासंगिक प्रतीत होता है—

श्री कनिराम जी म०

- श्री रेखराज जी मा०
  - श्री अचलदासजी
    - श्री हेमराजजी
  - श्री नथमलजी
    - श्री कुन्दनलालजी
  - श्री खेतमलजी
  - श्री रंगलालजी
    - श्री रतनचन्द्रजी
    - श्री नानूलालजी
    - श्री छगनलालजी
      - श्री टीकमचन्दजी
      - श्री गणेशीलालजी
      - श्री रोशनलालजी
  - श्री मेरुदासजी
  - सूरजमलजी
- श्री हणून्तरामजी
- श्री सदारामजी
  - श्री इशरदासजी
- श्री वखतावरमलजी
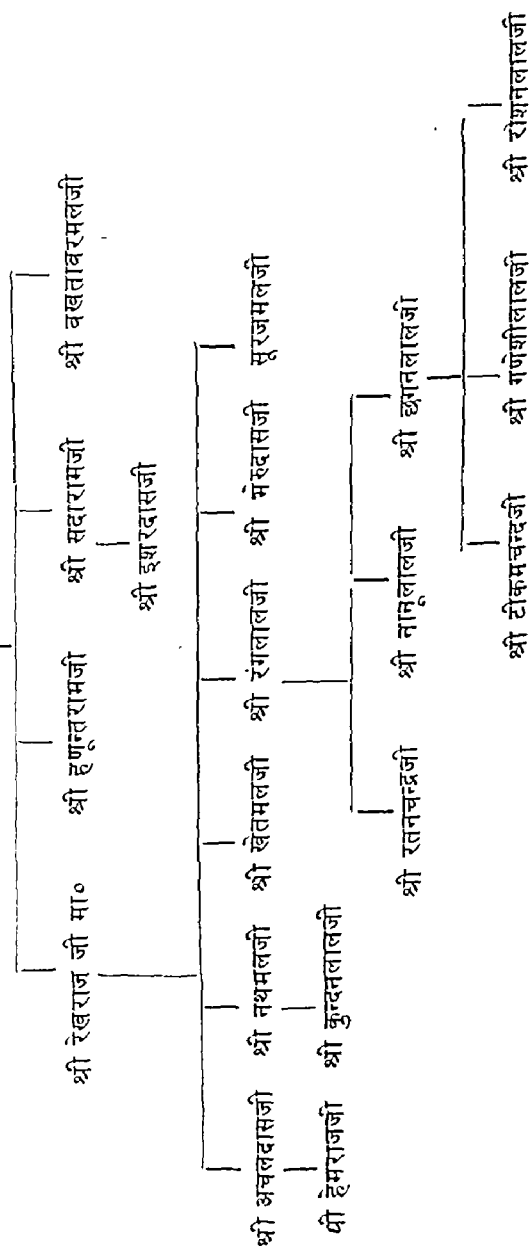
महामहिम श्री छगनलाल जी महाराज के संसार पक्ष की वंशावली

ऊपर की पंक्तियों में पूज्य चरितनायक श्री छगनलालजी महाराज की गुरुपरम्परा तथा इनकी शिष्य परम्परा का परिचय कराया गया है, इनके संसार-पक्ष की वंशावली भी निम्नोक्त पंक्तियों में प्रस्तुत की जा रही है—
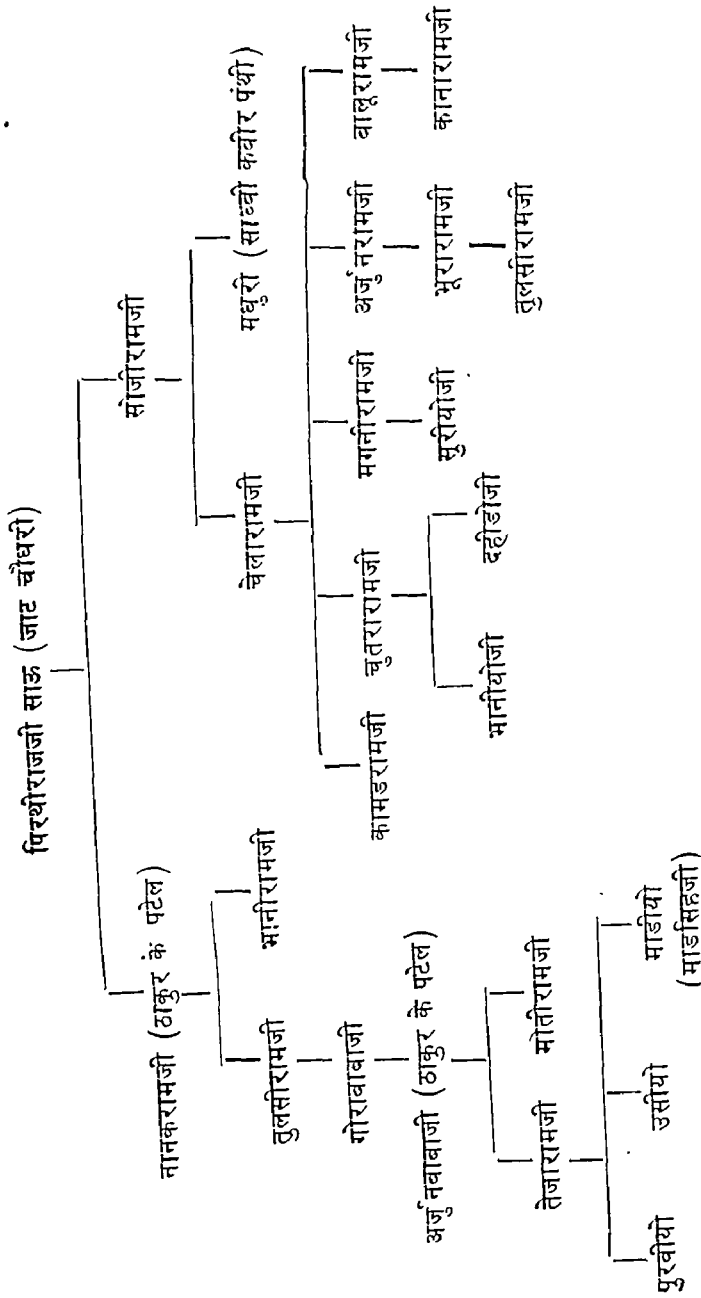
चातुर्मास विवरण

चातुर्मास का अर्थ है—चार मास। वर्ष में तीन चातुर्मास होते हैं। एक चातुर्मास चैत्र कृष्णा प्रतिपदा से लेकर आषाढ़ पूर्णिमा तक दूसरा श्रावण कृष्णा प्रतिपदा से लेकर कार्तिक पूर्णिमा तक और तीसरा मार्ग शीर्ष कृष्णा प्रतिपदा से लेकर फाल्गुणशुक्ला पूर्णिमा तक होता है। मध्य के चातुर्मास में साधु-साध्वी नियमित रूप से बिना किसी विशेष कारण के चार महीने एक स्थान पर ठहरते हैं, यदि कोई विशेष कारण न हो तो इस चातुर्मास में विहार नहीं कर सकते। इसके अलावा, इस चातुर्मास में साधु-साध्वी रूई, धागा, कपड़ा ग्रहण नहीं कर सकते।

चातुर्मास काल में कुछ ऐसे करणीय कार्य भी होते हैं जो गृहस्थ लोगों को अवश्य करने होते हैं। वे कार्य कौन-कौन से हैं ? इस प्रश्न का समाधान करते हुए कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र लिखते हैं—

> व्याख्यानश्रवण उपाश्रयगतिर्नित्यं गुरोर्वन्दनम्।
> प्रत्याख्यानविधानमागमगिरां चित्ते चिरंस्थापनम्॥
> कल्पाकर्णनमात्मशक्ति-तपसा संवत्सराराधनम्।
> श्राद्धैः श्लाघ्यतपोधनादिति फलं लभ्यं चतुर्मासकम्॥

चातुर्मास में श्रावकों को आठ बातों को विशेष रूप से जीवनाङ्गी बनाना चाहिए। जैसे—१=उपाश्रय=स्थानक में प्रति दिन जाना, वहाँ पर बैठकर सामायिक संवर करना, धर्म ध्यान करते हुए उपाश्रय की धार्मिकता को सुरक्षित रखना, २ यदि उपाश्रय में गुरु महाराज विराज-मान हों तो उनके हमेशा दर्शन करना, उनके पावन चरणों का स्पर्श करके उनसे मंगलपाठ सुनना ३—समय मिलने पर गुरुदेव का व्याख्यान सुनना व्याख्यान में जीव, अजीव, पुण्य, पाप आदि तत्वों का जो विश्लेषण किया जाता है उसको समझना, ४—व्याख्यान में सन्त मुनि जन जो शास्त्र वाणी

---

[1] जिनालयगतिः।

फरमाते हैं शास्त्रीय तत्वों एवं तथ्यों का विवेचन करते हैं उन्हें अच्छी तरह से हृदयंगम करना. हृदय की तख्ती पर उन्हें अंकित करना। उसका चिन्तन मनन करते रहना, ५—व्याख्यान-श्रवण करने के अनन्तर गुरु महाराज से कोई न कोई प्रत्याख्यान ग्रहण करना, हिंसा-स्तेय आदि असत्प्रवृत्तियों को छोड़कर अहिंसा, सत्य आदि सदनुष्ठानों के परिपालन करने का व्रत अंगीकार करना, ६—कल्पसूत्र का श्रवण करना महापर्व पर्युषण में प्रायः कल्पसूत्र तथा अन्तगड़ सूत्र सुनने सुनाने की परम्परा पाई जाती है। वैसे तो चतुर्मास काल में प्रतिदिन ही शास्त्र श्रवण करना चाहिये, परन्तु यदि निरन्तर शास्त्र श्रवण करने का अवसर न मिले तो महापर्व पर्युषण में कल्पसूत्र तथा अन्तगड़ सूत्र का श्रवण अवश्य करना चाहिये, ७ आत्म-शक्ति के अनुसार तपस्या की परिपालना के द्वारा महापर्व सम्वत्सरी की आराधना करना, ८—श्रावकों के द्वारा आदरास्पद तपोधन मुनिराजों से अधिक से अधिक लाभ उठाना।

सन्त परम्परा का इतिहास पढ़ने से मालूम होता है कि चातुर्मास का विधि-विधान जैन तथा जैनेतर सभी परम्पराओं में पाया जाता है, परन्तु उसका आचरण प्रायः केवल जैन परम्परा में ही उपलब्ध होता है। जैनतर परम्परा के साधु-वर्ग में चातुर्मास के प्रति कोई विशेष आस्था या निष्ठा दृष्टिगोचर नहीं होती। जैन परम्परा ने चातुर्मास को लेकर कभी उदासीनता नहीं दिखलाई। हजारों वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी चातुर्मास की परम्परा को जैनजगत ने सर्वथा सुरक्षित रक्खा हुआ है। आज भी जैनसन्त चातुर्मास करते हैं, चातुर्मास के विधि विधान को पूर्णतया जीवनाङ्गी वनाते हैं। भले ही देशकाल की जिन परिस्थितियों को देखकर हमारे पूर्व पुरुषों ने चातुर्मास की कल्पना की थी वे परिस्थितियाँ आज दृष्टिगोचर नहीं होती। आज पहले की भाँति यातायात के साधन कंकरीले, पथरीले या रेतीले नहीं हैं, अव तो कोलतार की वहुत सुन्दर, कोमल, साफ सुथरी सड़कें वनी हुई हैं, पहले की तरह आज वर्षा का पानी नगरों या गाँवों के मार्गों में वाधक वनकर खड़ा नहीं होता आज वर्षा होने के साथ ही पानी वह जाता है, कितनी भी मूसलाधार वर्षा हो किन्तु वर्षा वन्द होने पर एक घण्टे के अनन्तर सड़कें सूख जाती हैं, जल के कारण होने वाली मार्ग की सव वाधायें समाप्त हो जाती हैं, तथापि जैन साधु अपनी प्राचीन चातुर्मास परम्परा का सहर्ष आदर एवं आचरण करता चला आ रहा है, आगे विना किसी विशेष कारण के लगातार एक स्थान पर चार महीने ठहर कर अहिंसा, संयम और तप

की कल्मष-हारिणी त्रिवेणी को प्रवाहित करता हुआ देश जाति के भविष्य को समुज्ज्वल बनाने में अपना योगदान देने का स्तुत्य प्रयास करता रहता है। अन्य जैन साधुओं की भाँति श्रद्धेय चरितनायक श्री छगनलाल जी भी चातुर्मास की पूर्व परम्परा को सदा सुरक्षित रखते रहे हैं। चातुर्मास मर्यादा की पावन-ज्योति को इन्होंने कभी निस्तेज नहीं पड़ने दिया। प्रश्न हो सकता है कि श्रद्धेय चरितनायक श्री ने कहाँ-कहाँ पर चातुर्मास किए ? चातुर्मास काल में सत्य अहिंसा के दीप जला कर कहाँ-कहाँ पर सम्यग् दर्शन, ज्ञान और चारित्र की पावनी गंगा प्रवाहित की ? प्रस्तुत प्रकरण में इन्हीं प्रश्नों का समाधान किया जा रहा है। परम श्रद्धेय चरितनायक श्री छगनलाल जी महाराज ने जिन शहरों, ग्रामों में चातुर्मास करके संयम साधना के ध्वज लहराए उनकी तालिका इस प्रकार है—

तालिका

१	रुपनगढ़	१९६०	२१	पाली	१९८०
२	कुचामन	१९६१	२२	शाहपुरा	१९८१
३	पालनपुर	१९६२	२३	भीलवाड़ा	१९८२
४	हरमाड़ा	१९६३	२४	पाली	१९८३
५	अजमेर	१९६४	२५	किशनगढ़	१९८४
६	पाली	१९६५	२६	शाहपुरा	१९८५
७	धनेरिया	१९६६	२७	पाली	१९८६
	(ब्यावर के पास)		२८	पीपाड़	१९८७
८	रावड़ीयास	१९६७	२९	मसूदा	१९८८
९	कसवावड़ु	१९६८	३०	बगड़ी	१९८९
१०	जोधपुर	१९६९	३१	जयपुर	१९९०
११	कुचेरा	१९७०	३२	ब्यावर	१९९१
१२	वलाड़ा	१९७१	३३	पीपाड़	१९९२
१३	ब्यावर	१९७२	३४	ब्यावर	१९९३
१४	ब्यावर	१९७३	३५	पालनपुर	१९९४
१५	रीयां शेरसिंह	१९७४	३६	पाली	१९९५
१६	सादड़ी घानेराव	१९७५	३७	मदनगंज मण्डी	
१७	ब्यावर	१९७६		(किशनगढ़)	१९९६
१८	आगरा	१९७७	३८	ब्यावर	१९९७
१९	देहली	१९७८	३९	मेड़ता शहर	१९९८
२०	किशनगढ़	१९७९	४०	किशनगढ़	१९९९

४१	पाली	२०००	५५	अबोहर	२०१४
४२	हरमाड़ा	२००१	५६	कालांवाली मण्डी	२०१५
४३	देहली	२००२	५७	सिरसा	२०१६
४४	मेरठ	२००३	५८	सिरसा	२०१७
४५	माछीवाड़ा	२००४	५९	भटिण्डा	२०१८
४६	अबोहर	२००५	६०	भटिण्डा[1]	२०१९
४७	सिरसा	१००६	६१	रामामण्डी	२०२०
४८	माछीवाड़ा	२००७	६२	भठिण्डा	२०२१
४९	खन्ना	१००८	६३	सिरसा	२०२२
५०	भटिण्डा	२००९	६४	माछीवाड़ा	२०२३
५१	रोपड़	२०१०	६५	माछीवाड़ा	२०२४
५२	कुराली	२०११	६६	माछीवाड़ा	२०२५
५३	खन्ना	२०१२	६७	खन्ना	२०२६
५४	भटिण्डा	२०१३	६८	खन्ना	२०२७

चातुर्मासों की इस तालिका से स्पष्ट हो जाता है कि हमारे आदरणीय चरितनायक शास्त्रविशारद, त्याग वैराग्य की सजीव प्रतिमा, श्रद्धेय श्री स्वामी छगनलालजी महाराज ने लगातार ६८ वर्षों तक संयम-साधना की आराधना की, अहिंसा, संयम और तप के पावन दीपक घर-घर जलाए तथा यत्र, तत्र पदयात्रा करके जनमानस को विवेक के दिव्य आलोक से आलोकित किया। इन चातुर्मासों में विशेष रूप से जो बातें ज्ञातव्य हैं उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

वि० सं० १९६०

यह सम्वत् हमारे आदरणीय चरितनायक श्री छगनलालजी महाराज का दीक्षा सम्वत् है। इस वर्ष इन्होंने वैशाख शुक्ला तृतीया को जैन साधु-जीवन अङ्गीकार किया था।

वि० सं० १९७४

इस वर्ष "रीयां शेरसिंह" नामक गाँव में पूज्य चरितनायक श्री के वन्दनीय गुरुदेव महामहिम श्री स्वामी रंगलालजी महाराज का स्वर्गवास हो गया था।

---

[1] जैनसाधुओं के विधानानुसार जहाँ पर चातुर्मास किया गया हो वहाँ पर पुनः चातुर्मास दो वर्ष के अनन्तर तीसरे वर्ष ही किया जा सकता है। परन्तु अस्वास्थ्य या इलाज की यदि स्थिति हो तो उक्त विधान लागू नहीं होता।

वि० सं० १९७९

इस वर्ष हरमाड़ा में वैशाख शुक्ला तृतीया के दिन सिसा-निवासी श्री टीकमचन्दजी तथा इनके सुपुत्र श्री गणेशीलालजी का दीक्षा महोत्सव बड़े समारोह के साथ सम्पन्न हुआ था और इन दोनों दीक्षार्थियों को श्रद्धेय चरितनायक श्री स्वामी छगनलालजी महाराज की निश्राय में किया गया। पूज्य चरितनायक श्री के ये दोनों शिष्य बड़े विनीत और त्याग-वैराग्य की दृष्टि से बहुत ऊपर उठे हुए थे।

वि० सं० १९९०

इस वर्ष भारतवर्ष के स्थानकवासी जैन समाज के मुनिराजों का राजस्थान के सुप्रसिद्ध नगर अजमेर शहर में एक बड़ा भारी सम्मेलन हुआ था, इस सम्मेलन में सैकड़ों साधु-साध्वियों ने भाग लिया था। हमारे महा-मान्य चरितनायक धर्मदेव, संयतिप्रवर श्री छगनलालजी महाराज ने भी अजमेर पधार कर इस बृहद्-मुनि-सम्मेलन को विभूषित किया था।

अजमेर के इस मुनि सम्मेलन के बाद चातुर्मास का समय निकट था, अतः पण्डितरत्न शतावधानी श्री रतनचन्दजी महाराज, वयोवृद्ध श्री कस्तूरचन्द जी महाराज, स्वनामधन्य श्री भागमलजी महाराज, शास्त्रविशारद श्री हजारीलालजी महाराज आदि पन्दरह मुनिराजों के साथ हमारे महामान्य चरितनायक श्रद्धेय श्री छगनलालजी महाराज अजमेर से विहार करके जयपुर पधारे। पारस्परिक स्नेह, सौहार्द और औदार्य्य भाव के साथ चार मास वहीं पर व्यतीत किए। किसी में अपने-अपने टोले का कोई भेदभाव नहीं था, साम्प्रदायिक संकीर्णता से सब ऊपर उठे हुए थे। अतः जनता पर इस चातुर्मास का बड़ा अच्छा वाञ्छनीय प्रभाव रहा। यह चौमास अजमेर-सम्मेलन के अनन्तर ही समाज के मुख्य-मुख्य मुनिराजों ने सम्पन्न किया था। इसलिए जैन जगत में इस चातुर्मास को "संयुक्त चौमासा" के नाम से व्यवहृत किया जाने लगा था। इस संयुक्त चौमास से सामाजिक संगठन को पूरा-पूरा बल मिला और मुनिराजों के पारस्परिक सम्बन्धों की स्वस्थता के कारण यत्र, तत्र, सर्वत्र शासन की प्रशंसनीय प्रभावना हुई।

वन्दनीय धर्मदेव श्री स्वामी छगनलाल जी महाराज का अन्य सब मुनि-राजों में बड़ा आदरणीय स्थान था। इनकी दिनचर्या त्याग वैराग्य की भावनाओं से अनुप्राणित थी, फलतः अपने युग की यह एक आदर्श साधना मानी जाती थी। ओढ़ने के लिए इनके पास केवल एक सूती और साधारण सी चादर थी। दिन में आहार के बाद ये केवल एक बार जल का सेवन किया करते थे ज्येष्ठ और आषाढ की कितनी भी भयंकर गरमी हो तथापि ये

दूसरी बार पानी का उपयोग नहीं करते थे। निश्चित समय पर प्रातः कालीन और सांय कालीन प्रतिलेखना(पडिलेहना)करना, विधिपूर्वक प्रतिक्रमण करना, नाना प्रकार के अभिग्रह धारण करना, मौन रखना, ध्यान लगाना, रात्रि में जागरण करना आदि क्रियायें इनकी पावन आध्यात्मिकता और सच्चरित्रता को पूर्णतया अभिव्यञ्जित कर रही थीं। पूज्य मुनिराज इनकी विद्वत्ता, वार्धक्य संयम और विरक्ति का हृदय से आदर करते थे। विलक्षणता इस बात की थी कि विद्वत्ता आदि सद्गुणों के क्षेत्र में जैसे-जैसे ये आगे आगे बढ़ते जा रहे थे, वैसे-वैसे इनमें विनम्रता, मधुरता, सरसता और निरभिमानता भी सम्बन्धित होती जा रही थीं। "विद्या[1] ददाति विनयम्" तथा "विनयमूलो[2] हि धर्मः" आदि परम सत्यों एवं तथ्यों की ये सजीव प्रतिमा बन रहे थे।

हमारे संयम साधक मान्य चरितनायक श्री एक घुमक्कड़ सन्त थे, मार्ग की बाधाओं से ये कभी खेदखिन्न नहीं हुए। तीक्ष्ण ग्रीष्म की ऋतु हो, जलते हुए कण-कण वाली मीलों पर्यन्त फैली हुई रेत हो, तथापि ये बीस-बीस मील का लम्बा विहार किया करते थे, इस पर भी व्याकुलता या उद्विग्नता या खिन्नता ढूंढ़ने पर भी कहीं दृष्टिगोचर नहीं होती थी। इनकी यह संयम साधना सर्वथा गुप्त रहती थी, इस महापुरुष में अपने नाम, ख्याति या प्रशंसा की जरा लालसा नहीं थी। प्रचार=समाचार ये किसी समाचार पत्र को नहीं भिजवाते थे। पोस्टरों, चित्र या फोटो खिचवाने की इनकी जरा भी कामना नहीं थी। आत्मप्रशंसा की भावना से दूर रहना बड़ा कठिन कार्य है। आत्मश्लाघा के मैदान में बड़े-बड़े महारथी फिसल जाते हैं। सन्तकबीर के शब्दों में—कञ्चन और कामिनी को दुर्गम घाटी कहा जाता हैं। हमारा ख्याल है कि यदि आज भक्तराज कबीर विद्यमान होते और जनता-जनार्दन में बढ़ रही आत्मप्रतिष्ठा, आत्मश्लाघा और आत्मप्रशंसा की लालसा और भावना को देखते तो वे कीर्ति, आत्मप्रशंसा को तीसरी दुर्गम घाटी अवश्य बतलाते। वस्तुतः कञ्चन, कामिनी और आत्मप्रशंसा ये तीनों दुर्गम घाटियाँ होती हैं। इनको पार करना बच्चों का खेल नहीं है, परन्तु हमारे आराध्य, श्रद्धास्पद गुरुदेव श्री स्वामी छगनलाल जी महाराज ने उक्त तीनों दुर्गम घाटियों पर विजय प्राप्त कर ली थी। प्रशंसा की भूख को इन्होंने बिल्कुल मिटा दिया था। इसीलिए इनका छोटे बड़े सभी के साथ एक जैसा मधुर और सरस व्यवहार था। क्या बाल और क्या वृद्ध, क्या स्त्री और क्या

[1] विद्या विनय-नम्रता प्रदान करती है।

[2] धर्म का मूल=जड़ विनय है।

पुरुष, क्या धनी और क्या निर्धन इस तरह सबके प्रति समान कृपाभाव था, यही कारण था कि नगरों तथा गाँवों के सभी लोग अपने-अपने नगरों और गाँवों को इनकी चरण धूलि से पवित्र बनाने के लिए सदा उत्कण्ठित तथा लालायित रहा करते थे।

वि० सं० २००२

इस वर्ष का पूज्य चरितनायक श्री का चातुर्मास भारत की राजधानी देहली नगर में था। दिल्ली नगर वालों पर इस चातुर्मास का बड़ा अच्छा प्रभाव रहा। जन मानस चरितनायक श्री के संयमसाधनापूर्ण तथा वैदुष्यपूर्ण व्यक्तित्व से बड़े आकृष्ट था। दिल्ली के प्रमुख श्रावकों में जब कभी समाज के जाने-माने मूर्धन्य सन्तों का जिक्र चलता है तो उस समय श्रद्धेय चरितनायक श्री को पूर्ण श्रद्धा, आस्था और भक्तिभाव से स्मरण किया जाता है। श्री अखिल भारतवर्षीय स्थानकवासी जैन कान्फरैन्स के मान्य प्रधानमन्त्री दानवीर सेठ श्री आनन्दराज जी सुराणा भी महाराज श्री के पावन आचार-विचार को बड़े आदर और श्रद्धान से निहारते हैं। आदरणीय मुनि श्री कन्हैयालाल जी 'कमल" हमारे पूज्य चरितनायक श्री के पारिवारिक मुनिराज माने जाते हैं, साहित्य-जगत में इनका बड़ा अच्छा स्थान है। अनेकों ग्रन्थों का इन्होंने सम्पादन भी किया है। एक बार ये दिल्ली में विराजमान थे। दिल्ली से इन्होंने पूज्य चरितनायक श्री की सेवा में एक पत्र लिखा था जिसमें आपने संकेत किया था कि आप श्री के नाम का उच्चारण करने पर श्रावक-जन आदर सत्कार प्रकट करते हैं और ये आपसे अत्यधिक प्रभावित हैं।

दिल्ली के इसी चातुर्मास में पूज्य चरितनायक श्री के प्रिय शिष्य श्री टीकमचन्द जी महाराज का स्वर्गवास हो गया था तदनन्तर आप श्री अपने शिष्य श्री गणेशीलाल जी महाराज के साथ विचरण करने लगे थे।

वि० सं० २००३

मान्य चरितनायक श्री का इस वर्ष का चातुर्मास मेरठ शहर में सम्पन्न हुआ था। इन दिनों भारतीय स्वतन्त्रता के कारण पूर्व हिन्दू-मुस्लिम लोगों का साम्प्रदायिक उन्माद अपना ताण्डव नृत्य कर रहा था। अतएव हिन्दू-मुस्लिम दंगे जोरों पर थे इन दंगों में जो नर-संहार हुआ। चल, अचल सम्पत्ति को आग लगाकर जो आर्थिक नुक्सान पहुँचाया गया, लड़कियों के साथ जो बलात्कार किया गया उनके सतीत्व पर डाके गए, उनकी इज्जत को लूटा गया, माता पिता के सामने इनकी बच्चियों को नग्न करके इनसे

दुर्व्यवहार करके जो अमानुपिक अत्याचार किए गए तथा मनुष्य ने खूँख्वार पशुओं और वज्रहृदय राक्षसों को भी लज्जित करने वाले जो काले कारनामे किये, उनका दर्शन करके तो कलेजा मुँह को आता ही था परन्तु इनको स्मरण करके भी हृदय सिहर उठता है। आँखों के आगे अँधेरा छा जाता है। व्यावहारिक जगत में जैसे सिंह-मृग, बिल्ली-चूहा, साँप-नेवला और उल्लू-काक में जन्मजात वैर देखा जाता है, इससे भी चिन्तनीय और भयंकर दशा उस समय हिन्दू-मुसलमानों की दृष्टिगोचर हो रही थी। आपसी वैरविरोध, द्वेष एक दूसरे के रक्त बहाने की भावना बड़ा बीभत्स और उग्र रूप धारण कर चुकी थी।

हमारे महामान्य चरितनायक श्री छगनलाल जी महाराज प्रतिदिन शौच के लिए बाहिर जाया करते थे। जैनशास्त्रों के विधि-विधान के अनुसार यथा शक्ति साधु, साध्वी को शौच आदि के लिए वसति से बाहिर, दूर जाने की बहुत पुरानी परम्परा है। इस परम्परा के परिपालन से अनेकों लाभ हैं। निवास-स्थान साफ-सुथरा रहता है, प्रातःकाल या सायंकाल के परिभ्रमण से स्वास्थ्य अच्छा रहता है। आलस्यप्रधान मनोवृत्तियों में पुरुपार्थ का संचार होता है। यही कारण है कि हमारे चरितनायक श्री आरम्भ काल से ही बाहिर जाया करते थे। मेरठ में इनको बाहिर जाते समय ऐसे मार्ग से गुजरना पड़ता था। जहाँ मुसलमानों के घर थे। हिन्दू मुस्लिम दंगों के कारण हिन्दू मुसलमानों से दूर रहते थे और मुसलमान हिन्दुओं के निकट नहीं आते थे। एक दूसरा एक दूसरे से काफी भयभीत था। चरितनायक श्री के बाहिर जाने के स्वभाव को जैन, अजैन सभी लोग जानते थे। परिणाम स्वरूप स्थानीय श्री संघ ने इनसे विनम्र निवेदन करते हुए प्रार्थना की—

गुरुदेव ! हिन्दू-मुसलमानों के आपसी वैर-विरोध के कारण स्थिति काफी गम्भीर चल रही है। हिन्दू सिक्खों को यदि कोई मुसलमान हाथ लगा जाए तो वे उसे जीवित नहीं छोड़ते जान से मार देते हैं। यही स्थिति मुसलमानों की है। अनेकों हिन्दू मुसलमानों के हाथों से कतल हो चुके हैं। अतः आप श्री से करबद्ध प्रार्थना करने के लिए उपस्थित हुए हैं कि आप श्री शौच आदि क्रियाओं से निवृत होने के लिए बाहिर जाने का कष्ट न किया करें, स्थानक में सब तरह की व्यवस्था है यदि कोई कमी है तो उसे पूरा किया जा सकता है। आपत्काल होने के कारण राजकर्मचारियों ने भी हमसे संकेत किया है कि महाराज श्री जी को बाहिर जाने से रोकना चाहिए। अतः आप श्री हमारी विनीत प्रार्थना पर ध्यान देने की कृपा करें।

श्रद्धालु जनता की बात सुनकर निर्भीकता और साहस की प्रतिमूर्ति पूज्य चरितनायक श्री मुस्कराते हुए फरमाने लगे—

भोले श्रावको ! क्यों भयभीत होते हो ? मेरे सम्बन्ध में रत्ती भर भी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। मेरा सबके प्रति मैत्रीभाव है, मेरे कण-कण से मैत्रीभाव के ही स्वर निकल रहे हैं, फिर भय किस से ? द्वेषी को भय हुआ करता है, मैं समता के अमर भण्डार श्रमण भगवान महावीर के पथ का पथिक जैन साधु हूँ अत: मेरे हृदय में भय के लिए कोई स्थान नहीं है। निश्चिन्त रहो, मेरा कोई अनिष्ट नहीं हो सकता।

श्री संघ के सदस्य श्रद्धेय चरितनायक श्री की निर्भीकता देखकर अवाक् रह गए। इन्होंने बड़े-बड़े सन्त देखे थे परन्तु पूज्य चरितनायक श्री का आत्म-विश्वास कुछ निराला ही था। इसी आत्मविश्वास का यह सत्य परिणाम था कि साम्प्रदायिकता का विषम से विषम वातावरण होने पर भी श्रद्धेय चरितनायक श्री के प्रति किसी मुसलमान के मानस में वैर-विरोध पैदा नहीं हुआ और ये अपनी मस्ती से पूर्णनिर्विघ्नता के साथ अपना कार्यक्रम चलाते रहे।

वि० सं० २००४

महामहिम चरितनायक श्री छगनलालजी महाराज ने इस वर्ष का चातुर्मास माछीवाड़ा में किया। माछीवाड़ा लुधियाना जिले का एक प्रसिद्ध क्षेत्र है। यहाँ के लाला नौराताराम, लाला मालीराम, लाला प्यारेलाल, मास्टर आत्माराम, बाबू तुलसीरामजी वकील लाला स्योतिलाल लाला भीमसैन, ला० कर्मचन्द, ला० सोमनाथ आदि मुखिया श्रावक हैं। पूज्य चरितनायक श्री का पंजाब का यह पहला चातुर्मास था। बलाचौर, रोपड़ तथा माछीवाड़ा इन तीन नगरों की चातुर्मास की विनतियाँ थीं परन्तु माछीवाड़ा वालों के भक्ति-भाव ने जोर पकड़ लिया और यहीं का चौमासा स्वीकृत हो गया। इन दिनों हिन्दू-मुसलमानों के फिसाद जोरों पर थे, भारत और पाकिस्तान के विभाजन के कारण हिन्दू मुसलमानों का आपसी द्वेष बड़ा भयंकर रूप धारण कर गया था। पाकिस्तान में हिन्दुओं को कतल किया जा रहा था और भारत में मुसलमानों को, विशेषरूप से पंजाब की स्थिति बड़ी खराब थी। फलत: पंजाब के प्रत्येक नगर और गाँव में मुसलमानों को समाप्त करने की योजनाएँ बनाई जा रही थीं। माछीवाड़े के मुसलमानों को भी समाप्त करने के लिए माछी-वाड़े के हिन्दू-सिक्खों ने एक योजना बनाई। समय की बात समझिए कि थानेदार ने इनको सहयोग देने का वचन दे दिया। सरकारी कर्मचारियों का

सहयोग मिल जाने के कारण हिन्दू-सिक्खों में मुसलमानों को मारने का जोश अपने यौवन पर आ गया, अन्त में इन्होंने मिलकर निर्णय कर लिया कि कल दिन में मुसलमानों का बीजनाश कर दिया जाए और इनका एक बच्चा भी यहाँ पर जीवित न छोड़ा जाए।

सामूहिक रूप से मुसलमानों को कतल किया जाएगा, यह चर्चा हिन्दू-जनता में यत्र तत्र सर्वत्र होने लगी। हमारे महामान्य चरितनायक श्री स्वामी छगनलालजी महाराज ने भी जब यह चर्चा सुनी तब इनका कलेजा कांप उठा। पृथ्वी पानी और हवा आदि के एकेन्द्रिय जीवों का संरक्षण करने वाला महापुरुष मनुष्य आदि पञ्चेन्द्रिय जीवों के वध को कैसे सहन कर सकता था? परिणामस्वरूप इन्होंने मुसलमानों को बचाने का मार्ग टटोलना आरम्भ किया। इन्होंने सोचा कि यदि थानेदार को समझा दिया जाए और वह मुसलमानों को बचाने का प्रयास करे तो समस्या हल हो सकती है। परिणाम-स्वरूप इन्होंने तत्काल थानेदार को अपने पास बुला लिया। पूज्य चरितनायक श्री की सूचना पाते ही थानेदार साहिब जैन स्थानक में हाजिर हो गए और विनयपूर्वक नमस्कार करके इनके पावन चरणों में बैठ गए। पूज्यचरितनायक श्री और थानेदार साहिब में जो वार्तालाप हुआ वह इस प्रकार है—

महाराज श्री— थानेदार साहिब! हमने सुना है कि हिन्दू जनता ने मुसलमानों को समाप्त करने की योजना बनाई है और आप उसमें सहयोग दे रहे हैं? यह बात कहाँ तक सत्य है?

थानेदार—(करबद्ध होकर) स्वामी जी! जो कुछ आपने सुना है वह यथार्थ ही है। पाकिस्तान में मुसलमानों ने जो उपद्रव मचा रक्खा है उसके कारण हिन्दू जनता बहुत आकुल-व्याकुल है। प्रतिशोध की भावना ने आज लोगों को पागल बना रक्खा है सर्प और बिच्छू जैसे हिंसक जीवों के प्राणघात से भी जी चुराने वाले हिन्दुओं तथा सिक्खों में जो हिंसा साकार रूप धारण कर रही है, इसके पीछे बदले की भावना ही काम कर रही है। इसीलिए जनता-जनार्दन में धार्मिकता का पौधा सर्वथा मुरझा गया है।

पाकिस्तान में राजकर्मचारी स्वयं हिन्दू-सिक्खों को कतल कर रहे हैं, मुसलमानों को सहयोग देकर चारों ओर खून के दरिया बहा रहे हैं ऐसी स्थिति में सामाजिकता ने हमारा दिमाग भी खराब कर दिया है, निर्दोषों का खून बहाना पाप है, अनैतिकता है, पशुता है, मनुष्यता से गिरी हुई बात है परन्तु क्या किया जाए, अपने निर्दोष भाइयों की निर्मम हत्याएँ होती देख

कर मन सिहर उठता है, बदला लेने की भावना अंगड़ाई लेने लगती है। इसीलिए निर्णय किया है कि माछीवाड़ा से किसी भी मुसलमान को जीवित न निकलने देना चाहिए, मुसलमानों का बीजनाश कर दिया जाए।

महाराज श्री—थानेदार साहिब ! जब आप समझते हैं कि निर्दोषों का खून बहाना पाप है, निरपराध प्राणियों के जीवन के साथ खिलवाड़ करना निरा पागलपन है, बालकों, बालिकाओं, वृद्धों और वृद्धाओं की हत्या करना मनुष्यता से गिरी हुई बात है, तब आप जैसा समझदार व्यक्ति उसी पाप, पागलपन और पशुता की पुनरावृत्ति करने लगें, यह कोई शोभा वाली बात नहीं है फिर मेरी उपस्थिति में यह हत्याकाण्ड हो यह मेरे लिए सर्वथा असह्य है। अतः आपको कुछ विचार करना चाहिये, और हिंसा जैसे गलत रास्ते को छोड़कर अहिंसा और मनुष्यता के महापथ पर चलना चाहिए।

थानेदार—(धीमे स्वर से) महाराज ! जो कुछ आप सोचते हैं, फरमाते है, वह सन्तमत की दृष्टि से बिल्कुल सत्य है, परन्तु योजना बन चुकी है, और सहयोग देने का मैं वचन दे चुका हूँ।

महाराज श्री—आपके कितने लड़के हैं ?

थानेदार—स्वामी जी ! मेरे एक लड़का है।

महाराज श्री—थानेदार साहिब ! आपको जैसा अपना लड़का प्यारा है, वैसे दूसरों को अपने लड़के प्यारे हैं। हम सन्त हैं, सन्तों की भाषा में ही आपको एक सलाह देते हैं कि यदि आपको अपने बच्चे की जीवन रक्षा चाहिए तो दूसरों के बाल बच्चों की सुख सुविधा का ध्यान रखना चाहिए। अन्यथा इसका परिणाम मुझे अच्छा दिखाई नहीं देता। ऐसा न हो कि आपको बाद में पछताना पड़े।

थानेदार साहिब—पूज्य चरितनायक से अपने बच्चे के सम्बन्ध में भविष्य-वाणी सुनकर थानेदार के होश ठिकाने आ गए। वह काँपता हुआ विनीतता-पूर्वक अर्ज करने लगा कि स्वामी जी ! आप नाराज न हों और मेरे बच्चे के अनिष्ट की बात अपने मुख से न निकालें। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आपकी इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य न होगा। आपकी आज्ञा का अक्षरशः पालन किया जायगा, मैं मुसलमान भाइयों की सुरक्षा का प्रत्येक दृष्टि से ध्यान रखूँगा। कल के बाद किसी और थानेदार की ड्यूटी लग रही है अतः मैं कल सायंकाल तक ही सब मुसलमानों को यहां से निकाल दूंगा, और किसी एक को भी कोई क्षति पहुँचने नहीं दी जायगी। परन्तु आप अपनी दयादृष्टि

में कोई अन्तर न आने दें। इतना निवेदन कर देने के अनन्तर थानेदार वहाँ से उठा और उसने जाते ही मुसलमानों को माछीवाड़ा से निकालना आरम्भ कर दिया और अगले दिन की सायं तक सब मुसलमान वहाँ से निकाल दिए। पूज्य चरितनायक श्री छगनलाल जी महाराज की कृपा तथा सत्प्रेरणा के कारण एक बच्चे की भी हानि नहीं होने पाई।

वि० सं० २००५

इस वर्ष का चातुर्मास पूज्य श्री चरितनायक ने अबोहर में किया। इस चातुर्मास के उपलक्ष्य में प्रतिक्रमण सूत्र का प्रकाशन हुआ। चातुर्मास बड़े ठाठ से सम्पन्न हुआ।

वि० सं० २००७

इस वर्ष का चातुर्मास माछीवाड़ा में था। चातुर्मास के अनन्तर विहार करते हुए महाराज श्री भटिण्डा पधार गए। इन दिनों भटिण्डा के कपड़े के व्यापारियों पर बड़ा संकट था। सरकार ने व्यापारियों को गिरफ्तार करके जेल में डालना आरम्भ कर दिया था। जेल के दुखों से व्यापारी लोग बड़े खेदखिन्न थे। व्यापारियों में अधिक लोग जैनधर्मावलम्बी और पूज्य चरितनायक श्री के परमभक्त थे। जब व्यापारियों की कोई पेश नहीं चली तो एक दिन उन्होंने पूज्य चरितनायक श्री के चरणों में अपनी दुखभरी कहानी सुनाई और साथ में इस संकट से पिण्ड छुड़ाने का कोई उपाय पूछा तो कृपालुता के सागर पूज्य गुरुदेव श्री छगनलाल जी महाराज ने फरमाया कि "**मुनिसुव्रताय नमः**" इस मंत्र का प्रतिदिन जाप करने से संकट-काल टल जायगा। पाठक विस्मित होंगे यह जानकर कि उक्त मन्त्र की आराधना करने की देर थी कि व्यापारी लोगों का संकट समाप्त हो गया और सर्वत्र सुखशान्ति दृष्टिगोचर होने लगी। सचमुच हमारे पूज्य चरितनायक बड़े प्रतापी महापुरुष थे। जहाँ पर भी ये पधार जाते वहीं पर सुखशान्ति की एक नई बहार आ जाती।

वि० सं २००८

इस वर्ष का चातुर्मास पूज्य चरितनायक श्री जी महाराज का खन्ना में था। इस चातुर्मास के अनन्तर पूज्य चरितनायक श्री जी महाराज की हार्दिक भावना पंजाब छोड़कर मारवाड़ जाने की थी, और इस भावना को साकार बनाने के लिए इन्होंने प्रयत्न भी बहुत किया, परन्तु अन्न-जल की प्रबलता के कारण ये पंजाब को छोड़ नहीं सके। अन्न-जल की शक्ति भी जगत-विदित शक्ति है। जहाँ का अन्न-जल ग्रहण करना निश्चित होता है, बिना किसी के

यत्न के व्यक्ति के वहाँ पर पहुँच जाने की स्थिति बन जाती है, परन्तु जहाँ का अन्न-जल उसे निश्चित रूप से सेवन नहीं करना होता, लाख कोशिश करने के अनन्तर भी व्यक्ति वहाँ पर नहीं पहुँच पाता, कोई न कोई ऐसी बात बन जाती है कि बना बनाया कार्य-क्रम बीच में ही पड़ा रह जाता है। यही स्थिति हमारे महामहिम धर्मदेव पूज्य श्री छगनलाल जी महाराज के साथ बनी। इनकी उत्कट अभिलाषा मारवाड़ जाने की थी, किन्तु अन्न-जल को ऐसा स्वीकार न होने के कारण ये मारवाड़ नहीं पधार सके।

पीछे बताया जा चुका है कि विक्रम सम्वत् १९९० के वर्ष अजमेर में भारतवर्ष के स्थानकवासी मुनिराजों का एक बृहत् सम्मेलन सम्पन्न हुआ था। उस समय समाजोत्थान के अनेकानेक नियमोपनियम बनाए गए थे और वहीं पर हमारे महामान्य चरितनायक पूज्य श्री छगनलाल जी महाराज को मंत्री पद प्रदान किया गया था, किन्तु जब अजमेर सम्मेलन में पारित किए हुए प्रस्तावों की कुछ एक मुनिवर अवहेलना करने लगे, तथा श्रमण संघ जैसा सुदृढ़ और अनुशासित बनना चाहिए था वैसा बनता दिखाई नहीं दिया तो पूज्य चरितनायक श्री ने अपने मन्त्रीपद से त्याग पत्र दे दिया।

वि० सं० २०१२

इस वर्ष का चातुर्मास खन्ना में था। पूज्य चरितनायक श्री के सुविनीत शिष्य श्री गणेशीलाल जी महाराज काफी दिनों से अस्वस्थ चल रहे थे। अच्छे से अच्छे वैद्य और डाक्टर का इलाज कराया जा रहा था, परन्तु वही बात बनती जा रही थी—

"मर्ज बढ़ता गया, ज्यों-ज्यों दवा की"

पूज्य चरितनायक श्री ने मुनि श्री गणेशीलाल जी महाराज को नगर के जाने-माने डाक्टरों को दिखाया, वैद्यों से भी इस सम्बन्ध में मार्गदर्शन प्राप्त किया, परिणामस्वरूप पूज्य चरितनायक अपने प्रिय शिष्य का बड़े ध्यान से उपचार करवा रहे थे, डाक्टरों के कथनानुसार दवाई दी जाती, परहेज भी रक्खा जाता, किन्तु साधुरत्न श्री गणेशीलाल जी महाराज का स्वास्थ्य दिन प्रतिदिन गिरता ही चला गया। अन्त में, चातुर्मास काल में सम्वत्सरी से पहले ही ये स्वर्गासीन हो गए। खन्ना श्री संघ ने शवयात्रा का भक्तिपूर्ण प्रबन्ध किया था। अन्तिम संस्कार जहाँ पर किया गया था, वहाँ पर श्रीसंघ खन्ना ने श्री स्वामी गणेशीलाल जी महाराज का एक छोटा सा स्मारक भी बनवा दिया है।

श्रद्धेय साधुरत्न श्री गणेशीलाल जी महाराज के जीवन का जिस समय हम सूक्ष्म दृष्टि से परिशीलन करते हैं तो यह विना किसी संकोच के कहा जा सकता है कि श्रद्धेय मुनिवर श्री गणेशीलाल जी महाराज अपने पूज्य गुरुदेव श्री स्वामी छगनलाल जी महाराज के बहुत विनयशील, आज्ञाकारी विद्वान, अतएव कृपापात्र शिष्य थे। गुरुशिष्य की प्रकृति खूब मिलती थी। किसी भी प्रसंग पर गुरु और शिष्य में कभी मनोभेद की स्थिति नहीं बन पाती थी। पूज्य गुरुमहाराज जो कुछ फरमाया करते थे, शिष्य सदा भगवान की आज्ञा मानकर उसकी परिपालना किया करते थे, यही कारण था कि श्रद्धेय गणेशी-लाल जी महाराज के वियोग का हमारे महामान्य चरितनायक का बहुत ज्यादा और मार्मिक दुःख हुआ था। कभी-कभी पूज्य चरितनायक श्री स्वयं ही फरमाया करते थे कि मैंने अपने जीवन में दो बार विशेष दुःख का अनुभव किया है। एक बार तो उस समय जब मेरे परम आराध्य पूज्य गुरुदेव का स्वर्गवास हुआ था और दूसरी बार उस समय जब मेरे अन्तेवासी मुनि गणेशी लाल जी का देवलोक हुआ। पूज्य चरितनायक श्री का यह फरमान स्पष्ट रूप से श्री गणेशीलाल जी महाराज के प्रति इनके स्नेहभाव तथा कृपाभाव को अभिव्यक्त कर रहा है। गुरु शिष्य के इस आपसी स्नेह और प्रेम के सम्बन्ध में हमारे परमाराध्य प्रातः स्मरणीय जैनधर्म दिवाकर साहित्य-रत्न जैनागम-रत्नाकर आचार्य सम्राट परमश्रद्धेय गुरुदेव पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज भी फरमाया करते थे कि आदरणीय मुनि श्री छगनलाल जी तथा इनके प्रिय शिष्य श्री गणेशीलाल जी दोनों ही बड़े स्नेहशील क्रिया-पात्र, संयमी और आचार-विचार की दृष्टि से सुलझे हुए मुनिराज हैं। हमें इनके त्याग-वैराग्य-प्रधान जीवन पर बड़ा मान है, गौरव है।

मुनि श्री गणेशीलाल जी महाराज की विनीतता तथा सेवावृत्ति का परि-चय कराते हुए एकबार मान्य चरितनायक पूज्य श्री छगनलाल जी महाराज ने फरमाया कि एक बार मुझे[1] सन्निपात (पानीझरा) का प्रकोप हो गया था। धीरे-धीरे यह विगड़ गया, जब यह विगड़ जाता है तो आमतौर पर सिर से लेकर पाँव तक दाने से निकल आते हैं, किन्तु मेरे शरीर में दाने पाँव से निकलने आरम्भ हुए थे, और उसके अनन्त धीरे-धीरे वे सिर की ओर बढ़ने लगे थे। वैद्यों ने विशेष रूप से विश्राम करने की हिदायत कर रक्खी थी। मेरी सेवा का सारा दायित्व मुनि श्री गणेशीलाल जी पर था। मेरी सारी सार-संभाल यही किया करते थे। एक दिन अचानक मेरा हाथ गणेशी मुनि

---

१ पित्त और कफ से जन्य ज्वर, जो अत्यधिक जोरदार होता है।

के हाथ को छू गया, हाथ का स्पर्श होने की देर थी कि मुझे इनका सारा शरीर तवे की तरह तपता हुआ प्रतीत हुआ। तत्काल मैंने पूछा कि गणेशी मुनि तुम्हें ज्वर आता है ? मेरे प्रश्न का उत्तर देते हुए इन्होंने धीमे स्वर से कहा कि गुरुदेव ! कई दिनों से ऐसा ही चल रहा है। गणेशी मुनि की बात सुनकर मैंने कहा कि 'तुमने मुझे बताया क्यों नहीं' ? यदि बता देता तो कम से कम किसी वैद्य से तुम्हारा उपचार कराया जाता। मेरी इस बात का गणेशी मुनि ने यही उत्तर दिया कि गुरुमहाराज ! आप तो स्वयं ज्वरग्रस्त हो रहे हैं, साधारण से ज्वर की आपसे क्या बात करता। मेरी तो आन्तरिक यही भावना रहती है कि किसी तरह आप स्वस्थ हो जाएँ और आपका सन्निपात रोग मुझे ही हो जाए क्योंकि आपने तो समाज का कल्याण करना है किन्तु मेरा क्या है ? अपने प्रिय शिष्य की यह कहानी सुनाते समय पूज्य चरितनायक का दिल भर आता था। सचमुच ऐसे विद्वान, शिक्षित, विनीत, आज्ञाकारी और सेवाव्रती शिष्य के वियोग का पूज्य गुरुमहाराज श्री छगन लाल जी महाराज को दुःख का होना स्वाभाविक ही था।

श्रद्धेय मुनि श्री गणेशीलाल जी महाराज का स्वर्गवास हो जाने के कारण श्रद्धास्पद चरितनायक श्री जी महाराज अकेले ही विचरने लगे एकलविहारी होकर यत्र, तत्र, सर्वत्र अहिंसा धर्म का ध्वज लहराते हुए जन-जीवन का कल्याण करने लगे। प्रश्न हो सकता है कि क्या जैन साधु अकेला विहरण कर सकता है ? उत्तर में निवेदन है कि वैसे तो कम से कम दो साधुओं को ही स्वतन्त्र विहरण करने का अधिकार प्राप्त है, परन्तु यदि साथी सन्त स्वर्गवासी हो जाए तो विवशता से अकेले भी विहरण करना शास्त्र-विरुद्ध नहीं है। जैन शास्त्रों में परिस्थितिवश एकाकी विहार करने की आज्ञा है। उत्तराध्ययन सूत्र में श्रमण भगवान महावीर फरमाते हैं—

न वा लहेज्जा निउणं सहायं, गुणाहियं वा गुणओ समं वा।
एक्को वि पावाइ विवज्जयंतो, विहरेज्ज कामेसु असज्जमाणो॥

—उत्तरा० अ० ३२/५

—यदि गुणों में अपने से अधिक या अपने जैसी योग्यता वाला निपुण साथी न मिले तो साधु सदा=सर्वदा पापों का वर्जन=परित्याग करता हुआ तथा भोगों के प्रति अनासक्तिभाव रखता हुआ अकेला ही विचरण करे।

वि० सं० २०१५

इस वर्ष का चातुर्मास कालांवाली मण्डी में किया गया। श्रावण मास अधिक होने से यह पाँच महीने का चौमास था, इस चातुर्मास में साधारण-

असाधारण सभी लोगों ने धर्म ध्यान का खूब लाभ उठाया। पूज्य चरितनायक श्री कालांमण्डी में क्या पधारे, मानों उसका सोया भाग्य जाग उठा। किसी समय वहाँ पर पीने का पानी भी प्राप्त करना बड़ा कठिन हो रहा था। पानी लेने के लिए लोगों को कभी सिरसा जाना पड़ता था, कभी रामांमण्डी में। यदि कोई कुआं भी लगाता तो वहाँ से भी पानी खारा ही निकलता था, इस तरह जलीय दृष्टि से सभी लोग बड़े परेशान थे परन्तु जिस दिन से पूज्य चरितनायक श्री ने वहाँ पर पदार्पण किया, उसी दिन से कालांवाली के कूओं से पानी मीठा और स्वादिष्ट निकलने लगा। आज भी कालांवाली मण्डी के लोग पूज्य चरितनायक श्री छगनलाल जी महाराज की महिमा के गीत गाते नहीं थकते हैं।

कालांवाली मण्डी का चातुर्मास समाप्त करने के अनन्तर हमारे महामहिम पूज्य चरितनायक श्री कालांवाली से विहार करके सिरसा होते हुए रोड़ी पधारे। पाँव फटजाने के कारण एक दिन श्री कुन्दनलाल जी दूगड़ गुरुचरणों की मालिश कर रहे थे। उस समय हाथ-पाँव की रेखाओं की चर्चा चल पड़ी। पूज्य चरितनायक श्री सामुद्रिक शास्त्र की एक मान्यता के अनुसार फरमाने लगे कि जो रेखा पाँव के तलुवे में सीधी पड़ती है, उसे पद्मरेखा कहते हैं। यह रेखा किसी महापुरुष आचार्य, राजे-महाराजे के पाँव में पाई जाती है। पूज्य गुरुदेव की यह बात सुनकर सेठ दुग्गड़ जी कहने लगे कि गुरुदेव ! आपके पाँव में भी यह पद्मरेखा स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हो रही है, अतः आप भी तो हमारे आचार्य देव महापुरुष ही हैं। दुग्गड़ साहिब की यह बात सुन लेने पर पूज्य चरितनायक बोले कि दुग्गड़ जी ! मेरे रेखा तो है, परन्तु ध्यान से देखो, यह पूरे पाँव में नहीं है, थोड़ी सी कम है, यदि मेरे पाँव में यह रेखा परिपूर्ण होती तो मैं भी श्रमण संघ का अधिनायक आचार्य होता। श्रद्धेय चरितनायक श्री की विचारचर्चा से यह स्पष्टतया कहा जा सकता है कि इनके शारीरिक चिन्ह भी सामुद्रिक शास्त्र की मान्यतानुसार साधारण नहीं थे। इनके समुच्च शारीरिक चिन्हों से इनका महापुरुषत्व भी स्पष्ट रूप से प्रमाणित हो रहा था, इस पर भी इन्होंने उसका कभी अभिमान नहीं किया। ये महान होते हुए भी अपने आपको कभी महान अभिव्यक्त नहीं किया करते थे।

रोड़ी के सेठ दीवानचन्द जी जैन सुनाया करते हैं कि हमारे रोड़ी क्षेत्र में जैनधर्मानुयायियों के केवल-दस ग्यारह घर हैं, परन्तु इनमें भी आपसी संगठन

नहीं था, छोटी-छोटी बातों को लेकर लोग आपस में झगड़ते रहते थे परन्तु पूज्य चरितनायक श्री छगनलाल जी महाराज का कुछ ऐसा पुण्य प्रताप देखने में आया कि इनके रोड़ी पधार जाने पर जैनबिरादरी की सारी की सारी फूट समाप्त हो गई, और वहाँ पर एक व्यवस्थित सभा कायम हो गई और उसके प्रधान श्री हेमराज जी छाजेड़ बना दिए गए। जिस रोड़ी क्षेत्र में सदा आपसी विरोध की ज्वालाएँ सदा धधकती रहती थीं, उसी रोड़ी में पूज्य गुरुदेव के अनुग्रह से प्रेम और स्नेह की एक पवित्र धारा प्रवाहित होने लगी अधिक क्या, पूज्य चरितनायक श्री के परिपूत चरणों का स्पर्श पाकर रोड़ी,[1] रोड़ी न रहकर हीरे की एक कनी बन गई।

वि० सं० २०१६

इस वर्ष का चातुर्मास पूज्य चरितनायक श्री ने सिरसा में सम्पन्न किया। चातुर्मास के अनन्तर विहार करना था परन्तु अस्वस्थता के कारण विहार नहीं हो पाया। पूज्य चरितनायक श्री के पास एक दीक्षार्थी बहुत दिनों से रह रहे थे। इनका नाम श्री रोशनलाल जी है। श्री रोशनलाल जी अग्रवाल-वंश-परम्परा के परिवार से सम्बन्धित स्वर्गीय लाला कुँवरसैन जी के लाडले और माता पातोदेवी की आँखों के तारे हैं। इनकी जन्मभूमि पूठ नामक गाँव है। यह गाँव दिल्ली के समीप पड़ता है। जवानी की आयु में ही श्री रोशनलाल जी विरक्त होकर तथा पारिवारिक मोह-माया के बन्धनों को तोड़कर योग्य गुरु की खोज में निकल पड़े थे। सर्व प्रथम इनको पण्डित प्रवर, आदरणीय, श्रद्धास्पद श्री स्वामी फूलचन्द जी महाराज करांची वालों के पावन दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। पूज्य मुनिराज के चरणों में जब श्री रोशनलाल जी ने साधु बनने की अपनी भावना व्यक्त की तब इन्होंने बड़ी उदारता और स्नेहशीलता के साथ इनको महामहिम चरितनायक पूज्य श्री छगनलाल जी महाराज के पास भेज दिया। समय की बात समझिए कि श्री रोशनलाल जी ने इन गुरु चरणों का सान्निध्य पाकर कुछ ऐसी अलौकिक सी शान्ति और सन्तुष्टि प्राप्त होती अनुभव की जिसे शब्दों की सीमित रेखाओं में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। श्रद्धेय चरितनायक ने भी श्री रोशनलाल जी को योग्य, होनहार तथा आज्ञाकारी समझ कर दीक्षित करने की अनुमति प्रदान कर दी। परिणामस्वरूप श्री रोशनलाल जी साधु-प्रतिक्रमण आदि साधुजनोपयोगी शिक्षण प्राप्त करने लगे। श्री रोशनलाल जी

---

[1] ईंट या पत्थर की छोटी सी टकड़ी।

जैसे नाम से रोशन थे वैसे आचार-विचार की दृष्टि से भी रोशन ही थे, इनका सारा दिन पढ़ने-लिखने में व्यतीत होता, इधर-उधर की व्यर्थ की बातों की ओर इनको जरा भी रुचि नहीं थी। गुरु महाराज के आदेश को भगवान का आदेश समझ कर पालन किया करते थे तथा त्याग-वैराग्य साकार होकर इनके जीवन में अङ्गड़ाइए लेता दिखाई दे रहा था। दीक्षार्थी की ऐसी योग्यता तथा वैराग्यवृत्ति देखकर सिरसा निवासियों ने पूज्य चरितनायक श्री के चरणों में विनीततापूर्ण स्वर में विनति की कि गुरुदेव! रोशनलाल जी को सिरसा नगरी में ही दीक्षित किया जाए और दीक्षा-महोत्सव करने का सौभाग्य हमें प्रदान करने की कृपा करें। श्रद्धालु भक्त जनों की विनति पूज्य चरितनायक श्री ने स्वीकार करते हुए दीक्षामहोत्सव वि० सं० २०१७, आषाढ़ शुक्ला, तृतीया सोमवार का दिन निश्चित कर दिया। दीक्षामहोत्सव को समारोह के साथ सानन्द सम्पन्न करने के लिए सिरसा निवासियों ने निकट तथा दूर के सभी नगरों और उपनगरों में निमन्त्रण-पत्रिका भेज दी। दीक्षार्थी को बिठलाने के लिए चान्दी का हंस मंगवाया और बड़े ठाठ-बाठ से वैरागी श्री रोशनलाल जी की सवारी निकाली। बाहिर से हजारों यात्री दीक्षामहोत्सव में सम्मिलित होने के लिए सिरसा में आए थे, अतः दीक्षा का जलूस बड़ा शानदार और प्रभावोत्पादक था। जब दीक्षा का जलूस निकल रहा था उस समय बड़ी गरमी हो रही थी, जनता गरमी की अधिकता से बड़ी परेशान थी परन्तु शासन देवता का कुछ ऐसा चमत्कार हुआ कि देखते ही देखते आकाश में बादल छा गए, शीतल छाया हो जाने से उष्णता-जन्य सब सन्ताप शान्त हो गया, मौसम इतना अधिक सुहावना बन गया कि कुछ कहते नहीं बनता। चाँदी के हंस पर बैठे श्री रोशनलाल जी देवकुमार की भाँति शोभा प्राप्त करने लगे थे। अनेक विधि बाजों की सुरीली तानों तथा जनता से नारे लगाए जा रहे थे—जैन धर्म की जय हो। भगवान महावीर की जय हो, तपोमूर्ति धर्मदेव श्री छगन लाल जी महाराज की जय हो आदि गगनभेदी जयकारों ने आकाश को गुंजा दिया था। अन्त में दीक्षा का जलूस दीक्षा पण्डाल में विराजमान महामहिम धर्म धुरन्धर गुरुदेव श्री स्वामी छगनलाल जी महाराज के पवित्र चरणों में हाजिर हुआ, दीक्षार्थी रोशनलाल जी सवारी से नीचे उतरे वन्दनीय गुरुदेव के चरणों में नतमस्तक हुए तदनन्तर किसी व्यवस्थित और सुनिश्चित स्थान पर जाकर उन्होंने मुनि वेश धारण किया। मुख पर केसर रञ्जित मुखवस्त्रिका लगाकर, हाथ में पात्रों की झोली और कोख में रजो-हरण लेकर जब श्री रोशनलाल जी पुनः दीक्षा पण्डाल में आए तो उस

समय की शोभा कुछ निराली ही थी । पूज्य चरितनायक श्री ने जव दीक्षार्थी को दीक्षा का पाठ समुच्च स्वर से पढ़ाया और अपने हाथो से चोटी ली तव उसी समय मेघमाली ने जोरों से वर्षा आरम्भ करदी, ऐसा लग रहा था कि मानों मेघमाली दीक्षार्थी को आशीर्वाद देता हुआ कह रहा है कि दीक्षा के कण्टीले और कंकरीले रथ पर पाँव रखने वाले मुनिवर ! जैसे हम मधुर जल वरसा कर लोगों के वाह्य ताप को शान्त कर रहे हैं वैसे आप भी संयम साधना की पगडण्डियों पर दृढ़ता से चलते हुए तथा अहिंसा, संयम और तप रूप अमृत घर-घर वरसाते हुए जन-गण-मन का आन्तरिक ताप शान्त करना ।" इसके अतिरिक्त दीक्षामहोत्सव में भाग लेने वाले वाहिर के तथा स्थानीय व्यक्तियों के दीक्षा सम्बन्धी अनेकों व्याख्यान हुए तथा अनेकों संगीत वोले गए, इस तरह बड़े आनन्द के साथ श्री रोशनलाल जी समस्त जनता के सामने जैन साधु की प्रतिज्ञा अंगीकार करके मुनि श्री रोशनलाल जी वन गए । मुनि श्री रोशनलाल जी के इस दीक्षा व्रत अङ्गीकार करने के उपलक्ष में रात्रि को एक उत्सव का आयोजन भी किया गया । सामूहिक रूप से जैन धर्म के मुख्य-मुख्य सिद्धान्तों और जैन साधुओं के कठोर साधना-नियमो पर विविध प्रकार के भाषणों द्वारा प्रकाश डाला गया ।

मुनि श्री रोशनलाल जी ने दीक्षा ग्रहण करने के अनन्तर जहाँ अपने पूज्य गुरुदेव जी महाराज की सेवा का पूर्णतया ध्यान रक्खा, वहाँ इन्होंने पढ़ने लिखने की ओर भी कभी उदासीनता से काम नहीं लिया । गुरु सेवा का सारा दायित्व अपने कन्धों पर उठाना और पढ़ने लिखने का भी पूरा ध्यान रखना कोई साधारण वात नहीं । सचमुच श्री रोशन मुनि जी बड़े विनीत, सेवा व्रती, अध्ययनशील और मिलनसार सन्त हैं । अध्ययनशीलता के कारण ही इन्होंने संस्कृत की विशारद परीक्षा उत्तीर्ण करके शास्त्री-परीक्षा की तैयारी आरम्भ करदी है । मुनि श्री रोशनलाल जी विद्या के क्षेत्र में अधिकाधिक प्रगति करें तथा समुज्ज्वल और शास्त्र सम्मत आचार विचार के महापथ पर निरन्तर वढ़ते हुए अपने गुरुदेव के नाम को चार चाँद लगाएँ, यही शासनेश भगवान महावीर से प्रार्थना है ।

वि० सं० २१०८

इस वर्ष का चातुर्मास श्रद्धेय श्री स्वामी छगनलाल जी महाराज ने भटिण्डा में किया । महाराज श्री की एड़ी में दर्द रहता था । डाक्टरों ने जव निरीक्षण किया तव पता चला एडी की हड्डी वढ़ गई है, इसी कारण दर्द हो रहा है । विना ऑपरेशन किए दर्द पर नियंत्रण नहीं पाया जा सकता । भटिण्डा के जाने-माने दानवीर सेठ सरदार जसवन्तसिंह जी जैन भीखीवालों ने

ऑपरेशन की बात सुनकर बड़ी उदारता, श्रद्धा, निष्ठा और भक्ति के साथ अमृतसर से डाक्टर बुलाने की व्यवस्था करदी और निश्चित समय पर डाक्टर ने जैन स्थानक में आ कर पूज्य चरितानायक श्री की एड़ी का ऑपरेशन कर दिया। जैन साधु सूर्यास्त हो जाने पर खाद्य या पेय किसी भी पदार्थ का सेवन नहीं करते इस बात से ऑपरेशन करने वाले डाक्टर सर्वथा अनभिज्ञ थे अतएव उन्होंने—"सन्त जी को रात्रि में औषधि देदी जायगी—"यह सोचकर दिन रहते-रहते महाराज श्री को कोई औषधि देने का प्रयास नहीं किया। सूर्यास्त होने की देर थी कि पूज्य चरितानायक श्री की एड़ी में वेदना आरम्भ हो गई। वेदना भी बड़ी भयंकर थी, इतनी भयंकर कि पूज्य चरितनायक श्री ने संथारा (आमरण अनशन) करने के भाव बना लिए थे किन्तु सूर्यास्त हो जाने के कारण औषधि का सेवन हो नहीं सकता था। जब डाक्टर को इस बात का पता चला तो उसे भी महान पश्चाताप हुआ। पर डाक्टर के पश्चाताप से वेदना में क्या अन्तर आ सकता था? पूज्य चरितनायक श्री ने उस वेदना की घड़ियों में ही रात्रि व्यतीत की। सूर्यादय होने के अनन्तर ही औषधि का सेवन किया। डाक्टर जैन साधुओं की साधनागत कठोरता और दृढ़ता को देख कर आश्चर्य चकित रह गया।

वि० सं० २००२

इस वर्ष पूज्य चरितनायक ने रामामण्डी में चातुर्मास किया। चौमास उठने के अनन्तर महाराज श्री कालांवाली, सिरसा, सरदूलगढ़, रोड़ी, मानसा, और भीखी आदि क्षेत्रों को पावन करते हुए खन्ना पधारे। वहाँ से माछीवाड़ा हो कर इन्होंने भटिण्डा की ओर विहार कर दिया। भटिण्डा में एक बहिन ने वर्षी-तप[1] का पारणा करना था, उस बहिन की हार्दिक भावना थी कि

[1] लगातार बारह महीने तक अनशन करना वर्षी-तप कहलाता है। यह तप आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव ने सम्पन्न किया था। इसका पारणा वैशाख शुक्ला तृतीया को किया गया था। आज कल वर्षीतप करने की जो परम्परा है उसमें और प्राचीन वर्षीतप में बहुत बड़ा अन्तर है। आज जो वर्षीतप किया जाता है इसमें लगातार एक वर्ष तक एकान्तरे करने होते हैं। एक दिन उपवास, दूसरे दिन पारणा, तीसरे दिन फिर व्रत और चौथे दिन फिर पारणा, इस तरह व्रत और पारणे का क्रम वर्ष तक चलता रहता है। जब वैशाख शुक्ला तृतीया आती है तो उस दिन इक्षुरस से पारणा कर लिया जाता है। पहले वर्षीतप में समस्त वर्ष तक लगातार उपवास किए जाते थे।

वर्षी-तप के पारणे पर भटिण्डा में मेरे परमाराध्य गुरुदेव पूज्य श्रीछगनलाल जी महाराज अवश्य विराजमान हों, इसीलिए इस बहिन ने पूज्य चरितनायक श्री से जोरदार विनति करके भटिण्डा पधार जाने की स्वीकृति प्राप्त करली थी। भटिण्डा फरसने का वचन दे देने के कारण महाराज श्री माछीवाड़ा आदि नगरों में अधिक न ठहर कर सीधा भटिण्डा की ओर अग्रसर हो रहे थे।

पूज्य चरितनायक श्री जब भटिण्डा की ओर विहार कर रहे थे तो इन्हें एक बार एक वृक्ष के नीचे ही रात्रि व्यतीत करनी पड़ी। परिस्थितिवश किसी गाँव में नहीं पहुँच सके। किसी समुचित स्थान की अनुपलब्धि होने से बाहिर जंगल में ही एक दरख्त के नीचे विराजमान हो गए, रात्रि के समय वहाँ पर ऐसे जहरीले जन्तु निकले जिन्होंने महाराज श्री के शरीर को काटना आरम्भ कर दिया, कुछ देर तक ये रजोहरणी से जन्तुओं को दूर हटाते रहे, परन्तु जन्तुओं के निकलने का और इनके शरीर काटने का वह क्रम चलता ही रहा। जन्तु दूर हटते न देख कर पूज्य चरितनायक ने बिल्कुल शान्तिभाव से पद्म आसन लगाकर समाधि लगा ली, और जन्तुओं को हटाना बन्द कर दिया। वे जन्तु सारी रात्रि इनको काटते रहे, खून चूसते रहे. अपना जहर छोड़ते रहे, पर क्षमा के सागर पूज्य चरितनायक असह्य वेदना होने पर भी टस से मस नहीं हुए, शान्तिभाव से जन्तु-जन्य परीषह को सहन करते रहे। प्रात.काल होने पर शरीर मोटे मोटे दाफड़ों से भर गया, जिनके कारण कई एक दिन तो पूज्य चरितनायक श्री को ज्वर भी आता रहा, पर कमाल की बात है कि लोगों के पूछने पर भी इन्होंने किसी को दाफड़ों के पैदा होने का कारण कुछ नहीं बताया, पूछने वालों को "कर्मों का भोग" कह कर ही मौन करा दिया करते थे। जब इनके प्रिय शिष्य श्री रोशनलाल जी ने सारी स्थिति बताई तब लोगों को दाफडों के मूल कारण का ज्ञान हो सका। जिस किसी ने भी इस घटना को सुना वही चरितनायक श्री जी महाराज की अद्‌भुत सहिष्णुता देखकर आश्चर्यचकित रह गया। सचमुच हमारे वन्दनीय चरितनायक पूज्य श्री छगनलाल महाराज श्री जी विलक्षण और अवर्णनीय सहनशीलता के सजीव पुंज थे।

पूज्य चरितनायक श्री जी महाराज मार्ग के अनेकानेक परीषह सहन करते हुए अन्त में भटिण्डा पधार गए और वैशाख शुक्ला तृतीया (अक्षय-तृतीया) के दिन वर्षीतप के पारणे के उपलक्ष्य में हो रहे आयोजन में दर्शन देकर इन्होंने वर्षीतप करने वाली बहिन को हार्दिक मनोरथ को सफल बना दिया। बहुत पुराना मुहावरा है कि भगवान भक्तों के वश में होते हैं। पूज्य

चरितनायक श्री जी महाराज ने इस मुहावरे को व्यवहार का रूप देकर अपनी लोकोपकारिता तथा भक्तवत्सलता का एक आदर्श परिचय दिया।

वि० सं० २०२१

इस वर्ष का चातुर्मास पूज्य चरितनायक श्री छगनलाल जी महाराज ने भटिण्डा में सम्पन्न किया। पंजाब के मुख्य-मुख्य नगरों में भटिण्डा का भी अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है। रेलवे-स्टेशनों की दृष्टि से भटिण्डा पंजाब में सबसे बड़ा जंकशन माना जाता है। भटिण्डा में जैन लोगों की अच्छी वसति है इनमें अधिक कपड़े के बड़े व्यापारी हैं सभी सम्पन्न हैं। हमारे पूज्य चरितनायक श्री जी महाराज का जनता पर बड़ा अच्छा प्रभाव है। महाराज श्री के आदेश को यहाँ के लोग भगवान का आदेश मानकर चलते थे। महाराज श्री जी की ही प्रेरणा से भटिण्डा में "श्री महावीर जैन पुस्तक भण्डार" खोला गया था। भटिण्डा की जनता पूज्य चरितनायक श्री जी महाराज के लिए चाहे कितनी भी अधिक आदर की भावना रखती थी परन्तु इनको भटिण्डा नगर के प्रति कोई मोह नहीं था। ये मङ्गलमूर्ति जहाँ कहीं पधार जाते थे, वहीं पर जनता झूम उठती थी और ये महापुरुष भी बिना किसी संकोच के बड़ी उदारता के साथ अहिंसा सत्य के मोती खुले हाथों से लुटाते रहते थे।

वि० सं० २०२२

इस वर्ष का चातुर्मास पूज्य धर्मदेव ने सिरसा में व्यतीत किया। इस चातुर्मास की बड़ी लम्बी कहानी है। पूज्य चरितनायक श्री पंजाब से मारवाड़ जाना चाहते थे। जहाँ-कहीं भी इन्हें चातुर्मास की विनति होती ये यही उत्तर फरमाया करते थे कि मेरी भावना मारवाड़ जाने की है। परन्तु माछीवाड़ा के लोगों ने महाराज श्री जी से यह वचन ले लिया था "यदि मारवाड़ की ओर हमारा विहार नहीं हो सका तो २०२२ का हमारा चातुर्मास माछीवाड़ा में करने की भावना है।" गरमी की अधिकता थी। पूज्य धर्मदेव सिरसा में विराजमान थे। चातुर्मास की विनति करनेवाले अनेकों थे। एक दिन तो सिरसा में रोड़ी, कालांवाली और माछीवाड़ा आदि अन्य अनेक नगरों के लोग इकट्ठे हो गए। सब लोग अपने-अपने क्षेत्र में चातुर्मास करने का महाराज श्री से सानुरोध निवेदन कर रहे थे। अन्त में पूज्य चरित नायक श्री ने अपना निर्णय देते हुए फरमाया कि मेरा विचार मारवाड़ जाने का है, यदि मैं किसी कारण मारवाड़ नहीं जा सका तो मैं माछीवाड़ा नगर मे चातुर्मास करने की भावना रखता हूँ। क्यों कि मारवाड़ जाने की स्थिति

न बनी तो माछीवाड़ा में चातुर्मास करने का माछीवाड़ा वालों को वचन दे चुका हूँ।

गरमी जवानी पर थी और साथ में श्रद्धेय चरितनायक श्री का स्वास्थ्य भी सन्तोषजनक नहीं था, इस स्थिति को सिरसा, रोडी आदि नगरोंवाले सभी भाई भली-भाँति समझते थे। परिणामस्वरूप सबने मिलकर यही निर्णय किया कि हमें अपनी ओर से किसी क्षेत्र विशेष में चातुर्मास कराने का आग्रह नहीं करना चाहिए। चातुर्मास का मोह रखने की अपेक्षा हमें महाराज श्री की स्वास्थ्य-सुरक्षा की ओर ही अधिक ध्यान देना चाहिए। अतः चातुर्मास करने में जहाँ महाराज श्री अपनी सुखसुविधा समझें, वहाँ पर चातुर्मास कर लें, माछीवाडा के गुरुभक्त श्रावक भी इस बात से सहमत थे। परिणामस्वरूप उन्होंने अन्त में महाराज श्री के चरणों में विनीत प्रार्थना करते हुए अर्ज की—

"गुरुदेव ! यह सत्य है कि मारवाड़ न जा सकने की स्थिति में आप श्री ने माछीवाडा चातुर्मास करने का आपने हमें वचन दे रखा है, परन्तु आपके स्वास्थ्य की स्थिति अच्छी नहीं है और गरमी बहुत ज्यादा है अतः हम द्रव्य क्षेत्र काल और भाव को देखते हुए माछीवाड़ा चौमास करने की आपकी जो स्वीकृति है, उसे आपको वापिस करते हैं। हमारी ओर से आप स्वतन्त्र हैं, जहाँ आपका स्वास्थ्य स्वस्थ रहे और जहाँ पर आप सहर्ष चातुर्मास करना चाहें, खुशी से वहाँ पर कर सकते हैं, हमें इसमें कोई ऐतराज नहीं है।"

माछीवाड़ा के लोगों की गुरुभक्ति देखकर सिरसा, रोडी और कालावाली आदि नगरों के सभी भाई बड़े प्रभावित हुए और सबने उसी समय यह भी प्रार्थना कर दी कि पूज्य गुरुदेव ! जैसी आपके स्वास्थ्य की स्थिति दिखाई दे रही है। उसके अनुसार आपको सिरसा में ही चातुर्मास करना चाहिये। यह प्रार्थना हो जाने पर भी पूज्य चरितनायक श्री जी महाराज मारवाड़ न जा सकने की स्थिति में माछीवाड़ा में ही चातुर्मास करना चाहते थे किन्तु शारीरिक स्थितियाँ विहार के अनुकूल न होने से इन्हें अन्त में सिरसा में ही चातुर्मास करने की स्वीकृति प्रदान करनी पड़ी।

जिन दिनों सिरसा में पूज्य चरितनायक श्री जी महाराज का चातुर्मास चल रहा था। उन दिनों भारत और पाकिस्तान में लड़ाई आरम्भ हो रही थी। उस समय भारत के प्रधानमन्त्री हमारे आदरणीय श्री लालबहादुर शास्त्री थे। इन्हीं के नेतृत्व में भारत के सैनिक पाकिस्तान से युद्ध लड़ रहे

थे। भारतीय सेना ने इस युद्ध में वे जौहर दिखाए कि स्थान-स्थान पर पाकिस्तानी सैनिकों की हार होती जा रही थी। धोती, टोपी धारी, नाटे कदवाले प्रधानमन्त्री ने पाकिस्तान के अधिनायक अयूब खाँ को नाकों चने चबवा दिये थे। अयूब खाँ तो दिल्ली आने के स्वप्न देख रहा था, परन्तु उसे अपना पाकिस्तान ही बचाना कठिन हो गया था। पाकिस्तानी सैनिक अपनी इस पराजय से बौखला उठे थे। परिणामस्वरूप वे सीमावर्ती भारतीय नगरों, उपनगरों और रेलवे स्टेशनों पर अन्धाधुन्ध बम वर्षा करने लगे थे। बम वर्षा के आतंक ने भारतीयों को आतंकित बना रखा था। भारत सरकार ने सुरक्षार्थ "ब्लैक आउट" करने के सर्वत्र आदेश प्रसारित कर दिए थे जिसके कारण रात के समय यत्र, तत्र, सर्वत्र अन्धकार ही अन्धकार रहता था।

रोड़ी वाले श्री दीवानचन्द जी जैन सुनाया करते हैं कि इन दिनों मैं पूज्य गुरुदेव श्री स्वामी छगनलाल जी महाराज के दर्शनार्थ सिरसा गया हुआ था। मैंने स्वयं देखा है कि रात्रि का समय था, लोग अपने-अपने घरों में विश्राम कर रहे थे। अचानक बड़े जोर का धमाका हुआ, सारे नगर में हलचल मच गई। जनता को सचेत करने के लिए गलियों में भ्रमण करने वाले स्वयं सेवक कह रहे थे कि किसी को व्याकुल या उद्विग्न होने की जरूरत नहीं, हवाई अड्डे पर पाकिस्तानी हवाई जहाज ने बम गिराया है, पूर्णतया सावधान रहने की आवश्यकता है। कुछ क्षणों के बाद दूसरा धमाका हुआ। यह दूसरा धमाका इतने अधिक जोर का था कि सारा वायुमण्डल गूँजने लगा, घरों के दरवाजे तड़ातड़ बजने लगे, डर, खौफ और भय साकार होकर भ्रमण करता हुआ दृष्टिगोचर हो रहा था, परन्तु हमारे महामान्य चरितनायक पूज्य छगनलाल जी महाराज इस भयंकर संकट काल में सर्वथा निर्भय, अनुद्विग्न और परमशान्त भाव से पूर्ण शान्ति के साथ अपना जाप कर रहे थे। ये बिल्कुल घबराये नहीं, जैसे पटाखों का बजना कोई विशेष बात नहीं समझी जाती, वैसे बम वर्षा का भी हमारे पूज्य चरितनायक श्री के मानस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। ये शान्तिकाल की तरह अपनी धुन में मस्त होकर आत्मचिन्तन और ईशस्मरण में लगे रहे। इतने में तीसरा और चौथा धमाका हुआ। धमाकों की पुनरावृत्ति के कारण लोगों के कलेजे काँपने लगे, सबकी अन्तरात्मा यही आवाज दे रही थी कि आज हम बच नहीं सकते, सदा के लिए मृत्यु की गोद में सोना होगा। परन्तु जहाँ पर धर्म के जहाज अहिंसा सत्य की साकार मूर्ति, पूज्यपाद चरितनायक श्री छगनलाल जी महाराज जैसे दीर्घतपस्वी, परम वर्चस्वी महापुरुष विराजमान हों तथा प्रसन्न वदन स्वस्थ-

चित्त एवं पूर्ण शान्तभाव से भगवान के जाप की ज्योति जगा रहे हों वहाँ पर अनिष्ट का अन्धकार कैसे टिक सकता था ? यही कारण है कि वम वर्षा से सिरसा नगर का बाल भी बाँका नहीं हुआ। ये बम न तो रेलवे स्टेशन पर ही गिरे और ना ही किसी अन्य सरकारी संस्थान पर। परन्तु ये बम सिरसा नगर से दस बारह मील दूर एक गाँव के खेत में गिराए गये थे। वहाँ पर किसी जाट ने लालटेन जला रक्खी थी। पाकिस्तानी पायलेट (हवाई जहाज के चालक) ने जल रही लालटेन को अपने किसी जासूस का संकेत पाकर उस स्थान को हवाई अड्डा समझ लिया था और इसीलिए उसने वहाँ पर बम गिरा दिये थे। इस तरह परम श्रद्धेय श्री छगनलाल जी महाराज के पुण्य प्रताप से सिरसा नगरी सर्वथा सुरक्षित ही रही। शत्रु के वायुयान का निश्चित स्थान पर पहुँच कर भी निशाना चूक जाना, इतनी भारी बम वर्षा होने पर भी सिरसा तथा समीपस्थ प्रदेश का बचे रहना कोई साधारण बात नही है। यह सब बालब्रह्मचारी पूज्य चरितनायक श्री जी की संयमसाधना का ही निराला प्रभाव समझना चाहिये।

सिरसा नगरी में चार महीने सानन्द व्यतीत करने के अनन्तर पूज्य चरितनायक श्री ने हिसार की ओर विहार कर दिया। कहा जा चुका है कि पूज्य चरितनायक श्री की मारवाड़ जाने की प्रबल भावना थी, गरमी की अधिकता तथा शारीरिक अस्वस्थता के कारण सिरसा चौमास करना पड़ा था। परन्तु चौमास समाप्त करने के अनन्तर अपनी चिरन्तन भावना को साकार बनाने के लिए महाराज श्री ने फिर मारवाड़ की ओर चलने का मन बना लिया, सिरसा से पहला पड़ाव हिसार पड़ता था। फलतः पूज्य चरितनायक श्री ने हिसार में पदार्पण में किया। महाराज श्री जी हिसार कुछ दिन ठहर कर आगे बढ़ने की भावना कर रहे थे परन्तु भटिण्डा निवासी श्री धारसीभाई अपने साथियों को साथ लेकर हिसार आ गये और अपने परमाराध्य गुरुदेव पूज्य श्री छगनलाल जी महाराज से विनम्र निवेदन करने लगे—

गुरुदेव ! वि० सं० २०२३ में भटिण्डा में वर्षीतप का पारणा करना है, और वह पारणा आपकी छत्रछाया में करना है। अतः आप श्री को उस समय भटिण्डा पधारना होगा, इसी उद्देश्य के लिए हम लोग आप श्री के पावन चरणों में प्रार्थना करने आये हैं।

अपने प्रिय श्रावक धारसीभाई की विनीत प्रार्थना सुनकर महाराज श्री जी ने मारवाड़ जाने की अपनी भावना व्यक्त करते हुए जब भटिण्डा जाने की असमर्थता बतलाई तब धारसीभाई गुरुदेव के चरणों को पकड़ कर बोले

कि जिनके आशीर्वाद से वर्षीतप की आराधना सफलतापूर्वक चल रही है। वे निकट में विराजमान हों और पारणे के समय दूर पधार जाएँ, यह कैसे हो सकता है ? जब तक आपकी ओर से स्वीकृत नहीं मिलती, तब तक यहीं बैठे हैं। श्री धारसीभाई भटिण्डा के जाने-माने तपस्वी श्रावक हैं, धर्मप्रिय तथा गुरुभक्त व्यक्ति हैं, ऐसे सुश्रावक के मन को दयासिन्धु भक्तवत्सल गुरुदेव श्री छगनलाल जी महाराज उदासीन और निराश कैसे कर सकते थे ? परिणामस्वरूप मारवाड़ जाने का कार्यक्रम स्थगित करके इन्होंने वर्षीतप के पारणे पर भटिण्डा आने की सुखेसमाधे स्वीकृति प्रदान कर दी। स्वीकृति मिल जाने पर श्री धारसीभाई आनन्द विभोर हो उठे, और कृपालुता के सागर पूज्य चरितनायक श्री की कृपालुता के गीत गाते नहीं थक रहे थे।

पूज्य चरितनायक श्री जी महाराज हिसार से विहार करते हुए मूनक पधारे। मूनक बहुत पुराना क्षेत्र है। परमश्रद्धेय गणावच्छेदक श्री स्वामी बनवारीलाल जी महाराज वर्षों इस क्षेत्र को पावन करते रहे हैं। विशेष रूप से व्याख्यान-वाचस्पति श्री स्वामी मदनलाल जी महाराज तथा सरलता के महास्रोत, तपस्विराज श्री स्वामी फकीरचन्द्र जी महाराज का विहार क्षेत्र होने से मूनक धर्म-जागृति की दृष्टि से किसी अन्य क्षेत्र से पीछे नहीं है। पूज्य चरितनायक श्री के पदार्पण तथा व्याख्यानों से मूनक की जनता ने खूब लाभ उठाया, और इनके समागमन का उसने हार्दिक स्वागत किया। मूनक से विहार करते हुए पूज्य चरितनायक श्री बुडलाढा मण्डी पधारे। बुडलाढा के निकट ही रतिया पड़ता है। रतिया में वयोवृद्ध मुनिराज श्री स्वामी ताराचन्द जी महाराज विराजमान थे। पूज्य चरितनायक श्री जी महाराज के बुडलाढे मण्डी में पधारने का जब इनको पता चला तब इन्होंने पूज्य चरितनायक श्री से रतिया में दर्शन देने की प्रार्थना करने के लिए रतिया के श्रावक लोगों को बुडलाढा भेजा। रतिया रास्ते में नहीं पड़ता था किन्तु वयोवृद्ध मुनिराज की प्रार्थना पर ध्यान देकर महाराज श्री ने रतिया पधारने की रतिया वालों की विनति स्वीकार करके रतिया के लिए विहार कर दिया। रतिया पधार जाने पर रतिया वालों ने महाराज श्री छगनलाल जी महाराज का हार्दिक स्वागत किया, वयोवृद्ध मुनिराज श्री ताराचन्द जी महाराज भी बड़ी श्रद्धा से मिले, अच्छा सुन्दर सन्त समागम चलता रहा। रतिया से पूज्य चरितनायक श्री रोड़ी जाना चाहते थे परन्तु रास्ते में आलूपुर और सरदूलगढ़—ये दो क्षेत्र पड़ते हैं। महाराज श्री का विचार सीधी रोड़ी पधारने का ही रहा था क्योंकि आलूपुर और सरदूलगढ़ जाने से रास्ता लम्बा हो जाता था। जब सरदूलगढ़

वालों को महाराज श्री के सीधा रोड़ी जाने के विचार अवगत हुआ तो वे काफी संख्या में पूज्य चरितनायक श्री की सेवा में हाजिर हो गए और सानुरोध निवेदन करने लगे कि आप श्री हमारा क्षेत्र छोड़कर वाहिर से पधार जाएँ, यह हमारे लिए लज्जा की वात है, अत: आप श्री हमारे सरदूलगढ़ को अवश्य पावन करें। विनीत श्रावकों की विनति सुनकर पूज्य चरितनायक श्री फरमाने लगे कि आप लोग विनति तो कर रहे हैं परन्तु अपने क्षेत्र की दशा का भी तो विचार करें, सरदूलगढ़ वाले भाइयों में आपसी संगठन नहीं है, प्रेम नहीं है, दूसरे वहाँ पर जैनस्थानक का अभाव है सव भाइयों की आर्थिक स्थिति ठीक-ठाक है, फिर भी जैनस्थानक के न होने का कारण क्या है ? यह उदासीनता क्यों है ? पहले अपने क्षेत्र की सुध-बुध लो, अपने कर्तव्य का पालना करो। श्रद्धेय चरितनायक श्री की दूरदर्शितापूर्ण वार्ता सुनकर सार्दूलगढ़ वाले भाइयों ने पूर्ण विनय के साथ निवेदन करते हुए कहा—

"गुरुमहाराज ! आप श्री हमारी विनीत प्रार्थना स्वीकार करें, और सरदूलगढ़ पधारें, होली चातुर्मास करने की कृपा करें, आप श्री ने जो आज्ञा की है, उसका अक्षरश: पालन किया जायगा।"

श्रद्धालु श्रावकों की दृढ़तापूर्ण वात सुनकर शासनसेवी, कपालुता के सागर पूज्य चरितनायक श्री ने सरदूलगढ़ फरसने की अनुमति प्रदान करदी। महाराज श्री की अनुमति पाकर सरदूलगढ़ वाले भाइयों को हार्दिक सन्तोष हुआ। सवके चेहरे मुसकराने लगे। पूज्य चरितनायक श्री ने अपनी अनुमति के अनुसार सरदूलगढ की ओर विहार कर दिया और धीरे-धीरे ये वहाँ पर पधार गए। सरदूलगढ़ वाले भाइयों ने पूज्य चरितनायक श्री का हार्दिक अभिनन्दन किया और होली चातुर्मास पूर्ण होने से पहले ही अपने वायदों की परिपालना करनी आरम्भ कर दी। आपसी मतभेद दूर करके एकता की संस्थापना की और जैनस्थानक बनाने की योजना तैयार करके उसे साकार वनाना चालू कर दिया। आज सरदूलगढ़ में जो जैनस्थानक दृष्टिगोचर हो रहा है, यह सव हमारे महामान्य पूज्य चरितनायक श्री की कृपा का ही प्रतिफल समझना चाहिये।

शास्त्र विशारद पूज्य चरितनायक श्री जी महाराज होली चौमास के वाद सरदूलगढ़ से विहार करके रोड़ी पधार गए। रोड़ी में जैन लोगों में वड़ा धार्मिक उत्साह है। विशेष रूप से श्री दीवानचन्द जी जैन वड़े पुरुषार्थी, धर्मशील और गुरुभक्त युवक हैं। किसी समय में ये मूर्तिपूजा में विश्वास रखते थे परन्तु पूज्य चरितनायक श्री छगनलाल जी महाराज के सदुपदेशों ने इनके

जीवन का कायाकल्प कर दिया और ये विशुद्ध स्थानकवासी परम्परा में प्रविष्ट होकर सामायिक, सन्ध्या-प्रतिक्रमण प्रतिदिन करने का पूरा-पूरा ध्यान रखते हैं। परमश्रद्धेय श्री स्वामी छगनलाल जी महाराज का जीवन चरित्र जो "साधना के अमर प्रतीक" के नाम से पाठकों के हाथों में है यह इन्हीं गुरुभक्त श्री दीवानचन्द जी की सत्प्रेरणा तथा स्नेहाधिक्य से लिखा गया है।

सरदूलगढ़ और रोड़ी में केवल पाँच किलोमीटर (एक फर्लांग ऊपर तीन मील) का अन्तर है, ये दोनों क्षेत्र समीपवर्ती होने से साधु मुनिराजों के लिए पूर्णतया शान्तिदायक है। जब साधु सरदूलगढ़ में होते हैं तो वहाँ पर रोड़ी वाले भाई पहुँच कर धर्म शोभा बढ़ा देते हैं और जब मुनिराज रोड़ी में विराजमान होते हैं तो सरदूलगढ वाले रोड़ी में आकर रौनक लगा देते हैं। इस तरह दोनों क्षेत्रों के श्रावक लोग एक दूसरे को सहयोग देकर धर्मप्रभावना करने का सदा ध्यान रखते हैं। महामहिम पूज्य चरितनायक श्री छगनलाल जी महाराज का इन क्षेत्रों में अत्यधिक प्रभाव है, अतः महाराज श्री के रोडी पधार जाने पर तो मानों रोड़ी में बहार ही आ गई। सर्वत्र धर्म ध्यान की चहल-पहल दिखाई देने लगी।

रोड़ी पधारे पूज्य चरितनायक श्री को अभी चार दिन ही हुए थे कि संगरियामण्डी की जैन बिरादरी महाराज श्री की सेवा में हाजिर हो गई। महावीर जयन्ती पर पधारने की उसने महाराज श्री से विनती की। पूज्य चरितनायक श्री का स्वास्थ्य स्वस्थ नहीं था, गरमी सर उठाने लगी थी अतः महाराज श्री का विचार संगारियामण्डी जाने का नहीं था परन्तु सेठ चमन-लाल जी, चौधरी, केसरीचन्द्र जी आदि श्रावकों ने बहुत ज्यादा आग्रह किया तो महाराज श्री ने संगरियामण्डी पधारने की स्वीकृति प्रदान करदी और रोड़ी से विहार करके महाराज श्री जी धीरे-धीरे संगरियामण्डी पधार गए। संगरियामण्डी वालों ने पूज्य चरितनायक श्री की छत्रछाया में महावीर जयंती बड़ी धूमधाम से मनाई। हनुमानगढ़ से भी लोगों ने आकर महावीर जयन्ती के उत्सव की शोभा को बढ़ाया। पाठक यह तो जानते ही हैं कि हमारे आदरास्पद श्री छगनलाल जी महाराज आडम्बर-प्रिय मुनिराज नहीं थे ये तो अधिकाधिक सादगी को ही पसन्द किया करते थे। तथा महाराज श्री जी ध्वनिवर्धक यन्त्र (लाउडस्पीकर) का भी प्रयोग नहीं किया करते थे।

संगरियामण्डी वाले श्रावक चाहते थे कि श्रद्धेय श्री छगनलाल जी महाराज का २०२३ का चातुर्मास संगरियामण्डी में हो जाए इसीलिए उन्होंने महावीर-जयन्ती के शुभ अवसर पर महाराज श्री से संगरियामण्डी में चातुर्मास

करने की प्रार्थना भी की परन्तु श्रद्धेय महाराज श्री ने स्पष्ट भाषा में यह फरमा दिया कि मेरा मारवाड़ जाने का विचार है परन्तु यदि मेरी यह भावना पूर्ण न हो सकी तो मेरा चातुर्मास माछीवाड़ा में होगा क्योंकि सिरसा का चातुर्मास भी शारीरिक परिस्थितियों के कारण वहाँ करना पड़ा अन्यथा माछीवाड़े में ही होना था। पिछली बार यदि चातुर्मास वहाँ नहीं हो सका तो अब की बार मैं माछीवाड़ा वालों को निराश नहीं कर सकता।

संगरियामण्डी में महावीर-जयन्ती करने के पश्चात् महाराज श्री वहाँ से विहार कर दिया और डबवालीमण्डी होते हुए भटिण्डा में पधार गए। भटिण्डा-निवासी विशेष रूप से सुश्रावक सेठ श्री धारसीभाई व इनकी धर्म पत्नी पूज्य चरितनायक श्री के भटिण्डा पधारने पर आनन्द से फूले नहीं समाए। भटिण्डा का कण-कण मानो मारे खुशी से नाच उठा। सबने महाराज श्री का भक्ति भरा हार्दिक स्वागत किया। वैशाखशुक्ला तृतीया के शुभदिन श्री धारसी भाई तथा इनकी सुयोग्य धर्म पत्नी ने वर्षीतप का पारणा करना था अतः भटिण्डा श्री संघ ने निकट तथा दूर के सभी क्षेत्रों में आमन्त्रण-पत्रिकाएँ भेज दी। अक्षयतृतीया के दिन स्थानीय तथा बाहिर से आए यात्रियों का एक मेला सा लग गया। यह तपस्या-समारोह बड़ा दर्शनीय था। समय आने पर पूज्य गुरुदेव की छत्रछाया में श्री धारसीभाई तथा इनकी धर्मपत्नी ने वर्षीतप का पारणा किया, सर्वत्र इस तपस्या समारोह का स्वागत हुआ तथा सभी ने तपस्वी श्रावक और श्राविका को वर्षीतप के पारणे के उपलक्ष्य में हार्दिक साधुवाद दिया।

भटिण्डा और माछीवाड़ा

तपस्या समारोह में आने वाले श्रावकों में से वे श्रावक भी थे जो विशेषरूप से अपने-अपने नगरों में पूज्य चरितनायक श्री से चातुर्मास की विनती करने आए थे। वैयक्तिक रूप से तथा सामूहिक रूप से उन्होंने महाराज श्री जी के चरणों में चातुर्मास की विनती भी की, परन्तु महाराज श्री अपने वचन की परिपालना के लिए पूर्णतया सावधान और सतर्क थे अतः इन्होंने स्पष्ट कह दिया कि मैं माछीवाड़ा के भाइयों को वचन दे चुका हूँ कि पंजाब में यदि चातुर्मास होगा तो वह माछीवाड़ा में होगा। माछीवाड़ा का नाम सुनकर भटिण्डा वाले भाइयों ने अपनी युक्तियाँ देनी आरम्भ कीं, वे कहने लगे कि आप भटिण्डा और माछीवाड़ा की तुलना कर लें फिर सोचलें कि चातुर्मास करना कहाँ अधिक लाभप्रद है? जहाँ तक हम समझते हैं वहाँ तक तो हम यही निवेदन करेंगे कि माछीवाड़ा की अपेक्षा भटिण्डा का क्षेत्र सभी दृष्टियों

से अधिक उपयोगी और लाभप्रद है। क्योंकि भटिण्डा जिला है, यह वहुत वड़ा नगर है, यहाँ का जैन समाज आर्थिक दृष्टि से वढ़ा-चढ़ा है, जीवनोपयोगी सभी आवश्यक वस्तुएँ सुविधापूर्वक यहीं पर उपलब्ध हो सकती हैं। आप श्री महाभाग्यवान, महाप्रतापी सन्त हैं इसीलिए आपके पास दर्शनार्थ आने वाले भाई-वहिनों का सदा तांता लगा रहता है कुछ लोग तो आप श्री के चरणों में कई-कई दिन तक सेवा का लाभ उठाते रहते हैं इन सव भाई-वहिनों के भोजन और रहन-सहन की व्यवस्था भटिण्डा का श्री संघ ही सरलता से सम्पन्न कर सकता है। रही माछीवाड़े की वात, उसमें ऐसी कोई विशेषता नहीं दिखाई देती क्योंकि माछीवाड़ा एक साधारण, छोटा सा क्षेत्र है इस गाँव के लोगों की आर्थिक स्थिति सामान्य सी है विल्कुल सन्तोपजनक नहीं है, किसी वस्तु की वहाँ पर आवश्यकता पड़ जाए तो वहाँ पर उसकी उपलब्धि भी नहीं हो सकती, माछीवाड़ा के लोगों को तो स्वयं अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए लुधियाना आदि नगरों में जाना पड़ता है फिर वे वाहिर के लोगों की आवश्यकताएँ कैसे पूर्ण कर सकेंगे ? इसके अलावा दर्शनार्थी भाइयों के विशेप आने-जाने व ठहरने का वोझा माछीवाड़ा वाले श्रावक उठा भी नहीं सकते फिर लम्वे समय तक इतना वड़ा वोझ एक साधारण सा क्षेत्र उठा भी कैसे सकता है ? अतः पूज्य गुरुदेव ! आप दीर्घदर्शिता और गम्भीरता से विचार कर लें हानि-लाभ सोचलें। हम तो फिर भी यही प्रार्थना करेंगे कि आप श्री माछीवाडा का ख्याल छोड़कर भटिण्डा में ही ज्ञान की गंगा प्रवाहित करें ! दूसरी वात हमने सुना है कि सिरसा नगरी में पिछले वर्प माछीवाड़ा का जैन-समाज स्वय आपसे प्रार्थना कर गया था कि आप श्री ने माछीवाड़ा चातुर्मास करने की जो स्वीकृति दे रखी है उसे हम वापिस करते हैं, हमारी ओर से आप श्री सर्वथा स्वतन्त्र हैं। ऐसी छूट मिल जाने पर भी आप माछीवाड़ा की ओर इतना आकृष्ट क्यों हो रहे हैं ? आप हमारे लिए भले ही भटिण्डा में चातुर्मास न करें परन्तु अपने स्वास्थ्य की ओर तो देखें। इस समय आप श्री का जो स्वास्थ्य दिखाई दे रहा है इसके अनुसार आप यदि यहाँ से विहार कर भी दें तव भी आप माछीवाड़ा नहीं पहुंच सकेंगे।

महाराज श्री की वचन परिपालना

भटिण्डावाले श्रावकों की उपर्युक्त वातों पर उपरा उपरी से जव विचार करते हैं तो ऐसा लगता है कि उन्होंने वड़ी दूरदर्शितापूर्ण, गुरुभक्ति से ओतप्रोत और युक्तियुक्त वातें कही हैं तथा इन्होंने वड़ी जागरूकता और वुद्धिमत्ता

से काम लिया है। परन्तु जब हम पूज्य चरितनायक श्री जी महाराज की दृष्टि की ओर दृष्टिपात करते हैं तो बिना किसी संकोच के कहना होगा कि महाराज श्री को अपनी कही बात का सवा सोलह आने ध्यान रखना चाहिए। मुनिराजों ने जो बात अपनी जबान से निकाल दी है। यदि शारीरिक दुर्बलता या अस्वस्थता कोई विशेष विघ्न पैदा न करे तो उन्हें अपनी बात पर ही आचरण करना चाहिए। ऐसी स्थिति में यह नहीं देखा जाता कि क्षेत्र छोटा है या बड़ा, वहाँ की आर्थिकस्थिति सन्तोषजनक है या असन्तोषजनक ? प्रश्न सन्तों की कही बात का है ? यदि सन्तजन ही अपनी कही बात का ध्यान नहीं रक्खेंगे और बिना कारण उसकी अवहेलना करेंगे या यूँ कहें अपनी कही बात के अनुसार चलने का प्रयास नहीं करेंगे तो फिर कौन चलेगा ? साधु मुनिराजों को तो बिना किसी संकोच के दिये हुए अपने वचन को निभाना चाहिए। इस परम सत्य को हमारे महामान्य चरितनायक श्री जी महाराज भली-भाँति समझते थे और इसीलिए उन्होंने भटिण्डा वाले भाइयों के समस्त सुझावों और प्रलोभनों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया और इन्होंने माछीवाड़ा वाले भाइयों को जो जबान दे रक्खी थी उसी की परिपालना करने के लिए भटिण्डा से माछीवाड़ा की ओर विहार करने का अन्तिम निर्णय कर लिया था जो कि साधुमर्यादा की दृष्टि से सर्वथा उचित, तर्कसंगत तथा शास्त्रसम्मत था। यह सत्य है कि माछीवाड़ा वाले भाइयों ने महान उदारता के साथ चातुर्मास की स्वीकृति वापिस कर दी थी, परन्तु यह तो केवल पूज्य चरितनायक श्री जी महाराज के स्वास्थ्य-सुरक्षा के लिए किया गया था। उस समय महाराज श्री जी अत्यधिक अस्वस्थ थे। विहार करना इन्हें कठिन हो रहा था, इसीलिए माछीवाड़ा वाले भाइयों ने गुरुभक्ति को आगे रखकर महाराज श्री जी से विनती कर दी थी, परन्तु यदि पूज्य चरितनायक श्री जी महाराज स्वस्थ होते, और विहार करने की स्थिति में होते तो माछीवाड़े वाले कभी भी चातुर्मास की अपनी स्वीकृति वापिस नहीं कर सकते थे। पूज्य चरितनायक श्री जी महाराज माछीवाड़े वाले भाइयों की गुरुभक्ति को भली-भाँति समझते थे, इसीलिए उन्होंने माछीवाड़ा वालों की उदारता होने पर भी उनके हक का पूरा-पूरा ध्यान रक्खा। इसके अतिरिक्त, भटिण्डा वाले जो यह समझते थे कि माछीवाड़ा वालों की आर्थिक स्थिति दुर्बल है। बाहिर के दर्शनार्थी लोगों को उनमें संभालने की क्षमता नहीं है यह भी सर्वथा भ्रान्ति थी, माछीवाड़ा भले ही छोटा क्षेत्र है, परन्तु वहाँ के लोग प्रत्येक दृष्टि से सम्पन्न हैं। आर्थिक दृष्टि से उन्होंने कभी अपने में कोई न्यूनता अनुभव नहीं की। माछीवाड़ा में यह कोई नया चातुर्मास नहीं था। वहाँ पर

पहले अनेकानेक चातुर्मास हो चुके हैं, पंजाव के जाने-माने महान व्याख्याता सन्तों ने वहाँ पर चातुर्मास किये हैं। उस समय वहुत वड़ी संख्या में लोग वाहिर से दर्शनार्थ आया करते थे, परन्तु उनकी आवभगत तथा सुश्रूपा में माछीवाड़ा वालों ने कमी नहीं रहने दी, वड़े-वड़े शहरों में तो प्रायः नौकरों से ही काम लिया जाता है। परन्तु माछीवाड़ा के श्रावक तो दर्शनार्थी भाइयों की सेवा स्वयं अपने हाथों से सम्पन्न करते हैं।

माछीवाड़ा में पदार्पण

संयम मर्यादा के प्रति सर्वथा और सर्वदा जागरूक रहने वाले हमारे आदरणीय चरितनायक श्री स्वामी छगनलाल जी महाराज ने भटिण्डा से माछीवाड़ा नगर की ओर विहार कर दिया और महाराज श्री के विहार की सूचना जव माछीवाड़ा के श्रावकों को मिली तो जैसे मेघगर्जना सुनकर मोर नाचने लगते हैं, वैसे ये भी आनन्दविभोर हो उठे। माछीवाड़ा के घर-घर में खुशी की लहर दौड़ गई। गुरुमहाराज के स्वागत के लिए उन्होंने रास्ते में ही आना-जाना आरम्भ कर दिया, कुछ श्रावक तो महाराज श्री के साथ ही विहार करके सेवा का लाभ उठाने लगे थे। समय की वात समझिए कि प्रकृति ने भी वड़ा साथ दिया, ज्येष्ठ, आपाढ़ का महीना था परन्तु आकाश में प्रायः वादल रहते थे जिनके कारण उष्णताजन्य सन्ताप शान्त रहने लगा था। अन्त में पूज्य चरितनायक श्री एक दिन माछीवाड़ा पधारे। सैकड़ों लोगों ने महाराज का हार्दिक स्वागत किया। महामहिम श्री स्वामी छगनलाल जी महाराज के जयकारों से आकाश को गुँजा दिया।

वि० सं० २०२३

इस वर्ष का चातुर्मास हमारे वन्दनीय पूज्य श्री चरितनायक श्री छगनलाल जी महाराज ने माछीवाड़ा में सम्पन्न किया। चातुर्मास काल में पूज्य चरितनायक श्री ने ज्ञान की गंगा प्रवाहित की और माछीवाड़ा की जनता ने भी पूर्ण श्रद्धा, निष्ठा, उत्साह और उल्लास के साथ इस ज्ञान गंगा में गोते लगाकर अपने जीवन को पावन वनाया। चातुर्मास के अनन्तर पूज्य चरितनायक श्री माछीवाड़ा से विहार करना चाहते थे। परन्तु गुरु भगवान की एडी में दर्द रहने लगा। एक एडी की हड्डी का आपरेशन तो भटिण्डा नगर में हो चुका था, अव दूसरे पाँव की एडी की हड्डी भी परेशान करने लगी। महाराज श्री से चलना-फिरना भी कठिन हो गया। माछीवाड़ा का श्री संघ पूर्णतया सावधान था, उसने डाक्टरों को वुलाकर एड़ी दिखाई

सबने आपरेशन का परामर्श दिया। परिणामस्वरूप अमृतसर वाले जिस डाक्टर ने पहले भटिण्डा में एड़ी का आपरेशन किया था उसी डाक्टर को बुलाया गया और उसी से आपरेशन कराया गया। धर्म के प्रताप से एडी का आपरेशन तो ठीक हो गया, परन्तु असातावेदनीय कर्म के चक्कर ने शरीर में कई एक और व्याधियाँ पैदा कर दीं। परिणामस्वरूप महाराज श्री को माछीवाड़ा में ही रुकना पड़ा। समय की बात है कि पूज्य चरितनायक श्री तो पंजाब को छोड़कर मारवाड़ जाने की विचारणा कर रहे थे। पर पंजाब के अन्न जल ने महाराज श्री के विचार को मूर्तरूप धारण नहीं करने दिया।

दो महापुरुषों का सम्मेलन

जैनधर्म दिवाकर, साहित्यरत्न, जैनागमरत्नाकर, प्रातःस्मरणीय आचार्य सम्राट् परमश्रद्धेय पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज के पाट पर विराजमान जैनधर्म दिवाकर आचार्य सम्राट् वन्दनीय पूज्य श्री आनन्दऋषि जी महाराज वि० सं० २०२३ में पंजाब पधारे थे और इनका चातुर्मास लुधियाना में था। लुधियाना का चातुर्मास समाप्त करने के अनन्तर आचार्य सम्राट् श्री ने लुधियाना से माछीवाड़ा की ओर विहार कर दिया। माछीवाड़ा श्री संघ को आचार्य सम्राट् श्री के माछीवाड़ा पधारने का शुभ समाचार मिला तो उसने बड़े समारोह और ठाटवाट के साथ आचार्य सम्राट् श्री का हार्दिक स्वागत किया। आचार्य सम्राट् श्री जब जैनस्थानक में पधारे तो इनका हमारे पूज्य चरितनायक श्री छगनलाल जी महाराज से मिलाप हुआ। आचार्य सम्राट् श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमणसंघ के मनोनीत अध्यात्म नेता हैं, आचार-विचार की दृष्टि से भी बड़े ऊँचे महापुरुष हैं तथापि इन्होंने पूज्य चरितनायक श्री जी महाराज का बहुत सम्मान किया। इनसे बड़े आदर और प्रसन्नता से मिले। इन पंक्तियों के लेखक को आचार्य सम्राट् पूज्य श्री आनन्द ऋषि जी महाराज के चरणों में लगातार एक वर्ष तक रहने का अवसर मिला है, जम्मू के चातुर्मास में मैं इन्हीं की सेवा में था अतः मैं अच्छी तरह से जानता हूँ कि आचार्य सम्राट् श्री तो इतने विनम्र महापुरुष हैं कि अपने से छोटे साधु का भी पूरा-पूरा आदर किया करते हैं, फिर हमारे पूज्य चरितनायक तो इनसे दीक्षा में दस वर्ष बड़े थे। अतः अपने से बड़े दीक्षावृद्ध मुनिवर का सम्मान कैसे न करते ? चार पाँच दिन आचार्य सम्राट् श्री जी महाराज हमारे पूज्य चरितनायक श्री जी महाराज के पास रहे विचारों का खूब आदान-प्रदान हुआ। दोनों महापुरुषों के प्यार भरे इस सम्मेलन का जनता-जनार्दन पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा। आचार्य सम्राट् पूज्य श्री आनन्द ऋषि जी महाराज

के—"श्रद्धेय श्री छगनलाल जी महाराज मुझसे दीक्षा से दस वर्ष बड़े हैं, दीक्षा की दृष्टि से मैं इनसे छोटा हूँ बड़ों के पास आना छोटों का कर्तव्य बनता है" ये शब्द आज भी माछीवाड़ा वाले भूलने नहीं पाते और जब उन्हें आचार्य सम्राट् पूज्य श्री आनन्द ऋषि जी महाराज की यह उदारता, महत्ता गुणग्राहकता तथा विनम्रता स्मृति-पथ में आती है तो वे पूज्य आचार्य सम्राट् श्री की महिमा के गीत गाते नहीं थकते।

एड़ी का दूसरी बार आपरेशन

कहा जा चुका है कि पूज्य चरितनायक श्री स्वामी छगनलाल जी महाराज की एड़ी की हड्डी का आपरेशन किया गया था, वैसे आपरेशन ठीक हो गया था डाक्टर साहिब को पूर्ण आशा थी कि अब दर्द नहीं होना चाहिए। परन्तु दर्द की स्थिति फिर भी चलती रही, कई बार तो पहले से भी ज्यादा दर्द हो जाता था, जिससे साधारण चलना-फिरना भी असम्भव हो जाता। महाराज श्री की यह अस्वस्थ दशा देखकर वैसे तो माछीवाड़ा के सभी लोग खेद खिन्न थे, परन्तु श्री जगदीशराय जी बहुत ज्यादा व्याकुल थे, वे अपने आराध्य गुरुदेव को वेदनाग्रस्त देख नहीं सकते थे, परिणामस्वरूप उन्होंने एड़ी के आपरेशन की दूसरी बार कोशिश की, अमृतसर से डाक्टर बुलाया, डाक्टर साहिब ने बड़ी तत्परता, श्रद्धा और सतर्कता से आपरेशन किया। इस बार आपरेशन ठीक रहा, एड़ी का दर्द बिल्कुल शान्त हो गया। गुरुदेव की एड़ी के दर्द की उपशान्ति हो जाने पर समस्त माछीवाड़ा श्री संघ को तथा विशेष रूप से गुरुभक्त श्री जगदीशराय जी को जो महान हर्षानुभूति हुई उसे लेखनी अभिव्यक्त नहीं कर सकती। पूज्य महाराज श्री के स्वास्थ्य लाभ से सर्वत्र खुशियाँ साकार होकर नाचने लगी थीं।

हृदयरोग का आक्रमण

दूसरी बार आपरेशन होने के कारण पूज्य चरितनायक श्री काफी दुर्बलता और कृशता अनुभव करने लगे थे, अतः डाक्टरों ने शारीरिक शक्ति बनाए रखने के लिए पूज्य चरितनायक श्री से दिन में दूध सेवन करने के लिए विनीत प्रार्थना की। डाक्टरों की प्रार्थना होने के कारण पूज्य चरितनायक श्री इच्छा न होने पर भी दूध का सेवन करने लगे। दिन में निर्दोष दूध मिलना कठिन था, अतः महाराज श्री के प्रिय शिष्य श्री रोशनमुनि जी दूध थरमोस में डालकर रख लिया करते थे। समय की बात है कि एक बार थरमोस में दूध जम गया, पूज्य चरितनायक श्री ने उस दूध को गिराया नहीं

किन्तु उसी रूप में उसका सेवन कर लिया। जमे दूध ने अन्दर जाकर छाती में दर्द पैदा कर दिया, दूसरे दिन भी इसी तरह जमे दूध का इन्होंने सेवन कर लिया। दूसरी वार जमा दूध सेवन करने की देर थी कि छाती का दर्द जोर पकड़ गया, दर्द इतना अधिक बढ़ गया कि उसकी वेदना सहन करनी भी मुश्किल हो गई। धीरे-धीरे स्वास्थ्य विगड़ना आरम्भ हो गया, अन्त में हृदयरोग (Heart attack) जैसी स्थिति वन गई। पूज्य चरितनायक श्री जी महाराज की यह स्थिति देखकर सब लोग घबरा गए। तत्काल माछीवाड़ा के जाने-माने और सेवाभावी डाक्टर श्री भक्तराम जी को बुलाया गया, उन्होंने आते ही सारी स्थिति का निरीक्षण किया, और उपचार करना चालू किया। डाक्टर साहिब की श्रद्धा भक्ति और निष्काम सेवा रंग लाई, पूज्य चरितनायक श्री कुछ ही दिनों में स्वस्थ हो गए। महाराज श्री जी के स्वस्थ हो जाने पर जनता-जनार्दन ने सेवाभावी डाक्टर श्री भक्तराम जी को हार्दिक मुबारिकवाद देते हुए उनकी सेवाओं की सराहना की। उत्तर में डाक्टर साहिब सबको यही बात कहते कि यह सब तो पूज्य गुरुदेव का ही अनुग्रह है मैं तो केवल इनका एक सामान्य सेवादार हूँ। यह इनकी कितनी महान कृपा है कि करने कराने वाले ये स्वयं होने पर भी नाम मेरा रख देते हैं।

कर्म बड़े प्रबल होते हैं

पूज्य चरितनायक श्री जब अपने को जरा स्वस्थ अनुभव करने लगे, और कुछ-कुछ चलने-फिरने लगे तो इन्होंने विहार का विचार करना आरम्भ कर दिया। महाराज श्री की बहुत देर की भावना थी कि मारवाड़ चलना चाहिए अतएव इन्होंने मारवाड़ की ओर प्रस्थान करने का मन बना लिया, परन्तु होनहार कुछ और ही कह रही थी। होनहार कह रही थी, कि पंजाब का अन्नजल प्रबल है यह आपको किसी भी मूल्य पर मारवाड़ नहीं जाने देगा। सम्भव है इसीलिए पूज्य चरितनायक श्री अभी थोड़ा-थोड़ा चलने ही लगे थे कि इनका सांस फूलने लगा। सांस चढ़ने की स्थिति में विहार कैसे हो सकता था। श्वासरोग का जब डाक्टर लोगों ने निरीक्षण किया तथा इनके मूत्र आदि का टैस्ट किया गया तो पता चला कि इनको मधुमेह (Sugar) का राजरोग भी लग गया है। किसी ने सच ही कहा है कि कर्म बड़े प्रबल होते हैं, ये सामान्य या असामान्य किसी भी व्यक्ति को नहीं छोड़ते। संसार की बड़ी से बड़ी शक्ति को भी यहाँ नतमस्तक होना पड़ता है। कितना बड़ा यह आश्चर्य है कि हमारे पूज्य चरितनायक श्री छगनलाल जी महाराज जैसे त्यागी-वैरागी, सयमी, चारित्रनिष्ठ, और विरक्त सन्त को भी कर्मों ने नहीं

छोड़े। इनके कंचन जैसे तेजस्वी और सुन्दर शरीर को मधुमेह जैसे भयंकर रोग ने आक्रान्त कर लिया और इसी रोग के प्रभाव से इनका बलिष्ठ शरीर दिनप्रतिदिन शिथिल होने लगा। इतना कुछ होने पर भी कर्मराज का प्रकोप शान्त नहीं हुआ। उसने एक और ऐसा दुःखद प्रहार किया, जिसके कारण पूज्य चरितनायक श्री जी महाराज की एक आँख की ज्योति चली गई, फलतः उसका आपरेशन करवाना पड़ा। सम्भव है, कर्मराज की इसी प्रचण्ड शक्ति को देखकर एक दिन सन्त हृदय महाराजा भर्तृहरि ने कहा था—

"तस्मै नमः कर्मणे"

—हे कर्मराज ! मैं तुझे नमस्कार करता हूँ तेरी शक्ति की क्षमता प्रचण्डता और भयंकरता को बिना किसी संकोच के सहर्ष स्वीकार करता हूँ।

सेवा-भक्ति की पराकाष्ठा

श्रद्धेय चरितनायक श्री छगनलाल जी महाराज मधुमेह रोग से आक्रान्त हो गए यह ऊपर की पंक्तियों में निवेदन किया जा चुका है। महाराज श्री के रोगाक्रान्त हो जाने का माछीवाड़ा श्री संघ को विशेष रूप से इनके प्रिय शिष्य श्री रोशनलाल जी को हार्दिक एवं मार्मिक दुःख था। परन्तु दुःख की इन घड़ियों में भी माछीवाड़ा श्री संघ ने तथा मुनि श्री रोशनलाल जी ने पूज्य चरितनायक श्री की जो सेवा की, उसे इस लेखनी से अंकित नहीं किया जा सकता। जहाँ माछीवाड़ा श्री संघ बाहिर से आने वाले यात्रियों की सेवा के लिए सदा सतर्क रहा करता था, वहाँ हमारे आदरणीय मुनि श्री रोशन लाल जी गुरुचरणों की उपासना में पूर्ण सावधानता से कार्य कर रहे थे, अधिक क्या कहा जाए, इन्होंने गुरुमहाराज को जुबान खोलने की आवश्यकता अनुभव नहीं होने दी प्रत्युत ये संकेतमात्र से उनकी आज्ञा का पालन कर दिया करते थे। सचमुच इनकी सेवा भक्ति की भावना एवं कामना अपनी पराकाष्ठा तक पहुँच चुकी थी।

श्वास रोग का अत्यधिक प्रकोप

पूज्य चरितनायक श्री छगनलाल जी महाराज को अपनी अस्वस्थता के कारण माछीवाड़ा में २०२४ का चातुर्मास भी करना पड़ा। इसके अनन्तर इनकी आन्तरिक भावना थी कि यहाँ से बिहार हो जाए, इनके प्रिय शिष्य मुनि श्री रोशनलाल जी भी माछीवाड़ा में अधिक रहने से ऊब चुके थे अतः उनकी भी यही भावना चल रही थी कि यहाँ से प्रस्थान ही हो जाना चाहिए। एक दिन गुरु-शिष्य दोनों ने माछीवाड़ा से विहार करने का दृढ़

संकल्प कर लिया और इस संकल्प के अनुसार इन्होंने माछीवाड़ा से विहार कर भी दिया अभी माछीवाड़ा की सीमा से भी पार नहीं हुए थे कि पूज्य चरितनायक श्री का सांस फूलने लगा। ख्याल था कि सांस ठीक हो जायगा, परन्तु सांस इतना अधिक फूल गया कि पूज्य चरितनायक श्री से एक कदम भी आगे बढ़ना कठिन हो गया। विवश होकर वहीं रुकना पड़ा और रात्रि भी वहीं पर व्यतीत करनी पड़ी, प्रातःकाल होने पर माछीवाड़ा का श्री संघ इनके पावन चरणों में उपस्थित हुआ और उसने सानुरोध विनति करते हुए कहा कि गुरुदेव ! इस रुग्णावस्था में हम आपको जाने नहीं देंगे। जब आपका स्वास्थ्य स्वस्थ हो जाए तब आप उसी समय विहार करदें। अतः अब तो आप वापिस जैनस्थानक में ही पधारें। अपने भक्तजनों की विनती प्रार्थना सुनकर पूज्य चरितनायक श्री वापिस जैनस्थानक में पधार गए और शारीरिक स्थिति के कारण वि० सं० २०२५ का चातुर्मास भी इन्हें माछीवाड़ा में ही करना पड़ा। इस चातुर्मास में श्वासरोग का उपचार कराया गया और सबने सेवा का लाभ उठाया। वैसे सेवा करने वाले तो सभी थे परन्तु श्री राममूर्ति जी जैन तथा श्री प्रेमचन्द जी जैन इन दोनों युवकों का सेवा भाव कुछ निराला ही था। इन दोनों ने अपने व्यापार की पर्वाह न करते हुए सेवा कार्यों में जितना रस लिया है, उतना किसी अन्य ने नहीं लिया।

कर्मरोग का उपचार-तपस्या

पूज्य चरितनायक श्री जी महाराज का पूर्ण सतर्कता से उपचार हो रहा था, अच्छी से अच्छी औषधि की व्यवस्था भी की जा रही थी, परन्तु किसी भी औषधि से कोई लाभ नहीं हो रहा था, कर्मों के प्रकोप ने औषधियों की समस्त शक्तियों को कुण्ठित कर दिया था। स्वयं पूज्य चरितनायक श्री भी औषधियों से तंग आ चुके थे। महाराज श्री यह भली-भाँति समझते थे कि कर्मरोग के आगे औषधियां कुछ नहीं कर सकतीं यह रोग तो तपस्या की आराधना से ही विनष्ट हो सकता है, परन्तु भक्तजनों के अत्याग्रह के आगे ये खामोश हो जाते और औषधि का सेवन करने लगे। जब औषधि सेवन का इन्हें कोई लाभ होता दिखाई नहीं दिया, तब इन्होंने तपस्या की आराधना करने का मन बनाया। परिणामस्वरूप इन्होंने चौमास की समाप्ति पर तेला (लगातार तीन उपवास) कर दिया। भक्तजनों ने जब तेले की बात सुनी तो विनयपूर्वक अर्ज करते हुए कहा कि गुरुदेव ! बीमारी में तपस्या का क्या मेल है ? अपने भक्तजनों के प्रश्न का समाधान करते हुए तपोमूर्ति चरितनायक श्री फरमाने लगे कि सन्त महात्मा तो तपस्या से ही अपने रोगों का उपचार

किया करते हैं, औषधियों का सहारा लेना तो मन की दुर्बलता है। इसी दुर्बलता ने मुझे दुर्बल बना रक्खा था। पहले युग में तो किसी सन्त को यदि कोई सर्प भी डस जाता था, तो वे उसका भी उपचार नहीं कराते थे वे तो तपस्या की आराधना द्वारा ही सर्प का विष जला डालते थे। किसी ने बताया था कि एक बार किसी साधु को सर्प ने डस लिया, लोगों ने जब गारुडिक(मंत्र पढ़कर सर्प की विष उतारने वाले) को बुलाने की बात कही तो इन्होंने स्पष्ट रूप से इन्कार कर दिया, और एकदम अठाई (लगातार आठ व्रत) का व्रत लेकर व एकान्त स्थान में विराजमान हो गए। आठवें दिन विष का सब असर अपने आप ही जाता रहा। इस तरह सन्तजनों का दृढ़ तपोबल से ही विष नष्ट हो जाता था। पूज्य चरितनायक श्री तपस्या के गीत गाते हुए पुनः बोले कि मैंने भी अब तपस्या भगवती का आश्रय ले लिया है, और औषधि को छोड़ देने का निश्चय कर लिया है। हमारे सहृदय पाठक विस्मित होंगे यह जानकर कि पूज्य चरितनायक श्री की तेले की तपस्या ने कमाल का प्रभाव दिखाया। तेले का जब तीसरा दिन चल रहा था तब पूज्य चरितनायक श्री का स्वास्थ्य सुधरने लगा और जब तेला समाप्त किया तब मानो रोग भी समाप्त हो गया। तेले के पारणे के बाद पूज्य चरितनायक श्री अपने को बिल्कुल स्वस्थ अनुभव करने लगे, परिणामस्वरूप पारणे वाले दिन ही माछीवाड़ा से विहार कर दिया और धीरे-धीरे महाराज श्री समराला पधार गए।

समराला में पदार्पण

माछीवाड़ा से समराला ६ मील की दूरी पर अवस्थित है। यहाँ पर मुख्य रूप से जैनों के दो घर हैं। एक लाला रामजस जी जैन बुकसेलर का और दूसरे श्री जनकराज जैन आढ़ती का ये दोनों ही घर माछीवाड़ा के हैं, किन्तु आजकल ये समराला आबाद हो गए हैं। समराला में जब पूज्य चरितनायक श्री छगनलाल जी महाराज पधारे तो लाला जनकलाल जी जैन के घर दुर्लभ नगर में विराजमान हो गए। लाला जनकराज जी जैन स्वयं, इनकी धर्मपत्नी बहिन लाजवन्ती और इनकी कान्ता, वीणा, उषा ये लड़कियाँ इस तरह इनका सारा परिवार ही बड़ा श्रद्धालु और सेवाभावी परिवार है। बाहिर से चाहे जितने दर्शनार्थी भाई आजायँ सबकी सेवा का दायित्व सेठ जनकराज जी जैन ही सँभालते हैं। लेखक ने स्वयं अपनी अनुभव की आँखों से देखा है कि जब कोई दर्शनार्थी भाई या बहिन बाहिर से इनके यहाँ आता है तो उसे देखकर इनको हार्दिक प्रसन्नता होती है। किसी के बेवक्त आ जाने पर भी इनमें कोई

घबराहट नहीं आती । किसी भी समय कोई आए उसकी उसी समय सेवा शुश्रूषा की जाती है।

अभी १० महीने हुए हम लोग भी समराला में लाला जनकराज जी जैन के "जैननिवास" में लगभग एक महीना ठहरे थे। इनकी तथा इनके समस्त परिवार की बढ़ी-चढ़ी सेवा भावना को हमने स्वयं अपनी आँखों से देखा है। अब तो यहाँ पर एस० एस० जैन सभा की स्थापना भी हो गई है और इस एस० एस० जैन सभा ने जैन स्थानक का निर्माण करने के लिए ७० फुट लम्बा ३० फुट चौड़ा एक प्लाट खरीद लिया है। जैन सभा के प्रधान सेठ राजेन्द्रनाथ जी अग्रवाल प्रेसीडैण्ट म्युन्सिपल कमेटी समराला, के नेतृत्व में जैन स्थानक का निर्माण हो रहा है। लाला रामजस जी जैन मंत्री लाला जनकराज जी जैन कोषाध्यक्ष तथा देवीदयाल जी अग्रवाल ये तीनों सज्जन जैन स्थानक के निर्माण में बहुत बड़ा सहयोग दे रहे हैं।

वि० सं० २०२६

पूज्य चरितनायक श्रद्धेय श्री स्वामी छगनलाल जी महाराज समराला में लगभग डेढ़ महीना विराजमान रहे, उसके अनन्तर इन्होंने खन्ना की ओर विहार कर दिया। खन्ना नगर के जैन लोगों में बड़ी धार्मिक श्रद्धा, आस्था, और निष्ठा पाई जाती है। खन्ना के पुराने श्रावक ला० डोगरमल जी अग्रवाल जैन, मालिक फर्म लाला डोगरमल सन्तोष कुमार जैन आढ़ती तथा लाला लछमनदास जी अग्रवान जैन को मैंने अच्छी तरह देखा है। लाला डोगरमल जी जैन ही वास्तव में खन्ना के मूल श्रावक हैं। किसी समय इन्हीं का घर था जो जैन सन्तों की आवभगत और सेवाशुश्रषा किया करता था। यह सौभाग्य की बात है कि लाला डोगरमल जी की भाँति इनके सुपुत्र श्री सन्तोषकुमार जी और पवनकुमार जी भी जैन धर्म के प्रति पूर्णतया आस्था रखते हैं और सामाजिक कार्यों में बढ़-चढ़कर अपना योगद न देते हैं। लाला लछमनदास जी जैन भी अपने ढंग के निराले श्रावक थे। प्रतिदिन सामायिक करना, इनके जीवन की सबसे बड़ी विशेषता थी। खन्ना से बाहिर जहाँ कहीं भी लाला जी जाते थे तो सामायिक का आसन अपने पास रखते थे और निश्चित रूप से सामायिक किया करते थे। अब तो खन्ना जैन समाज काफी अच्छी स्थिति में है। माछीवाड़ा से लाला प्यारेलाल जी जैन और ला० पन्नालाल जी जैन के परिवारों के आ जाने से एवं ला० ओमप्रकाश जी अग्रवाल मट्टे वाले लाला प्रेमसागर जी जैन आदि सज्जनों के सहयोग से खन्ना जैन समाज की अच्छी खासी संख्या हो गई है।

पूज्य चरितनायक श्री जी महाराज खन्ना पधार रहे हैं, यह सूचना जब खन्ना के जैन समाज को प्राप्त हुई तो वह आनन्दविभोर हो उठा। कुछ लोग तो विहार में ही पूज्य श्री जी महाराज की सेवा में पहुँच गए और वहाँ सेवा का लाभ उठाने लगे। धीरे-धीरे पूज्य चरितनायक श्री खन्ना पधार गए। जैन, अजैन सभी लोगों ने पूज्य चरितनायक श्री जी का हार्दिक अभिवन्दन एवं अभिनन्दन किया। खन्ना के श्रावक व्यवस्थित रूप से महाराज श्री जी का इलाज कराना चाहते थे अतएव इन्होंनें अच्छे-अच्छे डाक्टरों से और राजवैद्यों से महाराज श्री का निदान कराया। हमारे महामान्य डाक्टरों की अपेक्षा वैद्यों से इलाज कराने के अधिक पक्ष में थे, परिणाम स्वरूप खन्ना के जाने-माने एक वैद्य श्री अर्जुनलाल जी का इलाज चालू करा दिया। वैद्य जी बड़े आदर और निःस्वार्थ भाव से महाराज श्री की सेवा कर रहे थे, वैद्य जी के निःस्वार्थ भाव की सराहना स्वयं पूज्य चरितनायक श्री भी किया करते थे। वैद्य अर्जुनलाल जी भले ही पूर्ण निःस्वार्थभाव से महाराज श्री की सेवा कर रहे थे, परन्तु बीमारी की जड़ समाप्त नहीं हो रही थी। अतः बलाचौर के निवासी सेठ धर्मचन्द्र जी जैन ज्योतिषी के कथनानुसार इनके मित्र वैद्य से भी उपचार कराया गया। लुधियाना से डाक्टर श्री तरसेमलाल जी जैन भी महाराज श्री को देखने लुधियाना से आया करते थे। समय की बात है कि इतने प्रयत्न होने पर भी पूज्य चरितनायक श्री जी महाराज को सन्तोष जनक लाभ नहीं हुआ, इसी कारण वि० सं० २०२६ का चातुर्मास भी पूज्य चरितनायक श्री जी महाराज को खन्ना में व्यतीत करना पड़ा।

वि० सं० २०२७

इस वर्ष पूज्य चरितनायक महामहिम श्री छगनलाल जी महाराज का चातुर्मास खन्ना में था। पूज्य चरितनायक श्री का स्वास्थ्य असन्तोषजनक रहने लगा था, फलतः यह चातुर्मास भी खन्ना में ही व्यतीत किया। यह चातुर्मास पूज्य चरितनायक जी वि० सं० २०२८ के महाराज के जीवन का अन्तिम चातुर्मास था। वर्ष की चैत्र शुक्ला द्वितीया, रविवार, दिन के तीन बजे पूज्य चरितनायक श्री जी महाराज इस पार्थिव शरीर को छोड़कर स्वर्ग-धाम में जा विराजे थे।

मुनिश्री रोशनलाल जी "विशारद"

पूज्य चरितनायक श्रद्धास्पद श्री स्वामी छगनलाल जी महाराज के पाँच शिष्य बने थे इनमें से आज आदरणीय श्री रोशनलाल जी 'विशारद' हमारे सामने हैं, ये श्रद्धेय चरितनायक श्री के ऐसे पावन स्मारक हैं जो इनकी

पवित्र गुणसम्पदा की सदा स्मृति कराते रहेंगे। जैसे पूज्य चरितनायक श्री अपने समुज्ज्वल त्याग, वैराग्य, तपस्या, संयम, उदारता, धीरता, समता सरसता, मधुरता और विनम्रता के पावन प्रकाशन से प्रकाशमान होकर अपने गुरुदेव श्री रंगलाल जी महाराज के नाम को जीवन भर चमकाते रहे वैसे इनके प्रिय शिष्य मुनि श्री रोशनलाल जी भी अपने आध्यात्मिक जागरण तथा संयमप्रधान सद्गुणों की दिव्यज्योति से ज्योतिर्मान होते हुए अपने गुरुदेव श्री स्वामी छगनलाल जी महाराज के नाम को रोशन कर रहे हैं और करते रहेंगे, ऐसी हमें पूर्ण आशा है। विश्ववंद्य शासनेश श्रमण भगवान महावीर से यही प्रार्थना है कि हमारी यह आशा अवश्य मूर्तरूप धारण करे और मुनि श्री रोशनलाल जी श्रमण-जगत के महागगन पर सूर्य की भाँति चमकते हुए जहाँ अपने पूज्य गुरुदेव के पवित्र नाम को चारचाँद लगाएँ वहाँ जन-जागृति के लिए भी पूर्णतया सतर्क और एवं जागरूक बनें।

विचित्र संयोग

पूज्य चरितनायक श्री स्वामी छगनलाल जी महाराज के एक शिष्यरत्न थे—श्री गणेशीलाल जी महाराज। ये गुरु कृपा के विशिष्ट पात्र थे, विनय-शीलता इनके जीवन की सर्वाधिक विशेषता थी, विनयशीलता के साथ-साथ संयम साधना और विद्या आराधना के क्षेत्र में भी इन्होंने आशातीत उन्नति एवं प्रगति की थी। इसके अतिरिक्त, अपने गुरुचरणों में इनकी जो आस्था, निष्ठा, भक्ति थी उसे शब्दों की सीमित रेखाओं में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। ये अपने गुरुदेव को भगवान तुल्य मानते थे और गुरुवर की आज्ञा को भगवान की आज्ञा मानकर चलते थे। इन्होंने अपने गुरुदेव के चरणों से अलग रहना कभी पसन्द नहीं किया शरीर के साथ जैसे छाया रहती है, वैसे ये अपने गुरुचरणों में रहा करते थे। परन्तु यमराज के आगे तो किसी का वश नहीं चलता, खन्ना में वि० सं० २०१२ में ये स्वर्गवासी हो गए। खन्ना वालों ने इनकी एक समाधि बना दी। समय की बात समझिए कि जहाँ इनकी समाधि बनाई गई थी वहीं पर हमारे महामहिम चरितनायक श्री स्वामी छगनलाल जी महाराज की अस्थियाँ स्थापित करदी गई। अथवा यूं कहें कि वर्षों के बिछुड़े गुरुशिष्य फिर इकट्ठे हो गए। विकराल काल ने भले ही इनको अलग-अलग कर दिया था, इनके मध्य में वियोग की दीवार खड़ी करदी थी परन्तु श्रद्धेय श्री गणेशीलाल जी महाराज के श्रद्धातिरेक ने अपने गुरु महाराज को अपने पास ही बुलाकर सांस लिया। पाठक जानते ही हैं कि पूज्य चरितनायक श्री ने अनेकों बार मारवाड़ जाने का निश्चय किया और

मारवाड़ की ओर विहार भी कर दिया, परन्तु वलवती इच्छा होने पर भी अपने मनोरथ को साकार नहीं बना पाए इसे हम अन्न-जल की वात भी कह सकते हैं और पिछले प्रकरण में हमने स्वयं अन्नजल की इस प्रवलता को स्वीकार भी किया है परन्तु जव हम गुरुशिष्य की अस्थियों का एक ही स्थान पर संगम देखते हैं तो विना किसी संकोच के कहना पड़ता है कि पूज्य चरित-नायक श्री के शिष्य ने ही इनको मारवाड़ नहीं जाने दिया, ये अपने गुरुदेव के पास ही रहना चाहते थे या यूँ कहें कि पूज्य गुरुदेव को ये अपने पास ही रखना चाहते थे, फलतः इनको पंजाव से वाहिर जाने दिया। गुरुशिष्य की अस्थियों का विचित्र संयोग हर किसी गुरुशिष्य के जीवन में देखने को कम मिलता है।

सर्वप्रियता

इन पंक्तियों के लेखक को जैन धर्म दिवाकर, साहित्यरत्न, जैनागमरत्ना-कर आचार्य सम्राट परम श्रद्धेय प्रातःस्मरणीय परम श्रद्धेय गुरुदेव पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज के पावन चरणों में लगभग अट्ठाईस वर्ष तक रहने का अवसर मिला था, अतः आचार्य सम्राट श्री के जीवन शास्त्र को मैंने निकट से पर्याप्त अध्ययन किया है। मैंने देखा है जो भी व्यक्ति आचार्य सम्राट श्री के चरणों में आता था उसे ऐसा लगता था कि आचार्य भगवान के जितना मैं निकट हूँ इतना कोई दूसरा नहीं हैं, इनके कृपापात्रों में मेरा स्थान सर्वोपरि है जैसे आचार्य सम्राट श्री जी महाराज के सम्बन्ध में जन-गण मन में अपनत्व की भावना पाई जाती थी वैसी ही भावना परम श्रद्धेय पूज्य चरितनायक श्री स्वामी छगनलाल जी महाराज के सम्बन्ध में जनसाधारण में देखने को मिलती थी, हर कोई ही ऐसा ही मानता और समझता था कि साधना के अमर प्रतीक पूज्य गुरुदेव श्री स्वामी छगनलालजी महाराज मुझ से ही प्रेम करते हैं। भले ही पूज्य चरितनायक श्री सभी आगन्तुकों के साथ एक जैसा प्रेम-भाव प्रदर्शित किया करते थे, छोटे-वड़े सभी के साथ समभाव पूर्वक वार्तालाप किया करते थे, परन्तु प्रत्येक भक्त इनका पावन प्रेम प्राप्त करके अपने को ही इनका अधिक निकटवर्ती और कृपापात्र समझने लगता था। इसका कारण केवल पूज्य चरितनायक श्री का समतापूर्ण प्रेम-व्यवहार ही था। इनके दर-वार में जो भी आ जाता उसी को इनसे प्रेम का आतिथ्य अधिगत होता। इनके वात्सल्यभाव की पावन ज्योति से उसका अन्तर्जगत ज्योतिर्मान हो उठता। किसी व्यक्ति की उपेक्षा या उसका अनादर करना तो इन्होंने कभी सीखा ही नहीं था। सचमुच ये प्रेम और वात्सल्यभाव की सजीव प्रतिमा थे।

महान बनने की पगडण्डियाँ

पूज्य चरितनायक श्री जी महाराज एक वार जिसको देख लेते थे उसे

कभी भूलते नहीं थे, वर्षों के अनन्तर भी उसके सम्मुख आ जाने पर उसे तत्काल पहचान लेते थे। इस तरह अन्य भी अनेकों गुण इनमें दृष्टिगोचर होते थे। धर्मस्थान आदि के निर्माण के लिए ये सामूहिक रूप से ही उपदेश दिया करते थे, वैयक्तिक रूपसे ये किसी सामाजिक कार्य में अधिक भाग नहीं लेते थे, यदि व्यक्तिगत रूप से किसी को दान आदि देने के प्रेरणा भी करते तो केवल एक बार ही उसे फरमा देते, व्यक्ति विशेष के पीछे नहीं पड़ते थे, यदि कोई इनकी प्रेरणा से प्रभावित होता, तो उसकी चापलूसी नहीं करते थे यदि कोई इनकी प्रेरणा से लाभ नही उठाता था तो उस पर ये नाराज भी नहीं होते थे, सूर्य की भाँति हर्ष और विषाद की घड़ियों में एक रस रहा करते थे। बिना पूछे हर किसी को अपना परामर्श नहीं देते थे। बिरादरियों के झगड़ों में नहीं पड़ा करते थे, सामाजिक मनमुटाव मिटाने के लिए उपदेश अवश्य दिया करते थे। किसी की निन्दा सुनना इनको सर्वथा अरुचिकर था निन्दा चुगली का वातावरण चलने पर ये मौन साध लेते थे, अपने मुख से अपनी तारीफ नहीं किया करते थे, अद्‌भुत गुण सम्पदा से मालामाल होने पर भी अपने को साधारण सा सन्त अभिव्यक्त किया करते थे, अपनी प्रशंसा के लिए समाचारपत्रों में अपने समाचार प्रकाशित नहीं कराया करते थे, किसी पर बोझ बन कर नहीं रहते थे, जहाँ तक इनका वश चलता ये हर किसी का निःस्वार्थभाव से हित सम्पादित करते, अमीर हो चाहे कोई गरीब हो सभी को बिना किसी भेद-भाव से अपनी छत्रछाया में स्थान देते थे। आदि सभी बातें जो हमारे महामान्य चरितनायक श्री छगनलाल जी महाराज के जीवन में उपलब्ध होती थीं यदि आज के साधु-मुनिराज भी इनको अंगीकार करलें तो श्रमण जगत जगती के लिए एक वरदान बन सकता है। मेरी दृष्टि में ये सब बातें व्यक्ति को महान बनाने की पगडण्डियाँ हैं। इन पगडण्डियों पर चलकर ही मानव महामानव बन सकता है और अपने भविष्य को समुज्ज्वल बनाने में सफल हो सकता है, अन्यथा नहीं।

सच्चे भिक्षु

हमारे महामहिम चरितनायक पूज्य श्री छगनलाल जी महाराज संयम साधना के क्षेत्र में बहुत ऊँचे उठे हुए महापुरुष थे। इनके जीवन-दीप को जितना अधिक निकट से देखने लगते हैं उतना ही वह अधिकाधिक प्रकाश बिखेरता हुआ दिखाई देता है। जैनागमों की भाषा में ये एक सच्चे भिक्षु हैं सच्चे भिक्षु के लक्षण अभिव्यक्त करता हुआ श्री दशवैकालिक सूत्र कहता है—

[1]न परं वइज्जसि अयं कुसीले जेणं च कुप्पेज्ज न तं वइज्जा।
जाणिय पत्तेयं पुण्णपावं अत्ताणं न समुक्कसे जे स भिक्खू॥

—जो भिक्षु किसी को "यह कुशील है" ऐसे शब्द न बोलता हो, सामने वाले व्यक्ति को क्रोध चढ़े, ऐसी भाषा बोलने वाला न हो। जो प्रत्येक आत्मा को स्वयं कृत पाप अथवा पुण्य का फल भोगती है ऐसा मानता हो और जो अपनी बड़ाई न करता हो उसे ही सच्चा भिक्षु समझना चाहिए।

व्याख्याता की गुण-सम्पदा

हमारे महामान्य चरितनायक श्रद्धेय श्री छगनलालजी महाराज की जन्मभूमि मारवाड़ थी, जीवन का अधिक समय इन्होंने मारवाड़ में व्यतीत किया था, इसीलिए इनकी जन्मजात भाषा मारवाड़ी थी। परन्तु मारवाड़ को छोड़कर जब ये पंजाब और हरियाणा में पधारे तो वहाँ की भाषाओं का इन्होंने इतना अच्छा अभ्यास कर लिया कि हिन्दी को मातृभाषा की तरह बोलने लगे थे, इनका उच्चारण अत्यधिक स्पष्ट था, संस्कृत और प्राकृत भाषा के श्लोक इतनी अधिक सुमधुर शैली से फरमाया करते थे कि श्रोता मंत्रमुग्ध हुए बिना नहीं रहता था। स्वर के माधुर्य के साथ जब पूज्य चरितनायक श्री व्याख्यान फरमाया करते तो समा बाँध देते थे। इनके व्याख्यान ने उनको सर्वत्र सर्वजनहितकारक और सर्वप्रिय बना दिया था। महाराज श्री समय के बड़े पाबन्द थे, व्याख्यान का समय होने पर सुननेवालों की प्रतीक्षा नहीं किया करते थे, थोड़े से श्रोताओं के आ जाने पर भी ये अपना प्रवचन चालू कर देते थे। व्याख्यान में जहाँ शास्त्रीय ठोस सैद्धान्तिक तथ्यों पर प्रकाश डाला करते थे वहाँ साथ में सामाजिक सुधार की सामयिक सामग्री भी मनोरंजन पद्धति से प्रस्तुत किया करते थे, और संगीतों की पुट देकर अपने प्रतिपाद्य विषय में जीवन डाल देते थे। शुष्क से शुष्क विषय को भी सरस और मधुर बना डालते थे, दूसरों की मान्यताओं के खण्डन को कतई पसन्द नहीं करते थे, व्याख्यान में चल रहे प्रसंग से कभी बाहिर नहीं जाते थे। श्रोताओं की अधिक संख्या हो या स्वल्प, इस बात का इनके मन पर कोई असर नहीं होता था, क्योंकि पात्र थोड़े भी बहुत होते हैं अपात्र अधिक भी लाभप्रद नहीं होते। अतः इन्होंने व्याख्यान भवन की जनसंख्या की ओर कभी ध्यान नहीं दिया। चाहे कैसी भी परिस्थिति हो, जैनसाधु की मर्यादा की परिपालना का पूरा-पूरा ध्यान रखते थे, जैनधर्म की मान्यताओं के विपरीत एक शब्द भी अपने

---

[1] दश० अ० १० गाथा १८

मुख से नहीं निकालते थे। इन सब विशेषताओं के कारण पूज्य चरितनायक श्री व्याख्यान क्षेत्र में बड़े आदरास्पद और वाणीभूषण के रूप में निहारे जाते थे। व्याख्यान को लेकर जो गुण पूज्य चरितनायक श्री में पाए जाते हैं इन्हें ही व्याख्याता की गुणसम्पदा कहते हैं। व्याख्यान कला के अभ्यासियों को इस गुणसम्पदा को अपनाने की ओर ध्यान देना चाहिए। इसके अतिरिक्त पूज्य चरितनायक श्री जी महाराज जनसंख्या की अधिकता हो जाने पर लाउडस्पीकर का उपयोग नहीं करते थे। इनकी मान्यतानुसार बिजली सचित्त है इसी कारण ये ध्वनिवर्धक यन्त्र के प्रयोग से दूर रहते थे। स्थानकवासी समाज में बिजली को सचित्त और अचित्त मानने की दोनों विचारधारा देखने में आती हैं परन्तु हमारे महामान्य चरितनायक श्री बिजली को सचित्त मानने वालों में एक जाने-माने महापुरुष थे।

हरे भरे संस्मरण

परम आदरणीय पूज्य श्री छगनलालजी महाराज के जीवन वृत्तों को लेकर काफी कुछ लिखा जा चुका है। अब इस प्रकरण में इनके जीवन के कुछ एक सस्मरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

मान और अपमान में समता

हिमाचल प्रदेश के एक ग्राम की घटना है, पूज्य चरितनायक श्री स्वामी छगनलालजी महाराज आहार के लिए एक घर में प्रविष्ट हुए, उस घर में एक बूढ़ी माता थी। बूढ़ी को देखकर महाराज श्री बोले कि माता ! रोटी व छाछ की आवश्यकता है। महाराज श्री की बात सुनकर वृद्धा कहने लगी कि रोटी भी है और छाछ भी है, परन्तु तुझ को देनी नहीं है। तू यहाँ से भाग जा। जैन साधुओं के विधानानुसार कोई सहर्ष भिक्षा दे तो उसको ग्रहण किया जाता है अन्यथा साधु को वापिस लौटना होता है। इस विधान के अनुसार वुढ़िया के इन्कार कर देने पर महाराज श्री जी प्रसन्नभाव से चुपचाप वापिस जाने लगे। सन्त को वापिस जाते देखकर बुढ़िया तत्क्षण विचार करने लगी कि यह तो भिखमंगा दिखाई नहीं देता, भिखमंगे को यदि इन्कार कर दिया जाए, तो वह अड़ने की कोशिश करता है, जमकर बैठ जाता है, कुछ न कुछ लेकर ही हिलता है और यदि किसी तरह से चला भी जाए तो वह चुपचाप नहीं जाता, गालियाँ निकालता है, अपशब्द बोलता है, शाप तलक देने से भी संकोच नहीं करता। परन्तु यह सन्त तो प्रसन्न भाव से वापिस जा रहा है, इसकी आकृति बिल्कुल शान्त है, रोप या जोश का चिह्न नहीं है, यह तो कोई ऊँचा महापुरुष प्रतीत होता है। ऐसे त्यागी सन्त को घर से रिक्तहस्त नहीं जाने देना चाहिये। यह विचार करके वृद्धा तत्काल उठी और घर से बाहिर आकर पूज्य चरितनायक श्री जी महाराज को बुलाने लगी। वृद्धा की आवाज सुनकर महाराज श्री जी वापिस लौट आए। इनके घर में पहुँच जाने पर वृद्धा कहने लगी—सन्तजी ! मैं आपको भिखमंगा समझती थी, परन्तु आप तो अच्छे सन्त दिखाई देते हैं। आप मेरे घर से खाली जाएँ, यह मुझे अच्छा नहीं लगा। इतना कहकर वृद्धा ने मकई की

एक रोटी महाराज श्री के पात्र में डाल दी, महाराज श्री रोटी लेकर जब जाने लगे तो वह फिर बोली—थोड़ी सी छाछ भी ले जाओ। बुढ़िया की बढ़ी-चढ़ी भावना देखकर महाराज श्री ने छाछ भी अङ्गीकार कर ली।

पूज्य चरितनायक श्री जी महाराज के उक्त घटनावृत्त से यह स्पष्ट हो जाता है कि साधु-जीवन में अच्छे-बुरे सभी तरह के प्रसंग आते हैं। कभी तो यत्र, तत्र, सर्वत्र भोजन की विनतियाँ होती हैं, भक्तजन श्रद्धावश होकर जबर्दस्ती भी सन्तों के पात्र में वस्तु डाल देते हैं और कहीं पर माँगने पर भी भोजन की उपलब्धि नहीं होती, साधारण व्यक्ति की तरह सन्तजनों को फटकार एवं दुत्कार दिया जाता है। परन्तु सच्चा सन्त सत्कार और दुत्कार की सभी स्थितियों में अपनी समता को नष्ट नहीं होने देता, उसे प्रत्येक दृष्टि से सुरक्षित रखता है। मान और अपमान की घड़ियों में समता के दीपक को बुझने न देना ही सन्तजीवन की सब से बड़ी विशेषता होती है। हमारे चरितनायक श्री के जीवन में यह विशेषता साकार रूप में दिखाई दे रही थी। ये बुढ़िया से फटकार मिलने पर भी मस्त ही रहे और जब इन्हें बुढ़िया की ओर सत्कार मिला तब भी स्वस्थ ही रहे।

शीतलवायु के प्रहारों में

सरदी का मौसम था पूज्य चरितनायक श्री छगनलालजी महाराज कुछ मुनियों के साथ विचरण कर रहे थे। एक दिन चलते-चलते दिन थोड़ा रह गया, उद्दिष्ट स्थान अभी दूर था, दिन रहते ठिकाने पर पहुँचने की सम्भावना नहीं थी, सूर्य को अस्ताचल की ओर बढ़ते देखकर मुनिमण्डल पार्श्ववर्ती गाँव की ओर चल पड़ा, गाँव के निकट पहुँचने पर एक व्यक्ति मिला। महाराज श्री ने रात व्यतीत करने के लिए उससे स्थान पूछा। उत्तर में उसने विनति करते हुए कहा कि स्वामी जी! मेरे घर में ठहरने का पर्याप्त स्थान है सो आप वहाँ पर पधारने की कृपा करें। मैं एक आवश्यक कार्य के लिए बाहिर जा रहा हूँ थोड़ी देर के बाद आपकी सेवा में उपस्थित हो जाऊँगा, इतना कह कर तथा अपने घर का पता बताकर वह व्यक्ति वहाँ से चला गया। इस व्यक्ति के कहने के अनुसार पूज्य चरितनायक श्री उसके घर पहुँच गए। समय की बात है कि उनकी पत्नी बड़ी कठोर और लड़ाकी थी। पूज्य चरितनायक श्री ने उसके पतिदेव की कही सारी बात जब बताई तो वह झुंझला उठी और अपने पतिदेव को ही अश्लील गालियाँ निकालने लगी। पूज्य चरितनायक श्री यह दृश्य देखकर आश्चर्यचकित रह गए और चुपचाप गाँव के बाहिर आ गए, किसी सुन्दर स्थान की उपलब्धि न होने के कारण एक

छोटी सी छप्परी में ही विराजमान हो गए। पोष माघ की तरह शीतल वायु चल रही थी, और मुनिराजों पर विना किसी झिझक के पूरी शक्ति के साथ अपने प्रहार कर रही थी, मुनिराज श्री सारी रात शीतल वायु के प्रहारों को शान्तिपूर्वक सहन करते रहे। प्रातःकाल होने पर पूज्य चरितनायक श्री का शरीर अकड़ गया, सूर्योदय होने पर वहुत देर तक सूर्यताप में वैठना पड़ा तव कहीं जाकर इनका शैत्य दूर हुआ। पाठक जानते ही हैं कि हमारे पूज्य चरितनायक श्री हर हाल में मस्त रहने वाले युगपुरुष थे, शीतल वायु के प्रहारों की छाया तले भी ये जरा विचलित, कम्पित, उदासीन और हतोत्साह नहीं होने पाए। शैत्य के प्रकोप का शरीर पर जो दुष्प्रभाव पड़ा था उसे भी इन्होंने शान्तिभाव से ही सहन किया था।

एक वार जल ग्रहण

परम श्रद्धेय श्री स्वामी छगनलाल जी महाराज एक उच्चकोटि के मुनिराज थे, संयम साधना के क्षेत्र में इनकी विचारधारा वहुत ऊँची उठी हुई थी, जैनधर्म और जैनागमों के लिए इनके मन में अगाध और अटूट श्रद्धान था। द्रव्य-क्षेत्र, काल और भाव के अनुसार संयमसाधना में अधिकाधिक दृढ़ रहा करते थे, यदि कहीं कोई स्खलना हो जाए तो जहाँ-जहाँ स्खलना अनुभव में आती थी उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया करते थे। जो साधु विशुद्ध, तप संयम की आराधना करने वाला होता था, उसकी अनुमोदना और सराहना करते नहीं थकते थे। अधिक क्या, साधुजनोचित गुणसम्पदा के ये चलते-फिरते एक पावन भण्डार थे।

कभी-कभी प्रासुक पानी के सम्वन्ध में चर्चा चल पड़ती तो पूज्य चरितनायक श्री जी महाराज स्पष्ट रूप से फरमाया करते थे कि पहले जमाने में साधु मुनिराज पानी के ग्रहण में वड़ा विवेक रखते थे। पानी लेते समय अनेकों वातें पूछते थे, जव जल की प्रासुकता और निर्दोषता में पूरी तसल्ली हो जाती तव उसे लिया करते थे। परन्तु आजकल स्थिति वदल गई है। आज के युग में तो निर्दोष पानी, निर्दोष स्थान और निर्दोष पात्र मिलने वहुत कठिन हैं, तथापि वे महासतियाँ तथा साधु मुनिराज जी धन्य हैं, जो जल, स्थान और पात्र इन तीनों के विषय में कोई दोष नहीं लगने देते। जिन व्यक्तियों ने पूज्य चरितनायक श्री जी महाराज को पानी की गोचरी करते स्वयं अपनी आँखों से देखा है, वे अच्छी तरह से जानते और समझते हैं कि पूज्य श्री छगनलाल जी महाराज जव पानी लेने जाते थे, तो वड़ी छानवीन किया करते थे यदि अपनी वृत्ति और मर्यादा के अनुसार पानी नहीं मिलता

था तो छाछ का पानी लेकर उससे ही अपना काम चलाते थे। यही कारण है कि पूज्य चरितनायक श्री जी महाराज स्वयं पानी के उपयोग में बड़ा विवेक रखते थे, सख्त से सख्त गरमी पड़ने पर भी सारे दिन में आहार करने के पश्चात् केवल एक बार ही पानी का उपयोग किया करते थे। ज्येष्ठ, आषाढ़ की भयंकर गरमी में दिनभर केवल एक बार ही जल का सेवन करना और दूसरी बार उसको उपयोग में न लाना कोई साधारण बात नहीं है। हमारे पूज्य चरितनायक श्री जैसे महापुरुष ही संयमसाधना के ऐसे कठोर पथ के पथिक बन सकते हैं।

यति को पराजित करना

भारतवर्ष के प्रख्यात नगरों में अहमदाबाद भी एक प्रख्यात नगर है, जैनों का यह सदा से गढ़ रहा है। आज भी इस नगर में सैकड़ों जैन मन्दिर, पुस्तक भण्डार और जैनभवन विद्यमान हैं। यहाँ पर यति लोगों के अनेक छोटे-बड़े उपाश्रय भी हैं। किसी युग में आचार-विचार की समुज्ज्वलता की दृष्टि से यति लोग सर्वत्र आदरास्पद और सम्माननीय माने जाते थे, ये लोग वैद्यकशास्त्र के मार्मिक विद्वान होने के साथ-साथ ज्योतिर्विद्या के भी अखूट भण्डार होते थे, इसके अलावा, योगसाधना के क्षेत्र में भी खूब बढ़े-चढ़े थे। इनके यौगिक चमत्कारों के आगे बड़े-बड़े अभिमानियों के अभिमान समाप्त हो जाते थे। अपने युग में वैद्यक तथा यौगिक शक्तियों के निराले चमत्कार ही इनके जीवन की सबसे बड़ी सम्पत्ति और विशेषता थी। इसी विशेषता के प्रताप से नाना विध साम्प्रदायिक झञ्झावात और भूचाल आने पर भी जैन धर्म का महादीपक अपनी दिव्यज्योति से मानवीजगत को सदा से ज्योतिर्मान बनाता चला आ रहा है। परन्तु काल की कुटिलता कहें या यति लोगों का दुर्भाग्य कहें। धीरे-धीरे यति लोगों का आचार-विचार गिरने लगा, ब्रह्मचर्य के महादीपक को इन्होंने अपने हाथों से ही बुझाना आरम्भ कर दिया, ये लोग विवाह के बन्धनों में अपने को बाँधकर अपनी महत्ता को स्वयं घटाने लग गये।

अहमदाबाद में यतियों को "मथेन" इन नाम से पुकारा जाता है। इनका समाज पर आज भी बहुत बड़ा प्रभाव और अनुभाव है, ये लोग ज्योतिष, टूणाटामन, यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र, करके लोगों को चकित करते रहते हैं। लोगों से मनचाहे काम लेते हैं, अपने आप को धर्म के ठेकेदार बताकर अपनी पूजा करवाते हैं। यदि कोई साधारण साधु अहमदाबाद में आ जाए तो उसके पाँव नहीं लगने देते। हमारे पूज्य चरितनायक श्री छगनलाल जी महाराज को

अहमदावाद पधारने का अनेकों बार अवसर मिला। इन्होंने यति लोगों के किसी कार्य में हस्तक्षेप करने का प्रयास नहीं किया। किन्तु यति लोग इन पर अवश्य छींटाकसी करते रहते थे। एक वार पूज्य चरितनायक श्री आहार लेने जा रहे थे। मार्ग में किसी यति से भेंट हो गई। पूज्य चरितनायक श्री को देखते ही वह मस्त हुए साँड़ की तरह गरजने लगा। अपनी प्रशंसा के पुल बाँधता हुआ न जाने क्या कुछ कह गया। पूज्य चरितनायक श्री सर्वथा शान्त थे, पास में खड़े कुछ भाई भी चुपचाप यति की बातें सुन रहे थे, वह यति इस खामोशी को अपनी प्रभुता का ही प्रभाव समझने लगा। जब वह वहुत ही अधिक उछलने लगा और पूज्य चरितनायक श्री के सिर पर ही चढ़ने लगा तो इन्होंने अपना मौन भंग किया और उसे फटकारते हुए फरमाया—

यति जी ! आप जानते हैं यति किसको कहते हैं। यति का अर्थ है—जितेन्द्रिय, विरक्त होकर मोक्ष के लिए प्रयत्न करने वाला। घर में तो बच्चों की फौज तैयार कर रक्खी है और वाहिर यति बने फिरते हो ? यदि आपको अपने यतित्व का अभिमान है। ऋद्धि-सिद्धियों का नशा है, तो लो मैं और आप एक आसन पर बैठ जाते हैं, बैठना भी ऐसे हैं कि आँख न झपकने पाए जिसकी आँख पहले झपक गई वही पराजित माना जावेगा।"

पूज्य चरितनायक श्री के इस कथन में जीत और हार का आधार केवल "बिना आँख झपके स्थिर बैठना ही था।" तथापि उस यति की बोलती वन्द हो गई, वह लज्जा का मारा पानी-पानी हो गया। अन्त में कहने लगा कि महाराज ! आप जैसे चरित्रशील, वाल ब्रह्मचारी महापुरुषों का हम जैसे यतिनामधारी गृहस्थ क्या मुकाबला कर सकते हैं ?

मोह के विजेता

जिस प्रकार मदिरा का नशा मनुष्य में अपने हित और अहित का बोध नहीं रहने देता, ठीक वैसे ही मोहनीय कर्म जीव को हानि-लाभ के विवेक से शून्य सा बना डालता है। किसी समय जीव को यदि अपने हिताहित का ध्यान आता भी है तो मोहनीय कर्म उस पर भी आचरण करने नहीं देता। अतएव मोहनीय कर्म को मदिरा के तुल्य माना गया है। इस कर्म को ज्ञाना-वरणीय आदि कर्मों का सेनापति माना जाता है। इसे पराजित करना बड़ा कठिन कार्य है। साधारण मनुष्य की क्या बात कहें, बड़े तपस्वी महापुरुष भी कई बार इस कर्म की भीष्म शक्ति के आगे नतमस्तक होते देखे जाते हैं।

परन्तु जगती में ऐसे मनुष्य भी हैं जो मोहनीय कर्म को पराजित करने का अभ्यास करते हुए किसी सीमा तक उसमें सफलता अधिगत कर लेते हैं। हमारे पूज्य चरितनायक श्री छगनलाल जी महाराज के जीवन में यह सत्य व्यवहार का रूप धारण कर रहा था। पूज्य चरितनायक श्री को दीक्षित हुए अभी विशेष समय नहीं हुआ था। ये अपने परमपूज्य गुरुदेव प्रातःस्मरणीय श्री स्वामी रंगलाल जी महाराज के साथ एक क्षेत्र में विराजमान थे। अनायास ही उस क्षेत्र में कुछ साध्वियों का आना हो गया। इन साध्वियों में महासती श्री यमुनादेवी भी थीं। पाठक जानते ही हैं कि महासती श्री यमुनादेवी जी हमारे पूज्य चरितनायक श्री जी की संसार पक्ष की माता हैं। समय मिलने पर दिन में जब महासती श्री यमुनादेवी जी अपनी गुरुणी जी के साथ श्रद्धेय श्री स्वामी रंगलाल जी महाराज के दर्शनार्थ पधारीं तो वहाँ संसार पक्ष के अपने पुत्र माडूसिंह जी (चरितनायक श्री) को मुनिवेष में देख कर बड़ी आनन्दित हुई। क्या हुआ यदि जगती के मोह बन्धनों को तोड़कर वह साध्वी बन गई परन्तु उसका हृदय माता की ममता से शून्य नहीं था। माता तो आखिर माता ही है अतः श्री यमुनादेवी जी ममता भरी आँखों से जब अपने पुत्र को निहारने लगीं तो पूज्य श्री रंगलाल जी महाराज महासती श्री यमुनादेवी जी से फरमाने लगे कि महासती जी ! संसार पक्ष के अपने पुत्र को अच्छी तरह देख लो और इनसे पूछ लो, ये ठीक-ठाक है, इनको कोई कष्ट तो नहीं है। महाराज श्री जी की यह बात सुनकर महासती यमुनादेवी जी बोलीं—

गुरुदेव ! अब तो आप ही इनके माता हैं, पिता हैं, सब कुछ हैं। आप जैसे जगतारक महापुरुष के चरणों में मेरे पुत्र को कोई कष्ट हो, यह तो स्वप्न में भी नहीं सोच सकती। कल्पवृक्ष की छाया में बैठने वाला व्यक्ति सतप्त और दुःखी कैसे हो सकता है।

पूज्य श्री रंगलालजी महाराज ने पूज्य चरितनायक श्री की ओर संकेत करते हुए फरमाया कि "मुनि छगन ! देखो, ये तुम्हारी संसार-पक्ष की माता है तुम्हारे सामने खड़ी है। इनसे वार्तालाप करो।" पूज्य गुरुमहाराज की वार्ता सुनकर भी हमारे आदरणीय चरितनायक श्री खामोश ही रहे इन्होंने अपनी माता की ओर ध्यान ही नहीं दिया। ये जानते थे कि एक माता को छोड़कर जब ससार की सब नारियाँ मेरे लिए माता के समान हैं फिर इस माता के प्रति ममत्व रखने का क्या मतलब ? फिर ममत्व तो साधु-जीवन का बहुत बड़ा दूषण है, जिस किसी साधु ने इस

को अपना साथी बनाया है उसी को इसने परेशान किया है शालिभद्र जैसे चारित्र-चूड़ामणि महापुरुष मोह के कारण ही मुक्ति जैसे सुखस्वरूप परमधाम से वंचित हो गए। जब मोह ऐसे-ऐसे तेजस्वी महापुरुषों का विगाड़ देता है तब मेरा यह हितकारक कैसे हो सकता है ? आदि विचारणा के महाप्रकाश से अन्तर्जगत को प्रकाशमान बनाने वाले हमारे पूज्य चरितनायक श्री अपने गुरुमहाराज की बात सुन कर भी मौन ही रहे और जब इन्हें बोलने के लिए पुनः कहा गया तो इन्होंने इतना ही कहा कि गुरुदेव ! जब संसार के रिश्ते-नाते ही छोड़ दिए तो फिर ये कैसी माता ? इसके बाद पूज्य चरितानायक श्री खामोश हो गए।

माता के हृदय में अपने बच्चे के लिए जो ममता होती है, वात्सल्यभाव होता है यह किसी से अज्ञात नहीं है। बच्चा भी अपनी जननी के प्रति कितना स्नेहातिरेक रखता है ? और सुख-दुःख की घड़ियों में पिता को याद न करके माँ-माँ ही पुकारता है, यह भी किसी से छुपा नहीं है, परन्तु हमारे पूज्य चरितनायक श्री इस स्नेहातिरेक से बहुत ऊपर उठ चुके थे, ये ममता के ऊपर इन्होने विजय प्राप्त करली थी, यही कारण है कि सन्मुख खड़ी जननी की ओर इन्होंने सहजभाव से देखा तलक नहीं। इसके अतिरिक्त महासती श्री यमुनादेवी जी के स्वर्गासीन हो जाने के समाचार इनके कानों में पड़े तब भी ये मोह के विजेता ही बने रहे। मातृवियोग-जन्य वेदना का अपने को इन्होंने स्पर्श तक भी नहीं होने दिया।

साधु मर्यादा के प्रति जागरूकता

आदरणीय पूज्य चरितनायक श्री छगनलाल जी महाराज के परमाराध्य गुरुदेव श्री स्वामी रंगलाल जी महाराज एक बार भ्रमण करते हुए पूज्य चरितनायक श्री जी की जन्मभूमि पिपलाद में पधारे, जब संसार पक्ष की चरितनायक श्री की ताई को पता चला कि मेरा बेटा माडूसिंह जैनसाधु बन कर यहाँ पर आया हुआ है तब वह खुशी-खुशी महाराज श्री के चरणों में उपस्थित हुई। बड़े प्यार के साथ भोजन के लिए अपने घर पधारने की विनति करने लगी, उसकी भावना को देखकर महाराज श्री ने फरमाया कि जैसा अवसर होगा देखा जायगा। आहार का समय होने पर पूज्य गुरुदेव श्री रंगलाल जी महाराज अपने प्रिय शिष्य मुनि श्री छगनलाल जी महाराज को साथ लेकर चल पड़े। जब चरितनायक श्री की ताई के घर पधारे, तो उसने बड़ी श्रद्धा से इनका स्वागत किया और अपनी रसोई में ले जाकर हलवा, पूड़ी, खीर आदि खाद्य पदार्थ देने लगीं तो श्रद्धेय गुरुदेव ने हलवे आदि को

देखकर प्रश्न किया कि वहिन ! यह हलवा, पूड़ी खीर आज क्यों बनाए हैं ? गुरुमहाराज का प्रश्न सुनकर चरितनायक की ताई कहने लगीं—

महाराज ! आज का दिन तो मेरे जीवन का बहुत बड़ा सौभाग्यशाली दिन है, आज तो मेरा रोम-रोम आनन्दविभोर हो रहा है। साधु बनकर मेरा लाड़ला माडू पहली बार मेरे घर में आया है इसके आने की खुशी में ही यह सब कुछ बनाया गया है।

चरितनायक श्री की ताई भोली थी, उसने जैन साधुओं के आहारसम्बन्धी विधि विधान का बोध भी नहीं था अतः जो मनमें था उसने सरलता के साथ वह कह दिया उसकी उक्त बात को सुनकर श्रद्धेय गुरुदेव फरमाने लगे कि भोली वहिन ! जैनसाधुओं के लिए जो भोजन बनाया जाता है उसे ग्रहण करना जैन साधुओं की मर्यादा नहीं है। इस बात के उत्तर में ताई जी के—"आपके लिए थोड़े बनाया है यह तो मैंने अपने पुत्र के लिए बनाया है। यह तो आपको लेना ही पड़ेगा"—ये शब्द सुनकर पूज्य गुरुदेव पुनः फरमाने लगे कि अब माडूसिंह तुम्हारा नहीं रहा अब तो यह जैन साधु हो गया है, जैन साधु होकर यह अपनी मर्यादा कैसे भंग कर सकता है ? अतः इस भोजन को हम नही लेंगे। इतना कहने के अनन्तर पूज्य गुरुदेव वाहिर जाने लगे। अभी घर से वाहिर निकले ही थे कि ताईजी के रोने की आवाज सुनाई देने लगी। करुणाजनक रुदन की आवाज सुनकर श्रद्धेय महाराज श्री का हृदय पसीज उठा। वे वापिस घर में गए। और ताई जी से इनका जो वार्तालाप हुआ वह इस प्रकार है—

महाराज श्री—वहिन ! रोती क्यों है ?

ताई जी—महाराज ! मैंने वडे प्रेम से भोजन बनाया था, मन में बड़ी उमङ्ग थी कि मेरा लाडला माडू खा लेगा, किन्तु आपने मेरा मनोरथपूर्ण नहीं किया, इस समय मुझे जो दुःख हो रहा है उसे मैं प्रकट नहीं कर सकती।

महाराज श्री—वहिन ! इसमें दुःख मनाने वाली क्या बात है ? जैन साधुओं की मर्यादा ही ऐसी है। इसका पालन करना भी जरूरी है।

ताई जी—महाराज ! आप मेरे घर से खाली चले जाएँ, यह तो मेरे साथ घोर अन्याय करने लगे हैं। चाहे कोई और वस्तु ले जाओ परन्तु यहाँ से खाली मत जाओ।

महाराज श्री—वहिन ! इच्छा तो कुछ लेने की विल्कुल नहीं थी परन्तु

यदि तेरी भावना प्रवल है तो उसे पूरी कर देते हैं। वता, तेरे घर में घी और वूरा है ?

ताई जी—महाराज ! आपकी दया से सव कुछ है, जितना चाहिए उतना घी-वूरा सेवा में हाजिर कर देती हूँ। इतना कह कर वह घी-वूरा ले आई, और पूज्य चरितनायक श्री के पात्र में डालकर उसको जो हर्षानुभूति हुई, वह कुछ अलौकिक ही थी। उसे अभिव्यक्त करना लेखनी की क्षमता से वाहिर की वात है।

उपर्युक्त घटना-चक्र से दो वातें स्पष्ट रूप से हमारे सामने आ जाती है, एक तो यह कि पूज्य चरितनायक श्री के सगे सम्वन्धी इनसे वहुत प्यार करते थे, इनके पारिवारिक सम्वन्ध सवसे अच्छे थे यही कारण है कि इनकी ताई ने इन्हें देख कर इनको पुत्र तुल्य समझा और माता पुत्र के लिए जो ममत्त्व रखती है, उसी ममत्त्व की उसने अभिव्यक्ति की। उक्त घटनाचक्र से दूसरी वात यह भी स्पष्ट हो जाती है कि चरितनायक श्री के परमपूज्य गुरुदेव श्री स्वामी रंगलाल जी महाराज अपनी साधु-मर्यादा को आस्था, निष्ठा तथा दृढ़ता से परिपालन किया करते थे और उसके प्रति वे पूर्णतया जागरूक एवं सतर्क थे। साधु के निमित्त वने भोजन आदि को कभी ग्रहण नहीं करते थे. इसके अतिरिक्त वे परम दयालु और कृपालु भी थे किसी दुःखी को देखकर उनकी आत्मा सिहर उठती थी, दुःखी का दुःख दूर करके ही उनको शान्ति प्राप्त होती थी।

उपसंहार

प्रातःस्मरणीय, शास्त्रविशारद चारित्रचूड़ामणी, धर्मदेव, श्रद्धेय श्री स्वामी छगनलाल जी महाराज स्थानकवासी जैन जगत के जाने-माने संयम-निष्ठ महापुरुष थे। ये वि० सं० १६४६, राजस्थान के प्रख्यात नगर जोधपुर के अन्तर्गत पीपलाद नामक गाँव में जाटवंशीय चौधरी तेजाराम जी की धर्म-पत्नी माता यमुनादेवी की पवित्र कुक्षि से पैदा हुए थे। चौधरी तेजाराम जी खेती किया करते थे, प्रकृति सरल, अत्यन्त मधुर थी, ये सत्यवादी और अल्पभाषी थे। चौधरी तेजाराम के स्वर्गवासी वन जाने के अनन्तर पूज्य चरितनायक श्री की माता यमुनादेवी को वैराग्य हो गया, दीक्षा लेने से पूर्व माता यमुनादेवी ने अपने प्रिय पुत्र श्री माडूसिंह जी (चरितनायक) को सन्तशिरोमणि स्वामी श्री रंगलाल जी महाराज श्री के चरणों में सौंप दिया और स्वयं किसी जैन साध्वी के पास साध्वी वन गई। वि० सं० १६६०, वैशाख शुक्ला तृतीया के शुभदिन "शेरसिंह की रीयाँ" नामक ग्राम में पूज्य चरित-नायक श्री को दीक्षित किया गया था। दीक्षा ग्रहण के अनन्तर आपने

प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी, गुजराती आदि अनेक विध भाषाओं का गम्भीर अध्ययन किया और इनमें प्रवीणता अधिगत की, आपकी बुद्धि बड़ी कुशाग्र थी हजारों श्लोक आपने कण्ठस्थ कर लिए थे।

वि० सं० १९७४ में 'शेरसिंह की रीयां" नामक गाँव में पूज्य चरितनायक श्री के परमसमादरणीय गुरुदेव श्री स्वामी रंगलाल जी महाराज का स्वर्गवास हो गया। पूज्य गुरुदेव का वियोग असह्य होता है, यह पाठक जानते ही है, किन्तु हमारे पूज्य चरितनायक श्री ने गुरुवियोग की दुःखद एवं असह्य घड़ी धीरता वीरता और गम्भीरता के साथ सहन किया। पूज्य गुरुदेव के स्वर्गासीन हो जाने के पश्चात् आपका अधिक झुकाव तपस्या की आराधना की ओर हो गया। एक बार आप ने लगातार छः महीने केवल छाछ पर ही व्यतीत किये, छाछ के अतिरिक्त किसी अन्य पदार्थ का आपने सेवन नहीं किया, गरमी के दिनों मे आपश्री सूर्य की आतापना लेते और सरदी की ऋतु में सरदी की। इस तरह तपस्या भगवती की आराधना एवं उपासना में लग कर आप श्री ने अपने जीवन को कुन्दन बना लिया।

वि० स० १९७९ में, हरमाडा क्षेत्र में पूज्य चरितनायक श्री के पावन चरणों में श्री टीकमचन्दजी तथा इनके सुपुत्र श्री गणेशीलालजी ने दीक्षा ग्रहण की, ये दोनों आप श्री के जीवनकाल में ही तपसंयम की कल्मषहारिणी आराधना करते हुए स्वर्गधाम में जा विराजे।

वि० सं० १९९० में अखिल भारतवर्षीय स्थानकवासी जैन मुनिराजों का अजमेर नगरी में एक वृहत् सम्मेलन हुआ, इस सम्मेलन में पूज्य चरितनायक श्री जी महाराज पधारे थे, इनकी आचार-विचार सम्बन्धी आदर्श योग्यता को निहार कर सम्मेलन में विराजमान मुनिमण्डल ने आपको मन्त्री पद से विभूषित किया था। परन्तु आगे चलकर श्रमण संघ के संगठन की स्थिति खराब देखकर आपने इस मन्त्री-पद से त्यागपत्र दे दिया था।

पूज्य चरितनायक श्री का विहार क्षेत्र बड़ा विस्तृत रहा है, मारवाड़, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, हरियाणा और पंजाब आदि सभी प्रान्तों को आप श्री अपने परिपूत चरणों से पावन बनाते रहे और आपने यत्र, तत्र, सर्वत्र सत्य की पावनी गङ्गा प्रवाहित की। पंजाब में जब आप श्री पधारे तब पहला चातुर्मास आपने माछीवाड़ा (जिला लुधियाना) में सम्पन्न किया। वि० सं० २०१२ का चातुर्मास आपने खन्ना में किया और इसी चातुर्मास में आपके सेवाभावी, विनीत और आज्ञाकारी प्रिय शिष्य श्री गणेशीलालजी महाराज

का स्वर्गवास हुआ । वि० सं० २०१७ आषाढ़ शुक्ला तृतीया के शुभ दिन सिरसा नगरी में वैरागी श्री रोशनलालजी ने आपके पवित्र चरणों में दीक्षा अङ्गीकार की ।

हमारे महामहिम पूज्य चरितनायक श्री छगनलालजी महाराज एक मास कम ६८ वर्षों तक संयमसाधना के महापथ पर अग्रसर होते रहे, इन्होंने अनेकानेक परीषह सहन किए, स्थान-स्थान पर अहिंसा, संयम और तप की पावन ज्योति जलाकर लाखों व्यक्तियों के अन्तर्जगत को ज्योतिर्मान बनाया, सम्यग्ज्ञान की गङ्गा प्रवाहित करके जनताजनार्दन की कभी न भुलाई जा सकने वाली, वाञ्छनीय सेवा की, द्विपद पशु को सत्पथ दिखलाकर मानव बनने की आदर्श कला सिखलाई, इसके अलावा इन्होंने जिस श्वेत चादर को जीवन की चौदह वर्षों की आयु में धारण किया था उसे जीवन के एक मास कम ६८ वर्षों तक निर्मल बनाए रक्खा, उसे कहीं दागी नहीं होने दिया, प्रत्युत अपने समुज्ज्वल और पावन आचार-विचार से उसे और अधिक चमका कर दिखलाया । अन्त में, वि० सं० २०२८, चैत्र शुक्ला, द्वितीया, रविवार दोपहर के तीन बजे "साधना के अमर प्रतीक" विश्वविभूति, अहिंसा, संयम और तप की साधना के अमर साधक सन्त शिरोमणि परम श्रद्धेय श्री स्वामी छगनलालजी महाराज ठीक उसी स्थान पर जहाँ पर इनके सुविनीत शिष्य श्री गणेशीलालजी महाराज ने शरीर त्यागा था, वहीं पर समाधि सहित स्वर्गधाम में जा विराजे ।

अप्पाहारस्स दंतस्स देवा दंसेंति ताइणो ।

—दशाश्रुतस्कंध ५।४

जो साधक अल्पाहारी है, इन्द्रियों का विजेता है, सभी प्राणियों के प्रति रक्षा की भावना रखता है, उसके दर्शन के लिए देवता भी आतुर रहते हैं ।

× × ×

अम्बरमनुरुल्लङ्ध्यं वसुन्धरा सापि वामनैकपदा ।
अब्धिरपि पोतलङ्ध्यः सतां मनः केन तुल्यं स्यात् ?

आकाश चरण रहित सूर्य के सारथि द्वारा लाँघा जाता है, पृथ्वी वामन अवतार के एक पग में समा जाती है, और समुद्र जहाज से पार किया सकता है, किन्तु संतों के विशाल मन की किससे तुलना की जाय ?

× × ×

दौलते-दुनिया से 'आतिश' हमने जब फेरी निगाह ।
जिस तरफ आँख उठ गई, तोदे लगे अक्सीर के ।
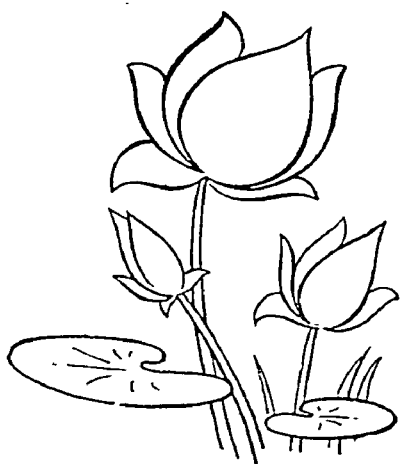
श्रद्धाञ्जलियाँ

श्रद्धाञ्जलियाँ

अनुभवी वयोवृद्ध महात्मा

—श्रमणसंघ के द्वितीय पट्टधर जैनधर्म दिवाकर आचार्य सम्राट
पूज्य श्री आनन्दऋषि जी।

स्वामी जी श्री छगनलाल जी म० से माछीवाड़ा (पंजाव) में मिलाप हुआ था। आप वड़े अच्छे स्वभाव के मिलन सार सन्त थे, सवके साथ मधुर व्यवहार रखना आपके जीवन की विशेषता थी। आपकी सरल प्रकृति को आज भी लोग स्मरण करते हैं। ··· मुनि श्री जी के वियोग से एक अनुभवी वयोवृद्ध महात्मा की खामी हुई है। उनके सम्मानार्थ कोई शैक्षणिक कार्य करना श्री संघ का कर्तव्य है······॥

सद्धंजलि

—पंडितप्रवर श्रद्धेय श्री फूलचन्द्र जी म० (करांची वाले)

णायपुत्तं महावीरं, पणमित्ता जिणेसरं।
किज्जइ मुणि गणेसिस्स, सद्धजली-समप्पणं॥ १॥

पुज्जस्स सामिदासस्स, संपदाए छगण मुणी।
सो अमोरिसिणा सद्धिं, चाउम्मासं करित्तु य॥ २॥

दिल्ली-मंडावरं पत्तो, टेकचंदेण सेट्ठिणा।
गणेसीलाल पुत्तेण, दो वि होत्था विरागिणा॥ ३॥

तस्स उग्ग सहावेण, वे वि आसि सुदुक्खिया।
परोप्पर समयं किच्चा, मुणि छगणेण मेलिया॥ ४॥

दिविखया ते न मे णायं, तस्सहावो वितारिसो।
किलंतो टेकचंदो उ, न गणेसो महामुणी ॥ ५ ॥

सो संति मुत्तीगुत्तीहिं गुत्तो, जुत्तो अणेगेहिं गुणेहिं सम्मं।
चईअ देहं ण च सिस्स भावं-आजीवणं सुट्ठु सुपत्त सिस्सो ॥६॥

पसंसणिज्जं चरियं पसत्थं, संजम धुरा धारण पच्चलस्स।
मुणी गणेसिस्स गुणेहि गिद्धा अज्जावहि तं तु जणा संरति ।७।

एगूणे पंचविसइ सयसमे वीर निव्वाण अद्दे।
अस्सिणिमासे किण्ह पक्खे तेरसी-भोमवारे।
फईरेदू मुणिणो सिस्सो पुप्फ भिक्खुत्ति नामो।
झरिया नयरे पयच्छइ, अंजली जेउ सुइरं ॥८॥

स्वर्गीय स्वामी जी श्री छगनलाल जी

—प्रवर्तक श्री मरुधरकेशरी मिश्रीलाल जी महाराज

सवैया

'रंग' को शिष्य सुरंग बण्यौ मन चंग जिमी जलगंग समानो।
आलस अंगन आन उड्यौं, वर तत्व तरंग हिये हुलसानो।
भंग कियो न कभी भजवा जस नाम उतंग रह्यो नहीं छानो।
सो छगनेश विलाय गयो वह जैनसमाज को संत सयानो ॥१॥

दोहा

रेख संघ में मेख सो, देख संत थो एक।
टेक हेक छोड़ी नहीं, भेख धार तन तेक ॥ २ ॥

अमि ऋषि अमृत सरिस, संग निभायो स्नेह।
वह उनमें, उनमें वह, एक जीव दो देह ॥ ३ ॥

चौथ मुनि जय संघ में, ज्योतिर्धर जसज्हाज।
उन पासे वहुकाललो, रहै छगन महाराज ॥ ४ ॥

कर दंडो गढवाल को, गौरवर्ण मुस्कान।
परम मित्र मुनि चाँद को, निभियो प्रेम प्रधान।। ५ ।।

जाट होत जिन धर्म को, दृढ़ श्रद्धा थी जास।
छगन मगन रंग मुनि चरण, रसिक रयो हुल्लास ।।६ ।।

मरुधर दिक्षा पुनि जनम, प्रेम रख्यौ पंजाव।
कोई कैसा क्यों न हो, दे तो जरद जवाव ।। ७ ।।

वाणी में मिठियास थो, जनता आती दौर।
आलस थो व्याख्यान को, देता थोड़ी ठौर ।। ८ ।।

ज्ञान ध्यान स्वाध्याय को, कोड घनो थो मन्न।
मौनी पिण मानी नहीं, लोक कहत धन धन्न ।। ९ ।।

डिगियो नहिं रहियो सधर, एकलड़ोह अबीह।
हटतो नहीं डटतो सदा, जो सादूलो सीह ।। १० ।।

टीकम सेवा से टल्यौ, गाढ़ो रह्यौ गणेश।
बूढ़ा पे चेलो चल्यौ, आवत याद हमेश ।। ११ ।।

मोका पर चेलौ मिल्यौ, रोशनलाल रसाल।
सेवा कीधी सांतरी, दी आसीस दयाल ।। १२ ।।

पाली अरु अजमेर में, सम्मेलन में साथ।
एक मतो राख्यौ सदा, कदी न पलटी वात ।। १३ ।।

विन मिलियों ही वीतगा, पूरा वर्ष पचीस।
पिण संदेशो आवतो, आवण हत्ती जगीश ।। १४ ।।

अचानक ही हड़पगो, छगन मुनि को हन्त।
श्रद्धांजली अर्पित करूं, मिश्री मुनि धर रक्त ।। १५ ।।

'रोशन' रोशन कीजियो, अपने गुरु का नाम।
सारो भार निभाव जो, लायक वनी ललाम ।। १६ ।।

❁

छगन चतुर्दशी

—श्री रजतमुनि जी महाराज

पीपलाद मां प्रकटिया, वावा छगन मुनीश।
यमुनादे रा लाड़ला, तेज-तेज जगीश ॥
जाहिरजग पुज रेख के 'रंग' शिष्य रमनीय।
ता पद कज-रज छगन था, कोमल तन कमनीय ॥

मनहर छन्द

तन की छविली छवी, वृत्ती न कायर कभी,
सभी से सनेहशील, दम्भता से न्यारे थे।
पंडित प्रवीन आप, नाप नाप वात के ते,
वोल अनमोल साफ-भावुक सु भारे थे।
व्योम पट निधि विधु, वैसाख शुकल पख,
शिवचक्षु तिथि दीक्षा, शिक्षा-रूप-प्यारे थे।
छगन-मगन ज्ञान-ध्यान धाम गुणवान,
"रोशन" मुनि के प्रान-मास के सितारे थे।

दोहा

वसु नैन नभ कर वरस, माधव शशि वीज।
रवी वार ने रम गया, खन्ने खोई चीज ॥

अठसठ वरष अराधियो, सखरो संयम साज।
तार अनेकों वे तिरया, छगन महन्न मुनिराज ॥

छप्पय

छ-ल रा वल ने छेद, भेद जग दी ममता ने।
ग-हन नाण गुण खाण, रंग-गुरु शरणे आने ॥
न-व्य न्याय निष्णात-शान्त चित वण ने भारी।
मु-नि पन नीको पाल-खाल खींची पापाँरी ॥
नि-त निरमल चितमां ध्यान ज्यां धर्‌यौ वीर रो पेखलो।
जी-वन सुधन्य शुभ नाम ओ आद्याक्षरमां देख लो ॥

सोरठा

दड़-वड़ दौरी दौर विना देर सुर पुर वरी ।
रोशन रा शिरमोर-एकलहो हा ! परहरी ॥
छक्काया प्रतिपाल, जगत ख्याल लखि **व्यालज्युं** ।
संयम शुध मन पाल तुरत करम-दल दलितकर ॥
रोशन मुनि पर रीस, करके करुणा निधि हहो !।
सद्गुरु छगन मुनीश, विबुधनमाँ विलमागया ॥
रेण दिवशरी याद, रोशन मन रहती सदा ।
सद्गुरु हे जसवाद, आप विना कुण दे सके ॥
'चांद' 'छगन' री जोर, मरुधर में मानी जती ।
उत्तर दछिन ओर, देव गति दोनों वरी ॥
थो मरुधर री आस, सास छतां ना आसके ।
दोनों गये विलास-**पसरी जसरी पोटली** ॥
आतम ले आनन्द-स्वपरिणामें परी रमें ।
'रजतमुनि' सुखकन्द अक्षय सुख पावे अवल ॥

●

—पूर्वोपाध्याय स्वामी श्री जीतमलजी महाराज

सहृदयाय दयानिधिमूर्तये,
दशदिगन्त सुविस्तृत कीर्तये ।
सुकृतिने कृतिने क्षमिने मम,
छगनमल्ल महामुनये नमः ॥

स्वामीजी श्री छगनलाल जी महाराज साहब की याद बनी रहे !

—मुनि श्री लालचंद जी म० 'श्रमणलाल'

स्वाहा होते हैं कर्म जिससे वह तपस्या आदरी ।
मीठी लगी जिनको सदा निःस्वाद सूझती गोचरी ॥
जी ये निरन्तर जप तपी वन सिंह सम निर्भय अहो ।
श्री रंगलाल सुशिष्य मुनि को आप सब ही जय बोलो ॥ १ ॥

छल में न आए जो कभी कामादि इन्द्रिय के गुरु।
गफलत रखी न कभी जिन्होंने जब से किया संयम शुरु ॥
नमते रहे पद पाँच को खमते रहे कठिनाईयाँ।
लाख लाख प्रलोभनों ने लखो थी रुसवाइयां ॥ २ ॥

ललचा सके उनको नहीं ऐसा कभी देखा नहीं।
जीना रहा उनका सदा जीता समान सही सही ॥
मन में न जिनके आ सकी थी अरे दुष्टा कायरी।
हारे न परिषह सहन में तृष्णा वैतरणी थी तरी ॥ ३ ॥

रागी बने जनरागिणी से पर विरागिणी से तुम बने।
जरा में भी जरा से भी तुम नहीं ढीले बने ॥
साथ में रह कर बहुत ही बार चौमासे किये।
हमने कृपा और प्रेम देखा और उससे गुण लिये ॥ ४ ॥

बताओ वह आज है कित हित मित सहित उदारता।
कीजिये क्या? जाइए कहें? लगता नहीं बिल्कुल पता ॥
याचना किससे करें गत पट्ट शिष्य गणेश भी।
दर्द दिल में नहीं समाता उमड़ पड़ता है कभी ॥ ५ ॥

बखत 'चौथ' स 'चांद' गुरु के मित्र सम गुरु भाईये।
नीर निर्मल विगत कलिमल सबहि को सुख दाइये ॥
रखे रोशन नाम गुरु का, रोशन मुनि निर्दोष रहे।
है त से मुनि 'लाल' कहता प्रवह आनंद के बहे ॥ ६ ॥

वियोगाष्टक

—श्रद्धावन बालकवि किंकर (जोधपुर, राज०)

[१]

दोहा—जग अघसू जुंजलाय झट, छती रिद्ध ने छोर।
छगन हृदय मां छा गयो, संयम रो शुचि शोर ॥ १ ॥

हरिगीतिका छन्द

[२]

पहले किये सत्कर्म उनकी सुखद किरणें ये खिलीं ।
ज्ञानी गुरु श्री रंग की सत्संग जिससे यह मिली ।।
सुन द्वन्द नहिं निर्द्वन्द उनका सदुपदेश सुहावना ।
सत्वर जगी इनके हृदय में विमल ऐसी भावना ।। १ ।।

[३]

है सार क्या संसार में जिसको अवश्य निहारना ।
नर जन्म का जो कार्य है उसको वृथा न विसारना ।।
इस हेतु सद्गुरु रंग के पदकञ्ज में धर शीश को ।
विनवे दयालो ! शीघ्र करिये सफल दास जगीश को ।। २ ।।

[४]

सुन छगन का प्रिय विनय यों गुरु देव उत्तर में कहे ।
हैं सार के ये तो चने जिनको चवाना कठिन है ।।
कर-वद्ध हो विनवे छगन सब कठिनतायें दूर हो ।
जो शिष्य पै सद्गुरु कृपा सानन्द हा भरपूर हो ।। ३ ।।

[५]

गुरु ने परीक्षा में इसे, पा प्रथम नम्वर पास हां ।
उपरान्त इसके परिजनों की प्राप्त कर अरदास हां ।।
लेकर चतुर्विध संघ की शुचि साख संयम है दिया ।
अरु कर कृपा इनको पढ़ा षट् शास्त्र का ज्ञाता किया ।। ४ ।।

[६]

उस ज्ञान के हि प्रताप इनकी ज्योति जग में जो जगी ।
जिसको विलोक कुतर्कियों की तर्क हां धूजन लगी ।।
इक वेर इनकी देशना जो सजन सुन पाते सही ।
जाते समय निज चित्त इनको सौंप जाते वे सही ।। ५ ।।

[७]

वे छगनमल मुनिराज आज समाज को विलखाय के।
दे देशना सुन्दर अहा ! सुमनस सभा में जाय के।।
आलोक भावुक भक्त विलपे यों हहा ! कर जोर के।
हा हा सिधारा स्वर्ग गुरु असहाय हम को छोर के ।। ६ ।।

[८]

जो था किया संकल्प उसको क्यों तजा गुरु जी कहो।
ऐसे कन्हैयालाल मुनि का चित्त यह कलपे हहो ।।
अणगार रोशन दोप कुछ भी आप हाय वताय के।
हा ! जाय सुर पुर वसे कवि वाल को कलपाय के ।। ७ ।।

❁

गौरवशाली जीवन

—कविरत्न श्री महेन्द्र मुनि जी "कमल"

[मेवाड़ केशरी श्री मोहनलाल जी म० के सुशिष्य]

आचार्य श्री० स्वामीदास जी महाराज की परम्परा में परम श्रद्धेय आचारनिष्ठ श्रीछगनलाल म० सा० महान त्यागी वैरागी आत्मार्थी महा पुरुष हो गए हैं।

यद्यपि श्रद्धेय स्वामी जी म० के पावन दर्शनों का सौभाग्य मुझे संप्राप्त नहीं हुआ तथापि उनके विषय में अब तक जो कुछ सुना है उससे मैं तो यह दृढ़ता पूर्वक कहूँगा कि श्रद्धेय स्वामीजी म० का जीवन निसन्देह महान गौरवशाली जीवन रहा है। वैसे आज दैहिकदृष्ट्या वह महापुरुष हमारे मध्य नहीं है पर यश शरीर से आज भी वे हमें प्रेरणा देते हैं और देते रहेंगे।

उस महान संत रत्न के प्रति हृदय में कितनी आस्था है यह शब्दों द्वारा वताने जताने की वात नहीं, हृदय उनके प्रति अनन्त असीम श्रद्धा से परिपूरित है और रहेगा। अंत में उनकी उज्ज्वल, समुज्ज्वल संयम साधना के प्रति मैं मेरी ओर से हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

तुम्हें कहता है मुर्दा कौन, तुम जिन्दों के जिन्दा हो।
तुम ही ने किया वाकी, तुम्हारी खूबियां वाकी ।।

[तर्ज—म्हाने जैपुरिया रो……]

जिन शासन रा मोटा सन्त, सांचा संजमी निग्रन्थ।
थे तो जैनरा शासन ने दिपायो ओ म्हांणा अन्नदाता,
घणां गुण गावां जी……

छगनलाल जी गुण खान, चमक्या जग में भानु समान।
थांणी महिमा रो पार नहीं पायो ओ म्हांणा अन्दाता—
घणा गुण गावां जी……

धन धन यमुना बाईरा लाल, छोड़ी सारी माया जाल।
भेटया स्वामी रंगलालजी का पगल्या ओ म्हांणा अन्दाता—
घणा गुण गावां जी……

संजम लीयो दीनदयाल, किया भव जीवाँनै निहाल।
स्वामीदासजी की परम्परा चमकाई ओ म्हाणाअन्दाता—
घणा गुण गावां जी……

संजम मांही थे हा शूरा, सदा कषाया सू रया दूरा।
तप-जप साधना री ज्योति जगाई ओ म्हाणा अन्दाता—
घणा गुण गावां जी……

गुण रतना रा भण्डार, 'कमल' श्रद्धा रा दो चार।
फूल चरण में भेंट चढ़ाऊँ ओ म्हाणा अन्दाता—
घणा गुण गावां जी……

श्रद्धासुमन

—पण्डितरत्न श्री मिश्रीलाल जी महाराज 'सुधाकर'
तथा मधुर व्याख्यानी ईश्वरमुनि जी, आदरणीय श्री रंग मुनि जी महाराज

छ काया प्रतिपाल, दमीश्वर जैनधर्म अनुरागी थे।
यमुना बाई के लाल यशस्वी, तेजस्वी सौभागी थे॥

ग जगमनो इरिया युक्त चाल, शास्त्रों के पूर्ण अभ्यासी थे।
थे पूर्ण तपस्वी, ओजस्वी वक्ता आत्मानुशासी थे॥

न भ मण्डल में रवि पुञ्ज प्रकाशित त्यों मुनिमण्डल भासित थे।
तुम ज्ञान दर्शन चारित्र युक्त प्रतिपल ही स्वयं प्रकाशित थे॥

ला लायित भक्त सदा रहते तुम पावन दर्शन पाने को।
अभिलाषा नित्य वनी रहती पा लें हम ज्ञान खजाने को॥

लम्बा चौड़ा व्यक्तित्व तुम्हारा, तेजराम के नन्दन थे।
पिपलाद गाँव में जन्म लिया चौधरी कुल के शुभ स्पन्दन थे॥

जीवन था निर्मल शान्त दान्त गुण गण गरिमा रत्नाकर थे।
उन्नीसौ साठ अक्षय तृतिया को वन गये आप प्रभाकर थे॥

मध्य भारत, गुजरात और पंजाव आपने फरस लिया।
था राजस्थान तो हृदय हार सर्वाधिक विचरण आप किया॥

हा ! क्रूर काल इतनी न दया घटमें तेरे कुछ आई थी।
इस ज्योति पुञ्ज मुनि छगनलाल की तूने ज्योति बुझाई थी॥

रा ही सच्चे मुनि पथ के थे, अटसठ वर्ष संयम पाला।
और खन्ना नगर पंजाव जहाँ पर अन्तिम समय विता डाला॥

जसवन्त जगत में स्वामीदास पुज्य रेखराज गुणवान हुए।
रंगलाल गुरु के शिष्य आप प्रतिभाशाली प्रख्यात हुए॥

की तनी ही भाषा के ज्ञाता ज्योतिष आगम श्रुत धारक थे।
वाणी मीठी अमृत प्यारी जन जन में धर्म प्रचारक थे।

जव कभी भक्त तुम्हें याद करें, आँखों से अविरलधार वहे।
नहीं देखा तुमसा दिव्य तपस्वी प्रतिपल महिमा गान कहे॥

यह सुमन श्रद्धा के मैं लाया, कृपया इनको स्वीकार करें।
जहाँ पर होवे वह पुण्य आत्मा वही निजानन्द वास करें॥

होकर निर्भय विचरें जगमें और संयम निर्मल हम पालें।
"रंगमुनि" तुम्हारे अनुगामी वन रागद्वेष के फन्द टालें॥

जिनशासन के प्रभावक

—श्रद्धेय मालवरत्न श्री कस्तूरचन्द जी महाराज

जिन शासन प्रभावना के अनुयायी स्वामी श्री छगनलाल जी म० सरल मना एवं भद्र—स्वभावी संतगणों में एक थे। जब भी किन्हीं मुनि-समूह के आगमन का संदेश सुनते या सामने होने पर परिचय पाते तो आपकी प्रसन्नता का पारावार नहीं रहता। सात्विक अनुराग हो, किन्तु मन में द्वेप और भेद की भावना नहीं हो यह मुनि जीवन की अनुपम विशेपता है।

आपका जहाँ भी विचरण होता था वहाँ के जीवन में तप त्याग की महिमा लहराने लगती थी। छोटे बड़े सभी में आप निरन्तर धर्म प्रवृति की प्रेरणा दिया करते थे। जोकि यह एक प्रशंसनीय और प्रसन्नतादायक बात है।

मुनि श्री का मेरे से कई स्थानों पर मिलना हुआ था। जब भी मिलते थे, अत्यधिक स्नेह पूर्वक आप से बात चीत हुआ करती थी। गहन आध्यात्मिक चर्चा के प्रत्येक पहलू पर समाधान प्राप्त करना आपकी अनूठी जिज्ञासा प्रियता का प्रत्यक्ष उदाहरण था।

स्व० आचार्य श्री स्वामीदास जी म० की वर्तमान परम्परा के आप ज्येष्ठ एवं अनुभवी मुनि थे। आपके रिक्त स्थान को पूर्ति फिलहाल संभव नहीं दिखाई देती। आप जिन शासन प्रभावना के प्रेमी और अनुयायी थे।

मेरी श्रद्धा के प्रेरक

—मुनि श्री फूलचन्द्र जी 'श्रमण'

एक प्राचीन महर्षि ने दृढ़ विश्वास के साथ कहा था "वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम्" मैं इस महान पुरुष को जानता हूं। उस महर्षि के शब्दों का अनुकरण करते हुए मैं भी श्री छगनलाल जी महाज के सम्बन्ध में कह सकता हूं कि मैं इस महान् महापुरुष को जानता हूँ।

यद्यपि यह सत्य है कि वे धरती की गोद छोड़ चुके हैं, उनका अस्तित्व महा अन्तरिक्ष के किसी दिव्य लोक की शोभा बन चुका है, परन्तु उनके श्वास उश्वास यहाँ की वायु में, उनका तपस्तेज सूर्य, चन्द्र और तारकों में उनकी

पवित्र मुस्कान मुस्कराते फूलों में, उनकी वाणी महासाधकों के शब्दों में मुझे तब दिखाई देने लगती है जब कभी वे स्मृति पटल पर चित्र के रूप में उभर आते हैं।

बात पुरानी है, २२ वर्ष पुरानी, जब मैंने भीखी में अपने साधक जीवन के १८ घण्टे उनके पावन सान्निध्य में व्यतीत किये थे, परन्तु उनके पावन उदात्त व्यक्तित्व की उनके साधना लोकमण्डित मुनित्व की जो छाप मेरे मन:पटल पर अंकित हुई वह कभी मिट ही नहीं पाई, उनकी पावन स्मृति सदा मेरे मन:परितोष को ही सम्वर्धित करती रही है।

यहाँ एक बात स्पष्ट करदूं, कि मैंने न तो कभी उनके नामका स्मरण किया है और न ही उनके उस शरीर का, जो खन्ना में सबके देखते ही देखते भस्म बन गया था। नाम और शरीर तो परिवर्तनशील है, सबके देखते ही देखते वे बदल गये, बदलना ही था उन्हें, यह बदलना प्रकृति का अटल विधान है, मैं उस विधान का उल्लंघन कैसे कर सकता हूँ, मैंने कभी भी उस विधान को उल्लंघन करने का प्रयास नहीं किया। जो हो रहा है, जो होना है वह होता रहे, मैं तो उसका केवल द्रष्टा मात्र देख रहा हूँ। इसलिए परिवर्तन प्रवाह में बहते पौद्गलिक द्रव्यों के स्मरण की ओर न जाने में ही अपना कल्याण मानता हूँ और मैं कल्याण पथ को छोड़ने में हिचकता हूँ, परन्तु मैं भी उसी महा पथ का पथिक हूँ जिस पथ के वे महापथिक थे, वे अपने पथपर चलते हुए सब कुछ छोड़ रहे थे—राग भी, विराग भी, आकर्षण भी, विकर्षण भी, सुख भी दुख भी, वे आत्मा के चारों ओर जो कुछ इकट्ठा हो गया था उसे हटाते जा रहे थे, अत: उनके आत्मनिष्ठ सौम्यता, नम्रता, स्वाध्यायशीलता तपोनिष्ठा, आनन्दमयता, सहनशीलता आदि गुण स्वत: ही व्यक्त होते जा रहे थे। सूर्य को प्रकाश करना पड़ता है, यह प्रकाश सूर्य का स्वभाव है, उनका आत्मनिष्ठ प्रकाश क्षण-क्षण बढ़ता जा रहा था, और वे स्वयं यहाँ प्रकाश की ओर बढ़ते जा रहे थे। मेरी स्मृतियाँ जब भी भीखी की ओर जाती हैं वे तभी उनके आत्मनिष्ठ गुणों को संजो कर साथ लाती हैं, उनसे प्रकाश पथ पर ही प्रेरणा पाकर लौटती है, अत: मैं उनके गुण गण के स्मरण मेंकुछ क्षणों के लिये खो जाने में अपने जीवन की धन्यता स्वीकार करता हूँ।

मैं बड़े विश्वास के साथ कह रहा हूँ कि "मैं उस महापुरुष को जानता हूँ—'वेदाहमेतं पुरुष महान्तम्' मेरे इस विश्वास के पीछे केवल १८ घण्टों का सान्निध्य ही नहीं है, वह श्रद्धा भी है जिसने उस दिन जन्म लिया था

जिस दिन मैंने उन्हें देखा था स्थूल चर्म-चक्षुअ से नहीं, अन्तः नेत्रों से। मेरी नवजात श्रद्धा तब से आज तक आकाशबेल की भाँति विकासशील रही है और विकासशील है। आकाशबेल का स्वभाव है वह स्वयं विकसित होती हुई पेड़ पौधों को सुखाती रहती है। मेरी श्रद्धा भी स्वयं विकासशील है। परन्तु उन समस्त वैभाविक प्रवृत्तियों को मुरझाने के लिये वाध्य करती रहती है जो मेरे आत्म-विकास-पथ में वाधक हो सकती हैं।

श्रद्धा जब आत्म-विकास के मार्ग पर चलती है तो वह यह नहीं देखती कि मैं किधर जा रही हूँ, जल को अपना मार्ग नहीं ढूँढना पड़ता, उसे ढलान अपने आप मार्ग देती रहती है। श्रद्धा को भी अपना मार्ग नहीं ढूँढना पड़ना स्वतः ही उसका मार्ग प्रशस्त होता है, श्रद्धा है ही वही जो सत्य की ओर जाती है और सत्य जिसे अपनी ओर आकृष्ट करता रहता है, अतएव '**श्रद्धया सत्यमाप्यते**' - श्रद्धा से सत्य के पास पहुँचा जाता है। यह उक्ति प्रसिद्ध हुई है। सत्य वह है जिसमें संशय नहीं, जहाँ संशय है वह सत्य नहीं अतः असंशय-निष्ठा ही श्रद्धा है। मैं देख रहा हूँ अपने चारों ओर के दृश्य जगत में चारों ओर संशय ही संशय व्याप्त हो रहा है, पति को पत्नी पर संशय है, पत्नी को पति पर संशय है, पिता और पुत्र के बीच में संशय है, भाई-भाई के व्यवहार संशयाच्छन्न हैं, गुरु और शिष्यों के मध्य भी संशय की दीवार उठती जा रही है। इसका मुख्य कारण है हमारा वैज्ञानिक अध्ययन। जड़ विज्ञान की शिक्षा ने प्रत्येक व्यक्ति के हृदय द्वार पर संशय को खड़ा कर दिया है, कभी-कभी मैं सोचता हूँ कि लोग कहते हैं कि "हमारा धर्म-कर्म सफल नहीं होता" वे क्यों कहते है। धर्म-कर्म तो निश्चित ही सफल होने चाहिए। फिर जब कभी कुछ गहरे में खोजता हूँ तो पाता हूँ आज के साधक का धर्म-कर्म संशयाच्छन्न है, और संशयाच्छन्न धर्म प्रभावशीलता को कैसे व्यक्त कर सकता है?

एक नाव मझधार में डूब रही थी, सब व्याकुल थे, मृत्यु को जल के प्रवाह के साथ आती देखकर, एक तथाकथित धार्मिक वृद्धा मृत्यु भय से, राम, कृष्ण, दुर्गा, महावीर, शंकर, भैरव, गुरु नानक, पीर पैगम्बर जो भी उसे याद आया वह सब का बचाव के लिये आवाहन कर रही थी, पर नाव डूबती जा रही थी, वृद्धा की सब प्रार्थनाएं विफल होती जा रही थीं। तभी उस नौका में बैठे एक सन्त ने कहा— मां! प्रार्थनाएँ बन्द करो, नहीं तो सब डूब जायेंगे। अब सन्त जी ने अपनी सशयहीन निष्टा के साथ अपने एक ही इष्ट का स्मरण किया—तीव्र वायु चली, नौका डूबने से पहले ही किनारे पर जा पहुँची।

मैंने इस अचल सत्यनिष्ठा के श्री छगनलाल जी महाराज में दर्शन किये थे। दर्शन कोई बड़ी बात नहीं, उनसे अचल सत्यनिष्ठा के मार्ग पर बढ़ते रहने की प्रेरणा पाई थी, उसी प्रेरणा पर मैं सत्य के मार्ग पर बढ़ता जा रहा हूँ श्रद्धा के साथ। अत: मेरी श्रद्धा उनका पुण्य स्मरण करती रहती है। इस पुण्य स्मारिका की प्रकाशन वेला ने श्री छगनलाल जी महाराज की स्मृति के साथ-साथ मेरी श्रद्धा को पुन: जाग्रत कर दिया है जिससे मैं अप्रमत्त भाव से अपने श्रद्धेय की ओर बढता चलूँ।

श्रद्धेय श्री छगनलाल जी महाराज

—मधुरप्रकृति के धनी श्री रतनमुनि जी (पंजाबी)

श्रद्धेय श्री छगनलाल जी महाराज के देहावसान का हृदय विदारक समाचार माछीवाड़ा में विहार के अवसर पर सुन कर मन में अतीव दुखानुभूति हुई। हमारे समाज में जितने भी वृद्ध और अनुभवी तथा विद्वान-सन्त थे एक-एक कर अपने संयम जीवन को संपन्न करके आगे चले जा रहे हैं। यह बात खटकने लगती है। हमारे पूर्वजों ने धर्म का प्रत्येक दिशा में प्रसार एवं प्रचार किया है और उन्हीं के श्रम का फल हैं कि जैन समाज जीवित है।

स्वपुरुषार्थी

—प्रवर्तक पं० मुनि श्री हीरालाल जी महाराज

प० मुनि छगनलालजी महाराज साहिब से परिचय अजमेर, ब्यावर, जयपुर और खन्ना में हुआ। आप बड़े नेक, सरल, विद्वान, और स्वपुरुषार्थी संत रहे। आपका समाज के ऊपर बड़ा भारी उपकार रहा है।

पूज्यपाद प्रात:स्मरणीय

—भण्डारी श्री ज्ञान मुनि जी महाराज, रायकोट

पूज्यपाद प्रात:स्मरणीय धर्मदेव स्व० श्री श्री १००८ श्री स्वामी छगनलाल जी म० सा० बड़े महान आत्मा थे। मिलनसार थे। उनके संयम की ख्याति राजस्थान, पंजाब, हरियाणा इत्यादि प्रदेशों मे दूर-दूर तक फैली हुई है। उनके संयमी जीवन से लोग बड़े प्रभावित थे। मुझे भी उनके चरणों में रहने का सौभाग्य खन्ना में मिला। हमारे पर उनकी बड़ी कृपा दृष्टि थी।

श्रद्धा के सुमन

—कविरत्न श्री चन्दनमुनि जी महाराज (पंजाबी)

छगनलाल महाराज श्री की महिमा का नहि पार।
ज्ञान ध्यान में रंगे हुओं का, कौन कथे उपकार॥

'जमनी बाई' के सुत प्यारे, 'तेजराम' के नयन सितारे।
जबकि पुर 'पिपलाद' पधारे, हर्षित हर नर नार॥

सर्व प्रथम तो खूब पढ़े थे. बचपन में फिर सन्त बने थे।
'रंगलाल महाराज' श्री से, पंच महाव्रत धार॥

एक बार आपने प्यारे, खाने पीने सभी विसारे।
लस्सी पर छः मास गुजारे, चकित हुआ संसार।

नील गगन में यथा सितारे, चमके जग में मुनिवर प्यारे।
जिसने भी वस चरण निहारे, हुआ वही वलिहार ॥
जीवन जिनका था लासानी, मीठी मिश्री जैसी वाणी।
सुन-सुन तरे अनेकों प्राणी, धर्म दया दिल धार ॥
धूम मची थी जिससे घर घर, ज्योतिप विद्या में थे माहर।
त्याग तपस्या, जप जग जाहर, प्यारा मन्त्र श्री नवकार ॥
तपी जपी औ ज्ञानी ध्यानी, सन्त आप थे राजस्थानी।
ले आया पर दाना पानी, इस पंजाव मझार ॥
मरुधर देश न फिर जा पाये, वर्ष इधर ही वहुत विताए।
'खन्ना मण्डी' स्वर्ग सिधाए, कर संथारा स्वीकार ॥
देकर दान ज्ञान का निश दिन, जिन्हें लगाया आपने चरणन।
करे आपको अव वह रोशन, 'रोशनलाल' अणगार ॥
प्रेम प्यार का गुलशन वनकर, लाया है जो '**चन्दन**' चुनकर।
कर लेना स्वीकार मुनिवर, श्रद्धा सुमन दो चार ॥

पूज्य गुरुदेव श्री छगनलालजी म०

—अमृतलाल मरलेचा आसरलाई

मातेश्वरी यमुनावाई ने सम्वत् १९४६ को श्रावण सुदी १५ को एक पुत्र रत्न को प्रसव किया। उसे उस दिन यह नहीं मालूम था कि आज यह जन्मा लाल दुनियाँ में जैनध्वज की शान आन वान को यशस्वी करेगा।

वचपन में खेले कूदे तथा फिर कुछ समझ आते ही अपने तात श्री तेजाराम चौधरी के साथ कभी-कभी साधु संग में जाने लगे। पिता श्री वड़े श्रद्धालु सज्जन थे। चोरी चुगली-जामनी से परे रहने वाले पिता वड़े धार्मिक सज्जन थे। संगति का असर औलाद पर भी अवश्य होता है। सत्संग में जाते-आते रहने से इन्हें सन्तों का सहवास प्रिय कर हो गया। १४ वर्ष की

उम्र में प्रवेश करते ही जैन भागवति दीक्षा अंगीकार कर जैन श्रमण बन ही गये। फिर क्या था आत्म साधना चालू करदी। योग्य गुरुवर हाथ लग जाने से शिक्षा की रुचि भी बढ़ गई।

आवागमन भी गुजरात में विशेष होने के कारण गुजराती मातृ भाषा से ज्यादा अच्छी बोलना, लिखना भी सीख गये, हमें यही भान होता था कि यह गुजराती संत ही हैं। फिर शनैः शनैः आगमों की तरफ अपनी रुचि बढ़ी।

तप जप की आराधना के आप माहिरी सन्त थे। मुझे उस ग्राम का नाम तो याद नहीं, आप एक दिन वहाँ ठहर गये तो वहाँ अठाई पचखली तथा चलते फिरते वह अठाई कर ली। पारणा छाछ से किया तथा दूध मक्खन सेवन नहीं किया। आप शीतकाल में वस्त्र त्याग कर बर्फीली वायु को और ग्रीष्मकाल में सूर्य के प्रचंड ताप को सहते थे। चालीस वर्ष तक मात्र चादर ओढ़कर शयन करते रहे।

आज पार्थिव शरीर से हम लोगों के बीच नहीं हैं पर उनकी याद तो आज भी तरोताजा है।

जमना माता के लाल छगनजी

—श्री विमलकुमार जी रांका नीमाज वाले

जन्म पीपलाद गाँव में पा, जमना की कुक्षी में तू आ,
रोशन की है जैन सकल जात रे।
मन की भाँति-भाँति कटुता को मार, जैन आस्था मुनि पथ को धार,
निकल गये धन धान्य को मार लात रे।।
ना सोये कभी आप सुख चैन में, पढ़ी खूब प्राकृत, संस्कृत दिन रैन में,
व गुजराती भी सीख ली बात बात रे।
मान नश्वर शरीर माया जाल को, तप खूब किया समझ धर्म ढाल को,
संयम वृक्ष फिर खूब पात पात रे।।
तारण तरण बनना ही, जीवन का मुख्य मूल जान के।
केशरी से बढ़े संयम मार्ग में, दिन रात लगन ठान के।।

लाभ आगमों से उठा, तजे नित दोष दूपित ज्ञान के।
ललकार देदी संयम को अटूट, खुद अपना ही सीना तान के।।

छदमस्त शरीर को निरख देख मान, करते ही रहे तप व्रत पचक्खाण,
एक-एक छोड़ मिष्ठान भाँत-भाँत रे।

गहन वन, गम्भीर वन आप खूब, डरे नहिं रुके नहीं थके कभी नहिं ऊब,
कहीं कभी किसी दिन रात रे।।

नष्ठ खन्ना नगर में शरीर हो गया, चैत शुक्ला द्वितीय हर जैनी रोगया,
सम्वत अठाईस के शुभ प्रभात रे।

जीये तो छगन अमर रहे, आज नहिं तो भी हैं अमर ही,
हुए यशस्वी हे गुरुदेव तेरे मात तात रे।।

❀

जैन-साधु मग का मजा

—श्री विमलकुमार जी राँका नीमाजवाले

जैन साधु मग का मजा, उन्होंने खूब ही चखा है।।
छगन मुनिजी को मगन ही पाया,
जब जब मैंने जहाँ भी उनको देख निरखा है।
गगन से गम्भीर, गहन थे वे पण्डित,
और जैन साधु मग का मजा उन्होंने खूब ही चखा है।।
नहीं डरते थे कभी भी सही कहने में,
हिम्मती मानो रत्नाकर थे वे पूर्ण संत आत्मज्ञानी।
लाल जमुना के थे बड़े मस्त योगी,
पर रत्ति भर नहिं थे, वे मान के मोहमानी।।
लगन थी विशेष जिसके दिल माईं,
कि 'संघ एकता' अटूट रहे अमर, युग युग तक।
जी भर सभी कहो आज, गये वे गये,
पर उनका भी अजर अमर बने युग-युग तक।।

तपःपूत उत्कृष्ट संयमी

—वैद्य अमरचन्द जैन, बरनाला

भारत की यह शस्य-श्यामला धरती जहाँ कर्म-भूमि रही है, वहाँ यह सन्तों की पुण्यभूमि भी रही है। समय-समय पर अनेक सन्त रत्नों ने जन्म लेकर तप, त्याग, सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह और अनेकान्त का दिव्य संदेश गाँव-गाँव में पैदल विचरण कर फैलाया। धर्म विमुख, पथभ्रष्ट मानव समाज, राष्ट्र और देश का सही पथ प्रदर्शन किया। जन-जन को भगवान महावीर का अलौकिक ज्ञान दिया। ऐसे महान पुण्यशाली, प्रातःस्मरणीय, पूज्यपाद, परम श्रद्धेय, धीर, वीर, गम्भीर, प्रकृति के स्वामी, परम तपस्वी, शान्त, दान्त, क्षमासागर, उत्कृष्ट संयमी, पंच महाव्रतधारी, करुणा दया के प्रतीक गुरुदेव श्री श्री १००८ श्री स्वामी छगनलाल जी मा० सा० थे। जिन्होंने भर पूर नव यौवनावस्था में इस असार संसार को ठोकर मार विक्रम सम्वत् १९६० में अक्षय तृतीया के शुभ दिवस उस अतीव उज्जवल-समुज्ज्वल ज्योतिपुञ्ज मार्ग पर कदम रक्खा जहाँ आते-आते बड़े शूरवीर योद्धाओं का हृदय भी कम्पायमान हो जाता है। जो मोक्ष मार्ग का सीधा साफ राज पथ है। आपने सन्त शिरोमणि स्वामी श्री रङ्गलाल जी मा० से आहर्त दीक्षा ग्रहण की। आपने अपना ध्येय स्व-पर कल्याण बनाया।

"**सम्यक् ज्ञान दर्शन चारित्राणि मोक्ष मार्ग.**" की विविध उच्च साधना की निर्मल गंगा आपके जीवन में सदैव बहती रहती थी। "**समयं गोयम मा पमायए**" की भगवान महावीर की अमरवाणी आपके जीवन के कण-कण में प्रकाशित हो रही थी। इस सेवक को भी आपके दर्शन करने का सौभाग्य बहुत बार प्राप्त हुआ। जब भी आपको देखा, भगवान महावीर की उक्त अमरवाणी का आप में साक्षात्कार दृष्टिगोचर हुआ।

आपकी उच्चकोटि की तप साधना तो चतुर्थकाल की साधना की साक्षात प्रतीति करा रही थी। आपकी कठोर संयम साधना में लोकैपणा को रंच मात्र भी स्थान न था।

सचमुच ही आपका जीवन राष्ट्र-देश, समाज का प्रदर्शक रहा। आपने अपने जीवन में अनेक घोर अभिग्रह, बेले, तेले, चौले, पचौले, अठाई और पन्द्रह के उत्कृष्ट तप किये। आप चालीस वर्ष तक १ चादर ओढ़कर शयन करते रहे। गर्मी-सर्दी आदि बाईस परीषह आपने समता भाव से सहन किये।

आपकी अनुपम सहिष्णुता, अदभुत त्याग का वर्णन करना सूर्य को दीपक दिखाना मात्र है।

जहाँ आप उच्चकोटि के संयमी थे। वहाँ आप प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी, अनेक भाषाओं तथा जैनागमों के प्रकाण्ड विद्वान थे। स्वरशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र पर तो आपका पूर्ण अधिकार था।

आज यद्यपि हमारे बीच में नहीं हैं। आपकी उच्च पवित्र तप:साधना, अतुलनीय शान्ति भव्य आत्माओं का सदैव पथ प्रदर्शन करती रहेगी।

आप देश-समाज-राष्ट्र को मानव को, मानवता तथा सत्य अहिंसा का दिव्य प्रकाश देते हुये वि०स० २०२८ चैत्र शुक्ला द्वितीया दिन रविवार को खन्ना नगर (पञ्जाब) में परम समाधी पूर्वक इहलौकिक लीला समाप्त कर अनन्त-अनन्त प्रकाश में लवलीन हो गये।

आपके शिष्य परिवार में परम तपस्वी, सरल स्वभावी श्री रोशनलाल जी मा० आपके बताए पथ पर चलकर जन-जन का कल्याण कर रहे हैं।

श्रमण श्री छगनलाल जी महान

—कविवर जसवंत कुचेरा

तर्ज—देख तेरे संसार की हालत क्या.........

श्रद्धा भक्ति से करता गुरुवर के गुण गान--
श्रमण श्री छगनलाल जी महान्, श्रमण श्री छगनलाल जी महान्,
करणी है गुरु जी की सुन्दर, चरणों में नित ध्यान। टेर ॥
पीपलाद में जन्म तुम्हारा, हर्षा निर्मल सब परिवारा।
यमुना माँ का लाल दुलारा, तेजाराम जी पिता तुम्हारा॥
चौधरियों के उत्तम कुल में, घर घर मंगल गान॥ श्रमण १॥

आचार्य श्री श्री स्वामीदास जी, उनके पट पर रेख राजजी।
शिष्य वर श्री रंगलाल जी, इन पै दीक्षाली छगनलाल जी॥
अक्षय ततीया साठ उन्नीसौ, रीयाँ दीक्षा स्थान॥ श्रमण २॥

सुन्दर वर्ण तुम्हारा सोहे, तेजस्वी जग का मन मोहे ।
धर्म वीर ओजस्वी जो हैं, पाप कालिमा नितकी धोहैं ।
हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत के हैं, पण्डित महा विद्वान ।। श्रमण ३ ।।

व्याकरण ज्योतिष पढ़ पाये, स्वर ज्ञानादिक अधिक सुहाये ।
शास्त्रों की उलझन सुलझाये, सुन चर्चा पंडित हर्षाये ।।
वड़े-वड़े गुणि ज्ञानी करते-उनके यश गुण गान ।। श्रमण ४ ।।

वेले चौले किये घनेरे, पन्द्रह तक भी तप वहुतेरे ।।
कठिन अभिग्रह को भी प्ररे, शीत ताप उपसर्ग अनेरे ।।
वीर धीर गम्भीर गुरुजी, वने न कव भी म्लान ।। श्रमण ५ ।।

चद्दर एक रखे निज पासे, केवल छाछ पर रहे छेमासे ।
क्रिया कालो काल हि भाषे, आलस को नहिं नेड़ा राखे ।।
उत्तर मध्य प्रदेश आदि में, किया विहार प्रधान ।। श्रमण ६ ।।

शिष्य अनेकों हुए हैं नामी, गणेश रत्न रोशन शिव कामी ।
चारित्र में कुछ भी नहीं खामी, मेरे सच्चे अन्तरयामी ।।
देवों के मेटन को संकट, पहुँचे सुरपति स्थान ।। श्रमण ७ ।।

ऐसे गुरु की सेवा सारे, भव अटवी से पार उतारे ।
जय जय कार के वजे नकारे, समाधि मरण हुआ सुखकारे ।।
दो हजार अट्ठाईस द्वितीया, चैत्र शुक्ल लो जान ।। श्रमण ८ ।।

खन्ना नगर महा सुखकारी, पंजाव में दीपैहैं भारी ।
वहीं देह त्यागी श्रेयकारी, जय जय वोलें सव नरनारी ।।
संलेखन संथारा करके जसवन्त वने महान् ।। श्रमण ९ ।।

शुभ मुनि औ रोशन मुनिराया, चातुर्मास कुचेरे ठाया ।
शास्त्री का अभ्यास कराया, उपदेशामृत का पान कराया ।।
युग-युग जीवो युगल जोड़ यह, विनती श्री भगवान् ।। श्रवण १० ।।

❁

जयबोलो

—कविवर जसवंत कुचेरा

जय बोलो श्रमण गुण धारी की ।
उन छगनलाल ब्रह्मचारी को ।। जय ।। टेर ।।

बालक वय में संयम धारा, धन मात पिता कुल उजियारा ।
शिक्षा दीक्षा गुणकारी की·· जय ।। १ ।।

है स्वामीदास की सम्प्रदाय, रंगलाल सुहाये गुरु राय ।
दीक्षा दी जग हितकारी की····जय ।। २ ।।

संस्कृत प्राकृत का बोध किया, सूत्रों को फिर शोध लिया ।
पण्डित जिन आज्ञाधारी की···।। जय ।। ३ ।।

सत्य पथ दिखलाया है, पाखंडी मान घटाया है ।
महा वैरागी सुखकारी की ।। जय ।। ४ ।।

देशाटन भी बहुत कर पाये, चहुं दिशा में गुण गाथा गायें ।
स्याद्वाद विस्तारी की ।। जय ।। ५ ।।

बहु शिष्य हुवे हैं सौभागी, हैं टीकम, गणेश सागी ।
शिष्यों के भग ने तारीकी····।। जय ।। ६ ।।

रोशन जग रोशन करते हैं, भवियों में गुण को भरते हैं ।
उन सन्तों की बलि हारी की ··।। जय ।। ७ ।।

तप जप का तेज सवाया है, जिन आज्ञा को अपनाया है ।
कई कठिन अभिग्रह धारी की ।। जय ।। ८ ।।

है नाम अमर उनका रहता, जो धर्म हेत जीता मरता ।
'जसवन्त' सदा जयकारी की ।। जय ।। ९ ।।

तुमको लाखों प्रणाम्

श्री छगनलाल जी स्वामी, तुमको लाखों प्रणाम।
हैं संत शिरोमणि नामी, तुमको लाखों प्रणाम ॥ टेर ॥
श्री स्वामीदास की संप्रदाय है, गुरु सच्चे जो रंगलाल हैं।
शिव रमणी के कामी······तुमको ॥ १ ॥

यमुना माँ का लालदुलारे, तेजाराम नयनों के तारे।
चौधरी कुल सुख पामी·······तुमको ॥ २ ॥

पीपलाद में जन्म तुम्हारा, रीया में दीक्षा व्रत धारा।
जिनमत के अनुगामी··· तुमको ॥ ३ ॥

संस्कृत, प्राकृत शिक्षा पाई, सूत्र ग्रंथ की चावी आई।
पण्डितपन में न खामी···तुमको ॥ ४ ॥

देशाटन मे खूब कमाई, यश सौरभ जग में फैलाई।
स्याद्वाद के हामी···तुमको ॥ ५ ॥

तप जप संयम निमल पाले, अभिग्रह अनुभव हिम में झाले।
पतवार धर्म की थामी ।। तुमको ॥ ६ ॥

गणेश आदिक शिष्य हुए हैं, गुरु के सच्चे भक्त हुए हैं।
रोशन आतमरामी···तुमको ॥ ७ ॥

ऐसे मुनिवर के गुण गावो, नित उठ उनको शीश झुकाओ।
'जसवन्त' हों शिवगामी···तुमको ॥ ८ ॥

श्री गुरु छगनलाल महाराज

—वृद्धिचन्द हरमाड़ा

श्री गुरु छगनलाल महाराज, तुमको लाखों प्रणाम ॥ टेर ॥
बालपने में दिक्षा लेकर पाँच महाव्रत धारे।
दे उपदेश आपने कई नर और नारी तारे ॥
जाऊँ चरण बलिहार, तुमको लाखों प्रणाम······ ॥ १ ॥

मारवाड़ से देश पंजाव में, आकर कई अजैन, जैन वनाये।
जिनवाणी का घर घर में सन्देश सुनाया ॥
कीना धर्म प्रचार, तुमको लाखों ...... ॥ २ ॥

मण्डी कालां वाली का भाग्य उदय में आया।
जहाँ पर गुरुवर ने चौमासा करना ठाया ॥
करी मण्डी पर कृपा अपार, तुमको लाखों ...... ॥ ३ ॥

धर्म का ठाठ वहाँ पर खूव ही पाया।
देख वहाँ की छटा मेरा दिल हरपाया ॥
सवने ली शिक्षा धार, तुमको ...... ॥ ४ ॥

सम्वत दो हजार पन्द्रह सावन मास शुभ आया ।
कालांवाली मण्डी में गुरुदर्शन पाया ॥
गुरु की वाणी अमृत सार तुमको लाखों ...... ॥ ५ ॥

मण्डी कालांवाली में करो हरमाड़े पै मरजी।
गुरु जी से वृद्धिचन्द्र की यह है अरजी ॥
मुझ को भी गुरु तार, तुमको लाखों.......... ॥ ६ ॥

सदा स्मरणीय गुरुदेव

—नेमीचन्द्र राजेन्द्रकुमार जैन इन्दौर

स्व० गुरुदेव एक दिव्य महापुरुष थे। सरलात्मा थे। हर स्थिति में प्रसन्न रह अपनी समता का परिचय देते। जो भी एक वार सम्पर्क में आता उन्हीं का हो जाता। राग से ऊपर उठ कर सभी से मधुर व्यवहार करते। अपने गुरु पूज्य रंगलाल जी म० की भाँति शिष्यों का अनुराग नहिं था। वह कहा करते कि "चन्द्रमा एक ही प्रकाश कर देता है सारे जगत में फिर लाखों तारे टिमटमायें तो भी कम।"

गुरु भगवन् प्रमाद से सदैव दूर रहते थे। सभी कार्य समय पर स्वयं करते थे। संयमी जीवन में शैथिलता का प्रसंग नहीं आने देते थे।

उच्च कोटि के शास्त्र ज्ञाता थे, गूढ़ से गूढ़ और शुष्क विपय को बड़ी रोचक जन-भाषा में फरमाते थे।

संसार की महान् विभूति

—पारसलाल जैन, रामामण्डी

स्वर्गीय महान आत्मा संसार की महानविभूति जैन जगत के उज्ज्वल सितारे, तप त्याग, संयममूर्ती करुणावतार गुरुदेव श्री श्री १०८ स्वामी छगनलाल जी म० सा० का देहावसान विश्व के लिए अति खेद का विषय है। वे असहायों के सहारे थे। जिसने भी आपका आसरा लिया वह माला-माल हो गया।

आपकी वाणी में अद्भुत माधुर्य था। एक बार प्रवचन सुनने मात्र से आपकादास बन जाता। आपके धैर्य और सहनशीलता की बात ही क्या, जब आपके पाँव की हड्डी का आप्रेशन भटिण्डा में हुआ उस समय मैं श्री चरणों में था। आप्रेशन के समय आपने कोई बेहोशी की दवाई नहीं ली, डाक्टर लोग हड्डी काटने का काम करते रहे। आप ने सी तक नहीं किया। आपके प्रसन्न वदन को निहार डाक्टर लोग चकित रह गये। सहसा उनके मुख से ध्वनि फूट पड़ी **सन्त न होते जगत में, तो जल जाता संसार।** ईसा की शाँति की कहानियाँ सुना करते थे जब कि आज इस महापुरुष के जीवन में उस शान्ति के साक्षात दर्शन हो रहे हैं।

गुरुवर का तप तेज अनूठा था। अध्यात्म जगत में संयम साधना की दृष्टि से आपका अपना ही स्थान था। बाल ब्रह्मचारी धर्मदेव ने जिस सफेद चादर को केवल चौदह वर्ष की अल्पायु में धारण किया था आपको अरमठ वर्ष तक के दीर्घ काल तक त्याग, वैराग्य, क्षमा, दया, उदारता, करुणा इत्यादि के अध्यात्म पुष्प खिलाते हुए खूब चमकाया। इसीलिए आपकी साधु जगत में महान् प्रतिष्ठा थी बड़े-बड़े विद्वान जोगीराज महाराज श्री के चरणों में बैठ कर अपनी चिरकालीन समस्यायों का समाधान पाते थे। आप इतने गहरे और मार्मिक विद्वान थे कि निकट के इतिहास में इसका कोई दूसरा उदाहरण नहीं मिलता। यदि आपको शास्त्रीय जीवन को चलता फिरता एक विशाल-विराट पुस्तकालय कहा जावे तो उचित होगा।

सागर में पानी घना, जो गागर में न समाये।
गुरु छगन में गुण घने जो हम से लिखे न जायें॥

गुरुदेव के विषय में कहाँ तक लिखूं, आपका जीवन गुणों से भरपूर, चमत्कारों में परिपूर्ण, साधुतत्व की उज्ज्वल ज्योति और संयम निष्ठा की

की महान् देन था। आज उनके साक्षात दर्शन नहीं कर सकते फिर भी इन रेखाओं के स्मरण से स्मृति ताजी हो जाती है, जो हमारे जीवन को सदा प्रकाशित करती हुई विवेक को प्रदान करेगी।

महान् विभूति के चरणों में वारम्बार शत शत वन्दना।

❀

श्री रोशन के दो चार...

—सेठ कालूराम निमाज

छगन इष्ठ में वह मगन थे, तो भक्त हम उनके भी वैसे ही मगन हैं।
उनको आगम थे प्राण प्यारे तो हमें श्रावक धर्म की गहरी लगन है।
चौदह वर्ष रह गृहस्थी और अठसठ वर्ष संयम अनुपम निभाया।
संसार जीवन यापन करते हुवे हमने भी लाखों करोड़ों कमाया गमाया।
अनुराग शिष्यों में नही रखा, इसीलिए तो परम्परा मे रही है खामी
गणेश सिधाया, सोहन भी भागा, केवल वचे अव श्री रोशन नामी।
द्रोपदी चीर, श्रीहरि ने वढ़ाया, वैसे ही हम वढ़ायें श्रीरोशन के दो चार
वंशावली वढ़ जावे छगन की, जो उतारेगी हमें भी भवसागर से पार।

❀

अनुपम संत

—छगनचरणदास दीवानचन्द जैन, रोड़ी हिसार

मेरे पूज्यनीय दादा चौधरी दौलामलजी जैन अपने समय के एक अच्छे विचारक, प्रतिभाशाली, शास्त्रों के जानकार श्रावक थे। एकदा उनके जीवन काल में महामहिम धर्म देव गुरुदेव सुसमाधीवंत सयंति क्षमाशील सरलात्मा श्री श्री १००८ श्री स्वामी छगनलाल जी मा० सा० उनके प्रिय, शिष्य रत्न विनयमान पण्डित मुनि श्री श्री १००७ श्री गणेशीलाल जी म० सा० का हमारे कसवा रोड़ी में पधारना हुआ। दादा साहिव श्वेताम्वर मूर्तिपूजक आम्नाय के अनुयायी होते हुये भी सभी साधु सतियों को श्रद्धा भक्ति से आदर-सत्कार देते और प्रेम पूर्वक विचार विमर्श करते। फलस्वरूप शास्त्रीय

चर्चा और जिज्ञासा की भावना को ले महाराज श्री की सेवा में आने लगे। स्व० गुरुदेव से अपने शास्त्रीय प्रश्नों का युक्तिसंगत समाधान पा ऐसे संतुष्ट एवं मुग्ध हुये कि उनके मुखसे सहसा यह उद्गार निकल पड़े कि मैं आचार्य सम्राट विजयानन्दसूरी, आचार्यप्रवर विजयवल्लभसूरी, महामहिम श्री मयारामजी म०, पूज्य जीवनरामजी म०, तेरापंथी आचार्य कालूरामजी म० पंजाबकेसरी प्रेमचन्दजी म०, महासति पार्वती जी म० इत्यादि बड़े-बड़े धर्म धुरिन्धर साधु मुनिराजों के दर्शन किये, उनसे धर्मचर्चायें की मगर जो समाधान महाराज श्री छगनलाल जी द्वारा पाया वैसा कहीं से नहीं मिला। अनुपम सन्त है! इन महात्मा का त्याग, वैराग, तपतेज अनूठा ही है। प्रकाण्ड पण्डित होने पर भी अभिमान का नाम नहीं, प्रकृति बड़ी मधुर मिलनसार है हृदय बड़ा उदार है, सम्प्रदायवाद से दूर हैं। इतना ही नहीं उनके सम्यक् ज्ञान दर्शन चारित्र रत्न त्रय से युक्त पवित्र जीवन का गुणगान अन्तिम समय तक गाते रहे।

पितामह श्री पर ऐसी गहरी छाप पड़ी देख मेरे पूज्यनीय तायाजी भक्त कुन्दनलाल जैन जिन्होंने विवाह नहीं कराकर अपना जीवन पवित्र बनाया तथा एक बार भोजन कर निर्वाह करते रहे वह भी स्व० गुरुदेव के भक्त हो गये।

मैं वर्षों से अनुभवी जिस सद्गुरु की खोज में था उन्हें पा अपने भाग्य की सरहाना करता नहीं थकता। महाराज श्री के सम्पर्क में आने में विशुद्ध धर्म एवं समकित की उपलब्धि हुई। इस महापुरुष की कृपा दृष्टि ने मुझे निहाल कर दिया यहाँ तक कि समाज के लोग मुझे उनके कृपा पात्रों में से एक समझने लगे।

अपनी छत्रछाया तले स्थान दे मुझ पर बड़ा भारी उपकार किया है, मैं तो वार-वार उस महामहिम गुरुवर के चरणों में विनयचन्दजी के शब्दों में यही बखान करूँगा—

हूं सेवक तू साहिब मेरो पावन पुरुष विज्ञानी।
जन्म जन्म जित तिथ जाऊं तो पालो प्रीत पुरानी ॥
जब लग आवागमन ने छूटे तब लग यह अरदासजी।
सम्पति सहित समकित ज्ञान गुण पाऊं दृढ़ विशवासजी ॥

❋

शान्तस्वभाव

—दीपक, सम्पादक-वर्द्धमान देहली

मुझे लगभग पन्द्रह वर्ष से उनके महान ज्ञान धर्म साधना व तपस्या आदि के प्रत्यक्ष अनुभव हुये है, उनके शान्त स्वभाव व परोपकार भावना से मैं बहुत प्रभावित रहा हूँ। मेरी भावना है कि महाराज श्री की महान आत्मा को उच्च स्थान प्राप्त हो।

न पूरी होने वाली क्षति

—मन्त्री श्री स्थानकवासी जैनवीरसंघ, ब्यावर

शान्त स्वभावी आत्मज्ञानी प० रत्नमुनि श्री छगनलाल जी म० सा० के दिवगंत होने के समाचार तार द्वारा प्राप्त हुए, इस समाचार से सम्पूर्ण स्थानकवासी समाज को जो क्षति हुई है, वह अपूर्णनीय है।

कार्य साधक दर्शन

—आर० एस० जैन, फिलडेलफिया (U.S.A.)

यह जानकर अत्यन्त दुःख हुआ कि गुरुदेव स्वामी छगनलालजी महाराज सा० अब हमारे बीच नहीं है। जब मुझे कोई कठिनाई आती तो दर्शन मात्र से दूर हो जाती थी। जब तक भारत में रहा साल भर में एक बार तो उनके दर्शन किये बिना चैन न लेता इतनी दूर होने पर भी मुझे उनका सहारा था।

ज्ञान-चारित्र की विभूति

—जौहरीलाल कोठारी

—मन्त्री व० स्था० जैन श्रावक संघ, खवासपुरा, राज०

पूज्य श्री स्वामीदास जी महाराज की परम्परा के पूज्य श्री रेखराज जी म० के प्रशिष्य स्वामी जी श्री छगनलाल जी म० सा० के आकस्मिक निधन

पर ब्यावर, सोजत, जोधपुर, पीपाड़, चामुंड़िया, अठपुरा, गोठन आदि संघों एवं प्रतिनिधियों की खवासपुरा में, मरुधरकेसरी पू० प्रवर्तक श्री मिश्रीमल जी म०, प० र० मुनि श्री कन्हैयालाल जी म० सा० 'कमल' तपस्वी मुनि श्री रूपचन्द जी म० 'रजत' आदि सन्तों के सानिध्य में हुई यह शोकसभा अपना हार्दिक सन्ताप प्रकट करती है। दिवगंत मुनिश्री मरुधरीय सन्तों में एक उच्च स्थान रखते थे। ज्ञान और चारित्र की विभूति से मण्डित थे। आपके स्वर्गवास से मरुधरा की ही नहीं, समस्त स्थानकवासी सम्प्रदाय की महती क्षति हुई।

❁

गणाधिपति स्वामी छगनलाल जी

—पुखराज बोहरा, नीमाज (मारवाड़)

सं० २००३ में महाराज श्री के दर्शनों का सौभाग्य मेरठ नगर में हुआ। सुडौल शरीर, विशाल ललाट के धनी का व्याख्यान बड़ा जोरदार था। श्रोताओं की बड़ी भीड़ रहती थी।

मुझे यह जानकर अतीव प्रसन्नता हुई कि मेरे आराध्य श्रद्धेय तपःकेसरी श्री सोहनलालजी म० सा० के दीक्षा गुरु स्वामी छगनलाल जी म० सा० ही है, जिनके त्याग वैराग की सराहना स्वयं तपोकेसरी जी म० साहब करते रहते हैं।

❁

यशस्वी गुरु का तपस्वी चेला

—धरमीचन्द मुथा, नीमाज (मारवाड़)

जन्म सफल उनका है जो स्वयं तरे और पतितों को तारे धन्य वही जो नर से नारायण हुवे।

आजकल हमारे क्षेत्र में तपोकेसरी श्री सोहनलाल जी महाराज साहब के तप-संयममय पवित्र जीवन से बड़े प्रभावित हैं। तपोकेसरी जी विविध प्रकार से तप-जप कर अपने प्रथम दीक्षा गुरु स्वामी छगनलाल जी म० सा० के नाम को चार चांद लगा रहे हैं।

❁

करुणा के सागर

—नेमीचन्द कासलीवाल, रीड (किसनगढ़)

हम दिगम्बर जैन हैं। करुणा के सागर स्वामी छगनलाल जी म० सा० के त्याग वैराग्य और उनकी उदार प्रकृति से मेरे पिता श्री इतने प्रभावित थे कि सदैव उनका गुण गान और सराहना करते रहते थे।

❀

स्वामी श्री छगनजी....

—पारसमल सांखला, बंगलौरवाला, साँडिया (राजस्थान)

(१)

स्वामी परम्परा खूब ही दिव्य तेजस्वी जगती में फूली फली।
एक-एक उनके भाँति भाँति कलियाँ मन मनोज्ञ हैं उसमें खिलीं।
जीवराज थे सन्त पहले, जिनसे वंशावली आरम्भ यहीं से चली।
लाल-दीप दो ऐसे भये दी देह जिन्होंने परम्परा में हंस-हंस वली॥

(२)

स्वामीदास प्रकटे स्वयं,
खुद यशस्वी वन एक अनुपम सी कली।
तथा उग्रसेन, घासीरामजी हो गए,
परम्परा में सन्त महा मखमली।
कनीराम, रेखराज, रंगलाल हुये,
इसी चमन में मानों मीठी मिश्री सी डली।
पाटानुपाट फिर श्री छगनजी की,
गाथा गरिमा चली खूब ही रंगरली॥

(३)

जिनके टीकम, गणेश, सोहन,
व रोशनजी चारों चेले कनकावली।

पावन दर्शनों का सौभाग्य मिला। जब भी देखो उनके चरणों में लोगों की बड़ी भारी भीड़ रहती थी। दूर-दूर से लोग-बाग आते रहते। विहार इत्यादि के समय भी बड़े-बड़े श्रीमंत साथ चलते, ऐसा लगता था कि कोई राजा महाराजा पधार रहा हो। उनकी पुण्यवानी निराली थी। आज भी उन दृश्यों को स्मरण करने से मन गद्-गद् हो जाता है।

परमसन्त

—पुरुषोत्तमदास जींदल, रोड़ी

परमसन्त गुरुदेव स्वामी छगनलाल जी महाराज सा० के चित्र मात्र को देखने से मन को अद्भुत, अलौकिक शान्ति प्राप्त होती है। कुण्ठित हृदय प्रफुल्लित हो जाता है, निष्ठा के साथ पूज्य श्री का ध्यान करने वाले की समस्त सुकामनायें पूरी होती है, ऐसा मेरा अनुभव और दृढ़ विश्वास है।

जादू का काम

—दियालचन्द जैन, रोड़ी

मेरा विद्याध्ययन करने को तनिक भी मन नहीं करता था। सौभाग्यवश, स्वर्गीय गुरुदेव महामहिम स्वामी छगनलाल जी हमारी नगरी में पधारे हुए थे, उनके पावन चरणों में मैं और मेरे पिताजी बैठे थे। प्रसंगवश मेरे न पढ़ने की बात चल पड़ी, प्रत्युत्तर में श्री मुख से फरमाने लगे कोई बात नहीं। पढ़ने लग जायेगा।

गुरु मुख से निकले वचनों ने जादू का काम किया। जहाँ मेरा मन पढ़ाई में नहीं लगता था वहाँ ऐसा लगा कि हर समय पढ़ता रहूँ जिसके फलस्वरूप कभी फेल नहीं हुआ। मेरी आगे पढ़ने की बलवती इच्छा होने पर भी मुझे पढ़ने से हटा लिया गया।

❀

भाग खुल गये

—मीनाकुमारी जैन, रोड़ी

मेरी दादी मानेश्वरी भागवंती जी का वर्षीतप चल रहा था, जिस बीच गुरु दर्शनों हेतु खन्ना पहुँची, साथ में मुझे भी जाने का सुअवसर मिला। अवसर क्या मिला कि मेरे भाग खुल गये, बचपन में छत पर से गिरने के कारण मेरी नासिका जुड़ी-जुड़ी सी रहती थी पूछने पर डाक्टरों ने आपरेशन कराने का परामर्श दिया। मगर गुरु के दिव्य दर्शनों के प्रभाव से मुझे ऐसा स्वास्थ्य लाभ हुआ कि अब किसी प्रकार की कोई बेचैनी नहीं। पढ़ाई के साथ-साथ धर्म ध्यान में खूब मन लगता है तभी से रात्रि भोजन का त्याग निभाती हूँ।

—

धर्म के अवतार

—कंवरसेन गोयल, रोड़ी

धर्म के अवतार औदार शिरोमणि
गगन में छगनलाल ध्रुव से सितारे।
लाल जमना वाई के, पवित्र जमन सम,
पिता श्री तेजराम जी के दुलारे।
देव रथ चलत गगन पथ शोभत
ऐसो शुभ सुपन मातेश्वरी निहारे।
छायो आनन्द वहे शीतल सुगन्ध वायु,
लगन सुशम भय मुनज अवतारे ॥ १ ॥

योगी सन्यासी वहू साध्यो जप तप
सुन्दर सुशील कीते संयम कारे।
मोहनी सी मूरत सूरत चित चोर सी,
मूरत सम होत सव देखन हारे।
ऐसे श्रीछगनलाल दिनकर ज्यों लसत भाल
सोहे कर शुभ भाल मुनि पट धारे।
"गोयल" का शीश झुके निरख ईश सम
श्री महा मुनि शुभ चरण तिहारे ॥ २ ॥

अनमोल हीरे

—धरमचन्द्र खारीवाल, देवसी उदावतान (राज०)

संत प्रवर श्री छगनलाल जी मा० सा० जैन जगत के वड़े अनमोल हीरे और यशस्वी महात्मा थे। सम्पर्क में आने वाला चाहे किसी मान्यता का होता, महाराज श्री का वन जाता।

❀

छगन थे क्षमाशील धरती समान

—उगमराज महेता, पीपलिया (राज०)

छगन थे जप तप संयम के थे आराधक,
छगन थे आत्मशान्ति के हित साधक।
छगन स्याद्वाद के थे सफल प्रसारक,
थे छगन श्री वीरधर्म के पूर्ण अभिभावक॥
छगन गुरु गरिमा सागर गहन थे,
औ छगन थे संसार सिन्धु में दिव्य धर्म पोत।
छगन थे शन्तिसुधा के विमल स्रोत,
तथा छगन थे शित्र सदाचार से ओत-प्रोत॥ २॥
छगन थे वाल ब्रह्मचारी योगी महा और,
छगन मेरे उपकारी युग के पूर्ण ज्ञाता थे।
छगन थे पुनीत पावन निरभिमानी सदा,
व छगन जी जैनागम शास्त्र सुज्ञाता थे॥ ३॥
छगन थे क्षमाशील धरती समान,
थे छगन शीतल भी शीश रूप शान्त विमल।
छगन थे मिथ्यातम हित पूरे दिनकर,
छगन व्रत पालन में थे चिर अविचल॥ ४॥
छगन थे जैन जगती हित शीर्ष सेतु,
व छगन जग जीवन नौका के खेता भी थे।
छगन कषाय कर्म अरि के जय विजेता,
और छगन भव्य जीवों के लिय भाग्य प्रणेता भी थे॥ ५॥
छगन मुख से झरते प्रिय मधुर वोल,
अनेकान्त का देते थे सब को अनुपम सन्देश।
छगन है नहिं पर आज भी हित 'उगम''
रहता नजर समक्ष आत्म भाव का शुभ निर्देश॥ ६॥

तपःकेसरी की दृष्टि में

—गुलाबचन्द्र मुणोत, ब्यावर वाला, नीमाज

मुनि श्री सोहनलाल जी जिनके प्रथम दीक्षा गुरु स्वामी छगनलाल जी मा० सा० थे, तपस्या में विशेष रूप से रुचि लेते हैं। उनकी बराबरी का तपस्वी साधु और कोई दृष्टिगोचर नहीं होता दीखता। जिसके फलस्वरूप समाज ने उन्हें तपोकेसरी की पदवी प्रदान की है। ऐसे तपोधनी महात्मा भी स्व० गुरुदेव स्वामी छगनलाल जी म० सा० का गुणगान करते नहीं थकते, और अपनी आत्मोपलब्धि की सफलता को पूज्य श्री की कृपा का मधुर फल बतलाते हैं।

आत्मानन्दी

—भण्डारी श्री पदमचन्द्रजी महाराज

परम पूज्य प्रातः स्मरणीय स्वामी छगनलाल जी महाराज आधुनिक युग के अद्वितीय आत्मानन्दी, क्रिया पात्र महान् संत थे, जिनके असाधारण व्यक्तित्व एवं सद्‌गुणों का वर्णन करना शक्ति से बाहर है।

पहुँचे हुए महात्मा

—आत्माराम जैन एडवोकेट, हनुमानगढ़ टाउन (राज०)

गुरुदेव स्वामी छगनलाल जी मा० सा० एक पहुँचे हुए प्रतिभाशाली महात्मा थे। जब भी देखो उनके वदन से अपूर्व प्रसन्नता टपकती थी। मेरी उनके प्रति गहरी निष्ठा है। आज भी उनके चित्र के दर्शन किये बिना बाहर नहीं जाता।

पीपलाज रो श्री छगन जी

—पुष्पादेवी रांका, सुपुत्री विमलकुमार रांका, नीमाज

पीपलाज छोटो सो गांव, परवतसर तहसील रो ।
पहाड़ जठै है एक सचमुच लम्वो आधो मील रो।
लाम्वा चौड़ा मिनख घणा, जहाँ पर जाट घनेरा रेवे।
जठै जाय नीगे करी वावूजी, तो छगन उठारा ही केवे ॥
रोवतो छिटकायों परिवार, छोडियो तेंजो तात मात जिमनाई।
श्री रंग गुरु के पाय धारी दीक्षा, मन माही वहोत हरिसाई ॥
छगन जी संयम धारने वणीयों साँचो साधु जैन समाज रो।
गगन ज्यों ऊँचो चमकीयो, चमकायो मानो ऊँचों ताज रो ॥
नही डीगीयो, नहीं डीगायो धर्म, पालीयो घणो समता माय।
जीवोयो हंस-हंस व्यासी वरसे, अमरा पुरी गयो पछे खन्ना जाय ॥

धर्म-देवोऽघभञ्जकः

—शास्त्री ऋषिकेश शर्मा

अष्टश्च सम्प्रदायुक्तः, षट्त्रिंशद् गुणधारकः ।
शान्त-मुद्रा महायोगी, वक्ता प्रकाण्ड पण्डितः ॥ १ ॥
सरलात्मा क्षमाशीलः, वालब्रह्मचारी तथा ।
आत्मानन्दी जितक्रोधः, समाधिवंतसंयतिः ॥ २ ॥
प्रातर्वन्द्यो जगद्वन्द्यो, धर्म-देवोऽघभञ्जकः ।
रूपेऽनुपम-लावण्यः, महामोहान्धनाशकः ॥ ३ ॥
सौम्यस्वभावसम्पन्नः, छगनलालपूज्यकः ।
अस्मत्स्वामी महाराजः, कृपां कुरु सर्वदा ॥ ४ ॥
निष्ठा योगेन भव्यात्मा, यः कश्चित्तं स्मरिष्यति ।
प्रशस्तं जीवनं तस्य, सर्वाः हि सफला क्रियाः ॥ ५ ॥

अजर-अमर-जीवन के धनी

राजस्थानकेशरी पं० रत्न, प्रसिद्धवक्ता
—श्री पुष्कर मुनि जी म०

जहाँ तक मैंने मुनि पुङ्गव श्री छगनलाल जी म० के जीवन पहलुओं को देखा है, परखा है, उसके आधार पर मैं कह सकता हूँ कि वे विचार में गम्भीर आचार में प्रखर और वाणी में मधुर थे। उनके मन की गरिमा और व्यवहार की मधुरिमा ने जन-जन के जीवन को भावित किया था।

वे आज भी मेरे श्रद्धा-नेत्रों में 'अजर-अमर जीवन के धनी' दीख रहे हैं। उनको मेरे अन्तर्मन से श्रद्धा पूरित अगणित भाव वन्दन हैं।

अभिनन्दन....!

—रमेश मुनि शास्त्री

जिनका जीवन महतो महीयान् था। उनके सम्बन्ध में जो कुछ भी लिखना है वह रत्नाकरीय जीवन को चन्द शब्दों के गागर में बन्द करना है।

श्रद्धास्पद मुनि पुङ्गव श्री छगनलाल जी म० जैन श्रमण संस्कृति के क्षितिज पर सहस्ररश्मि सूर्य की भाँति प्रदीप्तमान् थे। अपने ज्ञानालोक से जन-जीवन के प्रत्येक अंचल को आलोकित किया था। मुनि प्रवर के जीवन चित्र को सूक्ष्मता से देखने पर उद्‌भासित होने लगता है, उनके जीवन में संगीत के समान एक लय है, एक रस है, उनकी कृति से, प्रकृति से, आकृति से सरलता का शीतल जल छन-छन कर सामने आता था! उनकी वाणी में मधुरता-मार्मिकता और सहजता का ऐसा स्रोत प्रवाहित था जिससे वह दूध की तरह सीधी गले के नीचे उतर जाती थी।

ऐसे सन्त रत्न जन-जन के मन में बस गए, श्रद्धा के अमर आधार बन गए, मेरे अन्तर मन में यही भाव उभर-उभर कर आ रहा है, वे जहाँ भी हो मेरे उनके प्रति श्रद्धापूरित अगणित अभिवादन! अभिनन्दन!! अभिनमन!!!

चारित्र चूड़ामणि

—स्वरूपचन्द लिगा, रानिया

श्रद्धेय चारित्र चूड़ामणि महामहिम स्व० गुरुदेव स्वामी छगनलाल जी मा० सा० आधुनिक युग के अद्वितीय महापुरुष थे। जिनकी महानता का वर्णन करने में बड़े-बड़े पण्डितों की लेखनी भी असमर्थ है, भला उनके गुणगान, मेरा जैसा अल्पज्ञ कैसे कर सकता है?

मेरे गुरुदेव

—मुनि श्री रोशनलाल जी
(स्व० गुरुदेव के प्रिय शिष्य)

एक समय श्री दीपचन्द जी जैन राजा खेडी निवासी जो आजकल दिल्ली में ही व्यवसाय करते हैं, उस समय अपने रिश्तेदारों से मिलने दिल्ली आये थे। उनके सम्बन्धी हमारे पड़ोसी थे। उन्होंने रात्रि में हमारे यहाँ सामायिक की, फिर रात्रि में मेरे समीप ही सो गये। बातें चलीं तब पूछा कि आप गुडगाँव छावनी का मार्ग जानते हैं ? मैंने कहा—क्यों नहीं, वहाँ तो मेरी बहिन ब्याही है। फिर मैंने पूछा—आप गुडगाँव क्यों पधार रहे हैं ? उन्होंने उत्तर दिया कि वहाँ पर हमारे गुरुदेव श्री फूलचन्द्र जी मा० सा० (पुष्फ भिक्खू) का चातुर्मास है, उनके दर्शनार्थ जाना चाहता हूँ। तब मैंने कहा—मैं भी आपके साथ चलना चाहता हूँ। उन्होंने सहर्ष मुझे अपने साथ ले लिया और मैं भी वहाँ पर मुनि श्री के दर्शन एवं सत्संग में भाग लेने लगा। मुझे उनके उपदेश से जैन धर्म के सिद्धान्तों के प्रति रुचि हुई, और उनकी प्रेरणा से मैं गुरुवर स्वामी छगनलाल जी मा० सा० की सेवा में पहुँच गया।

श्री फूलचन्द जी मा० सा० का गुरुदेव के साथ घनिष्ट सम्बन्ध था, इसलिए आप श्री ने सोचा कि श्री छगनलाल जी मा० सा० अकेले हैं, यदि यह उनके शिष्य बन जायें तो सोना में सुगन्ध है। उन दिनों गुरुदेव भटिण्डा में चातुर्मासार्थ विराजमान थे। सो मुझे भटिण्डा गुरुदेव की सेवा में भेज दिया गया।

मैं गुरुदेव की सेवा में पहुँचा और उनके दर्शन कर अत्यन्त प्रभावित हुआ, तथा पास में रहकर ज्ञान ध्यान सीखने लगा। काफी समय गुरुदेव के सानिध्य में रह मैंने सिरसा नगर में २७ जून सन् १९६० को भागवति दीक्षा लेली।

गुरु महाराज के श्री चरणों में रहकर मैंने ११ वर्षों में जो-जो विशेषतायें आप श्री में देखी, उनमें से कतिपय इस प्रकार हैं।

अप्रमादी जीवन—

आपका जीवन अप्रमादी था। **अप्पमत्ते जए जियं** के शास्त्रीय आदर्श के अनुरूप था। आप श्री प्रतिसमय ज्ञान ध्यान में ही लीन रहते। साधु जीवन की चर्या में कभी भी प्रमाद नहीं करते थे। कालोकाल और सम्यक् प्रकार से करते थे। गुरुदेव बाहरी आडम्बरों से सदा विरक्त रहते थे। आपको मौनवृत्ति अधिक प्रिय थी। ज्यादातर समय मौन में ही व्यतीत होता था। गुरुदेव दिन में बिना कारण कभी नहीं सोते थे, अपितु रात्रि में भी तीन या चार घन्टे ही

फरमाया, कि पंजाब में आपके शास्त्र वाचन की जगह-जगह प्रशंसा सुनी है अत: आज आप हमें भी शास्त्र का अमृतपान करावें। हम भी आप श्री के मुखारविंद से शास्त्र वाणी सुनना चाहते हैं। तब गुरुदेव ने उत्तर दिया हम तो प्रति दिन ही शास्त्र सुनाते हैं। आप श्री पहली वार ही इधर पधारे हैं, और श्रोताओं को भी आपका व्याख्यान सुनने की उत्कट इच्छा है, इसलिए आप श्री ही कृपा करावें। आप ८२ वर्ष की आयु पर्यन्त भी निरन्तर व्याख्यान फरमाते थे। इतनी वृद्धावस्था होने पर श्रोताओं की कितनी सभा क्यों न हो, आपकी आवाज बिना ध्वनिवर्धक यन्त्र के ही सब तक पहुँच जाती थी। आपने ध्वनिवर्धक यन्त्र का कभी प्रयोग नहीं किया। न ही करने के हक में थे।

विद्वत्ता—

गुरुदेव ने प्राय: सभी जैन सूत्रों का अध्ययन सम्यक् प्रकार से किया था, और शास्त्रों के गूढ़ से गूढ़ रहस्य को अच्छी तरह समझते थे व समझा सकते थे। आपने अन्य मतावलम्बियों के ग्रन्थों का भी काफी अनुशीलन किया था। आपको कई शास्त्र, हजारों संस्कृत के श्लोक, दोहे, सवैये आदि मौखिक याद थे। आप श्री का संस्कृत, प्राकृत, गुजराती, हिन्दी आदि भाषाओं पर पूर्ण रूप से अधिकार था। कई बार श्रावकों एवं अन्यमतियों से किसी विषय पर चर्चा-वार्ता होती, तो सब लोग आपकी उक्तियों प्रत्युक्तियों से पूर्ण सन्तुष्ट हो जाते थे, और आपकी विद्वत्ता की प्रशंसा किया करते थे। आपकी स्मरण शक्ति वृद्धावस्था में भी बड़ी तेज थी।

गुरुदेव को ज्योतिष विद्या का भी अच्छा अनुभव था। कई सन्त आपसे दीक्षा आदि के मुहूर्त मंगवाया करते थे। गुरुदेव को स्वर विज्ञान का भी अच्छा अनुभव था।

निस्पृहता—

गुरुदेव जब कभी किसी क्षेत्र से विहार करते थे, तो आप पहले कुछ नहीं कहते थे। (चाहे किसी क्षेत्र में कितने ही दिन क्यों न ठहरें।) यहाँ तक की मुझे भी नहीं बतलाते थे। जब विहार करने का मन होता जब ही कहते—चलो कमरें बाँधो और चल पड़ते। किसी भी भाई को विहार में साथ नहीं रखना चाहते थे। मैं कभी-कभी जब अनजाना रास्ता होता था, तो कहता किसी भाई को साथ लेलें तो अच्छा रहेगा। तब गुरुदेव फरमाते कि सन्त बने हैं क्या डर है? सन्तों को तो स्वावलम्बी होना चाहिये कुछ भाग्य का भी भरोसा रखना चाहिये। जैसा भावी होगा हो जायेगा।

परिमित आहार—

गुरुदेव आहार भी सादा एवं परिमित ही करते थे। हमेशा खान-पान एवं जिह्वा पर पूरा संयम था। यही कारण था कि आपका स्वास्थ्य पूर्ण ठीक था। वृद्धावस्था होने पर भी आप में प्रत्येक कार्य करने की स्फूर्ति रहती थी। स्वास्थ्य अच्छे होने के कारण ही आप श्री ८२ वर्ष के होते भी देखने वालों को ६० वर्ष के ही प्रतीत होते थे। स्वास्थ्य ठीक होने के कारण ही आप आखिरी समय तक विहार करते रहे। आपका स्थिरवास बैठने का विचार नहीं था, विशेष क्या जिस दिन आप स्वर्गवासी हुए थे उस दिन भी सुबह २ मील करीब बाहर भ्रमण करने पधारे थे। आप शौच आदि के लिए हमेशा बाहर ही जाया करते थे।

मुझे गुरुदेव ने अपनी तरफ से ज्ञान सिखाने एवं योग्य बनाने में कुछ कमी न रखी। परन्तु मैं प्रमादवश जितना उनसे लेना चाहिए था, उतना नहीं ले सका। ऐसा सुयोग्य अवसर तथा सुयोग्य गुरु के मिलने पर भी जितना ज्ञान लेना चाहिए नहीं ले पाया। यहाँ पर यह लोकोक्ति चरितार्थ होती है, कि 'नदी के किनारे पर भी रह कर प्यासा रह जाना" ऐसी परिस्थिति का समुचित लाभ न उठाना ये मेरे मन्द भाग्य का ही कारण है। कई श्रावक श्राविका कहा करते थे, कि स्वामी जी वृद्ध हैं और पूरे अनुभवी हैं और ज्ञान के भण्डार हैं। आप इनके ज्ञान भण्डार से जितना चाहें लूट सकते हैं फिर ऐसा अवसर नहीं मिलेगा। परन्तु मुझे यह स्वप्न में भी आशा नहीं थी, कि यह सूर्य इतना शीघ्र और सहसा अस्त हो जायेगा। परन्तु श्रावक-श्राविकाओं की बात शीघ्र सामने आई। तब मुझे हृदय में अनुभव हुआ कि आज का काम कल पर न छोड़ना चाहिए और काल का क्या भरोसा कि वह कब आ जाए।

आखिर समय आया और चैत्र शुक्ला २ सम्वत् २०२८ रविवार शाम के करीब ४ बजे सहसा बिना किसी बीमारी के धर्म ध्यान में तल्लीन रहते हुए ही वह प्रकाशपुञ्ज अस्त हो गया। सारी नगरी में एवं संघ में शोक छा गया। मानो उनका वियोग सूर्य भी न देख सका, अतः वह भी अस्ताचल पर चला गया—

अन्त में शासनपति श्री वीर प्रभु से यही प्रार्थना है, कि गुरुदेव की आत्मा अक्षय शान्ति को प्राप्त करे और उनका सच्चरित्र एवं संयम साधना हमारे लिए पथ-प्रदर्शक बने।

❀

लाख-लाख वंदन हे ज्योतिर्मय !

—जयंतीलाल गोरधनदास तुरखिया (अहमदावाद)

अनंत-अनंत श्रद्धाना केन्द्र, क्षमाश्रमण श्री छगनलालजी महाराज साहेब नँ जीवन एक खुल्ली पुस्तक हतुँ । तेमना आचार विचार अने उच्चारमां वनावट के सजावट जेवु' कोई तत्व न हतु', जे कांई हतु' ते प्रत्यक्ष हतु', तेमना हसमुखा चेहरा पर वैराग्य मिश्रित गंभीरता सदा छाई रहती ।

साधकना आंतरिक जीवननु' विश्लेषण करतां भगवान श्री महावीर स्वामी ए कहयु' छे के साधकनु' जीवन जेवु' अन्दर होयछे तेवु'ज वाहर होयछे अने जेवु' वाहर होयछे तेवु'ज अन्दर । तात्पर्य ऐके साधकनु' जीवन नकली दीखाव सिवायनु' असल होयछे, अखण्ड होयछे । उपरोक्त कथन अनुसार परम श्रद्धेय श्री छगनलाल जी महाराज श्री नु' जीवन एक साचा साधकनु' जीवन हतु' । तेमनु' मन जेटलु' मधुर हतु' तेटलाज तेमना वचनो मधुर हता अने तेमनु' जीवन तो तेथीपण मधुर हतु' ।

आवा सन्तरत्न नी गैरहाजिरी अमने सालेछे । परन्तु तेमनु' व्यक्तित्व आज पण जीवंतछे अने भविष्यमां पण जीवंत रहेशे । तेमना प्रत्ये मारी असीम श्रद्धा समर्पण करूँ छुं ।

जगत उद्धारक

—गोविन्द प्रकाश जैन, भटिण्डा

जैन शास्त्रों के प्रकाण्ड विद्वान, महान तपस्वी, वाल ब्रह्मचारी गुणों की खान, दया के सागर, क्षमामूर्ति जगत उद्धारक श्री छगनलाल जी महाराज जैन साधु वर्ग में एक उच्च कोटि के संत थे ।

पूज्यपाद गुरुदेव मिलनसार तथा महान उपकारी संत थे । अमीर अथवा गरीव सभी के साथ एक सा मधुर व्यवहार करते थे । इसीलिए तो कविता की भाषा में कहना पड़ा—

तू मस्त फकीर कलन्दर था तू सन्त महन्त मछन्दर था ।
तू ब्रह्मचारी सर्वहितकारी तू मुर्शिद पीर पैगम्वर था ।।
तू पुशत पनाह था वेकस का तू गुमराहों का रहवर था ।
तू दिलवर था दिल वालों का हर दिल का था उत्साह गुरु ।
प्रणाम गुरु प्रणाम गुरु है वार वार प्रणाम गुरु ।।

तेरी मेहरो उलफत थी वे इन्तहा,
हुये हम तेरे लुत्फ मे शादकम ।।
भुलाने से भी भूल सकते नहीं,
जो गुजरे तेरी शरण में सुवह शाम ।।